प्राचीन भारतीय महाकाव्यों में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्त्री

कु० सुषमा शुक्ला

निर्देशक

डा० उमाकान्त तिवारी, एम० ए०, डी० लिट्०

रीडर, राजनीतिविज्ञान विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

राजनीतिविज्ञान विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

जून १९८७

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन — I–IV

अध्याय

१–	महाकाव्यों की प्रकृति तथा स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का ऐतिहासिक सर्वेक्षण	१ – ६४
२–	पुत्री, उसकी स्थिति और शिक्षा	६५ – ११४
३–	विवाह	११५ – २२६
४–	पत्नी	२३० – ३०५
५–	माता	३०६ – ३४५
६–	विधवा की स्थिति	३४६ – ३८६
७–	नियोग	३९० – ४१५
८–	स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति	४१६ – ४५४
९–	कानूनी स्थिति	४५५ – ४९६
१०–	स्त्री और स्वतंत्रता	४९७ – ५२९
	सन्दर्भ ग्रन्थों की संक्षिप्त सूची और मुख्य संकेत-पद-सूची	५३० – ५५८

०० ———— ००

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में 'प्राचीन भारतीय महाकाव्यों में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति' के विषय में वर्णन करने का एक विनम्र प्रयास किया गया है। प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य में रामायण तथा महाभारत का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का प्रधान विवेच्य विषय उपर्युक्त महाकाव्य-द्वय में प्राप्त स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का अन्वेषण करना है। ये महाकाव्य भारतीय ज्ञान विरासत के विश्वकोश कहे जाते हैं। अनेक विद्वानों ने वैदिककाल, बुद्धकाल तथा बाद के कालों में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के विषय में वर्णन किया है। महाकाव्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयास मेयर का हुआ है, परन्तु उन्होंने जीवन के केवल एक पक्ष स्त्री पुरुष के सम्बन्धों तक ही अपनी दृष्टि को सीमित रखा है। इसके अतिरिक्त जो भी प्रयास किये गये हैं, वे महाकाव्यों की गुरुता तथा महत्व को देखते हुए अत्यल्प हैं। अतः महाकाव्य में स्त्रियों के विषय में कैसा वर्णन किया गया है, उस पर पृथक से तथा विस्तृत रूप से विचार करने की आवश्यकता का अनुभव मैं अध्ययन काल से ही कर रही थी, क्योंकि इस विषय में अब तक जो भी प्रयास किये गये उनको हम पूर्ण नहीं कह सकते। इन दोनों बड़े महाकाव्यों ने भारतीय जीवन तथा विचार को बहुत अधिक प्रभावित किया है और इनमें वर्णित चरित्र भारतीय स्त्रियों के लिये आदर्श रहे हैं। भारतीय संस्कृति एवं दर्शन में नारी को सदा ही विशिष्ट स्थान मिला है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में अर्द्धनारीश्वर की कल्पना उसकी महत्ता तथा प्रधानता का द्योतक है। नारी के बिना नर अपूर्ण है। अपनी सर्जन प्रतिभा तथा कला से नारी उसे पूर्णता प्रदान करती है। कोमल संवेदनशीला नारी सामाजिक व्यवस्था का एक अंग है। सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण में उसने क्रियात्मक योग दिया है। उसके मातृत्व के गौरव एवं महत्ता को विश्व के सभी राष्ट्रों ने स्वीकार किया है। वस्तुतः देश एवं राष्ट्र का उत्थान तथा समाज एवं जाति का उत्कर्ष बहुत अंश तक इसी आदर्श पर निर्भर है। अतः आज जबकि नारी नवजागरण के इस युग में प्रकाश के आलोक में कदम बढ़ा रही है, तथा विभिन्न क्षेत्रों में उसकी स्थिति में महत्वपूर्ण

परिवर्तन हो रहे हैं, भारत में पूर्वकाल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति की पृष्ठभूमि के अध्ययन की आवश्यकता बढ़ जाती है, क्योंकि सीता, सावित्री, दमयन्ती, कुन्ती आदि के चरित्र आज भी हमारे लिये प्रेरणास्रोत बने हुए हैं। ये दोनों महाकाव्य संस्कृत साहित्य के अनेक काव्यों, महाकाव्यों, नाटकों तथा कथा-कृतियों के प्रेरणास्रोत रहे हैं। बाद के हिन्दी साहित्य की कई रचनाओं को भी इन महाकाव्यों से प्रेरणा मिली है। महाकाव्य में विभिन्न प्रकार के रीतिरिवाजों और स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का वर्णन किया गया है। प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति के ज्ञान के लिये इन दोनों का अध्ययन आवश्यक है। अत: विषय की महत्ता और गुरुता को देखते हुए मैंने शोधप्रबन्ध के लिये उपर्युक्त विषय का चयन किया।

अध्ययन पद्धति—

दोनों महाकाव्यों में वर्णित प्रमाणों के आधार पर स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के वर्णन का प्रयास किया गया है। महाकाव्य, विशेष रूप से महाभारत का कलेवर ऐसा है कि उसकी उत्पत्ति, उत्थान, आदर्शों और रीति-रिवाजों का अध्ययन बिना प्राचीन साहित्य की सहायता के असम्भव है। अत: वैदिक काल से पूर्व तथा वैदिक परम्पराओं के द्वारा महाकाव्य के समाज की सामाजिक पृष्ठभूमि का पता चलता है। महाकाव्य के चरित्र विशेष रूप से महाभारत के, ब्राह्मण और उपनिषद् काल के हैं, महाकाव्य के कथाभाग में जो रीतिरिवाज हैं, वे सूत्रों में पाये जाते हैं। महाकाव्य के उपदेशक भाग में जिस समय का वर्णन है, वह काल प्राय: धर्मशास्त्रकाल से मिलता जुलता है, विशेष रूप से मनुस्मृति के काल से। जहां तक सम्भव हो सका है एक ओर वैदिक साहित्य, धर्मशास्त्र साहित्य तथा दूसरी तरफ महाकाव्य में प्राप्त समानान्तर प्रमाणों, रीतिरिवाजों और परिस्थितियों के तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास किया गया है। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को समझने के लिये यह सरल उपाय है कि इसका वर्णन किया जाय कि उसके जीवन के विभिन्न काल में पुरुष और समाज से क्या सम्बन्ध है?

सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध दस अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय में महाकाव्यों की प्रकृति तथा विभिन्न कालों में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के विषय में वर्णन किया गया है । द्वितीय अध्याय 'पुत्री, उसकी स्थिति और शिक्षा' से सम्बन्धित है । तृतीय अध्याय में 'विवाह' के विषय में सम्यक् विचार किया गया है । चतुर्थ अध्याय 'पत्नी', पंचम अध्याय 'माता' तथा षष्ठ अध्याय 'विधवा की स्थिति' से सम्बन्धित है । सप्तम अध्याय में 'नियोग' के विषय में विचार किया गया है, जो उस समय की विशिष्ट प्रथा थी । अष्टम अध्याय में 'स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति' के विषय में विचार किया गया है । नवम अध्याय 'कानूनी स्थिति' के अन्तर्गत स्त्रियों के साम्पत्तिक स्वत्व, न्याय तथा दण्ड आदि पर विचार किया गया है । दशम अध्याय 'स्त्री और स्वतंत्रता' में स्त्रियों की स्वतंत्रताओं के विषय में वर्णन किया गया है ।

यह कार्य मैंने गुरुवर डा० उमाकान्त तिवारी, डी० फिल, डी० लिट्, रीडर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सुयोग्य निर्देशन में किया । उन्हीं के सहयोग तथा स्नेह के बल पर मैं प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को पूर्ण कर सकी हूं । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने की अवधि में मेरे सामने अनेक कठिनाइयां आयीं। परन्तु इन सब कठिनाइयों के मध्य में सम्बल देने का कार्य श्री विश्वम्भरनाथ अग्रवाल, बी० काम०, एल० एल० बी०, व्याकरणाचार्य जिज्ञासु सरलतम संस्कृत प्रचार के समिति के अध्यक्ष ने किया । उनके सहयोग, अथक परिश्रम तथा प्रेरणामय वचनों ने मेरे लिये सदैव सम्बल का कार्य किया । मैं उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूं । हरीराम गोपालकृष्ण सनातन संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य डा० रामकृष्णशास्त्री तथा साहित्य विभागाध्यक्ष देवमणि मिश्र को भी हृदय से धन्यवाद देती हूं, जिन्होंने मुझे पुस्तकीय सहायता प्रदान की तथा समय-समय पर अमूल्य सुझाव दिये । इसके अतिरिक्त अपने उन सभी मित्रों एवं बन्धुओं की उपकृत हूं, जिन्होंने शोध कार्य के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से

अपनी अमूल्य सहायता दी है । मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन, चन्द्रशेखर आज़ाद लाइब्रेरी, गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत संस्थान, केन्द्रीय - राज्य पुस्तकालय, इलाहाबाद, आदि पुस्तकालयों के पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूं, जिन्होंने मुझे अपने पुस्तकालयों में पर्याप्त सुविधा देकर मेरे इस कार्य में सहायता प्रदान की है ।

कु० सुषमा शुक्ला
(कु० सुषमा शुक्ला)

अध्याय - १

महाकाव्यों की प्रकृति तथा स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

महाकाव्यों की प्रकृति तथा स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत रामायण तथा महाभारत का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। ये दोनों महाकाव्य तत्कालीन भारत की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति के ज्ञान के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। प्रस्तुत शोधप्रबन्ध का प्रधान विवेच्य विषय उपर्युक्त महाकाव्य-द्वय में प्राप्त स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करना है।

अतः सर्वप्रथम हम इन दोनों महाकाव्यों का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत करेंगे।

[खण्ड क]

महाकाव्यों की ऐतिहासिकता -

अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने इतिहास के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीयों के दृष्टिकोण को न समझने के कारण वर्णित महाकाव्यों कीऐतिहासिकता पर प्रश्न चिन्ह लगाया है तथा उनमें वर्णित पात्रों तथा घटनाओं को कवि कल्पना प्रसूत माना है।[1] पाश्चात्य विद्वानों के दृष्टिकोण में भारतीयों में ऐतिहासिक प्रवृत्ति का अभाव पाया जाता है,। जैसा कि मैकडोनल ने लिखा है कि "भारतीय साहित्य में इतिहास का एक कमजोर स्थान है। वास्तव में इतिहास है ही नहीं, ऐतिहासिक भावना की एकदम कमी है। क्रमबद्ध घटनाओं की अनुपस्थिति के कारण संस्कृत साहित्य पूर्ण रूप से अन्धकारमय है।[2] प्राचीन भारतीयों की ऐतिहासिक

१- वेबर - हि० इं० लि०, पृ० १८७
मैक्समूलर - ए० हि० एं० सं० लि०, पृ० ७३-७७
एस० एल्फिन्स्टन - दि हिस्ट्री आफ इण्डिया - पृ० १४६
ए० स्मिथ - दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ११, २८, ३१

- हि० सं० लि०, पृ० १०

प्रवृत्ति के सम्बन्ध में की गयी मैकडोनल की टिप्पणी को समीचीन नहीं माना जा सकता । पाश्चात्य विद्वानों ने साधारणत: तिथिवार क्रमबद्ध घटनाओं के उल्लेख मात्र को ही इतिहास माना है और इस अर्थ में भारतीय साहित्य में इतिहास की कमी को हम स्वीकार कर सकते हैं, परन्तु भारतीय इतिहास से अनभिज्ञ थे अथवा उनमें ऐतिहासिक प्रवृत्ति का अभाव था, इसे हम स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि भारतीय मनीषियों ने जीवन को समग्रता के दृष्टिकोण से देखा था, और साहित्य के अन्तर्गत भी उसी समग्रता के दर्शन होते हैं । सम्भवत: यही कारण है कि उनके द्वारा वर्णित साहित्य में धर्म, समाज की स्थिति तथा अन्य घटनाओं का वर्णन किया गया है जिसमें कि सांस्कृतिक व सामाजिक पक्ष पूर्णतया सुरक्षित रहा है । विद्वान लेखक आर० सी० दत्त ने लिखा है - " हिन्दुओं के अभिलेखों तथा अन्य राष्ट्रों के अभिलेखों में भिन्नता है ।...... प्राचीन हिन्दू ग्रन्थ दूसरे प्रकार के हैं वे कुछ विषयों में, जैसे कि - राजवंशावली के विवरण में तथा युद्धों के विषय में अपूर्ण तथा दोषपूर्ण हैं, जब कि दूसरे पक्ष में, यथा - सभ्यता तथा मानव मस्तिष्क की प्रगति के विषय में वे हमें पूर्ण, क्रमबद्ध और स्पष्ट विवरण देते हैं । फोटोग्राफ की तरह प्रत्येक काल के साहित्य का एक पूर्ण चित्र है । हिन्दू सभ्यता के उस काल के तथा बाद के आने वाले समयों के अभिलेख हिन्दू सभ्यता के ३००० वर्षों का स्पष्ट और पूर्ण इतिहास बनाते हैं, जो चाहे उसे पढ़ सकता है ।" वे आगे लिखते हैं - " हिन्दू साहित्य के इतिहास के अनेक कालों का अध्ययन करने वाले भी यह जानते हैं कि वे सब मिलकर एक पूर्ण और विस्तृत कथा बनाते हैं - हिन्दू सभ्यता, विचार और धर्म में ३००० वर्षों तक धीरे:-धीरे: जो उन्नति और परिवर्तन हुए ।[1] इस प्रकार यह सब साहित्यिक स्रोत विशेष रूप से महाकाव्य भी हमें हिन्दू जाति की सभ्यता और संस्कृति के विषय में परिचित कराते हैं । यह मुख्यरूप से परम्परागत कथाओं पर आधारित है ।[2]

- -

१- आर० सी० दत्त - " हिस्ट्री आफ सिविलाइजेशन इन एन्शियेंट इण्डिया," [illegible] भूमिका, [illegible] ।
२- [illegible] - [illegible] , [illegible] - पृ० १

परम्परा और इतिहास -

भारतीय साहित्य के अन्तर्गत परम्परा और इतिहास का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । प्रचलित परम्पराओं का सूक्ष्म अध्ययन कर हम उनमें से वास्तविक ऐतिहासिक तथ्य को निकाल सकते हैं । क्योंकि प्रारम्भ में एक लम्बे अरसे तक समस्त साहित्य मौखिक ही रहा और परम्पराओं के माध्यम से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ऐतिहासिक तथ्यों को सुरक्षित रखा गया । इन परम्पराओं को सुरक्षित रखने का श्रेय सूत, मागधों और बन्दियों (स्तुतिपाठक) को है, जो कि राजाओं के यहाँ स्थायी रूप से रहते थे और उनकी प्रशंसापरक स्तुति करते थे ।[1]

रामायण और महाभारत में इन सबों का वर्णन है ।[2] महाकाव्य में पुराणविद् अथवा पौराणिक का कई स्थानों पर उल्लेख किया गया है ।[3] सूत और मागध पेशेवर गायक होते थे और परम्परा से प्राप्त प्राचीन आख्यानों, गाथाओं और नाराशंसियों का गान करते थे जो कि वीरयोद्धाओं की प्रशंसापरक स्तुतियों से भरे होते थे । भारत में ऐतिहासिक काव्यों का उदय इन प्राचीन आख्यानों, गाथाओं और नाराशंसियों से सम्बन्ध रखता है जिनका उल्लेख ब्राह्मण और वैदिक साहित्य के अन्य ग्रन्थों में हुआ है ।[4] रामायण और महाभारत

- -

१- पार्जिटर - वही, पृ० २७

२- रामा० अयो० का० ६।६, ६५।१-४, महा० वनपर्व २३६।१०, आश्रमवासिक ३८।५, सूतमागधवैदेहस्यानी य: प्रवीष्यति ।
अनु०पर्व ४८।१०-१२, (मिलाइये मनु १०।११-१७) । परन्तु हरिवंश में कहा गया है कि सूत और मागध पृथु के यशोगान करने के लिये उत्पन्न हुए ।
हरिवंश अध्याय २, पृ० ८, २५ । पार्जिटर ने कौटिल्य अर्थशास्त्र के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि पौराणिक सूत और मागध प्रतिलोमों से भिन्न थे ।
पार्जिटर - ए० इं० हि० ट्रे०, अध्याय २, पृ० १६-१७

३- रामा० अयो० का० १५।१८-२४, महा० आदि पर्व ५।१, १०७-१०८, २५२

४- डा० रमाशंकर त्रिपाठी - प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ५८, वैदिक साहित्य और अर्थवेद में भी इतिहास पुराणों का उल्लेख है । इनको इन महाकाव्यों से पुरानी इतिहास मानना चाहिये ।

जैसे लौकिक संस्कृति के आदि काव्यों के कथानकों के स्रोत भी इन्हीं गाथाओं, आख्यानों तथा नाराशंसियों में देखे जा सकते हैं ।[1]

विद्वानों का यह भी मन्तव्य है कि रामायण और महाभारत अपने प्रारम्भिक अवस्था में इन्हीं सूत और मागधों द्वारा ही श्रुतिपरम्परा से सुरक्षित रखे गये । इस सम्बन्ध में दिनकर ने लिखा है - " रामकथा सम्बन्धी आख्यान काव्यों की वास्तविक रचना वैदिक काल के बाद इक्ष्वाकुवंश के सूतों ने आरम्भ की । इन्हीं आख्यान काव्यों के आधार पर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की । इस रामायण में अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथावस्तु का वर्णन था और उसमें सिर्फ बारह हजार श्लोक थे ।[2] फादर कामिल बुल्के ने भी सूतों द्वारा प्रोक्त मूल रामकथा सम्बन्धी आख्यानों तथा स्फुट कथाओं की सत्यता को स्वीकारते हुए अपना मत व्यक्त किया है कि - " राम, रावण तथा हनुमान के विषय में पहले स्वतंत्र आख्यान प्रचलित थे, जिनके संयोग से रामायण की रचना हुई ।[3] ब्राह्मण सम्बन्धी साहित्य, गाथा, नाराशंसी, अथवा साहित्य निबन्धों का निर्देश करता है, जो कि क्षत्रिय राजाओं के यशोगान से सम्बन्धित होते थे । रामायण और महाभारत का उद्गम अन्ततः इन्हीं स्रोतों से बचा हुआ अवशेष भाग है ।[4] हरिवंश भी इस तथ्य को स्वीकार करता है कि वाल्मीकि मुनि से पूर्व रामकथा का अस्तित्व वर्तमान था । और इसको सुरक्षित रखने का श्रेय सूतों एवं कुशीलवों को ही है । हरिवंश का

१- वाचस्पति गैरोला - संस्कृत साहित्य का इतिहास, अध्याय ५, पृ० २०८ ।

२- रामधारी सिंह दिनकर - " संस्कृति के चार अध्याय " पृ० ८४

३- कामिल बुल्के - रामकथा, पृ० ४५

४- आर० सी० मजूमदार - एन्शियेण्ट इण्डिया, पृ० २०६ ।

कथन है कि " रामायण की रचना से भी पूर्व रामकथा पुराणविदों (चारणों, सूतों या कुशीलवों) द्वारा गायी जाती रही है ।[१] महाभारत में भी इस प्रकार की गायी जाने योग्य गाथाओं का उल्लेख मिलता है । उसमें लिखा है कि - " इन्द्र ने जिन गाथाओं को गाया था उनको उत्तरवर्ती ब्राह्मणों ने उसी अर्थ में गाया ।[२] महाभारत भी अपने वर्तमान स्वरूप में आने से पूर्व आख्यानों के रूप में ही प्रचलित रहा होगा । महाभारत के इन अनेक आख्यानों और उपाख्यानों को सूतों ने ही मौखिक रूप से सुरक्षित रखा, जिनका वर्णन महाभारत में प्राप्त होता है, और बाद में जब लेखन कला की प्रगति हुई, तब महाभारतकारों ने मौखिक रूप से सुरक्षित इन उपकथाओं का संकलन, संशोधन और सम्पादन किया ।[३] यह कार्य व्यास के द्वारा किया गया,

- -

१- गाथा अप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्यं तस्यधीमतः ॥ हरिवंश ४१।१४६

२- वनपर्व ८८।५, गीत और गाथाओं का प्रयोग वस्तुतः इतिहास के ही अर्थ में किया गया है, इस सम्बन्ध में देखिये -
वनपर्व २६।३५, १३५।४५, ५४ ये गाथायें दार्शनिक और कानूनी तथ्यों को स्पष्ट करती हैं । वनपर्व १००।२, शान्तिपर्व ३४० । १२७, ३३६।१६, वनपर्व २६८।७, आदिपर्व १३६।७४ । इसी प्रकार नल की कथा को कीर्तनं, इतिहासं, पुराणं आदि से सम्बोधित किया गया है । वनपर्व ७६।१०-११,१३,१६, इन कथाओं का वर्णन इतिहास के रूप में ही किया गया है ।
देखिये - एम० कृष्णामाचारी ने " हिस्ट्री आफ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर" । (प्रथम भाग) पृ० २ में लिखा है कि -" वैदिक साहित्य में साधारणतया कथित, आख्यान, पुराण, इतिहास और कथा इनमें कोई सारभूत अन्तर नहीं है । साधारणतया उनका तात्पर्य कथा, कहानी, प्राचीन आख्यान, और घटनाओं से है, वे परस्पर आदान-प्रदान के योग्य हैं, किन्तु उनका मुख्य तथ्य भूतकाल के बड़े महान राजाओं अथवा देवताओं की कथाओं का वर्णन करना है ।

३- वाचस्पति गैरोला - संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २०४ ।पार्जिटर इन्हीं को महाकाव्य के वर्णों का स्रोत मानता है -
पार्जिटर - ए० ऐ० हि० ट्रे० अध्याय २, पृ० १६-२२ ।

जिसका अर्थ होता है - संकलनकर्ता, जिन्होंने कि पुराणों को संकलित करने के बाद एक महाकाव्य का निर्माण प्रारम्भ किया, जिससे उनका तात्पर्य इतिहास से है।[१] इस सम्बन्ध में पर्गिटर ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि " क्षत्रिय और ब्राह्मणों की परम्परायें अलग-अलग थीं।[२] परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, क्योंकि महाकाव्य में, पुराणों और वेदों में ब्राह्मणों की कथायें, राजवंशों की कथाओं से मिली जुली है। जिस समय महाकाव्य लिखा गया, उस समय तक राजाओं तथा ऋषियों की वंशपरम्परायें स्थापित हो चुकी थीं और वे सबको मालुम थीं।[३] पर्गिटर ने ठीक ही लिखा है कि -" भारत के अति प्राचीन समय की हमारी जानकारी परम्पराओं पर आश्रित है, इसलिये प्राय: सभी जानकारी परम्परा से प्राप्त होती है।[४] परम्परा अति मूलकाल के

- -

१- वही, अध्याय २, पृ० २१-२२। अन्य विद्वान यह विश्वास करते हैं कि अपने वर्तमान स्वरूप में पुराण महाकाव्यों के बहुत बाद में लिखे गये - विंटरनित्स - हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, प्रथम भाग, अध्याय २ [सेक्शन] " एपिक्स एन्ड पुरान्स।"

२- पर्गिटर - ए० ३० हि० ट्रे० अध्याय १ और २, पृ० १-३३, उनका विचार है कि वेद ब्राह्मणों के परम्परागत इतिहास को प्रकाशित करते हैं और महाभारत तथा पुराण क्षत्रियों के। दूसरे लेखकों की तरह हौल्त्समैन यह सोचते हैं कि महाभारत एक बौद्धों की किताब थी, जिसकी पुनर्रचना ब्राह्मणों ने की है। इस सम्बन्ध में ग्रियर्सन ने भी अपना मत व्यक्त किया है परन्तु इन विद्वानों ने इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न तथा एक दूसरे से विरोधी कारणों की सम्भावना बतलाया है। इन सिद्धान्तों की प्रामाणिकता में गम्भीर विरोध है। इस सम्बन्ध में देखिये - ए० डी० पुसालकर -" स्टडीज इन एपिक्स एन्ड पुरान्स आफ इण्डिया " इन्ट्रोडक्शन।

३- विविधाख्यान यत्रैव दैवतानां राजनाम्: ।
राजवंशास्च विविधा ऋषिवंशास्च शाश्वता: ।। वनपर्व २०।१३

४- पार्जिटर -" एन्शियेन्ट इंडियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन, अध्याय १, पृ० १।

मानव का प्रमाण है, और इसलिये उसका बहिष्कार नहीं करना चाहिये, सिर्फ इसलिये कि उसमें अभाव है ।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में परम्परा व इतिहास का बड़ा घनिष्ठ तथा महत्वपूर्ण सम्बन्ध रहा है । अतीत काल के ऐतिहासिक बीज उन परम्पराओं में ही विद्यमान हैं । उन परम्पराओं का अनुशीलन कर हम प्राचीन भारत के वास्तविक ऐतिहासिक तथ्यों की खोज कर सकते हैं ।

रामायण का रचनाकाल और वाल्मीकि -

रामायण के रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है । यह तो निर्विवाद है कि रामकथा का अस्तित्व अत्यन्त प्राचीनकाल से रहा है ।[2] कुछ विद्वान् राम और वाल्मीकि को समकालीन मानते हैं । श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य का मत है कि ऋग्वेद के दसवें मण्डल, जिसमें राम का उल्लेख हुआ है, उसका नायक और कोई नहीं, दाशरथी राम ही थे ।[3] इस दशम मण्डल की रचना के सम्बन्ध में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है । कुछ पाश्चात्य विद्वान् इसको १५०० ई० पू० का रचा हुआ मानते हैं ।[4]

महाकवि वाल्मीकि को संस्कृत साहित्य का आदिकवि माना जाता है । इस सम्बन्ध में दिनकर ने लिखा है -" वाल्मीकि ने पहले पहल लौकिक

- -

१- वही, पृ० १३

२- रामदास गौड़, हिन्दुत्व , पृ० १३७ - एक पौराणिक अनुश्रुति तो इस प्रकार है कि वाल्मीकीय " रामायण " से पूर्व स्वायंभुव मन्वन्तर से भी पहले, सतयुग में भगवान शंकर ने पहले पहल महासती माता पार्वती को एक रामायण सुनायी थी जिसका नाम महारामायण या अध्यात्म रामायण था और जिसका कलेवर तीन लाख पचास हजार श्लोकों का रहा होगा ।

३- वाचस्पति गैरोला - संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २१२ ।

४- [illegible] बुक आफ दि वेद (डा० [illegible])

संस्कृत में काव्य रचना की , अतएव वे संस्कृत के आदिकवि माने गये ।[१] इसी प्रकार का मन्तव्य जयचन्द्र विद्यालंकार ने भी व्यक्त किया है - " ऋचाओं के रूप में कविता करने वाले ऋषि यद्यपि बहुत पहले से होते आ रहे थे, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि लौकिक उपाख्यानमयी कविता का आरम्भ पहिले पहल वाल्मीकि ने किया है ।[२]

विद्वान रामायण तथा महाभारत को किसी एक कवि की तथा एक काल की रचना स्वीकार नहीं करते । उनके अनुसार इन दोनों में बाद के कालों में अत्यधिक परिवर्तन हुए हैं और विशेष रूप से महाभारत में जोड़ तथा परिवर्तन अधिक हुए ।[३]

मैकडोनल ने रामायण का रचनाकाल ५०० ई० पू० और उसमें जोड़े गये प्रक्षेपों का समय २०० ई० पू० सिद्ध किया है । रामायण के पहले तथा सातवें काण्ड को आधार मानकर यह मत व्यक्त किया है कि रामायण एक हाथ की रचना नहीं है ।[४] ` जयचन्द्र विद्यालंकार ` रामायण का काव्य रूप में पहले पहल संस्करणभी ५ वीं शताब्दी ई० पू० में मानते हैं । बाद में दूसरी शताब्दी ई० पू० में उसका पुन: संस्करण हुआ, जो अन्तिम संस्करण अब हमें मिलता है ।[५] काशीप्रसाद जायसवाल का भी यही मत है कि मूल ग्रन्थ की रचना ई० पू० ५०० के लगभग हुई थी और ई० पू० २०० के लगभग वह फिर से दोहराया गया ।[६] दिनकर ने महाभारत के वनपर्व में वर्णित रामोपाख्यान पर्व को

- -

१- दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय , पृ० ८३
२- जयचन्द्र विद्यालंकार - भारतीय इतिहास की रूपरेखा-१, पृ० १५८
३- आर० सी० मजूमदार - एन्शियेन्ट इण्डिया , पृ० २०६
४- मैकडोनल - हि० सं० लि० , पृ० ३०६ - ३०८
५- जयचन्द्र विद्यालंकार - भारतीय इतिहास की रूपरेखा १ , पृ० ४३२-४३३
६- - जे० बी० ओ० आर० एस० खण्ड ४, पृष्ठ २६२ ।

वाल्मीकीय रामायण का ही संक्षिप्त रूप माना है।[१] महाभारत से यह भी सूचित होता है कि उसकी रचना के समय राम ईश्वरत्व प्राप्त कर चुके थे और इससे सम्बद्ध स्थान तीर्थ माने जाते थे, श्रृंगवेरपुर और गोप्तार का उल्लेख इसी रूप में मिलता है। चन्द्रशेखर पाण्डेय ने भी रामायण के रचनाकाल के सम्बन्ध में सप्त सिद्धान्त स्थिर किये हैं, जिसके अनुसार रामायण बौद्ध धर्म एवं ग्रीक प्रभावों से सर्वथा अछूती है और रामायण की मूल कथा बौद्ध धर्म के आविर्भाव से पूर्व की है और उसकी रचना लगभग ५०० ई० पू० में हो चुकी थी।[२] याकोबी प्रचलित रामायण के वर्तमान रूप को पहली या दूसरी शताब्दी ईस्वी का मानते हैं।[३]

वेबर ने वाल्मीकीय रामायण की कथा का मूल उद्गम दशरथ जातक में वर्णित रामकथा को माना है।[४] विद्वानों ने वेबर के इस मत की पर्याप्त आलोचना की है।[५] फिर भी अधिकांश विद्वानों ने वेबर के मत को ही मान्यता प्रदान की है।[६] यद्यपि याकोबी के मत का समर्थन करने वाले विद्वानों

१- दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ८३

२- पाण्डेय - संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० २०-२२

३- एच० याकोबी - दस रामायण, पृ० १००

४- डा० वेबर - आन दि रामायण, पृ० ११ आदि

५- एम विलियम्स - इंडियन विज़डम, पृ० ३१६, याकोबी - दस रामायण, पृ० ८४ आदि। मैक्डोनल - हि० सं० लि०, पृ० ३०८। सी० वी० वैद्य दि रिडिल आफ दि रामायण, पृ० ५१-६१।

६- डा० वेबर - आन दि रामायण, दिनेशचन्द्र सेन - दि बंगाली रामायन्स पृ० ७ से। ग्रियर्सन - जर्नल आफ रा० ए० सो०, पृ० १३५-१३६ [१९२२], डब्ल्यू स्टुटरहाइम - राम लीजेन्ड्स एण्ड राम रिलीफ्स इन इंडोनेशिया, पृ० २०५। के० सिद्धी इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, भाग १६, पृ० २८८।

की भी संख्या कम नहीं है ।[१] विंटरनित्स यह विचार रखते हैं कि - " सम्भवत: रामायण की रचना ईसा के ३०० वर्ष पूर्व की है ।[२] एम० विलियम्स का विचार है कि रामायण की रचना ईसा के तीन शताब्दी पूर्व हुई ।[३]

ए० श्लेगल के अनुसार रामायण की रचना ११०० ई० पू० में[४] तथा जी० गौरेसियो के अनुसार १२०० ई० पू० में हुई ।[५] जब कि इसके विपरीत व्हीलर तथा वेबर ने रामायण पर यूनानी तथा बौद्ध प्रभाव को सिद्ध कर उसकी रचना बहुत पीछे स्वीकार की है ।[६]

कुछ विद्वानों ने रामायण पर बौद्ध प्रभाव को स्वीकार करते हुए राम का शोक पर विजय प्राप्त करने के प्रसंग को बौद्ध आदर्शों से प्रभावित माना है तथा उनके अनुसार सम्पूर्ण रामकथा में ब्राह्मणों एवं बौद्धों का संघर्ष प्रतीकात्मक ढंग से वर्णित है ।[७] इस मान्यता का खण्डन करते हुए फादर कामिल बुल्के ने यह मत व्यक्त किया है कि - सम्भव है कि बौद्ध धर्म की पर्याप्त ख्याति के कारण वाल्मीकि मुनि बौद्ध आदर्शों से प्रभावित हुए हों, किन्तु राम के चरित्र में जो अद्भुत गुण दिखायी देते हैं, उनसे यह स्पष्ट होता है कि वाल्मीकि ने राम के इन गुणों को बौद्ध आदर्शों से न लेकर मौलिक विचारों के रूप में ग्रहण किया है ।[८] कुछ विद्वानों का मत है कि प्रचलित रामायण से मूल रामायण

- -

१- एम० विलियम्स - इंडियन विजडम, पृ० ३१६ । विंटरनित्स - हि० इं० लि० भाग १, पृ० ५०८ ।
२- विंटरनित्स - वही, पृ० ५१६-५१७
३- एम० विलियम्स - इंडियन विजडम, पृ० ३१६, मिलाइये - एम० कृष्णामाचारि- हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० १७ ।
४- ए० डब्ल्यू श्लेगल - जर्मन ओरियन्टल जर्नल, भाग ३, पृ० ३७९
५- जी० गौरेसियो - रामायण, भाग १० भूमिका ।
६- जे० टी० व्हीलर - हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग २, [लन्दन १८६९] तथा वेबर - आन दि रामायण [बम्बई १८७३]
७- याकोबी - दस रामायण, पृ० ८८, विंटरनित्स - हि०इं०लि० भाग-१, पृ० ५०६ । व्हीलर - दि हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग २, पृ० ७२, २२७ आदि ।
८- कामिल बुल्के - रामकथा, पृ० १०१ [आदि १९५०]

भिन्न थी और उसका निर्माण कम से कम ३०० ई० पू० में ही हो चुका था।[१] वैद्य इसकी सीमा को प्रथम शताब्दी ई० पू० के लगभग मानते हैं।[२]

महाभारत में रामायण तथा वाल्मीकि का स्पष्ट उल्लेख होने से यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि रामायण महाभारत से पूर्व की है। इसके अन्य भी कारण है - रामायण में कौशाम्बी, कान्यकुब्ज और काम्पिल्य आदि नगरों का उल्लेख तो मिलता है परन्तु पटना का नहीं। पटना को कालाशोक ने ३८० ई० पू० से भी पहले बसाया था। "रामायण" में जो मिथिला और विशाला दो स्वतंत्र राजधानियों का उल्लेख है, बुद्ध के समय में वे अयोध्या के नाम से परिवर्तित हो गये थे। अयोध्या के लिए बौद्ध साहित्य में जो साकेत शब्द मिलता है, रामायण में उसका कहीं उल्लेख नहीं है। इसलिये रामायण का मूल अंश उस समय निर्मित हो चुका था, जब कि महाभारत अपनी निर्माणावस्था में थी।[३] कीथ ने याकोबी और मैकडोनल के सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए आदि रामायण का रचनाकाल ४०० ई० पू० माना है।[४] हाप्किन्स[५], विंटरनित्स[६], विंसेंट स्मिथ[७], मैकडोनल[८] मोनियर विलियम्स[९] आदि द्वारा स्थापित मतों की आलोचना करते हुए सी० वी० वैद्य

- -

१- वही - रामकथा, पृ० ३६-३७

२- सी० वी० वैद्य - दि रिडिल आफ दि रामायण, पृ० २०, ५१

३- मैकडोनल - हि० सं० लि०, पृ० ३०२, ३०७-३०८ लंदन [१९२०]

४- जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी - दि एज आफ दि रामायण, पृ० ३१८, [१९१५]

५- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, वाल्यूम १, पृ० २५८

६- विंटरनित्स - हि० इं० लि०, भाग १, पृ० ४६५

७- विंसेंट स्मिथ - आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ३२

८- मैकडोनल - हि० सं० लि०, पृ० २८५-२८७

९- एम० विलियम्स - इंडियन विज़डम, पृ० ३१७ ।

ने " महाभारत " की ही भांति रामायण के दो रूप माने हैं , प्राचीनतम रूप की रचना १२०० ई० पू० " भारत " और " महाभारत " की रचना के बीच[१] और दूसरे रूप की रचना ५०० ई० पू० में माना है ।[२]

रामायण में प्राप्त अन्त: प्रमाणों के आधार पर भी यह सिद्ध होता है कि रामायण की रचना बौद्ध काल से पूर्व ही हुई थी । बौद्ध साहित्य में जिसे पाटलिपुत्र कहा गया है और अजातशत्रु ने सुरक्षा के लिये इस नगर में गंगा सोन के संगम पर एक परकोटा बनवाया था ।[३] रामायण में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता ।[४] इससे प्रतीत होता है कि पाटलिपुत्र नामकरण से [५०० ई० पू०] पूर्व रामायण की रचना हो चुकी थी । कोशल जनपद की राजधानी रामायण में अयोध्या बतायी गयी है ।[५] जैन और बौद्ध साहित्य में उसे साकेत नाम दिया गया है । लव की राजधानी श्रावस्ती थी ।[६] इससे यह स्पष्ट होता है कि रामायण की रचना उस समय हो गयी थी जब कोशल की राजधानी श्रावस्ती न होकर अयोध्या ही थी ।

बुद्ध के समय में विस्तृत रूप से वर्णित वैशाली राजतंत्र रामायण में " विशाला " और " मिथिला " दो जनपदों में विभक्त था । विशाला का तत्कालीन राजा सुमति था ।[७] इसी प्रकार मिथिला में उस समय जनकवंशीय

- -

१- संस्कृत वाङ्मयाचा त्रोटक इतिहास [मराठी] पृ० १०४,

२- वही , पृ० १०६

३- राय चौधरी - पौलिटिकल हिस्ट्री आफ ऐन्श्यंट इण्डिया, पृ० १४१

४- रामायण , [illegible] ३१ वाँ

५- अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता बालकाण्ड ५।६

६- श्रावस्तीति पुरी रम्या श्राविता च लवस्य च । रामायण, उ० का० १०८।५

७- रामा० , बालकाण्ड ४७।१८ ।

राजा सीरध्वज जनक राज्य करता था।[१] इससे भी स्पष्ट है कि रामायण की रचना बुद्ध से पहले हो गयी थी।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि रामायण की रचना महाभारत से पूर्व हो चुकी थी और बुद्ध से भी पहले उसका प्रणयन हो चुका था। यद्यपि उसके रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है।

महाभारत का रचना काल -

महाभारत के रचनाकाल के सम्बन्ध में भी विद्वान् एकमत नहीं हैं और उन्होंने अपनी अलग-अलग प्रस्थापनायें स्थापित की हैं। बाह्य तथा अन्तः प्रमाणों के आधार पर हम महाभारत के काल पर विचार करेंगे। प्रचलित महाभारत एक लाख श्लोकों का है, यह बात स्वयं महाभारत में ही कहीं गयी है[२], यद्यपि इस संख्या में इस समय कुछ कमी हो सकती है, परन्तु अत्यन्त प्राचीन काल से यह धारणा चली आ रही है कि महाभारत एक लाख श्लोकों का ग्रन्थ है। गुप्तकालीन चेदि संवत् १९७ [५०२ विक्रमी, ४४६ ई०] के उपलब्ध एक शिलालेख में " शत साहस्र्यां संहिता " का उल्लेख आया है। इससे स्पष्ट है कि महाभारत की रचना इसके बहुत पहले हो चुकी थी।[३]

सी० वी० वैध ने वेबर द्वारा उद्धृत ग्रीक लेखक डायनोक्रायसोस्टोम का उल्लेख किया है, जिसने हिन्दुस्तान में प्रचलित एक लाख श्लोकों वाले

- -

१- राम॰वही , बालकाण्ड सर्ग ५०

२- महा० आदिपर्व १।१०१, १०७

३- उच्चकल्प के महाराज सर्वनाथ के, सम्वत् १९७ के लेख गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स भाग ३ पृ० १३४ में कलचुरी संवत् है। अर्थात् यह लेख १९७ + १७० = ३६७ शक का यानी ४४५ का है।

इलियड का वर्णन किया है। यह ईसवी सन् की पहली शताब्दी में दक्षिण हिन्दुस्तान के पाण्ड्य, केरल आदि भागों में आया था, जहां पर कि लोगों को एक लाख श्लोकों के काव्य का अच्छी प्रकार ज्ञान था और यदि उसका समय ईसवी सन् ५० के लगभग माना जाय तो स्पष्ट है कि महाभारत उसके अनेक वर्षों पहले बन चुका होगा।[१] शालिवाहन शक के आरम्भ में संस्कृत के एक बौद्ध महाकवि अश्वघोष हुए, उन्होंने "सौन्दरानन्द" और "बुद्धचरित" के अतिरिक्त "वज्रसूचिकोपनिषद्" व्याख्यान ग्रन्थ भी लिखा है। इस ग्रन्थ को वेबर ने १८६० ई० में जर्मन से प्रकाशित किया है, इस ग्रन्थ में हरिवंश और महाभारत के श्लोक उद्धृत किये हैं।[२] अश्वघोष का समय ईसा की प्रथम शती सुनिश्चित है।[३] अतः स्पष्ट है कि महाभारत का अस्तित्व इसके पूर्व का है।

प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में महाभारत युद्ध के पात्रों युधिष्ठिर, भीम, विदुर आदि की व्युत्पत्ति बतायी है।[४] पाणिनी का स्थितिकाल ई० पू० पांचवी शती सुनिश्चित है।[५] इससे स्पष्ट है कि पाणिनी के समय में महाभारत सुप्रसिद्ध हो चुका था।

महाभाष्यकार पतंजलि ने महाभारत युद्ध का वर्णन विस्तार से किया है, इनका समय २०० ई० पू० का है। कल्पसूत्रों में भी महाभारत की चर्चाओं का उल्लेख किया गया है। शाङ्खायन श्रौत सूत्र में कुरुक्षेत्र युद्ध में हुई कौरवों

- -

१- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा, पृ० ४४

२- हरिवंश २४।२०-२१, महाभारत शान्तिपर्व २६१।१७

३- पाण्डेय - संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० ५८ [द्वितीय सं०]
   उपाध्याय - संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ६७ [प्रथम संस्करण]

४- पाणिनी - अष्टाध्यायी ८।३।९५, ३।२१।६२, ६।२।३८

५- प्रो० कुन्टे - विसिसिट्यूड्स आफ आर्यन् सिविलाइजेशन, पृ० ४४८।

की पराजय का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में किया गया है।[१] आश्वलायन गृह्यसूत्र में भारत और महाभारत का उल्लेख मिलता है तथा उसके संस्कर्ताओं सुमन्तु जैमिनी, वैशम्पायन आदि का स्पष्ट उल्लेख है[२] और भाषा के इतिहास से यह सिद्ध हो चुका है कि आश्वलायन पाणिनी से प्राचीन था।[३] बौधायन धर्मसूत्र में भी इस सम्बन्ध में उल्लेख प्राप्त होता है।[४] बूलर साहब ने कल्पसूत्रों की बातों को यद्यपि प्रामाणिक नहीं माना है[५] तथापि त्र्यंबक गुरुनाथ काले के लेख से यह बात स्पष्ट है कि धर्मसूत्रकारों ने महाभारत से अवश्य ही दाय ग्रहण किया है।[६]

महाभारत में दस अवतारों के प्रसंग में बुद्ध को स्थान नहीं दिया गया है, किन्तु वनपर्व में देवालयों के पर्यायवाची रूप में " एडूक " शब्द का प्रयोग हुआ है।[७] ये एडूक बुद्ध के स्मारक के रूप में जाने जाते थे। इससे यह प्रतीत होता है कि महाभारत बुद्ध के बाद किन्तु बुद्ध के अवतारों में गणना होने से पूर्व रचना की गयी।[८] महाभारत में प्रयुक्त " बुद्ध " या " प्रतिबुद्ध " शब्द " बुद्ध " के लिये न होकर " ज्ञानी " के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।[९] यद्यपि पूर्व वैदिक साहित्य में " भारत " तथा " महाभारत " का उल्लेख नहीं प्राप्त होता, तथापि उत्तर वैदिक साहित्य में कुरुक्षेत्र, परीक्षित, जनमेजय और भरत आदि महाभारत के पात्रों का उल्लेख है और वहाँ कुरुक्षेत्र को देवपूजा की पुण्य भूमि

- -

१- शाङ्खायन श्रौतसूत्र १५।१६

२- आश्वलायन गृ० सू० ३।४।४

३- शंकर बालकृष्ण दीक्षित - भारतीय ज्योतिष, पृ० १५३

४- बौधायन धर्मसूत्र २।२।२६

५- बूलर - सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट सीरीज, वा० १४ इन्ट्रोडक्शन, पृ० १२

६- काले - दि वैदिक मैगजीन एण्ड गुरुकुल समाचार, वा० ७ नोट्स ६, ७, पृ० १३०-१३२

७- महा० शान्तिपर्व ३३८।१००

और सारे प्राणियों का उत्पत्ति स्थान बताया गया है।[१] इस प्रकार विद्वानों ने महाभारत के मूल कथानक और उसमें वर्णित कुछ आख्यानों का ऐतिहासिक विश्लेषण कर उसकी प्राचीनता उत्तर वैदिक कालीन साहित्य [१००० ई० पू०] सिद्ध की है।[२] उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महाभारत की काल सीमा पूर्व में वैदिक युग तक पहुंचती है।

मैकडोनल के अनुसार महाभारत की रचना का काल पांचवी शताब्दी ई० पू० से लेकर पहली शताब्दी ई० [५० डी०] तक है। उसका धर्मशास्त्र के रूप में प्रतिपादन निश्चय रूप से लगभग ३५० ई० का है।[३]

जायसवाल जी के मतानुसार " महाभारत " के निर्माण काल की अन्तिम सीमा ५०० ई० है। उनके अनुसार महाभारत की आधारभूत सामग्री प्राय: प्राचीन ही है, परन्तु ईसवी की पांचवी शताब्दी तक उसमें वृद्धि होती रही, फिर भी उसका बहुत कुछ रूप ई० पू० १५० में ही निश्चित हो चुका था।[४] श्री जयचन्द्र विधालंकार के अनुसार " महाभारत " या " भारत काव्य " का एक प्रथम संस्करण ५०० ई० पू० में हो चुका था, जिसका प्रमाण आश्वलायन गृह्य सूत्र [३।४।४] भी देता है। किन्तु बाद के संस्करणों में उसका वह रूप छिप गया।[५]

विंटरनित्स ने महाभारत के निर्माण काल के सम्बन्ध में अपने अलग ही विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार महाभारत में कुछ ऐसे आख्यान

१- तैत्तिरीय आरण्यक ५।१।१

२- विस्तृत विवरण के लिये देखिये - विंटरनित्स - हि० इ० लि० भाग-१, पृ० ४५४-४७४

३- मैकडोनल - हि० सं० लि०, पृ० २८५-२८७

४- जायसवाल - हिन्दू राजतंत्र १, पृ० ६

५- जयचन्द्र विधालंकार - भारतीय इतिहास की रूपरेखा १, पृ० ४३३ ।

तथा उपाख्यान हैं जिनका सम्बन्ध वैदिक साहित्य के युग तक पहुंचता है तथा कुछ नीतिपरक सूक्तियां तथा कथायें इस प्रकार की हैं जो जैन तथा बौद्ध सम्प्रदायों से सम्बन्धित हैं और जिनका समय कदाचित ६०० ई० पू० तक पहुंचता है, इन सबके आधार पर विंटरनित्स महोदय के अनुसार महाभारत का समय ४०० ई० पू० से भी पहले का ठहरता है।[1] किन्तु वर्तमान समय में विंटरनित्स के मत की विद्वानों द्वारा आलोचना की गयी है। हाप्किन्स का मत है कि महाभारत चार शताब्दी ई० पू० से चार शताब्दी ई० के भीतर लिखी गयी।[2]

हाप्किन्स ने इसके दो भाग किये हैं - कथा भाग और उपदेशक भाग। उनके अनुसार उपदेशक सामग्री और देवता के रूप में कृष्ण की अर्चना ४०० से २०० ई० पू० के अन्दर उसमें जोड़ी गयी थी, शान्ति पर्व और अनुशासन पर्व जो अन्त में है तथा प्रथम पर्व का परिचय और बाद में धर्मशास्त्र का विषय २०० ई० पू० से लेकर २०० ई० के बीच में जोड़े गये हैं, २०० ई० से ४०० ई० के बीच में अनुशासन पर्व शान्तिपर्व से अलग किया गया है।[3] परन्तु सुप्रसिद्ध विद्वान् सी० वी० वैद्य ने अपने प्रमुख ग्रन्थ " महाभारत मीमांसा " में बड़े तार्किक ढंग से हाप्किन्स के मत का खण्डन किया है।[4] सी० वी० वैद्य के अनुसार महाभारत का वर्तमान स्वरूप ईस्वी सन् के लगभग २५०-२०० वर्ष पहले के समय का है।[5]

ज्योतिषशास्त्र के आधार पर भी महाभारत के काल निर्णय में सहायता मिलती है। महाभारत में काल गणना नक्षत्रों के आधार पर की गयी है उसमें राशियों का उल्लेख नहीं है। महाभारत में युधिष्ठिर का जो

- -

१- विंटरनित्स - हि० इं० लि० , भा० १, पृ० ४५५-४७५

२- हाप्किन्स - कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भा० १ , पृ० २५८

३- हाप्किन्स - " दि ग्रेट एपिक " अध्याय ६ , पृ० ३६७-३६८

४- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० ७७-७८

जन्मकाल बतलाया गया है, उसमें राशियों का उल्लेख नहीं है । इससे यह स्पष्ट होता है कि महाभारत की रचना राशियों के प्रचलित होने से पूर्व हुई, शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने राशियों के प्रचलित होने का समय ईसवी सन् के ४५० वर्ष पहले बताते हैं और इस प्रमाण से महाभारत जैसी आजकल है, उसकी रचना ४५० ई० के पहले की है ।[१]

जब कि वैध के अनुसार हिन्दुस्तान में राशियों का प्रचलन ईसवी सन् के २०० वर्ष पहले हुआ ।[२] कुछ अन्य प्रमाणों के आधार पर सी० वी० वैध ने वर्तमान महाभारत का निर्माण काल ईसवी सन् के पहले ३२० से २०० तक के समय में सिद्ध किया है ।[३] लोकमान्य तिलक ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ " गीतारहस्य " में भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है ।[४] कुछ विद्वानों का कहना है कि उसके " जय " और " भारत " नाम से विख्यात संस्करणों का निर्माण बुद्ध से पहले ही हो गया था ।[५] अल्बेरुनी के मतानुसार महाभारत की रचना कुरु पांडवों के महायुद्ध के समय हो चुकी थी, जिसके रचयिता व्यास पराशर पुत्र थे । इस ग्रन्थ में एक लाख श्लोक और १८ भाग अर्थात् पर्व थे ।[६] आर० सी० मजूमदार के अनुसार महाभारत के वर्तमान रूप का आरम्भ तीसरी या चौथी शताब्दी ईसा के पहले नहीं हुआ था, उसका आरम्भ अवश्यमेव छः से आठ शताब्दी पूर्व का माना जा सकता है ।[७]

- -

१- शंकर बालकृष्ण दीक्षित - भारतीय ज्योतिष , पृ० १५४-१५५ , १६१ ।
   एम कृष्णामाचारी - हिस्ट्री आफ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर , बुक प्रथम, पृ० ५२ ।

२- सी० वी० वैध - महाभारत मीमांसा , पृ० ४८

३- वही - महाभारत मीमांसा , पृ० ५३

४- विस्तृत विवरण के लिये देखिये - तिलक - गीतारहस्य , पृ० ५५२-५५४

५- देवराज - भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास , पृ० ३८-३९ , १०५

६- अल्बेरुनी का भारत , पृ० ३० [बारहवां परिच्छेद] [दूसरा भाग]

७- आर० सी० मजूमदार - एन्शियेंट इण्डिया - पृ० २०६ ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महाभारत के रचनाकाल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी धारणा के अनुसार अपने मतों का व्याख्यान किया है । जिससे हमें महाभारत के रचनाकाल के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है । हम यहां उन मतों की सत्यता तथा असत्यता पर विचार न कर इतना ही कहेंगे कि महाभारत एक विशालकाय ग्रन्थ है, जिसका विभिन्न कालों में विद्वानों ने संशोधन तथा संवर्द्धन किया । अत: सामान्य रूप से महाभारत के निर्माण की अन्तिम सीमा ईसा की चौथी पांचवी शताब्दी से अधिक नहीं हो सकती । इस काल में उसका निर्माण हो चुका था, जैसा कि प्रो० भण्डारकर और बुह्लर ने शिलालेखों के प्रमाणों के आधार पर प्रमाणित किया है ।[१]

महाभारत के कर्ता -

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो चुका है कि महाभारत किसी एक काल की रचना नहीं है , वरन् समय-समय पर इसमें अनेक आख्यान तथा उपाख्यान जुड़ते गये , जिससे निरन्तर उसके कलेवर में वृद्धि होती गयी और आज यह सर्वविदित है कि महाभारत एक लाख अनुष्टुप छन्दों वाला महाकाव्य है । यहां एक स्वाभाविक जिज्ञासा यह उत्पन्न होती है कि क्या एक व्यक्ति के द्वारा एक समय में इतने बड़े ग्रन्थ की रचना हो सकती है । अथवा इसके रचयिता एक से अधिक विद्वान् है । इस सम्बन्ध में हम सर्वप्रथम मूल ग्रन्थ महाभारत में प्राप्त सामग्री का ही आश्रय लेंगे । महाभारत युद्ध के पश्चात् कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने " जय " नामक ग्रन्थ की रचना की ।[२] बाद में उन्होंने[३] महाभारत की सम्पूर्ण कथा को अपने सुयोग्य शिष्य वैशम्पायन को सुनाया था और वैशम्पायन ने

- -

१- हाप्किन्स - दि ग्रेट एपिक , अध्याय ९ , पृ० ३८७ मैकडौनल - हि० सं० लि० - पृ० २८७

२- महा० आदिपर्व १।१

३- वही आदिपर्व १।१०५ ।

इस कथा को जनमेजय के नागयज्ञ के अवसर पर अर्जुन के प्रपौत्र जनमेजय को सुनाया[१] और इसके अनन्तर वहां इस कथा को सुनकर लोमहर्षण के पुत्र सौति उग्रश्रवा ने नैमिषारण्य में एकत्र हुए , शौनकादि ऋषियों को सुनाया ।[२]

उपर्युक्त वर्णनसे स्पष्ट है कि महाभारत के मूल कर्ता तथा वक्ता हुए - व्यास और उस विश्रुत कथा के प्रवक्ता वैशम्पायन तथा सौति हुए ।

इस ग्रन्थ के तीन नाम भी महाभारत के तीन कर्ताओं की ओर संकेत करते हैं । कृष्णद्वैपायन ने जिस कथा को कहा उसका नाम " जय " था ।[३] यह नाम भी ऐतिहासिक है ।[४] सम्भवत: जय से पाण्डवों की विजय का अर्थ सूचित होता है । साथ ही यह भी उल्लेख मिलता है कि कृष्ण द्वैपायन प्रोक्त उस " जय " नामक ग्रन्थ में ८,८०० श्लोक थे ।[५]

यद्यपि व्यास प्रोक्त ग्रन्थ के इस श्लोक संख्या को सी० वी० वैद्य ने मान्य नहीं माना है ।[६] क्योंकि महाभारत में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि व्यास जी ने रात दिन परिश्रम करके अपने ग्रन्थ को तीन वर्षों में पूरा किया ।[७] व्यास ऐसे प्रतिभा सम्पन्न कवि के लिये प्रतिदिन आठ से अधिक अनुष्टुप छन्दों की रचना करना बहुत सहज था । वैशम्पायन ने जिस कथा को कहा उसका

- -

१- वही आदि पर्व १।६-११ , ६७-६८

२- वही आदि पर्व १।१-२, २२

३- वही आदि पर्व १।१ , ततो जयमुदीरयेत् ।।

४- जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा ।। महा० आदिपर्व ६२।२०

५- अष्टौ श्लोक सहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च । महा० आदिपर्व १।८१

६- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० ७

७- त्रिभिर्वर्षैर्लब्धकाम: कृष्णद्वैपायनो मुनि: ।।

नित्योत्थित: शुचि: शक्तो महाभारतमादित: । महा० आदि ६२।५१-५२ ।

नाम " भारत " हुआ और जिसकी श्लोक संख्या बढ़कर २४,००० हो गयी , यह उपाख्यानों से रहित था ।[१] सौति ने इसमें अनेक आख्यानों, उपाख्यानों और परिशिष्ट सहित हरिवंश को जोड़कर वर्तमान रूप दे दिया, और इसके बृहद् आकार को देखते हुए ही इसका नाम " महाभारत " पड़ा । इसी को बाद में " शतसाहस्त्री संहिता " भी कहा गया ।[२]

महाभारत के आदिपर्व में आया है कि - महर्षि व्यास ने साठ लाख श्लोकों का एक बृहद् ग्रन्थ लिखा था, जिसमें तीस लाख श्लोक देवताओं के लिये, पन्द्रह लाख पितरों के लिये, चौदह लाख श्लोक गन्धर्वों के लिये और एक लाख श्लोक मनुष्यों के लिये लिये गये थे ।[३]

हाप्किन्स ने इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि - वस्तुत: उस महान ग्रन्थ का कोई एक लेखक नहीं था । यह जो व्यास नाम जोड़ा गया है , वह तो एक प्रकार से अपनी सुविधा के लिये है । व्यास वस्तुत: लेखक न होकर सम्पादक ही था ।[४] इसके अतिरिक्त महाभारत में जो भाषा-शैली , छन्द , भाव , आर्ष प्रयोग , पौराणिक शैली अलंकृत काव्य शैली ,

- -

१- चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारत संहिताम् ।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधै: ।। महा० आदि १।१०२

२- महा० आदि पर्व १।१०१

३- षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम् ।
त्रिंशच्छतसहस्रं च देवलोके प्रतिष्ठितम् ।
पित्र्ये पंचदश प्रोक्तं गन्धर्वेषु चतुर्दश ।।
एकं [illegible] तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम् ।
महा० आदिपर्व १।१०५-१०७

४- हाप्किन्स - " दि ग्रेट एपिक " पृ० ५८

गद्य-पद्य मिश्रित वैदिक और लौकिक छन्द आदि विविधतायें दिखायी पड़ती हैं उससे भी यह स्पष्ट होता है कि वह एक ही व्यक्ति की रचना नहीं है। इसकी पुष्टि उस समय और हो जाती है, जब कि "महाभारत" के प्रथम दो अध्यायों में उल्लिखित सूची से आगे वाले अंश मेल नहीं खाते।[१]

इसके साथ ही इस ग्रन्थ में ही यह उल्लेख पाया जाता है कि व्यास जी ने वैशम्पायन आदि पांच शिष्यों को अपना ग्रन्थ पढ़ाया और उनमें से प्रत्येक ने अपनी अलग-अलग संहिता बनायी।[२] यद्यपि उन शिष्यों की संहिताओं का आज कोई अस्तित्व नहीं प्राप्त होता। बहुत संभव है कि "वैशम्पायन" की संहिता का नाम "भारत" और सौति की संहिता का नाम "महाभारत" पड़ा हो।

अन्य शिष्यों की संहितायें इतना लोकविश्रुत न हो सकी होंगी और कालान्तर में उनका अस्तित्व समाप्त हो गया होगा। यद्यपि आश्वलायन गृह्य सूत्र[३] में सुमंतु, वैशम्पायन आदि का उल्लेख करते हुए भिन्न-भिन्न नाम लेकर "भारत महाभारताचार्याः" कहा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैशम्पायन आदि ऋषियों के लिये "भारताचार्य" आदि की उपाधि प्रचलित रही होगी और "महाभारत" के आचार्य को "महाभारताचार्य" कहा गया होगा।

- -

१- विंटरनित्स - हि० सं० लि०, भा० १, पृ० ४६२

२- वेदानध्यापयामास महाभारतपंचमान् ।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च ।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ॥
महा० आदि ६३।८९-९०

३- आश्वलायन गृ० सू० ३।४।४ ।

तीन स्थानों से महाभारत कथा का आरम्भ होना भी इसके तीन कथाओं की ओर संकेत करता है । " मन्वादि भारतं केचित् "[1] आदि श्लोक में कहा है कि मनु , आस्तीक और उपरिचर की कथा - ये तीन स्थान इस ग्रन्थ के आरम्भ माने जाते हैं । राजा उपरिचर के आख्यान से[2] व्यास के ग्रन्थ का , आस्तीक के उपाख्यान[3] से वैशम्पायन के ग्रन्थ का , क्योंकि वैशम्पायन का ग्रन्थ जनमेजय के नागयज्ञ में पढ़ा गया था , इसलिये आस्तीक की कथा का प्रवचन आवश्यक था और सौति के वृहत् " महाभारत " का आरम्भ वैवस्वत् से होता है । अत: विभिन्न विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि व्यास प्रणीत मूल " भारत ग्रन्थ " बाद में परवर्ती विद्वानों द्वारा समय-समय पर बढ़ाया गया ।[4]

इस प्रकार जहाँ कुछ विद्वान महाभारत को अनेक विद्वानों द्वारा प्रणीत मानते हैं , वहीं दूसरी ओर कुछ विद्वान इस मत को अमान्य करते हुए यह मानते हैं कि महाभारत एक ही लेखक की कृति है और उन्होंने वेबर आदि के मतों का खण्डन किया है ।[5] चिन्तामणि विनायक वैद्य जो कि " महाभारत " के एक आधिकारिक विद्वान् माने जाते हैं और जिन्होंने महाभारत के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की गयी अनेक भ्रमात्मक टिप्पणियों

- -

१- महा० आदिपर्व १।५२

२- वही आदिपर्व अध्याय ६३

३- वही आदिपर्व अध्याय १३

४- विंटरनित्स - ए० हि० इं० लि० , भा० १ , पृ० ३१८-३२० , ३२४-३२६ , ४५८ ।

मैक्डोनल - हि० सं० लि० , पृ० २८४

५- हापकिन्स - कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया , भा० १ , पृ० २५३ , पे० डाहलमन - दास महाभारत , ओल्डेनबर्ग दास महाभारत ।

का प्रबल तर्कों द्वारा खण्डन किया है , उन्होंने भी महाभारत के तीन कर्ता - व्यास , वैशम्पायन , और सौति को माना है।[१] उनके अनुसार महाभारत के अनेक कथा प्रसंग और साथ ही हस्तिनापुर में श्रीकृष्ण का विराट रूप दर्शन, सौति के निजी मस्तिष्क की रचना है।[२] इन्होंने सौति द्वारा परिवर्द्धित अंशों पर विस्तार से प्रकाश डाला है।[३]

महाकाव्य - ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में -

रामायण तथा महाभारत को जहां एक और पुराण , काव्य , आख्यान आदि नामों से अभिहित किया जाता है , वहीं उसकी " इतिहास " संज्ञा भी है। आर्यावर्त के प्राचीन ग्रन्थों में महाभारत और वाल्मीकि रामायण इन दो ग्रन्थों की " इतिहास " संज्ञा है। प्राचीन ग्रन्थों में महाभारत को बारम्बार " इतिहास " नाम से पुकारा जाता है।[४] स्वयं महाभारत में ही अनेकों स्थानों पर इसे " इतिहास " संज्ञा से अभिहित किया गया है।[५] महाभारत अनेक ऐतिहासिक तथा पौराणिक इतिवृत्तों से भरा हुआ है। इन परम्परागत इतिवृत्तों में अनेक ऐतिहासिक तथ्य समाहित हैं। क्योंकि परम्परा और इतिहास का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। भारतीय इन परम्पराओं को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। यही कारण है कि भीष्म युधिष्ठिर को यह परामर्श देते हैं कि -

- -

१- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा - पृ० ५

२- वही - पृ० १२

३- वही - पृ० ५५ , ७६ , ८२-८७ , ५५८ , ५६५

४- महाभारत [आलोचनात्मक निबन्ध] संख्या-११, पृ० १०० [गीता प्रेस - गोरखपुर]

५- महा० आदिपर्व १।५०, ५४ इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवती सुतः ॥
६२ , ८७ , २६६ । आदि २।३८५-३८६ ।

" वह पुराण , इतिहास और आख्यानों का दैनिक श्रवण करे ।[१] यज्ञादिक तथा अन्य अवसरों पर इसका श्रवण महत्वपूर्ण समझा जाता था । अभिमन्यु की मृत्यु के उपरान्त युधिष्ठिर को सान्त्वना प्रदान करने के लिये नारद ने प्राचीन ऐतिहासिक राजाओं की १६ कथाओं को कहा था ।[२] इसी प्रकार द्युमत्सेन के दुखों का शमन करने के लिये भी प्राचीन राजाओं के इतिहास को सुनाया गया था ।[३]

इन परम्पराओं को जब लिपिबद्ध किया गया तो ब्राह्मणों को भी यह परामर्श दिया गया कि वे इतिहास और पुराण के रूप में उनका अध्ययन करें , जब कि वे वेद तथा वेदांगों के ज्ञान में पूर्ण निष्णात थे । महाभारत इतिहास को न जानने वाले को विशिष्ट विद्वान् नहीं माना जाता था ।[४] क्योंकि यह कहा गया था कि - " वेद उनसे डरता है, जो प्राचीन परम्पराओं के जानकार नहीं हैं ।[५] डरने से अभिप्राय यह है कि परम्पराओं से अनभिज्ञ लोग उसका गलत अर्थ कर बैठेंगे जो कि हानिकर होगा । नारद द्वारा अपने मित्र

- -

१- महा० अनु० पर्व १०४।१४८-१४६ , विष्णुधर्मसूत्र ३।७०, राजा को यह परामर्श दिया गया है कि वह वेद और महाकाव्य के जानकार लोगों को पुरोहित पद पर नियुक्त करे । जूलियस जौली के अनुसार यहां महाकाव्य का अनुवाद इतिहास अर्थ में ही किया गया है । एस०बी०ई० वा० ७ , पृ० २०। राजकुमारों की शिक्षा के विषयों में इतिहास का महत्वपूर्ण स्थान था । आदिपर्व १०८।२० ।

२- महा० द्रोणपर्व ७१। १-४

३- महा० वनपर्व २९८।७ , आदिपर्व १३६।७४

४- महा० आदि पर्व २।३८२

५- इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत ।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।। महा० आदि १।२६७-२६८
द्रष्टव्य - वायु पुराण १।२०० , पद्म पुराण ५।२ , ५०।२ दूसरी पंक्ति

अकम्पन को इतिहास सुनाया गया था । जिसे सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए थे ।[१] इतिहास के सुनने तथा सुनाने वाले को पुण्य , यश , स्वर्ग तथा धन की प्राप्ति होती है ।[२]

उपनिषदों में इतिहास को " पंचम वेद " कहा गया है ।[३] अथर्ववेद के बाद वर्णन करते हुए कौटिल्य ने भी इतिहास को वेदों के साथ वर्गीकृत किया है ।[४] इस प्रकार स्पष्ट है कि पुराण अर्थात इतिहास का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है और इस दृष्टि से महाभारत का अपना ऐतिहासिक महत्व है ।

महाभारत के ही समान रामायण का भी अपना ऐतिहासिक महत्व है, यद्यपि वह प्रधानतया महाकाव्य है । रामायण में उस समय के प्रसिद्ध राजा राम के चरित्र का काव्यमय वर्णन है और जैसा कि वाल्मीकि ने भी लिखा है कि " वह अपने समय के सुप्रसिद्ध राजा के विषय में लिख रहे हैं ।[५] पार्गिटर द्वारा की गयी राजवंशीय वंशावली से भी यह स्पष्ट है कि राम की कथा ऐतिहासिक है ।[६] महाभारत के ही समान रामायण में भी अतीत काल की संस्कृति का उल्लेख किया गया है । रामायण एक आख्यान[७] है ।

१- महा० द्रोण प० ५२।५२

२- वही द्रोण प० ५५।५५

३- इतिहास पुराणं पंचमं वेदानाम वेदम् ।।
छान्दोग्य उपनिषद ७।४।१-२

४- कौटिल्य अर्थशास्त्र १।३ पंक्ति १-२

५- रामा० बालका० २।३२ , ३।७ , १।२

६- रामा० बालका० १।१, पार्गिटर- ए० ३० हि० ट्र० राजवंशावली का विवरण पृ० १४४, १४६ [राम का उल्लेख ६५ वीं पंक्ति में है] । मैक्डोनल - हि० सं० लि० पृ० ३११ । लैसन और वेबर का विचार है कि यह रूपक है और इस प्रकार आर्यों का दक्षिण को जीतने का प्रथम प्रयास है । जैकोबी लिखते हैं कि यह भारतीय कथानकों पर आधारित है । लेकिन इन दोनों विचारधारा में से आज कोई भी स्वीकृत नहीं है ।

७- रामा० बाल० का० ३।२२ , युद्धका० १२८।१२८ ।

महाकाव्य है[1], पुरातन इतिहास, गीत[2] और संहिता[3] है। इसका भी उद्देश्य अन्तत: मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति करना है। क्योंकि हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं कि प्राचीन भारत में मात्र तथ्यपरक घटनाओं के वर्णन को ही इतिहास नहीं माना जाता था वरन् उस काव्य, इतिहास अथवा साहित्य का कोई महत्त्व नहीं होता था, जिसमें जीवन के सभी पक्षों का वर्णन न किया गया हो। प्राचीन भारत के मनीषी जीवन को समग्रता के दृष्टिकोण से देखते थे। यही मूल भावना रामायण तथा महाभारत में भी अन्तर्निहित है। इनका अध्ययन जाति और लिंग का विचार किये बिना सबके लिये योग्य बताया गया है[4]। रवीन्द्रनाथ जी ने इस तथ्य की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि - " ये दोनों ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य एवं महाकाव्यों के उपजीवी ग्रन्थ तो हैं ही, वे इतिहास भी है किन्तु घटनावलियों के नहीं। दोनों ही भारतवर्ष के पुराने इतिहास हैं, अन्यान्य इतिहास समय-समय पर परिवर्तित हो गये, पर इन दोनों ग्रन्थों में परिवर्तन न हुआ, भारतवर्ष की जो साधना और संकल्प है, उन्हीं का इतिहास इन दोनों विशालकाय काव्य प्रासादों के भीतर चिरकालिक सिंहासन पर विराजमान है[5]।"

महाभारत एक विशालकाय ग्रन्थ है। इसमें भारतीय सभ्यता व संस्कृति से सम्बन्धित समस्त तत्त्वों का विवेचन किया गया है। इसके सम्बन्ध में " महाभारत " में ही लिखा है कि - " यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्

- -

१- रामा०, बालका० २।४१

२- वही बालका० ४।२७

३- रामा० युद्धका० १२८।१२०

४- वही युद्धका० १२८।११०-१११

५- रवीन्द्रनाथ ठाकुर - प्राचीन साहित्य, पृ० ४

६- महा० आदिपर्व ६२।५३ ।

अर्थात् जो विषय इसमें नहीं हैं , वे अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं । महाभारत संहिता है , पुराण , आख्यान , धर्मशास्त्र तथा कामशास्त्र है और काव्य है[1]। यह सब शास्त्रों का मुखिया है , सब वेदों से भी बड़ा है - और मनुष्य को स्वर्ग और मुक्ति दिलाने वाला है[2]। यही कारण है कि महाभारत को भारतीय ज्ञान का " विश्वकोश " कहा जाता है । इस प्रकार स्पष्ट है कि दोनों ही इस दृष्टि से पुराण है , इतिहास है , आख्यान है और इसलिये उनको न केवल पुराण ही कहा जा सकता है और न केवल इतिहास आख्यान ही[3]।

इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ये दोनों ग्रन्थ महत्वपूर्ण हैं ।

: खण्ड - स :

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति - एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण :

महाकाव्य काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर विचार करने से पूर्व हम इस बात पर विचार करेंगे कि इसके पूर्व प्राप्त विभिन्न रचनाओं में स्त्रियों की क्या सामाजिक स्थिति थी । क्योंकि प्रत्येक काल मूलकाल से प्रभावित होता है । यह तथ्य महाकाव्यों में प्राप्त स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में भी लागू होता है । रामायण और महाभारत में हम स्त्रियों की जो सामाजिक स्थिति पाते हैं उन पर अपने पूर्व की रचनाओं वैदिक ग्रन्थों , ब्राह्मण तथा उपनिषदों , स्मृतियों, अर्थशास्त्र तथा बौद्ध रचनाओं का प्रभाव दिखायी पड़ता है ।

- -

१- अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत् ।
कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना ।।

महा० आदि २।३८३

२- महा० आदि २।३८६ , ११४८-५० , ५३ , ६२-७० , ८६-८० , २६६-२७१ ।

३- वाचस्पति गैरोला - संस्कृत साहित्य का इतिहास , पृ० २०२ ।

वैदिक काल -

वैदिक काल में प्राय: समस्त क्षेत्रों में स्त्रियों को उच्च स्थिति प्राप्त थी । उस काल में आर्यों को अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के प्रयास में अनार्यों से निरन्तर युद्ध करना पड़ रहा था , इसलिये अधिक पुत्रों की कामना करना आर्यों के लिये स्वाभाविक था ।[१] क्योंकि सामान्यत: स्त्री जाति युद्ध के लिये अनुपयुक्त समझी जाती थी ।[२] इसलिये पुत्र की अपेक्षा पुत्री का जन्म कम हर्षजनक समझा जाता था ।[३] परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि पुत्री के प्रति उपेक्षा का व्यवहार किया जाता रहा हो । बालकों के समान ही बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास के लिये भी उचित शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता था । बालकों के समान ही बालिकायें भी ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करती थीं ।[४]

इस काल में लोपामुद्रा , विश्ववारा , अपाला घोषा , सिकता , इन्द्राणी आदि अनेक उच्चकोटि की महिलायें हुई , जिन्होंने वेदों की ऋचाओं की रचनायें की ।[५] गार्गी , मैत्रेयी आदि विदुषी महिलायें थीं , जिन्होंने महत्वपूर्ण दार्शनिक विषयों पर शास्त्रार्थ किया था ।[६] कुछ स्त्रियां आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गूढ़ दार्शनिक विषयों के मन्थन में लगी रहती थीं उन्हें ब्रह्मवादिनी कहा जाता था , अन्य स्त्रियां गृहस्थ धर्म का पालन करती थीं , किन्तु गृहस्थाश्रम के पूर्व वे ब्रह्मचारिणी रहकर अध्ययन कर चुकी होती थीं ।[७]

१- शकुन्तलाराव शास्त्री - वीमेन इन वैदिक एज , पृ० २ ।

२- ए० एस० अल्टेकर - दि पो० औ० वि० चि० , पृ० ३ ।

३- अथर्ववेद ३।५।२३।६ , ६।११।१-३ , ८।६।५

४- अथर्ववेद ११।३।५।१८

५- ऋग्वेद १।१७९ , ५।२८ , ८।९१ , १०।३९-४०, १०।१४५, १५९

६- वात्स्यायन गृ० सू० ३।४।४

७- [illegible] । हारीतकृत वीरमित्रोदय (संस्कार प्रकाश) पृ० ४०२ ।

स्त्रियों ने सैन्य शिक्षा के क्षेत्र में भी उच्चकोटि की निपुणता प्राप्त की थी।[१]

तत्कालीन विवाह पद्धति से स्पष्ट है कि कन्याओं का विवाह युवावस्था प्राप्त होने पर ही होता था।[२] बाल विवाह के संकेत नहीं मिलते। प्रायः प्रेम विवाह भी होते थे, जिसमें बाद में माता-पिता आशीर्वाद देते थे। कन्या का विवाह पिता का अनिवार्य कर्तव्य होता था, अपनी दुहिता के लिये अच्छे वर का प्रबन्ध कर सकना पिता के लिये असीम सुख का कारण होता था।[३] प्रायः स्त्रियों को पृथक नहीं रखा जाता था, उन्हें घूमने फिरने तथा उत्सवों में भाग लेने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी।[४] प्रायः वे अपने प्रेमियों के साथ भी घूमती थी।[५]

विवाह एक आवश्यक धार्मिक कर्तव्य समझा जाता था, जो स्त्री व पुरुष दोनों के लिए आवश्यक होता था। धार्मिक कर्तव्यों में पत्नी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वह पति के साथ अथवा एकाकी भी धार्मिक कार्यों का सम्पादन कर सकती थी।[६]

परिवार में पत्नी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। उसको आदर तथा सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर " दम्पति " शब्द का प्रयोग हुआ है।[७]

- -

१- ऋ० १०।१०२।२-११

२- अथर्व० १।२९।५, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी - गजानन शर्मा, पृ०५६

३- ऋ० ३।३१।१, पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे।

४- शकुन्तलाराव शास्त्री - वीमेन इन वैदिक एज, पृ० ६

५- ऋ० १।६२।४

६- ऋ० ८।३१।५ और ६

७- ऋ० ५।३।२, ८।३१।५, १०।१०।५, १०।६८।२, १०।८५।४२, अथर्व०

जो पति पत्नी के " संयुक्त स्वामित्व " को घोषित करता था । परन्तु व्यवहार में इस सिद्धान्त का उचित उपयोग नहीं किया गया । वह पारिवारिक कार्यों की केन्द्र बिन्दु होती थी । गृहस्थी के कार्यों को करने में इनके ऊपर पुरुषों का कोई दबाव नहीं होता था । पति गृह आते ही वधू सास-ससुर आदि सबकी दृष्टि में सम्राज्ञी बन जाती थी ।[1]

पूर्व वैदिक युग में सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा थी । कीथ और मैकडोनल ने इस सम्बन्ध में जो शंकायें की हैं , वे निर्मूल हैं ।[2] ऋग्वेद में पुरोहित का वर-वधू को यह आशीर्वाद " तुम यहीं रहो , वियुक्त मत होओ , अपने घर में पुत्र और पौत्रों के साथ खेलते और आनन्द मनाते हुए सारी आयु का उपभोग करो ।[3] तथा वधू को यह आशीर्वाद देना कि - " तू सास ससुर ननद , देवर पर शासन करने वाली रानी बन ।[4] इन उक्तियों से यह सिद्ध होता है कि इस काल में संयुक्त परिवार थे । इसी प्रकार अथर्ववेद के स्वापन सूक्त[5] जिसमें कि परिवार में रहने वाले अनेक व्यक्तियों के सुलाने के मन्त्र हैं तथा सामनस्य सूक्त[6] में जिसमें परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के एक साथ रहने , भोजन करने और कार्य करने की प्रेरणा दी गयी है , संयुक्त परिवार प्रथा को घोषित करते हैं ।

- -

१- सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु । ऋ० १०।८५।४६
यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य च ।। अथर्व १४।१।४३

२- वैदिक इन्डेक्स पृ० ५२७ , मैकडोनल - वैदिक रिलीजन पृ० १५८

३- ऋ० १०।८५।४२ , अथर्व० १४।१।२२

४- ऋ० १०।८५।४६ , अथर्व० १४।१।४३-४४

५- अथर्व० ४।५।३-६

६- अथर्व० ३।३०।१-७ ।

वैदिक युग में पितृसत्तात्मक परिवार होते थे।[१] परिवार का वह मुखिया होता था। सभी सदस्य उसके अधीन रहते थे। मुखिया होने के कारण पिता का ही सम्पत्ति पर भी स्काधिकार माना जाता था। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि माता की स्थिति उपेक्षित हो। माता सर्वाधिक आदर की पात्र थी।[२] उसे पिता से पहले स्थान दिया जाता था, " मातृदेवोभव " के पश्चात् " पितृदेवोभव " रखा गया है। वह निर्मात्री जननी है।[३] ऋग्वेदानुसार माता सर्वाधिक घनिष्ठ और प्रिय सम्बन्धी है।[४] भक्त परमात्मा को पिता की अपेक्षा मां कहकर अधिक सन्तुष्ट होता है।[५] अथर्ववेद कहता है कि माता के अनुकूल मन वाले बनो।[६] शौखायन धर्मसूत्र के अनुसार उपनयन संस्कार के समय सर्वप्रथम अपनी माता से भिक्षा मांगने का विधान है।[७] यह भी माता के उत्कृष्टता को सिद्ध करता है। " वीरसू " वीर पुत्रों को जन्म देने वाली होने के कारण माता का अधिक आदर था।[८]

वैदिक युग में माता के साथ ही साथ पत्नी को भी बहुत आदर तथा सम्मान प्राप्त था। आर्यजन पत्नी के अभाव में घर की कल्पना ही नहीं कर सकते थे। उनके अनुसार पत्नी ही घर है।[९] पत्नी के अभाव में

१- पिता परं दैवतम्। ऋ० १०।४८।१, पिता मूर्तिः प्रजापतेः। मनु २।२२६, महा० शान्तिपर्व २६७।२।

२- मान् + तृ = मातृ। आदरणीया।

३- यास्क - मातृ - निर्मातृ - निर्माण करने वाली जननी।

४- ऋ० १।२४।१, ७।१०१।३

५- ऋ० ८।९८।११

६- माता भवतु सम्मनाः। अथर्व० ३।३०।२-३

७- शांखायन गृ० सू० २।५।५

८- यजुर्वेद ४।२३, तथा शतपथ ब्राह्मण ३।३।२।१२

पुरुष यज्ञ नहीं कर सकता था, क्योंकि पत्नी ही अपना आधा भाग है।[१] पत्नियां न केवल पति के साथ वरन् स्वतन्त्र रूप से भी यज्ञ करती थीं।[२] यज्ञवेदी के निर्माण में और स्थालीपाक में दानों के छिलके अलग करने तथा अन्य याज्ञिक कार्यों में वे पति की सहायता करती थीं। इस काल में आर्यजन शत्रुओं से रक्षा करने के लिये वीर पुत्रों की कामना करते थे, अतः वीर पुत्रों को प्रसव करने वाली तथा पशुरक्षिणी स्त्री का आर्यजन बहुत अधिक सम्मान करते थे। ऐसी पत्नी की प्राप्ति के लिये देवताओं की प्रार्थनायें और उपासनायें की जाती थीं।[३] ऋग्वेदानुसार यह ज्ञात होता है कि लोग स्त्री की प्राणरक्षा और मर्यादा रक्षा के लिये आत्मबलिदान तक कर देते थे।[४] गृहिणी को " पत्नी ", " जाया ", " जनी " इत्यादि विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता था जो कि उसके विभिन्न अवस्थाओं तथा कार्यों के द्योतक होते थे।

पति-पत्नी के सरस सम्बन्धों के आश्रय से अपकार नहीं वरन् प्रशंसा और धन लाभ होता है।[५] ऋग्वेद में पत्नी को पति का आधा भाग कहा गया है।[६] इस प्रकार वे दोनों मिलकर एक मन होकर सब कार्य करते थे, यथा - सोमरस निकालते, यज्ञ करते तथा काम सुखोपभोग करते थे।[७]

१- शतपथ ब्राह्मण ५।२।१।१०

२- अथर्व० ११।१।१७-२७ योषितो यज्ञिया इमाः ।
पार० गृ० सू० २।१७, पूर्वमीमांसा ६।१।१७।२१

३- ऋ० १०।८५।४४-४५

४- ऋ० १०।३८।४०

५- अथर्व० १४।२।८, १४।२।११

६- ऋ० ५।६१।८

७- शतपथ ब्रा० १०।४।३।४-५ ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि परिवार में पत्नी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । वह पति की दासी नहीं थी , वरन् अपने पति की सहधर्मचारिणी थी । पति के साथ समान अधिकारों का उपयोग करने वाली थी । पति और पत्नी दोनों एक दूसरे के पूरक थे ।

ऋग्वेद काल में सामान्य रूप से एक विवाह प्रथा प्रचलित थी । किन्तु बहुविवाह के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं । ऋग्वेद में एक पति की अनेक पत्नियों के उल्लेख मिलते हैं ।[१]

राजाओं के महिषी[२] , परिवृक्ति[३] , वावाता[४] , पालागली[५] नाम वाली चार प्रकार की पत्नियां होती थीं[६] । वावाता उसकी सर्वप्रिय पत्नी होती थी । च्यवन ऋषि की अनेक पत्नियां[७] सौभरि ऋषि के पचास राजकन्याओं से विवाह के उल्लेख प्राप्त होते हैं । परन्तु ऋग्वेद काल में ही इन विवाहों की भर्त्सना होने लगी थी , तथा उन्हें आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था । जिमर के अनुसार प्रथम विवाहिता पत्नी ही सही अर्थों में पत्नी मानी जाती थी और बहु विवाहों की संख्या नगण्य हो गयी थी[८] ।

सती प्रथा का प्रचलन प्राय: नहीं था । विधवा यदि उसकी इच्छा हो तो दूसरा विवाह भी कर सकती थी । अथवा आजीवन ब्रह्मचर्यपालन पूर्वक

- -

१- ऋ० ७।२६।३

२- शतपथ ब्रा० ६।५।३।१

३- ऋ० १०।१०२।११

४- ऐतरेय ब्रा० १२।११

५- शतपथ ब्रा० १३।४।१।८

६- ऋ० ५।११६।१०

७- ऋ० ८।१६।३६

८- शकुन्तलाराव शास्त्री - वीमेन इन दि वैदिक एज - पृ० २२ ।

अपना जीवन व्यतीत कर सकती थी । पर्दे की प्रथा नहीं थी । स्त्रियां प्रत्येक उत्सव समारोहों में स्वतन्त्रता पूर्वक भाग ले सकती थी ।[1] वे सभाओं में भी भाग लेती थी । आयोजन उनसे यह आशा करते थे कि स्त्रियां विद्वता पूर्ण भाषण किया करें ।[2] पति और पत्नी की समान स्थिति होते हुए भी उसे साम्पत्तिक अधिकार न प्राप्त थे । उस समय जब कि परिवार के अन्य सदस्यों को भी साम्पत्तिक अधिकार न थे , वरन् मुखिया ही मालिक होता था । ऐसी स्थिति में स्त्रियों को यह अधिकार प्राप्त न था, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । इसी प्रकार रानियों के स्वतन्त्र रूप से राज्य करने के भी कोई दृष्टान्त प्राप्त नहीं होते ।

ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों के काल में नारी -

इस काल में स्त्रियों की स्थिति में जो भी परिवर्तन हुए वे अत्यन्त मन्द गति से हुए । ऋग्वेदकालीन समाज सभ्यता की ओर अग्रसर होता हुआ अर्द्धसभ्य समाज है , जिसमें विवाह के लिये स्त्री का अपहरण , शौर्य कार्यों से स्त्री का अनुरंजन तथा पारस्परिक पूर्वराग और स्वयंवरण भी होते रहे हैं । इसी से पाश्चात्य विद्वान् यह मानते हैं कि यह सभ्यता योरोपीय सभ्यता है , जिसे आर्य लोगों ने भारत में स्थापित किया है ।[3]

इस काल में भी पुत्र को अधिक महत्व देते हुए ऐतरेय ब्राह्मण के शुनःशेप आख्यान में नारद ने हरिश्चन्द्र से कहा था - पत्नी एक साथी है ,

- -

१- आर० सी० मजूमदार - एन्श्येंट इण्डिया , पृ० ४४

२- भवानन्द शर्मा - प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी , पृ० ४५

३- भवानन्द शर्मा - प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी , पृ० ४५ ।

पुत्री एक विपत्ति है , पुत्र सर्वोच्च स्वर्ग का प्रकाश है।[१] शतपथ ब्राह्मण में स्त्रियों के व्रतोपयन का उल्लेख है।[२] यम संहिता और हारीत संहिता में भी स्त्रियों के वेदाध्ययन का उल्लेख है। यम संहिता का कथन है कि " प्राचीन काल में स्त्रियों के लिये यज्ञोपवीत वेदस्पर्श और सावित्री मन्त्रोच्चारण का विधान था।[३] गोभिल गृह्य सूत्र में स्त्री के लिये वेदाध्ययन का विधान है और उसके लिये " यज्ञोपवीती " शब्द का प्रयोग हुआ है।[४] स्पष्ट है कि इस काल में उपनयन संस्कार के पश्चात् लड़कियां सामान्य रूप से शिक्षा प्राप्त करती थी।

ऋग्वैदिक काल के समान ही इस काल में भी कन्याओं का विवाह युवावस्था में ही होता था।[५] सामान्य रूप से क्षत्रियों में स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी , तथा जीवन साथी के चुनाव में कन्याओं की सम्मति को भी अपेक्षित महत्व दिया जाता था।

इस काल में पति पत्नी के सम्बन्ध तथा उनके अधिकार व कर्तव्य पूर्वकाल के ही समान थे। पत्नी को इस काल में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। ऐतरेय ब्राह्मण के अग्निमहत्त शास्त्र में पत्नी को अग्नि से उच्च स्थान दिया गया है।[६] पति और पत्नी दोनों मिलकर यज्ञ करते थे।[७] अपत्नीक को यज्ञ का अधिकार नहीं था।[८] पत्नी लक्ष्मी का स्वरूप है।[९] नारी सखा है

- -

१- ऐतरेय ब्राह्मण ७।३।१

२- शतपथ ब्राह्मण १।३।१।१२-१३

३- यम संहिता

४- गोभिल गृ० सू० १।२।१-६ , १।३।१३-१५

५- ऐतरेय ब्राह्मण ,अध्याय २। शकुन्तलाराव शास्त्री - वीमेन इन दि वैदिक एज , पृ० ७८।

६- ऐतरेय ब्राह्मण ३।३।१२ , १३।१२

७- शतपथ ब्राह्मण १०।३।३।३ , १।८।२।१ , १।८।२।५ , २१-२५

८- आश्वलायन श्रौत सू० १।१५।१ , आश्वलायन गृ०सू० १।८।५ , पारस्कर

पत्नी का नाम जाया है क्योंकि उसमें पति गर्भ रूप से उत्पन्न होता है।[१] शतपथ ब्राह्मण में पति पत्नी को दाल के दो दलों की भांति कहा गया है।[२]

तैत्तिरीय संहिता में भी यही मन्तव्य व्यक्त किया गया है[३]। विभिन्न यज्ञों जैसे अश्वमेध यज्ञ, राजसूय यज्ञ और वाजपेय यज्ञों में पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती थी। परन्तु इस काल में शिक्षा केवल उच्च तथा धनाढ्य वर्गों तक सीमित हो जाने के कारण सामान्य स्त्री के धार्मिक अधिकार तथा अन्य सुविधाओं में कटौती हो गयी। यद्यपि प्रारम्भ से ही यज्ञों में पत्नी की सहभागिता को आवश्यक बताया गया था, लेकिन ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि यदि किसी के पत्नी न हो तो भी उसे यज्ञ करना चाहिये, विशेषतः सौत्रामणि यज्ञ, जिससे वह पितृ-ऋण से मुक्त हो सके[४]। पहले अनेक धार्मिक कृत्य जो स्त्रियां पुरुष के न रहने पर अकेले ही कर लेती थीं, अब उसके स्थान में पुरुष वर्ग को करना पड़ता था। रुद्रयाग और सीतायाग जैसे संस्कार तथा सांसारिक अग्नि की सेवा पतिदेव के न रहने पर स्त्रियां स्वयं कर लेती थीं और शिष्ट परिवारों की स्त्रियां वैदिक प्रार्थना प्रातः और सायंकाल कर लेती थीं। शतपथ ब्राह्मण में स्त्री यज्ञ की अधिकारिणी भी बतायी गयी है[५]। उसे वेदों के अध्ययन का भी अधिकार है[६]। यज्ञ के पूर्व उसका उपनयन होता है[७]। तैत्तिरीय ब्राह्मण में

- -

१- ऐत० ब्रा० - तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः ७।३।१

२- शतपथ ब्रा० १४।४।२।४-५

३- तै० सं० ६।१।८।५, तै० ब्रा० ३।३।३।५

४- ऐतरेय ब्रा० ७।२।९-१०

५- शतपथ ब्रा० ११।१।४।१३

६- शतपथ ब्रा० ११।२।४।१३

७- शतपथ ब्रा० ११।३।१।१२-१३।

इस प्रथा का विस्तार करते हुए कहा गया है कि पत्नी का व्रतोपनयन पहले न हुआ हो तो विवाह के बाद करके उसे यज्ञ में अपने साथ बैठाना चाहिये[१]। उस पत्नी की प्रशंसा की गयी है जो पति को उलटकर जवाब नहीं देती[२]। पति के भोजन कर चुकने पर पत्नी को भोजन करने का आदेश दिया गया है[३]।

पूर्वकाल के समान ही इस काल में भी बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी और राजा के महिषी , परिवृक्ति , वावाता और पालागली आदि चार रानियां होती थीं ।

मैत्रायणी संहिता[४] तैत्तिरीय ब्राह्मण[५] में पुत्री विक्रय का तथा जैमिनीय ब्राह्मण[६] में कन्या को भेंट में देने का उल्लेख है ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण[७] , ऐतरेय ब्राह्मण[८] और वाजसनेयी संहिता[९] आदि में गणिकाओं का भी उल्लेख है । इससे यह स्पष्ट है कि उस समय इनको उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था । मंत्र ब्राह्मण में भी वैदिककालीन विवाह पद्धति का पूर्ण विवरण दिया गया है , केवल कुछ नवीन धार्मिक कृत्य जोड़ दिये गये हैं - यथा सप्तपदी , लाजा होम , वस्त्र धारण ,

- -

१- तै० ब्रा० ३।३।३।२-३

२- ऐत० ब्रा० ३।२।१३ , गोपथ ब्रा० २।३-४

३- शतपथ ब्रा० १।६।२।१२ , १०।५।२।६

४- मैत्रायणी संहिता १।१०।११

५- तै० ब्रा० १।१।२।४

६- जैमिनीय ब्रा० ३।१२२

७- तै० ब्रा० ३।४।१५।१

८- ऐत० ब्रा० १।२७

९- वाजसनेयी संहिता ३०।२२ ।

सीमन्तोन्नयन और पुंसवन । मन्त्र ब्राह्मण में विवाह के समय का एक मन्त्र दिया गया है , जिसमें कहा गया है कि - " तुम्हारा हृदय मेरे व्रतों और धार्मिक कर्तव्यों का और तुम्हारा मन मेरे मन का अनुवर्ती बने , तुम मेरे आदेश पूर्ण चित्त से पालन करो , बृहस्पति तुम्हें आदेशपालन की शक्ति दे ।[1]

आगे कहा गया है --- " जो कुछ तेरे हृदय में है , वही तुम्हारे हृदय में है[2]। उपर्युक्त मन्त्र में दम्पत्ति द्वारा अपने तथा पत्नी के विचारों , भावनाओं तथा कार्यों में पूर्ण समत्व की कामना की गयी है , क्योंकि जब तक पति तथा पत्नी में एकता की भावना न हो , तब तक जीवन के उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती । गृहस्थी के सम्यक् संचालन के लिये पत्नी का पूर्ण सहयोग परमावश्यक है । यही कारण है कि पत्नी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । वैवाहिक जीवन का इससे ऊंचा और क्या आदर्श हो सकता है ।

उपनिषद काल में भी नारी की उच्च स्थिति के दर्शन होते हैं । छान्दोग्य उपनिषद जो कि सामवेदीय उपनिषद है , के प्रथम दो अध्यायों में विवाह विधान का वर्णन किया गया है , जिससे तत्कालीन स्त्री समाज की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है । यद्यपि मूलत: उपनिषद अध्यात्म तथा दर्शन से सम्बन्धित हैं , इसलिये उनमें सामाजिक स्थिति का वर्णन स्वल्प ही पाया जाता है । छान्दोग्य उपनिषद के प्रथम खण्ड के दूसरे सूक्त में संतति के लिये प्रार्थना है , तृतीय सूक्त में वर-वधू की यह [illegible] है कि हम दोनों के हृदय एक हो जायें[3]। " बृहदारण्यक उपनिषद " में स्त्रियों की उच्चतम स्थिति

- -

१- मंत्र ब्राह्मण १।२।१५

२- मंत्र ब्राह्मण १।३।६

३- छान्दोग्य उपनिषद १/२।

के दर्शन होते हैं। इस काल में स्त्रियों ने ज्ञान विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में दक्षता प्राप्त की थी। उस काल में स्त्रियां सभाओं तथा सम्मेलनों में जाती थीं और वहां पर होने वाली ज्ञान विज्ञान की चर्चाओं में भाग लेती थीं। जनक की सभा में उस समय के प्रसिद्ध ज्ञानी याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करने वाली गार्गी वाचक्नवी ऐसी ही महिला थी[१]। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी भी उच्चकोटि की दार्शनिक थीं, जिसने अमृतत्त्व तथा ज्ञान की जिज्ञासा के समक्ष सांसारिक सुख वैभव को तुच्छ समझा। उसका यह कथन कि - " क्या सारी वसुन्धरा मेरी हो जाने पर भी मुझे अमृतत्व प्राप्त हो सकेगा[२]। विश्व का सबसे उदात्त स्त्री कथन है। वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व पुरुष के लिये स्त्री की अनुमति आवश्यक होती थी तथा उनके जीवन निर्वाह के लिये उचित व्यवस्था का प्रबन्ध भी आवश्यक होता था[३]।

बृहदारण्यक उपनिषद में स्त्री को पुरुष से थोड़ा न्यून मानते हुए भी स्त्री जाति को अत्यन्त पवित्र माना गया है। क्योंकि स्त्रियां बड़े-बड़े महापुरुषों तथा ब्रह्मवादिनी स्त्रियों को जन्म देने वाली होती हैं। अतः इसके शरीरांग पवित्र वेदि है और इसके प्रत्येक अंग को यज्ञीय पदार्थवत् पवित्र मानकर आदर की दृष्टि से देखने का परामर्श दिया गया है[४]। स्त्री जाति की पवित्रता, पूज्यता और आदरणीयात्वादि के बारे में उद्दालक, आरुणि,

---

१- बृहदा० उप० ३।८

२- वही २।४।२

३- वही २।४।१

४- वही ६।४।२-३

मौद्गल्य और कुमार हारित भी कहते हैं[१]। इस प्रकार जहां स्त्रियों को आदर करने को कहा गया है, वहां यह भी कहा गया है कि यदि स्त्री सत्कार पूर्वक सन्तुष्ट न हो और पति की आज्ञा न माने तो उसे भय दिखलाकर हाथ से पीटने का भी उल्लेख किया गया है[२]। यदि किसी की पत्नी के साथ कोई अन्य प्रेम करने में प्रवृत्त होता अथवा स्त्री का कोई " जार " होता तो पति द्वारा उस पुरुष के नाश के लिये मन्त्रों का विधान किया गया है[३]।

कन्या का जन्म इस काल में दुखद नहीं माना जाता था, वरन् विदुषी कन्या की प्राप्ति के लिये लोग विशेष धार्मिक कृत्यों का सम्पादन करते थे[४]।

इस काल में भी स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकारों में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। इतना अवश्य हुआ कि विवाह के समय प्राप्त भेंट की वह स्वामिनी हुई। सती प्रथा का प्रचलन न था, तथा यह विधवा की इच्छा पर निर्भर करता था कि वह अपने देवर तथा अन्य व्यक्ति से पुनर्विवाह कर ले[५]। समाज पर्याप्त सहिष्णु था, यहां तक कि कन्या के पुत्र को भी समाज सम्मान देकर ग्रहण कर लेता था[६]।

१- बृहदा० उप० ६।३।४
२- बृहदा उप० ६।४।७
३- वही ६।४।१२
४- वही ६।४।१७
५- अथर्व० ६।५।२७-२८
६- अथर्व० ५।५।८ ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इस काल में भी नारी भोग की वस्तु नहीं बनी थी, वरन् अपने पति की सच्ची सहधर्मिणी थी। उसका पर्याप्त आदर तथा सम्मान था। समाज की वे उपयोगी सदस्य थी। वह पति के धर्म, अर्थ और काम की साधिका थी। वे शिक्षित होती थी। इस प्रकार पूर्वकाल में उनकी स्थिति पुरुषों से किसी प्रकार कम न थी।

श्रौत सूत्रों और गृह्य सूत्रों में नारी -

श्रौत सूत्रों और गृह्यसूत्रों में मुख्यत: वैदिक कर्मकाण्डों का वर्णन किया गया है। अत: इनसे तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर बहुत कम ही प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेदकाल में स्त्री जहां समान रूप से पुरुष के साथ यज्ञों में भाग लेती थी, ब्राह्मण ग्रन्थों में उसकी स्थिति कुछ न्यून हो गयी थी। किन्तु श्रौतसूत्रों ने वैदिक प्रथा की पुष्टि करते हुए नारी को यज्ञ की अधिकारिणी माना है। जैमिनी के पूर्व मीमांसा - सूत्रों में, जिनकी व्याख्या शबर स्वामी ने की है, " स्वर्गकामी " शब्द को समुदायवाची सिद्ध करते हुए नर-नारी के अधिकार भेद को अनुचित सिद्ध किया है[1]। क्योंकि कुछ लोगों ने " स्वर्गकामोयजेत् " की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह शब्द चूंकि पुल्लिंग है, इसलिये यज्ञ में केवल पुरुष का अधिकार है, स्त्री का नहीं। स्त्रियों के यज्ञ में भाग लेने के विरोधी स्मृति के आश्रय से यह कहते हैं कि यज्ञ करने का अधिकार उसी का होता है, जो कि धन का स्वामी होता है। स्त्रियां जो कि धन की स्वामिनी नहीं होती, बल्कि वे पति की सम्पत्ति हैं, अत: उन्हें यज्ञ में भाग लेने का अधिकार नहीं। इसका विरोध करते हुए जैमिनी ने कहा है कि - " श्रुति स्मृति से श्रेष्ठ तथा बलवती होती है। यज्ञफल की इच्छा पुरुष के समान ही स्त्री में भी होती है। इसी

- -

१- मीमांसा दर्शन ६।१।३।६-१६

प्रकार विवाह संस्कार के समय वेद में वर प्रतिज्ञा करता है कि - " धर्मेचरिते च कामे च नातिचरितव्या " अर्थात् धर्म कार्यों , सम्पत्ति प्राप्ति और उचित इच्छा पूर्ति में पत्नी की इच्छा में कोई बाधा नहीं डाली जायेगी । दूसरे पति द्वारा स्त्री खरीदी नहीं जाती[१]। विवाह में वरपक्ष द्वारा " गोमिथुन " का जोड़ा प्रदान किया जाना भेंट है , मूल्य नहीं । तृतीयत: वेदों के अनुसार स्त्री सम्पत्ति की भी स्वामिनी होती है , क्योंकि " परिणाय " पर एकमात्र उसका ही अधिकार होता है । पति की अर्जित की हुई सम्पत्ति पर भी पत्नी का अधिकार होता है । शबर स्वामी ने वेदों के उदाहरण के द्वारा अपने मत की पुष्टि की है[२]।

प्रत्येक वेद के अपने-अपने गृह्यसूत्र हैं । गृह्यसूत्रों के काल में कन्या की विवाह योग्य आयु में अत्यधिक कमी कर दी गयी थी । क्योंकि नग्निका कन्या का विवाह श्रेष्ठ समझा जाने लगा था , यद्यपि नग्निका के अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है । प्रारम्भ में सर्वोत्तम गुरु आचार्य है , पिता या माता इस सम्बन्ध में मतभेद था[३]। परन्तु कालान्तर में यह मान्यता दृढ़ हो गयी कि माता ही सर्वोच्च है[४]।

स्मृतिकाल में नारी -

शनै:-शनै: स्त्रियों की स्थिति में ह्रास होता गया । स्मृतिकाल में नारी की वह स्थिति स्थायी न रह सकी , जो कि उसे पूर्व के कालों में

१- शकुन्तलाराव शास्त्री - वीमेन इन दि वैदिक एज - पृ० ११०
२- पत्यैव सहसुकृतं क्रियते ।
३- गौतम ध० सू० २।५।३-४
४- वशिष्ठ ध० सू० १३।४८ ।

प्राप्त थी । अब उसका स्वतन्त्र अस्तित्व न रहा । पति के व्यक्तित्व के अन्तर्गत ही उसका व्यक्तित्व तिरोहित हो गया । पूर्वकाल में जहां कन्याओं का उपनयन होता था , तथा वेदाध्ययन करती थीं , वहीं अब कन्याओं का महत्वपूर्ण संस्कार उपनयन बन्द हो गया । मनु ने कहा कि " स्त्रियों के सभी संस्कार अमन्त्रक होने चाहिये । केवल विवाह संस्कार को ही वैदिक मन्त्रों के साथ किये जाने का परामर्श दिया[१]। स्त्रियों को सायंकाल अमन्त्रक बलि देना चाहिये[२]। मनु के अनुसार स्त्रियों को कभी भी स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य नहीं करना चाहिये[३]। वे बचपन में पिता के , युवावस्था में पति के और वृद्धावस्था में पति के वश में रहें[४]।

यद्यपि इस काल में स्त्रियों की स्वतंत्रता को सीमित कर दिया गया है , पर स्त्रियों के सम्मान तथा आदर में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी । मनु का कथन है कि - " स्त्रियां घर की शोभा हैं , अतः वे पूजा के योग्य हैं[५]। जहां स्त्रियों की पूजा होती है , वहां देवता रमण करते हैं[६]। ऐश्वर्य की आकांक्षा रखने वाले व्यक्तियों को स्त्रियों का सत्कार उत्तम वस्त्राभूषण और भोजन से करना चाहिये , क्योंकि स्त्रियों के निरादर से लक्ष्मी रूठ जाती हैं[७]। यदि स्त्री प्रसन्न नहीं होगी तो वह पति को

१- मनु० २।६६-६७

२- मनु० ३।१२१ , ४।२०५

३- वही ५।१४७

४- वही ५।१४८

५- वही ६।२६

६- यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: ।। मनु० ३।५६-५७

७- मनु० ३।५५ , ६२ ।

आनन्दित नहीं करती और इस प्रकार उत्तम सन्तानोत्पत्ति नहीं होगी[१]। सन्तान धर्मकृत्य , शुश्रूषा , श्रेष्ठ रति पितरों का तथा अपना स्वर्ग यह सब स्त्रियों के ही अधीन है[२]। इसलिये इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि " जिस कुल में पति , पत्नी से तथा पत्नी पति से सन्तुष्ट है , वहां नित्य ही कल्याण रहता है[३]।

पत्नी के साथ ही साथ माता के आदर तथा सम्मान पर विशेष बल दिया गया है। समस्त पूजनीय लोगों में माता को सर्वोच्च स्थान दिया गया है[४]। " दश उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य , सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता और सहस्त्र पिताओं की अपेक्षा माता गौरव में अधिक है[५]। इसलिये पुत्र को आदेश दिया गया है कि - " वह माता का पालन-पोषण करे , ऐसा न करने वाला व्यक्ति पाप का भागी होता है[६]। इनका कभी अपमान नहीं करना चाहिये[७]। माता की उपमा पृथ्वी से दी गयी है[८]। इनके सन्तुष्ट रहने पर सब तप पूरा होता है[९]। माता-पिता और आचार्य ही तीनों लोक हैं , वे ही तीनों आश्रम हैं , तीनों वेद हैं , वे ही तीनों अग्नियाँ हैं[१०]। माता-पिता की सेवा करने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति

- -

१- वहीमनु ३।६१

२- वही ६।२८ , ६।२७

३- सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् । मनु० ३।६०

४- मनु २।१३३ , तेभ्यो माता गरीयसी । याज्ञ० १।३५

५- वही २।१४५

६- मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ।। मनु ६।४

७- मनु २।२२५

८- वही २।२२६

९- वही २।२२७-२२८

होती है , अत: उनकी सेवा ही मनुष्य का श्रेष्ठ धर्म है[१]। वशिष्ठ स्मृति में भी माता को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है[२]।

मनु ने कन्या को पुत्रवत् माना है और उसके विद्यमान होने पर कोई अन्य व्यक्ति अपुत्र पिता का धन नहीं ले सकता[३]। नारद[४] और बृहस्पति[५] ने पुत्र के अभाव में कन्या को उत्तराधिकारी माना है। कन्या दर्शन शुभ माना जाता था।

स्त्रियों के अक्षत यौनित्व को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। मनु[६] के अनुसार अक्षत यौनि कन्या का ही विवाह संस्कार हो सकता है। गौतम[७], वशिष्ठ[८], याज्ञवल्क्य[९] ने अनन्यपूर्वा अस्पृष्ट मैथुना अथवा अनन्य पूर्विका कन्या को ही पाणिग्रहण के योग्य माना है। अत: उनका कौमार्य नष्ट करने वालों के लिये कठोर दण्ड और झूठा प्रवाद उड़ाने वालों के लिये सौ पण के दण्ड का विधान है[१०]। विष्णु ने भी इन बातों के लिये कठोरतम दण्ड का विधान किया है[११]। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में तो कन्या के कौमार्य हर्ता का सर्वस्व छीनकर देश से निर्वासित कर देने का विधान किया है[१२]।

१- मनु २।२३२ , २३५-२३७
२- वशिष्ठ स्मृति १३ अध्याय
३- मनु ६।१३०
४- नारद , दायभाग ५०
५- बृहस्पति , अपरार्क पृ० ७४३
६- मनु ६।१७६
७- गौतम ४।१ , गौतम ध० सू० १।४।१
८- वशिष्ठ धर्मसूत्र ८।१
९- याज्ञ० १।५२
१०- मनु० ८।३६४-३६६
११- विष्णु ५।४७

पुत्र के समान ही कन्याओं पर भी अभिभावकों का स्नेह होता था । मनु ने कहा है कि - " कन्या स्नेह की पात्री है , यदि कभी उससे अनुचित भी हो जाये तो पिता उसे सह ले , उस पर क्रोध न करे[१]। मनु ने कन्या विक्रय की घोर भर्त्सना की है[२]।

यद्यपि स्मृतिकारों ने कन्या के विवाह का उत्तरदायित्व अभिभावकों पर ही रखा है , तथापि यदि समय पर अभिभावक कन्या का विवाह न करे तो कन्या को यह अधिकार होता है कि वह स्वयं अपना विवाह कर ले , ऐसी दशा में कन्या और उसके पति को कोई दोष नहीं लगता[३]। वहीं यह भी कहा है कि श्रेष्ठ और सुन्दर वर मिल जाये तो कन्या की अवस्था विवाह योग्य न होने पर भी उसका विवाह कर दे[४]। किन्तु यदि योग्य वर न मिले तो कन्या चाहे जन्म भर कुमारी रहे , अपात्र के साथ उसका विवाह न करे[५]।

मनु ने पति सेवा को स्त्रियों के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण बताया है । उनके अनुसार साध्वी पत्नी को चाहिये कि वह दु:शील , स्वच्छन्द और गुणरहित पति की भी देवता के समान सेवा करे इसी से स्त्रियां स्वर्ग में सम्मान पाती हैं[६]। क्योंकि उनके लिये पृथक से कोई यज्ञ या उपवासादिक नहीं है[७]। मनु तथा याज्ञवल्क्य ने कहा है कि सतीत्व से वह लोक प्राप्त होता है , जिसे केवल ब्रह्मा , पवित्र ऋषि और पवित्र ब्राह्मण ही प्राप्त करते हैं[८]।

- -

१- मनु ४।१८५

२- वही ६।६८-१०२

३- मनु ६।६०-६१

४- मनु ६।८८

५- वही ६।८६

६- वही ६।६०

भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत चरित्र की पवित्रता पर बहुत बल दिया गया है। विशेष रूप से स्त्रियों की यौन नैतिकता का मानदण्ड और भी अधिक ऊँचा रहा है। यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थों में स्त्रियों के कुछ व्यभिचार सम्बन्धी संकेत मिलते हैं[१]। परन्तु वे अत्यन्त नगण्य हैं। मनु[२] और गौतम[३] का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में अत्यन्त कठोर रहा है। इसी प्रकार गौतम, नारद, बृहस्पति आदि ने भी अंग-भंग करने, सम्पत्ति छीनने इत्यादि के कठोर दण्ड का विधान किया है।

पुरुषों से भी चारित्रिक नैतिकता की अपेक्षा की जाती थी। परन्तु व्यवहार में पुरुषों को स्त्रियों की अपेक्षा अधिक सुविधायें प्राप्त थीं। पुरुष को पत्नी के मर जाने पर, पुनर्विवाह का अधिकार दिया गया है[४]। जब कि स्त्री को यह अधिकार नहीं दिया गया[५]। इसी प्रकार पति को यह अधिकार दिया गया कि वह अप्रियवादिनी पत्नी का त्याग कर सकता है[६]। किन्तु स्त्री को पति की आज्ञा पालन करने का उपदेश दिया गया है[७]। याज्ञवल्क्य[८] और नारद[९] ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। शंख स्त्री के अनुकूल न रहने पर पति को अधिवेदन का अधिकार देता है[१०]।

- -

१- वैदिक इंडिया १।३६६, ७।४८०

२- मनु ८।३७१

३- गौतम २३।१४

४- मनु ६।१०१, ५।१६८

५- वही ५।१५७-१६१

६- वही ६।८१

७- याज्ञ० १।७७

८- वही १।७३

९- नारद १२।६३

मनु ने कहा है कि - " अधिविन्ना अर्थात् पति के दूसरा विवाह करने पर जो स्वयं कुपित होकर घर से निकल जाये , तो पति क्रोध शान्त होने तक रस्सी आदि से बाँधकर रोके अथवा पिता आदि के पास पहुँचाकर छोड़ दे [1] ।

इस प्रकार यौन नैतिकता का दुहरा मानदण्ड स्थापित हुआ , राजाओं के विशाल अन्त:पुर इसके प्रमाण हैं । श्री हरिदत्त वेदालंकार ने पुरुषों पर यौन नैतिकता के कठोर प्रतिबन्ध न लगाये जाने के छ: कारणों का उल्लेख किया है - नारी को सम्पत्ति समझना , पुरुष की नैसर्गिक अहं भावना , स्त्रियों के असतीत्व के भयंकर दुष्परिणाम , वंश शुद्धि की चिन्ता , स्त्रियों का अधिक चंचल स्वभाव , अन्तर्जातीय विवाह में पत्नी को पति के अनुकूल बनाने के प्रयत्न [2] ।

मनु ने शिक्षार्थ पत्नी का ताड़न उचित बताया है । उनके अनुसार यदि स्त्री , पुत्र , दास , प्रेष्य या सहोदर भाई अपराध करे तो उसे रस्सी से या पतली बाँस की छड़ी से ताड़न करना चाहिये । इसी प्रकार का मत कौटिल्य ने भी व्यक्त किया है [3] ।

मनु के अनुसार स्त्री , पुत्र तथा दास आदि धन के अधिकारी नहीं होते , वे जो कुछ उपार्जन करते हैं, वह उनके स्वामी का होता है [4] । परन्तु साथ ही उन्होंने स्त्री धन के छ: प्रकारों का वर्णन किया है , जिस पर स्त्री का अधिकार स्वीकार किया है [5] ।

१- मनु ९।८३

२- हरिदत्त वेदालंकार - हिन्दू परिवार मीमांसा , पृ० १३४-१३७

३- मनु ८।२९९ , कौटिल्य - अर्थशास्त्र , ३।२९-११ , शंख स्मृति ४।१६

मनु ८।३००

जहाँ स्त्रियों के ऊपर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये गये थे, वहीं उन्हें कुछ सुविधायें भी प्राप्त थीं। शास्त्रकारों द्वारा स्त्री को "अवध्य" माना गया है। मनु ने तो यहाँ तक कह दिया है कि - "प्रायश्चित कर लेने पर भी स्त्रीघाती के साथ सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये[1]। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी यही विधान है। यही कारण था कि स्त्री के जघन्यतम अपराध चारित्रिक अध:पतन होने पर भी पति उसके भरण-पोषण के दायित्व से मुक्त नहीं होता था। प्राय: इस सिद्धान्त का सभी ने स्वीकार किया था कि - रजोदर्शन से स्त्री की शुद्धि हो जाती है[2]। यद्यपि कहीं-कहीं इस प्रकार के अपराध पर प्राणदण्ड की भी व्यवस्था दे दी गयी है[3]।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि शनै:-शनै: उसकी स्थिति में ह्रास होता गया, फिर भी पत्नी व माता के रूप में उसे सर्वोच्च आदर तथा सम्मान प्राप्त था। आर्यजन पत्नी व माता के महत्त्व को अच्छी प्रकार समझते थे, यही कारण है कि प्राचीन भारतीय साहित्य पत्नी व माता की प्रशंसा की उक्तियों से परिपूर्ण है। साथ ही इस संसार में प्रत्येक वस्तु के दो पक्ष प्राप्त होते हैं। तस्वीर का अगर एक पक्ष रंगीन और सुन्दर होता है, दूसरा पक्ष श्वेत होता है। प्रत्येक वस्तु के सित और असित दो पक्ष होते हैं, यह तथ्य नारी के सम्बन्ध में भी सत्य है। जहाँ उसके सम्बन्ध में अनेक प्रशंसापरक उक्तियाँ प्राप्त होती हैं, वहीं पर उसके लिये अनेक

- -

१- मनु ११।१९० शरणागत हन्तॄंश्च स्त्रीहन्तॄंश्च न संवसेत्।

२- मनु ५।१०८, याज्ञ० १।७२, वशिष्ठ २८।१-४, ५।४, ३।५-८, विष्णु ५।११, पराशर ७।२, १०।१२, महा० अनु० प० ५८।२१-२२, बौधायन धू० २।२।४।४।

३- मनु ८।३७१, गौतम २३।४, महा० शान्तिपर्व १६५।६४।

कटूक्तियाँ का प्रयोग किया गया है , जो कि अतिरंजना पूर्ण है अब हम उसके इसी पक्ष पर विचार करेंगे और तत्पश्चात् उसकी सही स्थिति का आकलन कर सकेंगे ।

नारी निन्दा -

ऋग्वेद[१] तथा शतपथ ब्राह्मण[२] में कहा गया है कि - " स्त्रियों के साथ कोई मित्रता नहीं होती , उनके हृदय भेड़ियों के हृदय के समान हैं । मैत्रायणी संहिता[३] में स्त्री को " अनृत " अर्थात् झूठ का अवतार कहा गया है । इसी प्रकार ऋग्वेद में एक अन्य स्थान पर नारी का मन दुर्दमनीय[४] कहा गया है । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार " स्त्री , शूद्र , कुत्ता एवं कौवा में असत्य , पाप एवं अंधकार विराजमान रहता है[५]। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार " स्त्रियां बिना शक्ति की हैं , इसीलिये उन्हें दाय नहीं मिलता[६]। इस उक्ति के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए काणे महोदय ने कहा है कि - " यह उक्ति वास्तव में स्त्रियों को सोमरस की अधिकारिणी नहीं मानती । बौधायन धर्मसूत्र [२।२।५३] एवं मनु [९।१८] द्वारा इस अर्थ में प्रयुक्त की गयी है कि स्त्रियों को वसीयत या दाय में भाग नहीं मिलना चाहिये , और न उन्हें वैदिक मन्त्रों का अधिकार ही है[७]। ऋग्वेद में स्त्रियों को

- -

१- ऋ० १०।९५।१५

२- शतपथ ब्रा० ११।५।१।९

३- मैत्रायणी संहिता १।१०।११

४- ऋ० ८।३३।१७

५- शतपथ ब्रा० १४।१।१।३१

६- तै० सं० ६।५।८।२ ," तस्मात्स्त्रियो निरिन्द्रिया अदायादीरपि पापात्पुंस उपस्तितरं वदन्ति ।"

७- निरिन्द्रिया ह्यदायाश्च स्त्रियो मता इति श्रुतिः । बौधायन ध०सू० २।२।५३ नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मव्यवस्थितिः । निरिन्द्रिया ह्यम-

" छुरे की धार " कहा गया है[१]। स्त्रियां वज्र या घृत से हत होने पर तथा पुरुष के अभाव में न तो अपने ऊपर शासन करती हैं और न दाय पर[२]। वे सदैव पुरुषों पर आश्रित होती हैं[३]।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि वैदिक काल में स्त्रियों को एक ओर जहां उच्च स्थिति प्राप्त थी , वहीं दूसरी ओर समाज का एक वर्ग ऐसा था जो कि उसको हीन तथा निम्नकोटि का समझता था । इसी प्रकार धर्मशास्त्र साहित्य में जब कि उनकी स्थिति का निरन्तर ह्रास हो रहा था , स्त्रियों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के कटुवचन कहे गये हैं कि स्त्रियों को सदैव पुरुषों के आश्रित रहना चाहिये , वे स्वतन्त्र रहने के योग्य नहीं उन पर सदैव पुरुष का नियन्त्रण रहना चाहिये[४]। मनु स्मृति में कहा गया है - ये स्त्रियां सुन्दर रूप की परीक्षा नहीं करती , युवावस्था आदि का आदर नहीं करती , किन्तु पुरुष है , इसी विचार से सुन्दर या कुरूप पुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित करती है । चित्त की चंचलता , स्नेह का अभाव होने के कारण इनकी सुरक्षा कठिन होती है[५]। ब्रह्मा की सृष्टि से ऐसा स्वभाव जानकर पुरुष उनकी रक्षा का विशेष प्रयत्न करे । शय्या , आसन , आभूषण , काम , क्रोध , कुटिलता , द्रोहभाव और दुराचरण इनको स्त्रियों के लिये मनु ने सृष्टि के प्रारम्भ से ही बनाया है[६]।

- -

१- ऋ० ५।३०।९

२- शतपथ ब्रा० ४।४।२।१३

३- शतपथ ब्रा० १३।२।२।४

४- गौतम १८।१ , वशिष्ठ धर्मसू० ५।१-२ , मनु ५।१४७-१४८ , ९।२-३ , बौधायन धर्मसू० २।२।४४-४५ , नारद [दाय भाग ३१] ।

५- मनु ९।१४-१५

६- वही ९।१६-१७ , महा० अनु० प० ४०।११-१२ ।

महाकाव्य काल में भी कुछ इसी प्रकार के विचार मिलते हैं। दशरथ दुराग्रह पर डटी हुई कैकेयी की भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि - " स्त्रियों को धिक्कार है, क्योंकि वे शठ और स्वार्थ परायण होती है, परन्तु अगले ही क्षण वे अपनी भूल सुधार कर लेते हैं और कहते हैं कि - मैं सारी स्त्रियों के लिये ऐसा नहीं कह सकता, केवल भरत की माता की ही निन्दा करता हूं।[1] महाभारत में कहा गया है - " संसार में कोई मूर्ख हो या विद्वान्, काम और क्रोध के वशीभूत हुए मनुष्य को नारियां अवश्य ही कुमार्ग पर पहुंचा देती हैं, इस जगत में मनुष्यों को कलंकित कर देना नारियों का स्वभाव है। अतः विवेकी पुरुष युवती स्त्रियों में अधिक आसक्त नहीं होते[2]। धर्मसूत्रकार यह निश्चित रूप से कहते हैं कि स्त्रियां असत्य परायण होती हैं[3]। वेदों में भी यही बात कही गयी है[4]। इसी प्रकार स्त्रियों को सब दोषों की जड़, मर्यादा में न रहने वाली, कामिनी, चंचल, स्वेच्छाचारिणी, छुरे की धार, विष, सर्प और अग्नि एक तरफ तथा स्त्रियां अकेली एक तरफ बराबर हैं[5]। सहस्त्रों नारियों में कभी कोई एक मिलती है, जो पतिव्रता होती है[6]। जैसे गौयें नयी-नयी घास चरती हैं, उसी प्रकार ये नारियां नये-नये पुरुषों को अपनाती रहती हैं, शम्बरासुर की जो माया है, तथा नमुचि, बलि, कुम्भीनसी की जो मायायें हैं उन सबको ये युवतियां जानती हैं[7]।

- -

१- रामा० अयो० का० १२।१००

२- महा० अनु०प० ४८।३७-३८, मनु २।२१३ -२१४

३- अनृताः स्त्रिय इत्येवं सूत्रकारो व्यवस्यति। महा० अनु०प० १९।६

४- महा० अनु० प० १९।७

५- वही अनु० प० ३८। २९-३०

६- वही अनु० प० ३९। ९२-९३

७- वही अनु० प० ३९। ६-७ ।

स्त्रियों से बढ़कर पापिष्ठ दूसरा कोई नहीं है। यौवन मद से उन्मत्त रहने वाली स्त्रियां वास्तव में प्रज्ज्वलित अग्नि के समान हैं, ये मय दानव की रची हुई मायायें हैं।[1] वाणी के द्वारा एवं बध और बन्धन के द्वारा रोककर अथवा नाना प्रकार के क्लेश देकर भी स्त्रियों की रक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि वे सदा असंयमशील होती हैं।[2] ये स्त्रियां तीखे स्वभाव की तथा दुःसह शक्तिशाली होती हैं, कोई भी पुरुष इनका प्रिय नहीं होता है।[3] ये स्त्रियां कृत्याओं के समान मनुष्यों के प्राण लेने वाली होती हैं। किसी एक ही पुरुष में इनका सदैव अनुराग नहीं रहता है।[4] शकुन्तला के प्रति दुष्यन्त ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं।[5] लक्ष्मण सीता से कहते हैं कि - " ऐसी अनुचित और प्रतिकूल बातें मुंह से निकालना स्त्रियों के लिये आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि इस संसार में नारियों का ऐसा स्वभाव देखा जाता है, स्त्रियां प्रायः विनय आदि धर्मों से रहित, चंचल, कठोर तथा घर में फूट डालने वाली होती हैं।[6] प्रजापति ने स्वयं ही स्त्रियों को उनकी इच्छा के अनुरूप काम भाव प्रदान किया, ये स्त्रियां सदैव पुरुषों को बाधा देती रहती हैं।[7]

- -

१- महा० अनु० प० ४०। ४-५

२- वही अनु० प० ४०।१४-१५

३- वही अनु० प० ४३।२३

४- वही अनु० प० ४३।२४

५- असत्यवचना नार्यः कस्ते श्रद्धास्यति वचः । महा० आदिप० ७४।७३

६- रामा० अरण्य का० ४५।२९-३० , महा० अनु० प० ४०।८-१० , ३९।६-७

७- महा० अनु० प० ४०। ९-१०, ४८।३७-३८ , मनु० २१३।२१४ ।

सम्भोग से वंचित स्त्रियों के लिये , बुढ़ापा है , ऐसा कहा गया है ।[१] सृष्टिकाल से लेकर अब तक स्त्रियों का यही स्वभाव रहता आया है कि यदि पति सम अवस्था में है , अर्थात वह सुखी , सम्पन्न एवं स्वस्थ है तब तो वे उसमें अनुराग रखती हैं और जब विषम अवस्था में रहता है तो उसे त्याग देती है[२]। स्त्रियां विद्युत की चपलता , शास्त्रों की तीक्ष्णता तथा गरुण एवं वायु की तीव्र गति का अनुसरण करती हैं[३]। इस प्रकार स्त्रियों के प्रति परस्पर विरोधी विचार व्यक्त किये गये हैं ।[४]

नारियों के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये उपर्युक्त वचनों का विश्लेषण करने पर कुछ तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं । किसी भी देश या समाज में यह सम्भव नहीं है कि उसमें रहने वाले सभी लोग प्रशंसनीय एवं निर्दोष हों । जिस प्रकार सदाचारी पुरुषों के साथ कुमार्गगामी पुरुषों का रहना स्वाभाविक है, उसी प्रकार साध्वी स्त्रियों के साथ असाध्वी स्त्रियों का रहना स्वाभाविक है , जैसा कि भीष्म[५] और शल्य[६] ने बताया है । यही कारण है कि महाकाव्य में जहां अनेकों स्थान पर पतिव्रता स्त्रियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है , वहीं नारी निन्दा के जो वचन प्राप्त होते हैं वे असाध्वी नारियों के सम्बन्ध में हैं । जैसा कि भीष्म कहते हैं - " यदि स्त्रियां साध्वी एवं पतिव्रता हों तो बड़ी सौभाग्यशालिनी होती हैं । संसार में उनका आदर

- -

१- महा० उद्योग प० ३९।७७ , ३३।८४-८५

२- रामा० अरण्य का० १३।५

३- रामा० अरण्य का० १३।६ , ४०।५ , महा० अनु० प० ३८।२५ , रामा० अयो० का० १२।९-१० , युद्धका० १४।२ ।

४- रामा० युद्धका० १६।९ , महा० उद्योगप० ३९।५८ । मिलाइये - पे० एस० डेविड - " ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ वीमेन , पृ० २७-३३ ।

५- उभयं दृश्यते राजन् सततं साध्वसाधु च ।। महा० अनु० प० ४३।१९

६- महा० कर्ण पर्व ४०।४२ , ४५-४६ ।

होता है और वे सम्पूर्ण जगत की माता समझी जाती हैं । इतना ही नहीं वे अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से वन और काननों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण करती हैं।[1] किन्तु दुराचारिणी असती स्त्रियां कुल का नाश करने वाली होती हैं । उनके मन में सदा पाप ही बसता है , फिर ऐसी स्त्रियों को उनके शरीर के साथ ही उत्पन्न हुए बुरे लक्षणों से पहचाना जा सकता है।[2] इसी प्रकार द्रौपदी ने भी सत्यभामा को स्त्रियों के कर्तव्य की शिक्षा देने के सन्दर्भ में असती नारियों के आचरण का उल्लेख किया है[3]। अत: असाध्वी नारियों की निन्दा स्वाभाविक थी ।

दूसरे विशिष्ट वर्ग का दृष्टिकोण भी नारी निन्दा के लिये प्रेरक बना था । उदाहरणार्थ - पंचचूड़ा अप्सरा[4] द्वारा की गयी स्त्री निन्दा को हम वास्तविक स्थिति का परिचायक नहीं मान सकते , क्योंकि पंचचूड़ा एक अप्सरा थी जिसका प्रतिनिधित्व मानव लोक में वेश्यायें करती हैं।[5] ऐसी स्त्री का अनुभव एक विशिष्ट वर्ग तक सीमित रहने के कारण उसका मानव लोक की स्त्रियों के आचरण से अनभिज्ञ रहना स्वाभाविक है । अत: उसे समस्त स्त्री जाति की प्रतिनिधित्व करने वाली मान लेना अनुचित होगा , जैसा कि उसने स्वयं कहा है - " स्वेच्छाचारिणी स्त्रियों के चरित्र को देखकर कितनी ही कुलवती स्त्रियां भी वैसा ही बनने की इच्छा करने लगती हैं।[6]

- -

१- महा० अनु० प० ४३।२०

२- वही अनु० प० ४३।२१

३- महा० वनपर्व २३३।१०-१७

४- महा० अनु० प० ३८।११-३०

५- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास [प्रथम भाग] पृ०- ३५४

६- महा० अनु० प० ३८।१६ ।

सन्यासियों के जीवन के प्रति वैराग्यपूर्ण दृष्टिकोण ने भी स्त्री निन्दा में पर्याप्त सहयोग दिया । इन लोगों ने स्त्रियों को मोक्षमार्ग में सबसे बड़ी बाधा माना । अत: मनुष्यों को संसार से विरत करने के लिये नारी को ही निन्दा का लक्ष्य बनाया जो कि पारिवारिक जीवन का मुख्य केन्द्र बिन्दु थी[१]। महाकाव्य के प्रणेताओं को बौद्धधर्म एवं जैन धर्म की जानकारी थी । इन धर्मों के वैराग्यपूर्ण दृष्टिकोण से प्रभावित होने के कारण उन लोगों ने स्त्रियों के दूषित आचरण को सामने रखा । महाभारत में अनेक ऐसे स्थल हैं जो कि जीवन के प्रति वैराग्यपूर्ण दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते हैं और स्त्रियों की कटु निन्दा करते हैं । विशेष रूप से यह निन्दा हमें महाभारत के उपदेशक भाग में प्राप्त होती है , जिसका कि प्रणायन बहुत बाद में माना जाता है[२]। रामायण के प्रणेताओं को बौद्ध धर्म के वैराग्य पूर्ण दृष्टिकोण की जानकारी नहीं थी[३]। यही कारण है कि रामायण में जीवन के प्रति वैराग्यपूर्ण दृष्टिकोण का वैसा चित्रण नहीं प्राप्त होता है , जैसा कि महाभारत के उपदेशक भाग में प्राप्त होता है ।

ऋषि जरत्कारु की कहानी यह स्पष्ट करती है कि वैराग्य से प्रेरित लोगों की पत्नियों की स्थिति कितनी दयनीय होती थी । जरत्कारु प्रारम्भ

- -

१- महा० शा० प० ६।२७-२८, १५३।४४-४५, १७४।३३, ३६-४२, १७६।२१-२२, १७८।२, ७, १३, १२०।१-३२, ये सब वैराग्यपूर्ण दृष्टिकोण को सिद्ध करते हैं । शा०प० २८।३१-४१, १०५।१२, ११०।१४, १२३।७-८, १७४।७, २५-२७, ३३, ३६-४०, १७५।१७, ३५, १७६।२१-२२, १७७।४७, १६५।४, २७०।१-३२, २६८।३८-४० । ये सब स्त्रियों तथा गृह की बाधकता के विरोध में हैं ।

२- महा० अनु० प० ३८-४३ अध्याय ।

३- विकोबी यह सोचते हैं कि रामायण में बुद्धिज्म के जो उदाहरण हैं वे कृत्रिम हैं । मैकडोनल - हि०आ०सं०लि० पृ० ३०७ ।

में जीवन के प्रति वैराग्यपूर्ण दृष्टिकोण के कारण विवाह के लिये उद्यत नहीं थे[1], परन्तु बाद में अपने पितरों की दशा को देखकर[2] पुत्रोत्पत्ति के उद्देश्य से विवाह करते हैं[3]। फिर भी वे अपने प्रति विषयक कर्तव्यों का निर्वाह नहीं करते[4]। जैसे ही उनका उद्देश्य पूरा हो जाता है, वे बिना किसी अपराध या दोष के पत्नी का परित्याग कर देते हैं[5]। स्पष्ट है कि वैराग्यपूर्ण दृष्टिकोण के कारण इन ऋषियों के मन में पत्नी के प्रति किसी प्रकार का आदर या सम्मान नहीं होता था[6]। ये विवाह मात्र पुत्रोत्पत्ति के लिये करते थे, क्योंकि पुत्र का महत्व बहुत अधिक था[7]। सम्भवत: इन सब वृत्तान्तों को हटाने के उद्देश्य से यह कहा जाने लगा कि तपस्या से पुत्र प्राप्ति सम्भव है। इन्द्र के प्रिय मित्र वारुशीर्ष ने सौ वर्षों तक भगवान शंकर की तपस्या कर सौ पुत्र प्राप्त किये थे, जो जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ, परम तेजस्वी, जरा रहित, दुखहीन और एक लाख वर्ष की आयु वाले थे[8]। इस प्रकार महान ऋषियों द्वारा पुत्र प्राप्ति एक अद्भुद कार्य था।

निन्दा वाक्यों में कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें निन्दा के पीछे निन्दकों के कुछ व्यक्तिगत कारण थे। स्त्रियों को अनृत एवं अविश्वसनीय कहने वाला

१- महा० आदि प० ४०।८-९, ४६।५-६

२- वही आदि प० ४५।३-५

३- वही आदि प० ४६।७

४- भार्याया भरणाद्भर्ता पालनाच्च पति: स्मृत:।महा० आदि प० १०४।३

मरणाद्धि स्त्रियो भर्तापात्या चैव स्त्रिय: पति:।

गुणस्यास्य निवृत्तौ तु न भर्ता न पुन: पति:।। महा० शा०प० २६६।३८

५- महा० आदि प० १३।२७-३२, ४७।३, १५।२५, ३०

६- वही आदि० ४७।३१-३८

७- वही, संतान हि परोक्ष्मं स्वमाह पितामह:। महा०आदि०प० ४५।१४

८- महा० अनु०प० १८।६-७ ।

दुष्यन्त[1] अपने ही अपराध को छिपा रहा था । दमयन्ती द्वारा द्वितीय विवाह की घोषणा ने नल को इतना उद्विग्न कर दिया था कि वह स्त्री जाति को चंचल[2] कहने पर विवश था ।

एक ओर जहाँ स्त्रियों की अत्यधिक निन्दा की गयी है वहीं पर प्राचीनकाल में वराहमिहिर [छठी शता०] ऐसे लेखक हो गये हैं, जिन्होंने स्त्री निन्दकों की कटु आलोचना की है । वराहमिहिर ने " बृहत्संहिता " में स्त्रियों की प्रशंसा में अनेक सुन्दर वचन कहे हैं और स्त्रियों के पक्ष का समर्थन बहुत ही ओजस्वी ढंग से किया है । वराहमिहिर स्त्रियों के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि - " संसार में कहीं पर ब्रह्मा ने स्त्रियों के अतिरिक्त ऐसा कोई रत्न नहीं बनाया है, जिसके सुनने , स्पर्श करने, देखने या स्मरण करने से ही आनन्द हो , स्त्रियों पर ही धर्म एवं अर्थ आश्रित है । स्त्री के द्वारा ही पुत्र सुख तथा विषय सुख मिलता है । स्त्री गृह में लक्ष्मी है, अतः[3] मान तथा विभवों के द्वारा इनका सदैव आदर तथा सत्कार करना चाहिये । इसके पश्चात् वे उन लोगों को आड़े हाथों लेते हैं, जो कि वैराग्यपूर्ण मार्ग का आश्रय लेने के कारण स्त्रियों की निन्दा करते हैं । वे कहते हैं - " जो कोई वैराग्य मार्ग के द्वारा स्त्रियों में गुणों को छोड़कर दोषों का वर्णन

१- महा० आदि प० ७४।७३

२- वही वन० प० ७१।६

३- श्रुतं दृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणां ह्लादजननं ।
न रत्नं स्त्रीभ्योऽन्यत् क्वचिदपि कृतं लोकपतिना ।।
तदर्थं धर्मार्थौ सुतविषय सौख्यानि च ततो ।
गृहे लक्ष्म्यो मान्याः मान विभवैः ।।
बृहत्संहिता ७४।४। स्त्री प्रशंसाध्यायः ।।

करते हैं , वे दुर्जन हैं , ऐसा मेरा अनुमान है । अतः उन दुर्जनों के वचन प्रामाणिक नहीं हो सकते[१]। वराहमिहिर निन्दकों से पूछते हैं कि "स्त्रियों में कौन से ऐसे दोष हैं , जो पुरुषों में नहीं पाये जाते । पुरुष लोग धृष्टता से स्त्रियों की निन्दा करते हैं , वास्तव में वे (पुरुषों की - अपेक्षा) अधिक गुणों से सम्पन्न होती हैं[२]। वराहमिहिर ने अपने पक्ष के समर्थन में मनु के वचनों को उद्धृत किया है - पुरुषों की उत्पत्ति की हेतु स्त्री ही है , जो कृतघ्नी एवं दुष्ट इस प्रकार उनकी भर्त्सना करेंगे तो उन्हें सुख कैसे प्राप्त होगा । शास्त्रों के अनुसार दोनों पति एवं पत्नी पापी हैं, यदि वे विवाह के प्रति सच्चे नहीं होते , पुरुष लोग शास्त्रों की बहुत कम परवाह करते हैं (किन्तु स्त्रियां बहुत परवाह करती हैं) , अतः स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा अति उच्च हैं[३]।

इस सम्बन्ध में पूर्वमीमांसा का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त भी विचारणीय है । शबर स्वामी ने अपने भाष्य में कहा है कि - " निन्दा-निन्दा के लिए प्रयुक्त नहीं होती , वह तो लोगों को निन्द्य आचरण से पराङ्मुख करके उसके विरुद्ध की ओर प्रवृत्त करने के उद्देश्य से की जाती है[४]। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार स्त्रियों की जो निन्दा की गयी है , उसमें वास्तविक प्रयोजन निन्दा का न होकर स्त्रियों के पातिव्रत्य सदाचार के महत्व को समझाना था ।

- -

१- येऽप्यंगनानां प्रवदन्ति दोषान् , वैराग्य मार्गेण गुणान् विहाय ।
ते दुर्जना मे मनसो वितर्कः , सद्भावावाक्यानि न तानि तेषाम् ।।
बृहत्संहिता ७४।५

२- बृहत्संहिता ७४।६

३- बृहत्संहिता ७४।११, १५, १६

४- जैमिनी २।४।२१ ।

नारी की निन्दा और प्रशंसा के सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है। महाकाव्य में वर्णित नारी निन्दा के वचनों की सार्थकता को प्रमाणित करने वाले उदाहरण अपवाद में ही मिलते हैं, जब कि नारी प्रशंसा को प्रमाणित करने वाले उदाहरणों से महाकाव्य भरा पड़ा है। गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, दमयन्ती, सावित्री, जैसी राजकुल की पतिव्रतायें, अरुन्धती, लोपामुद्रा, सुकन्या, शाण्डिली आदि ऋषिपत्नियों में जो उच्चकोटि के चारित्रिक गुण दिखायी पड़ते हैं, वे नारी निन्दा के वचनों की निःसारता को सिद्ध करते हैं और नारी प्रशंसा के वचनों को सार्थक बनाते हैं।

महाभारत में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में पर्याप्त विरोधाभास पाया जाता है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि महाकाव्य के आख्यानों को प्रारम्भ में ऋषियों, भाटों और गवैयों के द्वारा श्रुति परम्परा से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किया गया और बाद में महाकाव्य के रचयिताओं द्वारा कभी-कभी अपने वर्तमानकाल के अनुसार सुव्यवस्थित कर लिपिबद्ध किया गया। इस प्रकार उसमें भिन्न-भिन्न समयों की परिस्थितियों का वर्णन है। निश्चित रूप से इन कथानकों द्वारा हमें भिन्न-भिन्न संस्कृतियों, और समाजों तथा उनमें प्रचलित व्यवहारों का ज्ञान प्राप्त होता है। अतः घटनाओं के घटित होने तथा बाद में उनका सम्पादन किये जाने के समय में काफी अन्तराल होने से विरोधाभास स्वाभाविक है। महाकाव्य का अध्ययन करते समय हमें इस बात को अवश्य दृष्टि में रखना चाहिये। पुरानी गाथाओं तथा आख्यानों में अनेक नयी बातें समाहित हैं, जब कि नयी सामग्री में पुराने रीति रिवाज और प्रचलित व्यवहार के चिन्ह विद्यमान हैं। इस प्रकार

महाभारत में प्राचीन और नवीन तथा विभिन्न कालों के आदर्शों तथा सार्वजनिक व्यवहारों का वर्णन प्राप्त होता है तथा धर्मशास्त्र के नैतिक कानूनों का भी दिग्दर्शन प्राप्त होता है । महाकाव्य वैदिक और लौकिक युगों के मध्य की रचना होने के कारण दोनों परम्पराओं से प्रभावित है[१]। सम्भवत: इसीलिये इसको हम न तो " वैदिक ट्रेडीशन " कह सकते हैं और न " धर्मशास्त्र ट्रेडीशन " वरन् इसमें विभिन्न परम्पराओं का अद्भुद संगम होने के कारण इसे " एपिक ट्रेडीशन " या "महाकाव्य परम्परा", का नाम दे सकते हैं । इन विरोधाभासों के बावजूद महाकाव्य का ऐतिहासिक मूल्य कम नहीं होता । महाकाव्य के मुख्य विषय पर कोई सन्देह नहीं है । इसके चारों ओर गाथाओं और कथानकों का जो जाल बुना गया है, उसका सामाजिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्व है[२]।

महाकाव्य के कथानक भाग में स्त्रियों की स्थिति का जैसा चित्रण किया गया है , उससे स्पष्ट होता है कि महाकाव्य के इस भाग के प्रणयन तक स्त्रियों की स्थिति काफी अच्छी थी । विचारों तथा व्यवहार के क्षेत्र में उन्हें पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त थी । घर में भी उसकी स्थिति महत्वपूर्ण थी तथा सामाजिक क्षेत्र में भी उसे पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त थी । राज-सभाओं में उसका सम्मान होता था , वहां वह अपनी बात निर्भीकता से कह सकती थी और उसके द्वारा दी गयी सम्मति को भी महत्व दिया जाता था । आध्यात्मिक क्षेत्र में भी उन्होंने उच्चकोटि की सफलता प्राप्त की थी । परन्तु कथानक भाग के रचना काल तक ही उसकी स्थिति में ह्रास होने लगा था और कालान्तर में आगे के भागों [उपदेशक भाग] के रचनाकाल के

- -

१- वाचस्पति गैरोला - संस्कृत साहित्य का इतिहास , पृ० २२७

२- आर० सी० दत्त - ए हिस्ट्री आफ सिविलाइजेशन इन एन्शियंट इण्डिया, संस्करण १ , पृ० १२२-१२३ , १३८ ।

समय तक तो उसकी स्थिति में काफी परिवर्तन हो गया था । अब वह वास्तविक सहधर्मिणी न होकर पति की भक्त तथा अनुगामिनी मात्र बनकर रह गयी थी । यहां तक कि ए० सी० दास ने लिखा है कि -" सम्भावित सामाजिक सुविधाओं तथा पवित्रता की बलिवेदी पर स्त्रीत्व का बलिदान कर दिया गया था और उस भस्म से एक ऐसी जाति की उत्पत्ति हुई , जो छोटी कोठरी में बन्द , घिरी हुई , जो छोटी कोठरी में बन्द , घिरी हुई , कमजोर प्राणी तथा बहुत कोमल थी , वह अत्यधिक आकाशीय और शक्तिशाली तथा उत्साहित जीवन व्यतीत करने के अयोग्य थी"[१]।

इसके विपरीत रामायण में अपेक्षाकृत कम विरोधाभास है । रामायण में आर्यों के साथ-साथ अनार्यों के रीति रिवाजों तथा व्यवहारों का वर्णन प्राप्त होता है । लेकिन रामायण में आर्यों के साथ-साथ अनार्य भी आर्य आदर्शों को प्रतिपादन करने का प्रयास करते हैं ।

रामायण में स्त्रियों की स्थिति पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि इस काल में स्त्रियों को पर्याप्त आदर तथा सम्मान प्राप्त था और अधिकतर स्त्रियां आदर्शों के पालन का प्रयास करती है , यद्यपि यह सत्य है कि उनमें भी मानवीय कमजोरियां विद्यमान हैं जो कि समय-समय पर दिखायी पड़ जाती है । अपनी भूल का अनुभव होने पर वे शीघ्र ही आदर्श की ओर प्रत्यावर्तित हो जाती है । कौशल्या के उदाहरण में जब राम तथा दशरथ के द्वारा उनको कर्तव्य की याद दिलायी जाती है तो वे अपने व्यवहार पर पश्चाताप करती हैं, इसी प्रकार कैकेयी भी अपनी भूल पर लज्जित होती है । स्त्रियां अपने पति की वास्तविक जीवन संगिनी थीं । इस काल में भी स्त्री

- -

१- ए० सी० दास - ऋग्वैदिक कल्चर , पृ० २५८ ।

निन्दा के कुछ उद्धरण प्राप्त होते हैं जो कि सन्दर्भ विशेष के अनुसार उचित कहे जा सकते हैं। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सामाजिक संगठन में , सामाजिक आदर्श उन स्थितियों की ओर ले जाते हैं, जहाँ कि स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा निम्न स्थान प्राप्त था।

महाकाव्य ऐतिहासिक रचना है , विशेष रूप से महाभारत इस सम्बन्ध में एक विशाल इतिहास है , क्योंकि इसमें विभिन्न समाजों की संस्कृतियों और प्रचलित सामाजिक व्यवहारों का अद्भुद् संगम प्राप्त होता है, जिसमें स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में विरोधाभास पाया जाता है। अत: इन सबको ध्यान में रखते हुए आगे के अध्यायों में महाकाव्यों में प्राप्त स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को वर्णन करने का एक विनम्र प्रयास किया गया है।

00 ———— 00

अध्याय - २

पुत्री, उसकी स्थिति और शिक्षा।

पुत्री , उसकी स्थिति और शिक्षा

जन्म के प्रति दृष्टिकोण -

सृष्टि के क्रमिक विकास में स्त्री व पुरुष दोनों की समान रूप से सहभागिता तथा अनिवार्यता होते हुए भी विश्व के प्राय: समस्त पितृ-सत्तात्मक परिवारों में पुत्र की अपेक्षा पुत्री को कम महत्व प्रदान किया गया[१]। कालान्तर में इस धारणा के विकास से कि पुत्र " पुत् " नामक नरक से रक्षा करता है[२] तथा पिण्डादिक क्रियाओं के द्वारा पितरों का उद्धार करता है[३], पुत्र जन्म अधिक महत्वपूर्ण हो गया । इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में प्राय: युद्ध होते रहते थे , इस दृष्टि से भी पुत्री की अपेक्षा पुत्र अधिक उपयुक्त थे , इसलिये वेदों में सर्वत्र दस पुत्रों की कामना की गयी है[४]। पुत्र की प्राप्ति वैदकालीन गार्हस्थ्य जीवन का मूल मंत्र माना जाता था । जिस घर में बच्चों की किलकिलाहट , हास्य आदि का शब्द न सुनायी दे, वह रहने योग्य नहीं माना जाता था । पुत्र प्राप्ति के लिये देवताओं से प्रार्थना की जाती थी[५]।

- -

१- अल्टेकर - " पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० ३ ।

२- महा० आदि ७४।३६

३- वही आदि प० ७४।६८

४- दशास्यां पुत्रानाधेहि ।। ऋ० १०।८५।४५

५- ऋ० ७।१।११ , १२ , १६ , २४ । ए० सी० दास - ऋग्वेदिक कल्चर पृ० २४० । ऋ० ५।२५।५ , ७।४।१० , ७।२४।५ , ८।१।१३ , डा० शिवदत्त ज्ञानी - वैदकालीन समाज , पृ० ६६ ।

अथर्ववेद में भी ऐसी ऋचाओं और रीतियों का वर्णन है, जिसके द्वारा कन्या की अपेक्षा पुत्र जन्म की कामना की गयी है[१]। इसके साथ ही साथ पुत्री के लिये योग्य वर के चुनाव में कठिनाइयां तथा उसके भावी जीवन के सुखी होने के सम्बन्ध में संशय इत्यादि पुत्री जन्म की उपेक्षा का कारण थी। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि - " पत्नी एक साथी है, पुत्री एक विपत्ति है, पुत्र सर्वोच्च प्रकाश है[२]।

परन्तु इसका तात्पर्य नहीं कि कन्या पूर्णतः उपेक्षणीय थी। इसके विपरीत हम देखते हैं कि माता-पिता उसी लाड़-प्यार से पुत्रियों का पालन करते थे, जैसे पुत्र का। वैदिक शास्त्र विधि में पुत्री उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितना कि पुत्र। अनेक स्थानों में ऐसा मालुम होता है कि प्राचीन भारत में माता-पिता को पुत्र की अपेक्षा पुत्री से अधिक प्यार था[३]। ऋग्वेद में अपनी माता-पिता की गोद में पड़ी हुई दो बहनों का उल्लेख है[४]। जहां पिता पुत्रों के साथ सम्पूर्ण आयु को व्यतीत करने में सुख का अनुभव करता है, उसी प्रकार वह पुत्री के साथ भी सम्पूर्ण आयु को व्यतीत करना चाहता है और दोनों को सुवर्णवत् मानता है[५]।

१- अथर्व० ३।२३।६, शकुन्तलाराव शास्त्री - वीमैन इन दि वैदिक एज, पृ० २।

२- सखा ह जाया कृपणं ह दुहिताज्योतिर्हि पुत्रः परमे व्योमन्। ऐत० ब्रा० ७।१३।

३- जे. बी. चौधरी - वीमैन इन दि वैदिक रिचुअल, पृ० २।

४- ऋ० १।१८५।५

५- पुत्रिणा तु कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः। उभा हिरण्यपेशसा। ऋ० ८।३१।८।

अथर्ववेद में उत्पन्न कन्या की रक्षा तथा उसे दुखी न करने का विवरण दिया गया है[1]। ऋग्वेद में ऐसा वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है कि आर्य पूषण से कन्या की याचना करते थे[2]। यात्रा से लौटने के बाद पिता मन्त्रों के द्वारा अपनी पुत्री की भलाई की कामना उसी प्रकार करता था जैसा कि वह अपने पुत्र की भलाई के लिये करता था[3]। आपस्तम्ब धर्मसूत्र कुमारी निन्दा का निषेध करता है[4]। बृहदारण्यक उपनिषद में पण्डिता कन्या को प्राप्ति के लिये अपनायी जाने वाली विधि का निर्देश किया गया है । इससे स्पष्ट है कि शिक्षित तथा सभ्य समाज में पुत्रियों का पर्याप्त सम्मान था । कुछ विचारकों के अनुसार बुद्धिमती और शिष्ट व्यवहार करने वाली कन्या पुत्र की अपेक्षा ज्यादा अच्छी है[6]। सुशिक्षित कन्या परिवार के लिये अभिमान की वस्तु समझी जाती थी[7]।

मनु ने भी पुत्री को पुत्र के ही समान माना है[8]। मनु के अनुसार " कन्या परम स्नेह एवं कृपा की पात्री है , यदि वह कुछ बुरा भी कह दे

१- अथर्व० ८।६।२५

२- ऋ० ६।६७।१०-११ , ३।३१।१-२ , पं० मोहनलाल महतो वियोगी - जातककालीन भारतीय संस्कृति , पृ० ७४ ।

३- आप० गृ० सू० १५।१२-१३

४- गोदक्षिणानां कुमार्याश्चपरिवादान्विवर्जयेत् ।। आप०ध०सू० १।११।३१।८ ।

५- अथ य इच्छेत् दुहिता मे पंडिता जायेत् , तिलौदनं पाचयित्वा अश्नीयातामिति । बृह्दा० उप० ६।४।१७ ।

६- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० ४ , सम्युत्तनिकाय ३।२।६ ।

७- कन्येयं कुलजीवितम् । कुमारसम्भव ६।६३ । देखिये धर्म और समाज - डा० राधाकृष्णन, पृ० १८१ । अल्टेकर- पृ० ४ ।

८- यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा । मनु ९।१३० ।

तो उसे सह ले[१]। संस्कृत में कन्या को दुहितृ के नाम से सम्बोधित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि उसका मुख्य काम गाय दुहना था, इसके अतिरिक्त बुनाई, सिलाई, कढ़ाई, घर का काम और फसलों की देखभाल उसका मुख्य काम था[२]। परिवार का आवश्यक कार्य करने से वह माता-पिता की लाडली होती थी[३]। निरुक्त में " कन्या कमनीया भवति " कहकर उसे " कम् " धातु से सिद्ध करके " सबसे चाही जाने वाली कहा है[४]।

महाकाव्य काल में भी कन्या के प्रति कुछ इसी प्रकार के विचार मिलते हैं। रामायण में अनेकों स्थानों पर कन्या के प्रति चिन्ता तो व्यक्त की गयी है, परन्तु इस चिन्ता ने अभिभावकों के हृदय में कन्या के प्रति प्रेम में किसी प्रकार की कमी न होने दी। अभिभावकों के लिये सबसे बड़ी चिन्ता कन्या के विवाह तथा उसके सुखमय भविष्य के सम्बन्ध में होती थी। जैसा कि सीता कहती हैं - " मुझे विवाह के योग्य अवस्था में देखकर पिता चिन्ता में पड़ गये, जैसे कमाये हुए धन के नाश से निर्धन मनुष्य को बड़ा दुख होता है, उसी प्रकार वे मेरे विवाह की चिन्ता से बड़े दुखी हो गये[५]। संसार में कन्या के पिता को, वह भूतल पर इन्द्र के समान ही क्यों न हो, वर पक्ष के लोगों से चाहे वे अपने समान हों अथवा छोटे हों, प्राय:

- -

१- मनु ४।१८५

२- रघुवंश ४।२०

३- डा० भगवान शर्मा - प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ० ५१

४- निरुक्त ४।२

५- पतिसंयोग सुलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता ।
चिन्तार्णवगतः दीनो वित्तनाशादिवाधनः ।।

रामा० अयो० का० ११८।३४

अपमान उठाना पड़ता है[१]। योग्य वर की प्राप्ति ही अभिभावकों की चिन्ता का मुख्य कारण होता था[२]। जिस प्रकार नौकारहित मनुष्य पार नहीं पहुंच पाता, उसी प्रकार जनक भी चिन्ता से पार नहीं पा रहे थे[३]। सम्मान की इच्छा रखने वाले सभी लोगों के लिये कन्या का पिता होना दुख का ही कारण होता है। क्योंकि यह पता नहीं चलता कि कौन और कैसा पुरुष कन्या का वरण करेगा[४]। कन्या माता-पिता तथा पति के कुल को भी संशय में डाले रहती है[५]।

उपर्युक्त कथनों तथा वाल्मीकि द्वारा दी गयी इस उपमा के आधार पर कि - " रावण के यहां राक्षसियों के बीच में बैठी हुई सीता उनके द्वारा धमकाये तथा डराये जाने पर निर्जन एवं बीहड़ वन में अकेले छूटी हुई अल्पवयस्का बालिका के समान विलाप करने लगी[६]। कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि उस समय कन्याओं का त्याग कर दिया जाता था[७]

१- रामा० अयो० का० ११८।३५

२- वही ११८।३७

३- वही ११८।३६

४- कन्या पितृत्वं दुखं हि सर्वेषां मानकांक्षिणाम् ।
न ज्ञायते च कः कन्यां वरयेदिति कन्यके ।। रामा० उ० का० ६।६

५- मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव च दीयते ।
कुलत्रयं सदा कन्या संशये स्थाप्य तिष्ठति ।। रामा० उ०का० ६।१०

६- कान्तारमध्ये विजने विसृष्टा बालेव कन्या विललाप सीता । रामा० सु० का० २८।२ ।

७- वैस्टरमार्क - औरिजन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ मारल आइडियाज, पृ० ३६३-४१३ । जिमर, डेलब्रुक तथा वेबर प्रमाणों के लिये देखिये वैदिक इंडेक्स खण्ड १, पृ० ४८७ । इन विद्वानों के अनुसार वैदिक युग में कन्या वध प्रचलित था । इस सम्बन्ध में हरिदत्त वेदालंकार - हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० २४४-२४५ में इसका खण्डन किया है । एस०एन० व्यास - रामायणकालीन

और इसके लिये वे जनक द्वारा सीता प्राप्ति की परिस्थितियों का उदाहरण देते हैं ।

परन्तु मात्र इस उपमा के आधार पर हम कन्या त्याग की बात को स्वीकार नहीं कर सकते । क्योंकि यदि उस समय ऐसी प्रथा प्रचलित होती तो अन्यत्र भी हमें इसके उदाहरण प्राप्त होते । साथ ही रामायण कालीन समाज में कन्या की वास्तविक वस्तुस्थिति उनका आमोद-प्रमोद , पालन-पोषण तथा उनके प्रति व्यक्त किये गये प्रेम व वत्सलता के भाव इस धारणा को पुष्ट नहीं करते । कन्या के विवाह के सम्बन्ध में चिन्ता, योग्य वर के चुनाव में कठिनाइयां , सुखी भविष्य के प्रति संशय , माता-पिता को चिन्ता में अवश्य डाल देता था , परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे कन्याओं का परित्याग कर देते रहे हों ।

खेत में पड़ी हुई सीता को देखकर जनक ने बिना कुछ सोचे विचारे हुए " मेरी बेटी है " ऐसा कहकर उसे गोद में उठा लिया और उस पर अपना समस्त अपत्य स्नेह उड़ेल दिया[१]। सीता को पाकर जनक इतने प्रसन्न हुए , मानो उन्होंने कोई बहुत बड़ी समृद्धि पा ली हो[२]। जनक ने अपनी बड़ी रानी को जो उन्हें अधिक प्रिय थी , सीता को दे दिया । उन्होंने बड़े ही मातृ समुचित सौहार्द से उनका लालन पालन किया[३]। जनक को सीता प्राणों से भी बढ़कर प्रिय थी[४]। महर्षि विश्वामित्र अपनी बहिन कौशिकी

- -

१- अनपत्येन च स्नेहादंकमारोप्य च स्वयम् ।
   ममेयं तनयेत्युक्त्वा स्नेहो मयि निपातित: ।। रामा० अयो०का० ११८।३०

२- अवाप्तो विपुलामृद्धिं मामवाप्य नराधिप ।। रामा० अयो० का० ११८।३२

३- रामा० अयो० का० ११८।३३

४- सीता प्राणैर्बहुमता ---- । रामा० बाल० का० ६७।२३ ।

के प्रति अत्यन्त स्नेह रखते थे और इसीलिये वे हिमालय के निकट ही निवास करते थे[१]। गुणावती कन्या की प्राप्ति तपस्या से ही सम्भवमानी जाती थी[२]। कन्या को " रत्न " संज्ञा से अभिहित किया गया है तथा " कन्यारत्न " की प्राप्ति को शुभ माना जाता था[३]। इसीलिये उत्सवों तथा अन्य अवसरों पर कुमारी कन्याओं का दर्शन शुभ माना जाता था ।

राम के अभिषेक के समय आठ सुन्दरी कन्यायें उपस्थित थीं[४]। रामाभिषेक के समय ये कन्यायें आगे-आगे चल रही थीं[५]। तथा सोलह कन्याओं के द्वारा राम का अभिषेक किया गया था[६]। मंगल के लिए स्पर्श योग्य वस्तुओं में कन्या का दर्शन तथा स्पर्श शुभ माना जाता था[७]।

बचपन में कन्यायें अपना समय आमोद प्रमोद में व्यतीत करती थीं । जैसा कि कुशनाभ कन्याओं के उदाहरण से स्पष्ट है । वे वस्त्र और आभूषणों से विभूषित हो उद्यान में भ्रमण करतीं , गाती, बजाती और नृत्य करती हुई परम आमोद प्रमोद में मग्न रहती थीं[८]। कन्यायें वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर सर्वत्र विचरण करती रहती थीं । दशरथ की मृत्यु हो जाने पर राजा से रहित राज्य की अवस्था का वर्णन करते हुए मन्त्री कहते हैं कि - " राजा रहित जनपद में सोने के आभूषणों से विभूषित हुई

- -

१- रामा० बाल० का० ३४।१०

२- वही २५।५-६ , देखिये - एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज, पृ०१५१

३- रामा० बाल० का० २५।६

४- रामा० अयो० का० १४।३६

५- वही युद्ध का० १२८।३८

६- ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तथा ।
योधैश्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते सम्प्रहृष्टैः सनैगमैः ।। रामा० युद्ध०का० १२८।६२

७- रामा० अयो० का० ६५।६

कुमारियां एक साथ मिलकर सन्ध्या के समय उद्यानों में क्रीड़ा करने नहीं जाती हैं[१]।

विवाह में कन्यादान करना पुण्य कार्य माना जाता था । जनक ने कन्यादान कर अपने कन्यादान रूप स्वधर्म का पालन किया था[२]। कन्यादान रूप धर्म को महान धर्म का सम्पादन माना जाता था[३]। विवाह के बाद भी माता-पिता पुत्री के विषय में चिन्तित रहते थे । तभी तो राम व्यग्र थे कि जब राजा जनक जनसमुदाय में बैठकर मुझसे सीता का कुशल समाचार पूछेंगे तो उस समय मैं उन्हें क्या उत्तर दूंगा[४]।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कन्या का परिवार में महत्वपूर्ण स्थान था । विवाह में अनेक कठिनाइयों के आने पर भी अभिभावक बहुत सोच-समझकर तथा विवेक के आधार पर योग्य वर के साथ ही कन्या का विवाह करते थे । सीता के लिये योग्य तथा वीर वर प्राप्त हो सके, इसके लिये जनक को अनेक राजाओं से शत्रुता मोल लेनी पड़ी तथा युद्ध करना पड़ा[५]। इसी प्रकार कुशनाभ कन्याओं का विवाह पर्याप्त विचार विमर्श के बाद किया गया था[६]। स्पष्ट है कि माता-पिता बड़े ही मनोयोग से - पुत्री का पालन करते थे तथा उसके व्यक्तित्व के विकास के लिये यथासम्भव प्रयास करते थे ।

- -

१- रामा० अयो० का० ६७।१७

२- वही बालका० ७३।१२

३- परो धर्मः [कन्याप्रदान रूपः] कृतो मया । रामा० बालका० ७३।१५

४- रामा० अरण्य का० ६२।१२-१३

५- वही बाल का० ६६।१८-२४

६- वही ३३।६-१० बालका० ३३।६-१० ।

महाभारत कालीन समाज में भी परिवार में कन्या की स्थिति के सम्बन्ध में प्राय: वैसे ही विचार मिलते हैं , जैसे कि रामायणकालीन समाज में । इस काल में भी कुछ कथन ऐसे प्राप्त होते हैं जो कन्या की निम्न स्थिति का वर्णन करते हैं । जैसे बकवध पर्व में ब्राह्मण परिवार की बारी आने पर ब्राह्मण की पुत्री कहती है - " पिता जी , आप मुझे राक्षस के पास जाने दें , क्योंकि कहते हैं कि पुत्र अपना आत्मा है , पत्नी मित्र है, किन्तु पुत्री निश्चय ही संकट है[1]। अन्यत्र कहा गया है - " पत्नी और पुत्र अपने ही शरीर हैं तथा सेवकगण अपनी छाया के समान हैं, बेटी तो और भी अधिक दयनीय है[2]। हापकिन्स लिखते हैं कि - " इस प्रकार के विचारों को व्यक्त करने का तात्पर्य यह है कि उसके विवाह व पालन पोषण की चिन्ता और जो उत्तरदायित्व [लड़की के द्वारा] पिता पर होता है । जैसा कि अन्यत्र मातलि ने कहा है कि - " जिनका शील स्वभाव श्रेष्ठ है, जो ऊँचे कुल में उत्पन्न हुए यशस्वी तथा कोमल अन्त:करण वाले हैं , ऐसे लोगों के कुल में कन्या का उत्पन्न होना दुख की बात है , कन्या मातृकुल को , पितृकुल को तथा जहां वह ब्याही जाती है , तीनों कुलों को संशय में डाले रहती है[3]। मातलि ने यहां पर जो विचार व्यक्त किया है , वह इसलिये नहीं कि वह कन्या के जन्म से दुखी था , बल्कि योग्य वर का चयन ही उसकी चिन्ता का मुख कारण था । अल्टेकर ने भी लिखा है कि - " बाद के समय में यदि पुत्री के जन्म का स्वागत नहीं होता , तो उसका कारण उसके स्त्रीलिंग

- -

१- आत्मा पुत्र: सखा भार्या कृच्छ्रं तु दुहिता किल । महा० आदि प० १५८।११

२- दुहिता कृपणं परम् ।। महा० शा० प० २४३।२०

३- महा० उद्योग प० ९७।१५-१६ , देखिये हापकिन्स - सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इण्डिया , पृ० २८६ ।

होने की तरफ से कोई घृणा नहीं है , जितना यह चिन्ता कि जीवन में उसका विवाह अच्छे स्थान में हो जाये और वह सुख व ऐश्वर्य का जीवन बिताये[१]। पंचतन्त्र में भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया गया है[२]।

ऊपर वर्णित इन कथनों को छोड़कर अगर हम कन्या की वास्तविक स्थिति पर विचार करें तो हम देखते हैं कि " इस काल में पुत्र व कन्या को समान माना गया , तथा सम्पूर्ण महाभारत में कन्या को दु:खद बोझ समझे जाने का एक भी उदाहरण नहीं प्राप्त होता । कन्या के जन्म पर पिता के चेहरे पर चिन्ता की एक रेखा तक नहीं होती थी[३]। पुत्र के समान ही पुत्रियों का भी पालन-पोषण तथा रक्षण बड़े ही लाड़-प्यार तथा मनोयोग से किया जाता था । कहीं-कहीं तो अभिभावक पुत्रों से अधिक पुत्रियों से प्रेम करते थे । देवयानी अपने पिता शुक्राचार्य की लाड़ली बेटी थी । वह उन्हें प्राणों से भी बढ़कर प्रिय थी[४]। देवयानी का प्रिय करने के लिये उन्होंने अपने प्राणों तक को संकट में डाल दिया था[५]। शर्मिष्ठा द्वारा अपनी प्रिय पुत्री के अपमानित किये जाने पर वे वृषपर्वा के राज्य को त्यागकर जाने के लिये उद्यत हो जाते हैं[६] और देवयानी के प्रसन्न होने पर ही वे वृषपर्वा के , राज्य में रुकते हैं[७]।

- -

१- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० ६

२- पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता कस्मै प्रदेयेतिमहान्वितर्क: ।
   दत्त्वा सुखं प्राप्स्यति वा न वेति कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम् । पंचतन्त्र ५

३- सुखमय भट्टाचार्य - महाभारतकालीन समाज, पृ० ६२ ।

४- महा० आदि प० ७७।७

५- वही आदि ७६।५६, ६१, ६२ ।

६- वही आदि ८०।५

७- वही आदि ८०।१२ , ८०।२६-२७ ।

इसी प्रकार यज्ञ की वेदी से द्रौपदी के प्रकट होने पर समस्त पांचाल प्रसन्नता से उछल पड़े थे , तथा उनके हर्ष की कोई सीमा नहीं थी[१]। द्रुपद ने एक पुत्र के साथ-साथ एक पुत्री की भी कामना की थी जो कि अर्जुन की पटरानी बन सके[२]। द्रौपदी अपने पिता की इतनी लाड़ली थी कि उसने पिता की गोद में बैठकर बृहस्पति नीति का ज्ञान किसी ब्राह्मण से प्राप्त किया था[३]। हापकिन्स लिखते हैं कि - " द्रुपद राजा था और असाधारण प्यार करने वाला राजा था , इस प्रकार का चित्रण बहुत कम ही प्राप्त होता है[४]। कृष्णा की बहन सुभद्रा अपने पिता की लाड़ली बेटी थी[५]।

माता-पिता के हृदय में पुत्रों के साथ ही साथ कन्या प्राप्ति की भी प्रबल आकांक्षा होती थी । गान्धारी कहती हैं कि - " मेरे पुत्र सौ अवश्य उत्पन्न होंगे , लेकिन मुझे अधिक सन्तोष तो तब होता , जब एक पुत्री भी हो जाती[६]। इसका कारण यह था कि पुत्र के साथ ही साथ कन्या से प्राप्त होने वाले दौहित्र से भी पुण्यलोकों की प्राप्ति बतायी गयी है[७]। गान्धारी कहती हैं - " कहते हैं - स्त्रियों का दामाद में पुत्र से अधिक स्नेह होता है , यदि मुझे सौ पुत्रों के अतिरिक्त एक कन्या प्राप्त

१- महा० आदि १६६।५०

२- वही १६६।५६

३- शुश्रूषमाणामासीनां पितुरंके युधिष्ठिर ।। महा० वनप० ३२।६२

४- हापकिन्स - " दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इण्डिया , पृ० २८४

५- महा० आदि प० २१८।१७

६- मनेयं परमा तुष्टिर्दुहिता मे भवेद् यदि ।। महा० आ० प० ११५।१०

७- महा० वन प० ११५।११ ।

हो जाय तो मैं पुत्र और दौहित्र दोनों से घिरी रहकर कृतकृत्य हो जाऊं, और वह अपनी समस्त तपस्या को पुत्री प्राप्ति के लिये दांव पर लगा देती है[१]। स्पष्ट है कि गान्धारी कन्या प्राप्ति के लिये कितनी उत्सुक थी ।

गुणावती कन्या की प्राप्ति तपस्या से ही सम्भव मानी जाती थी । बड़ी भारी तपस्या कर अश्वपति ने पुत्री सावित्री को प्राप्त किया था । और विदर्भ नरेश ने लोपामुद्रा को प्राप्त किया था[२]।

संस्कार -

पुत्रों के समान ही कन्याओं के भी जातकर्मादि संस्कार किये जाते थे[३]। महाराज शान्तनु ने वन में प्राप्त हुए शरद्वान् के पुत्र कृप व पुत्री कृपी दोनों के यथासमय नामकरण इत्यादि सब संस्कार किये थे । तथा बड़े प्रेम पूर्वक उनका पालन-पोषण किया था[४]। द्रौपदी का भी नामकरण संस्कार किया गया था[५]। पुत्री सावित्री के जन्म लेने पर राजा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर जातकर्मादि संस्कार किये थे और उसका नामकरण संस्कार किया था[६]।

१- महा० आदि प० ११५। १२-१४

२- वही वन० प० २९३। ६-१०, १७, वनपर्व ९६। २३-२४ ।

३- सुखमय भट्टाचार्य - महाभारतकालीन समाज, पृ० ५९, आर० सी० मजूमदार - एन्शियेंट इण्डिया, पृ० ८२
जे० बी० एच० चौधरी - वीमेन इन दि वैदिक रिचुअल, पृ० ३

४- महा० आदि प० १२९। १८

५- वही आदि प० १६६। ५२

६- महा० वन० प० २९३, २३-२४ ।

न केवल गृहस्थों वरन् वीतराग मुनियों के हृदय में भी कन्या के प्रति अपार स्नेह होता था । इसी स्नेह से प्रेरित होकर कण्व ऋषि ने वन में पड़ी शकुन्तला को अपने आश्रम में लाकर पुत्री पद पर उसकी प्रतिष्ठा की[१]। और बड़े प्रेमपूर्वक उसका पालन-पोषण किया[२]।

जिस प्रकार पुत्र लौकिक तथा पारलौकिक सुखों की प्राप्ति के लिये अभीष्ट था , उसी प्रकार कन्याओं ने भी अपने माता-पिताओं का लौकिक तथा पारलौकिक संकटों से उद्धार किया था । स्वर्ग से पतित राजा ययाति को उनके दौहित्रों तथा पुत्री ने ही अपना पुण्य देकर पुन: स्वर्ग में स्थापित किया था[३]। ययाति गालव ऋषि से कहते हैं कि " आप मेरी इस पुत्री को ग्रहण करें और मुझे यह वर दें कि मैं दौहित्रवान होऊं[४]। जिस प्रकार पुत्र के लिये यह कहा जाता था कि वह " पुत् " नामक नरक से रक्षा करता है , उसी प्रकार पुत्रियां भी अपने पुत्रों अर्थात दौहित्रों द्वारा अपने पितरों को तार देती थीं[५]। माधवी अपने पिता ययाति से कहती है - आपके ये दौहित्र आपको तार देंगे , दौहित्रों द्वारा मातामह [नाना] का यह उद्धार पुरातन वेदशास्त्रों में स्पष्ट देखा गया है , मेरे द्वारा संचित महान धर्म के आधे भाग को आप ग्रहण करें । सब मनुष्य अपनी सन्तानों के किये हुए सत्कर्मों के फल के भागी होते हैं इसलिये वे दौहित्रों की इच्छा करते हैं , जैसे आपने की[६]।

- -

१- महा० आदि प० ७२।१४

२- मया तु लालिता नित्यं मम पुत्री यशस्विनी । महा० आदिप० ७४।१२,पृ०२२०

३- तारिस्ते पिता पुत्रै: । महा० उद्योग प० ११६।२३

४- महा० उद्योग प० ११५।१४

५- महा० आदि प० १६८।४-६

६- दौहित्रास्तव राजेन्द्र मम पुत्रा न ते परा: ।

इमे त्वां तारयिष्यन्ति दृष्टमेतद् पुरातनै ।

पुत्र के समान पुत्री भी समस्त सुखों को प्रदान करने वाली होती थी । एक ब्राह्मण कहता है - " जिस पर पुण्यलोक , वंशपरम्परा और नित्य सुख सब कुछ सदा निर्भर रहते हैं , उस निष्पाप बालिका का त्याग मैं कैसे कर सकता हूं ।[1] वह पुन: कहता है - " जिस कन्या को ब्रह्मा जी ने उसके भावी पति के लिये धरोहर के रूप में मेरे यहां रख छोड़ा है , जिसके होने से मैं पितरों के साथ दौहित्रजनित पुण्यलोकों को पाने को आशा करता हूं , उसी अपनी बालिका का त्याग मैं कैसे कर सकता हूं[2]।

शिक्षित समाज में पुत्र व पुत्री दोनों का समान रूप से स्वागत होता था[3]। " कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि पिता का अधिक स्नेह पुत्र पर होता है, तथा कुछ दूसरे लोग पुत्री पर ही अधिक स्नेह बताते हैं , किन्तु मेरे तो दोनों समान हैं[4]। हापकिन्स लिखते हैं कि - " महाकाव्य के अपने वचनों से हमें यह जानकर खुशी होती है कि पुत्र और कन्या के बारे में जो एक निश्चित अन्तर है , उसके बावजूद भी कुछ पिता अधिक लड़के को प्यार करते और कुछ कन्या को[5]। परन्तु इस समय एक ऐसी भी विचारधारा विकसित हो रही थी जो कि पुत्री व पुत्र दोनों को समान मानते थे , जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है । भीष्म ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया था " पुत्र

- -

१- यस्यां लोका: प्रसूतिश्च स्थिता नित्यमथो सुखम् ।
अपापां तामहं बालां कथमुत्स्रष्टुमुत्सहे ।। महा०आदि०प० १५६।३८

२- महा० आदि प० १५६। ३५-३६

३- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० ७

४- मन्यन्ते केचिदधिकं स्नेहं पुत्रे पितुर्नरा: ।
कन्यायां केचिदपरे मम तुल्यावुभौ स्मृतौ ।। महा०आदि० प० १५६।३७

५- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इण्डिया , पृ० ३८३ ।

अपने आत्मा के समान है और कन्या भी पुत्र के ही तुल्य है[१]। दत्तक पुत्र की अपेक्षा अपनी औरस पुत्री को अधिक श्रेष्ठ माना गया[२]।

पुत्रियों ने समय-समय पर अपने कष्टों और हितों का विचार न करते हुए अपने माता-पिताओं का महान कष्ट से उद्धार किया था। क्रोधी ऋषि दुर्वासा के आतिथ्य सत्कार का भार कुन्ती ने लेकर अपने पिता को बहुत बड़ी चिन्ता से मुक्त किया था[३]। शर्मिष्ठा ने देवयानी की दासी बनना स्वीकार कर शुक्राचार्य को अपने राज्य को छोड़कर जाने से रोककर असुर राज्य की रक्षा की थी[४]। लोपामुद्रा ने अगस्त्य ऋषि से विवाह कर चिन्ता में पड़े हुए अपने पिता को इस आशंका से मुक्त किया था कि इतने निर्धन ऋषि से उसका विवाह कैसे किया जाय[५]। सुकन्या ने बूढ़े ऋषि च्यवन की सेवा करना स्वीकार कर अपने पिता के राज्य की रक्षा की थी[६]।

पुत्र के समान ही कन्याओं को भी दत्तक के रूप में लिया जाता था। जैसा कि पृथा को कुन्तीभोज ने शूरसेन से दत्तक रूप में ग्रहण किया था[७]।

१- यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ।। महा०अनु०प० ४५।११

२- दुहितान्यत्र जातेन पुत्रेणापि विशिष्यते ।। महा०अनु०प० ४५।१४

३- महा० आदि० प० ६७।१३३-१३४ , ११०।४-५ , वनपर्व ३०३ अध्याय ।

४- वही आदि प० ७८। १६-२०

५- महा० वन० प० ९७। ५-६

६- वही वन प० १२२।२६

७- महा० वन० प० ३०३।२४ , आदि प० ११०।३ , देखिये -
सुखमय भट्टाचार्य - महाभारतकालीन समाज , पृ० ६३ ।

सीता , कुन्ती , शकुन्तला और प्रमद्वरा[1] सभी दत्तक कन्यायें थीं।[2] इन लोगों ने अपने पिताओं से अपार स्नेह प्राप्त किया था। महाभारत में कहा गया है कि - द्वितीया को श्राद्ध करने से कन्या का जन्म होता है। पवित्र कन्याश्रम तीर्थ का उल्लेख किया गया है , जहां जाने से मनुष्य को सौ दिव्य कन्यायें प्राप्त होती हैं और वह स्वर्ग जाता है[4]। ऐसा समझा जाता था कि कन्या में सदैव लक्ष्मी की प्रतिष्ठा होती है[5]। कन्या का दर्शन तथा स्पर्श शुभ माना जाता था। वे महत्त्वपूर्ण अतिथियों के स्वागत के लिये भेजी जाती थीं[6]। वीर योद्धा जब युद्ध के लिये प्रस्थान करते थे , उस समय वे अपने सौभाग्य वृद्धि के लिये कुमारी कन्याओं का स्पर्श करते थे।[7]

- -

१- एन० इण्डिया रामायण का पाठान्तर के अनुसार यद्यपि शान्ता लोमपाद की एक दत्तक पुत्री थी, जब कि अशोक चटर्जी ने अपने एक लेख " शान्ताज पैरेन्टेज " में इस मत को स्थापित नहीं किया है। आई० एच० क्यू० जून १९५७ वा० ३३ , नं० २ , पृ० १४५।

२- रामा० बाल०का० ६७।१३-१६ , महा० आदि० प० ७१-७२ अध्याय आदि प० ८।५-१३ , आदि प० १११।१-३ , देखिये - शकुन्तलाराव शास्त्री - वीमैन इन दि सैक्रेड लाज , अध्याय ६ , पृ० १८३।

३- महा० अनु० प० ८७।१०, १०४।१४१, अनु०प० ८३।५१, आदि प० १५८।७ , पत्नी न केवल पुत्र को आवश्यक समझती थी वरन् उसी प्रकार पुत्री की भी कामना करती थी। आदि प० ६२।२२, देखिये - आर०सी० दत्त -" हिस्ट्री आफ सिविलाईजेशन इन एन्शियेंट इण्डिया, वा० १, अध्याय ६, पृ० १६७। बृहदा० उप० ६।४।१७-१८ बुद्धिमती कन्या की कामना थी।

४- महा० वनप० ८३। १८९-१९०

५- नित्यं निवसति लक्ष्मीः कन्यकासु प्रतिष्ठिता। महा०अनु०प० ११।१४, विष्णु स्मृति ९९।४।

६- महा० विराट प० ६८।२९ , ३७।३३ , उद्योग प० ८६।१६, भीष्म प० ११२।६५

७- महा० भीष्म पर्व ८३।२१ , ७।६ ।

कन्या के जन्म से माता-पिता को जो एक और महान पुण्य की प्राप्ति होती है, जिसे कि वह पुत्र से नहीं प्राप्त कर सकते, वह है कन्यादान का पुण्य। कन्यादान करके अनेकों राजाओं तथा ऋषियों ने महान, उत्तम तथा अक्षय लोकों को प्राप्त किया था[१]। विवाह के समय पुत्री न कि पुत्र पिता को पृथ्वीदान का पुण्य प्राप्त कराती है, इस प्रकार पुत्री पुत्र की तुलना में अधिक उत्तम है[२]। इसलिये कहा गया है - इनके साथ कलह त्याग देना चाहिये, ऐसा करने वाला सब पापों से मुक्त हो जाता है।[३]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महाकाव्यकालीन समाज में पुत्रियों को सम्मान तथा आदर प्राप्त था। परिवार में वह सभी सदस्यों की प्रिय होती थी। यत्र-तत्र चिन्ता के जो उद्गार व्यक्त किये गये हैं, वे कन्या के स्त्रीलिंग को लेकर नहीं वरन् उसके लिये योग्य वर के चयन में कठिनाई तथा भावी सुख तथा सौभाग्य को लेकर व्यक्त किये गये हैं। यह चिन्ता हमें महाकाव्य के उपदेशक भाग में कुछ अधिक दिखायी पड़ती है। महाकाव्य के कथाभाग के लिपिबद्ध होने तक यह समस्या उतनी जटिल नहीं थी, क्योंकि उस समय तक गान्धर्व तथा आसुर विवाह प्राय: होते थे। इसलिये योग्य वर के चयन में कठिनाई कम होती थी। सामान्य रूप से जिस प्रकार लोग पुत्र जन्म की आकांक्षा करते थे, उसी प्रकार पुत्री जन्म पर भी लोग हर्ष का अनुभव करते थे। पुत्र व पुत्री में किसी प्रकार का भेद न करते हुए समान सुख सुविधायें प्रदान करते थे और उसके व्यक्तित्व के सम्यक् विकास के लिये प्रयास करते थे।

१- महा० शान्तिप० २३४।२८, ३४-३५, अनु०प० १३७।११, १६, २४-२५।

२- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० ६

३- दुहिता दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्।

महा० शान्ति० प० २४३।१६ ।

शिक्षा -

व्यक्ति के व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिये शिक्षा एक महत्वपूर्ण उपादान है । कन्याओं के व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिये प्राचीन काल में शिक्षा की समुचित व्यवस्था की गयी थी । अल्टेकर ने लिखा है कि - " ईसा के प्रारम्भिक काल तक उपनयन अर्थात वैदिक विद्यारम्भ का संस्कार लड़के व लड़कियों का एक समान होता था[१]। चौधरी ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है[२]। प्राचीन काल में अनेक विदुषी महिलाओं का उल्लेख उनके उच्च शिक्षित होने को प्रमाणित करता है । लोपामुद्रा , अपाला , विश्ववारा , घोषा , सिकता न्यायावरी इत्यादि नारियां विभिन्न ऋचाओं की रचयिता मानी जाती है[३]। गन्धर्व गृहीता नाम की नारी को ज्ञान की एक शाखा का विशेषज्ञ कहा गया है[४]।

अथर्ववेद में कहा गया है कि - " ब्रह्मचर्य से कन्या पति को प्राप्त करती है[५]। हारीत ने स्त्रियों के दो वर्गों का वर्णन किया है - [१] ब्रह्मवादिनी , [२] सद्योवधू । इनमें ब्रह्मवादिनियों को उपनयन , अग्नि सेवा , वेदाध्ययन तथा घर में ही भिक्षाटन करना पड़ता था , किन्तु सद्योवधुओं

- -

१- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० ८-९
२- के० बी० चौधरी - वीमेन इन वैदिक रिचुअल , पृ० १० ।
३- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास , पृ० २४६ ।
अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० ९
४- पी० एच० प्रभु - हिन्दू सोशल आर्गेनाइजेशन , पृ० १३७ ।
५- ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम् ।। अथर्व० ११।५।१८ ।

का केवल विवाह के समय उपनयन कर दिया जाता था[१]। सद्योवधू स्त्रियां अपना अध्ययन पन्द्रह या सोलह वर्ष की अवस्था तक करती थीं और इस काल का उपयोग वे दैनिक प्रार्थना और धार्मिक कृत्यों के लिये आवश्यक वैदिक मन्त्रों के कण्ठस्थ करने में लगाती थीं , जिनका उपयोग विवाह के बाद भी आवश्यक होता था[२]। गोभिल गृह्य सूत्र के अनुसार " लड़कियों को उपनयन के प्रतीक के रूप में यज्ञोपवीत धारण करना पड़ता था[३]। इस सम्बन्ध में यम के भी उद्धरण प्राप्त होते हैं - अतीतकाल में कन्यायें मेखला धारण करती थीं, वेदों का अध्ययन करतीं और मन्त्रपाठ करतीं थीं , लेकिन उन्हें इनके पिता , चाचा या भाई ही पढ़ा सकते थे , अन्य कोई नहीं[४]।

गोभिल गृह्य सूत्र एवं काठक गृह्यसूत्र में आया है कि दुलहिनें शिक्षित होती थीं , क्योंकि उन्हें मन्त्रों का उच्चारण करना पड़ता था[५]।

- -

१- द्विविधा: स्त्रियों ब्रह्मवादिन्य: सद्योवध्वश्च , तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयन मग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भिक्षाचर्येति , सद्योवधूनां चोपस्थिते विवाहे कथंचिदुपनयन मात्र कृत्वा विवाह: कार्य: । स्मृतिचन्द्रिका , भाग १ , संस्कार काण्ड , पृ० ६२ में उद्धृत एवं संस्कार मयूख पृ० ४०२ ।

२- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० ११ ।

३- गो० गृ० सू० २।१।१९

४- पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धन मिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्री वचनं तथा ।। पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्पर: । संस्कार प्रकाश , पृ० ४०२-४०३ , स्मृतिचन्द्रिका (भाग १ पृ० ६२ में ये श्लोक मनु के कहे गये हैं ।)

५- गो० गृ० सू० २।१।१९-२० , काठक गृ० सू० २५।२३ , गो० गृ० सू० १।३। १४-१५, काठक गृ०सू० १।५।१० । काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास,पृ० २४६ ।

राजा जनक की सभा में उपस्थित गार्गी वाचक्नवी ने उस समय के प्रसिद्ध शास्त्रज्ञ याज्ञवल्क्य से अध्यात्म विद्या से सम्बन्धित विषय पर अत्यन्त विद्वतापूर्ण प्रश्न पूछे , जिससे याज्ञवल्क्य भी उद्वेलित हो गये थे[१]। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी भी परम विदुषी थी , जिसने सांसारिक वैभव को ठुकराकर अमरत्व प्राप्त करने की इच्छा की थी और जिसको याज्ञवल्क्य ने अध्यात्म विद्या के गहन विषय का उपदेश किया था[२]। आश्वलायन श्रौत सूत्र में यह वर्णन आया है कि - " स्त्रियां विशिष्ट मन्त्रों का उच्चारण करती थीं[३]। स्पष्ट है कि पत्नियां अन्तत: कुछ न कुछ मन्त्रों को अवश्य जानती थीं[४]।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में कन्यायें ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षित होती थीं , इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नारी शिक्षिकायें भी होती रही होंगी , क्योंकि पाणिनी ने " आचार्यानी " व " आचार्या " में भेद किया है । आचार्य की स्त्री के लिये " आचार्यानी " और स्वयं अध्यापन करने वाली स्त्री के लिये " आचार्या " शब्द का प्रयोग किया है[५]।

अमरकोश में भी आचार्य की स्त्री को आचार्यानी तथा जो स्वयं मन्त्रों का व्याख्यान दे सकती थी , उसे आचार्या कहा गया है[६]। पतंजलि

- -

१- बृहदा० उप० ३।६।१ , आर० सी० मजूमदार - एन्शियेंट इण्डिया ,पृ० ६३

२- बृहदा० उप० २।४। १-३

३- आश्व० श्रौ० सू० १।२

४- पी० एन० प्रभु - हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन , पृ० १३८

५- पाणिनी - ४।१।४९ , ४।१।४ , शब्दकल्पद्रुम: प्रथम खण्ड [राजाराधा-कान्त देव] ।

६- अमरकोश - स्यादाचार्यापि स्वयं मन्त्रव्याख्यात्री ।

ने अपने महाभाष्य[१] में मीमांसा और व्याकरण शास्त्र जैसे जटिल विषयों का अध्ययन करने वाली स्त्रियों का उल्लेख किया है । पाणिनी व्याकरण का अध्ययन करने वाली स्त्री " पाणिनीया " आपिशला आचार्य के व्याकरण को पढ़ने वाली " आपिशला " (आपिशलमधीते ब्राह्मणी आपिशला , भाष्य ४।१।१४ , वार्तिक ३) एवं " काशकृत्स्नि " आचार्य की मीमांसा का अध्ययन करने वाली " काशकृत्स्ना " कहलाती थी । [भाष्य ४।१।१४ , वा० ५ , ४।१।६३ , वा० ६ , ४।३।१५५ , वा० ५] ।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये कन्यायें विभिन्न आचार्यों के आश्रमों में जाती थीं । उत्तररामचरित में वर्णित है कि आत्रेयी ऋषि वाल्मीकि से अध्ययन कर उनके आश्रम से दण्डकारण्य में रहने वाले उद्गीथ (ब्रह्म या वेदों के जानने वाले) महर्षि अगस्त्य के पास वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करने के लिये जाती है[२]। आत्रेयी वाल्मीकि आश्रम में राम के पुत्र लव और कुश के साथ पढ़ती थीं[३]। भवभूति के मालती माधव में आया है कि - " कामन्दकी लड़कों के साथ पढ़ती थी[४]। स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा में सहशिक्षा का अभाव नहीं था[५]।

- -

१- पतंजलि - महाभाष्य (भाग २ , पृ० २०५ , पाणिनी के ४।१।१४ के वार्तिक ३ पर) देखिये - वासुदेवशरण अग्रवाल - पाणिनिकालीन भारतवर्ष , पृ० १०२ ।

२- उत्तररामचरित २।३

३- वही २।३

४- अवैत्व नौ विद्यापरिग्रहाय नानादिगन्तवासिनां साहचर्यमासीत् , मालती माधव , प्रथम अंक ।

५- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० १४ ।

कालान्तर में शिक्षा का यह स्तर न रहा । क्योंकि मनु ने कहा कि - स्त्रियों के सब संस्कार अमन्त्रक होने चाहिये , केवल विवाह ही मन्त्र पूर्वक किया जाय । उन्होंने विवाह को उपनयन का समस्थानीय मान लिया[1]।

महाकाव्य काल में स्त्रियों की शिक्षा की क्या व्यवस्था थी , महाकाव्य में इस विषय पर विस्तृत प्रकाश नहीं डाला गया है । परन्तु हमें उसमें हारीत द्वारा उल्लिखित दोनों प्रकार की नारियों के दर्शन होते हैं । जहां कुछ कन्याओं के वेदाध्ययन में रत रहने , आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन कर मोक्ष प्राप्त करने के उदाहरण हैं , वहीं दूसरी ओर विवाह के पूर्व तक शिक्षा प्राप्त करने वाली कन्याओं के उदाहरण प्राप्त होते हैं । कन्याओं की शिक्षा के इस विवरण में हमारा तात्पर्य मात्र औपचारिक शिक्षा अर्थात् किसी संस्था विशेष में शिक्षा प्राप्त करने से नहीं वरन् सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करने वाली अनौपचारिक शिक्षा से भी होगा ।

रामायण में हमें जिस प्रकार अत्यन्त विकसित व्यक्तित्व वाली स्त्रियों के दर्शन होते हैं , उससे यह स्पष्ट होता है कि कन्याओं को सम्यक् शिक्षा प्रदान की जाती थी । यह अवश्य सम्भव है कि उन्हें यह शिक्षा किसी संस्था में न प्राप्त होकर माता-पिता , अभिभावकों तथा समय-समय पर आने वाले ऋषि मुनियों तथा अतिथियों द्वारा प्राप्त होती रही हो । कन्याओं को बाल्यावस्था में ही कुछ धार्मिक तथा वैदिक मन्त्रों की शिक्षा दे दी जाती थी , क्योंकि विवाह के बाद उन्हें पति के साथ धार्मिक क्रिया-कलापों में भाग लेना पड़ता था । पुत्रेष्टि यज्ञ में पत्नियों सहित राजा दशरथ ने यज्ञ की दीक्षा ली थी[2]। राम के राज्याभिषेक के समय सीता को भी इन्द्रिय संयम पूर्वक व्रत की दीक्षा लेनी पड़ी थी[3]।

- -

१- मनु २। ६६-६७

२- रामा० बाल का० १३।४१

३- वही अयो० का० ५।२४ ।

इसके अतिरिक्त स्त्रियां पृथक से भी यज्ञ करती थो । राम के अभिषेक का समाचार सुनकर कौशल्या प्राणायाम के द्वारा परमपुरुष नारायण का ध्यान कर रही थीं[1]। कौशल्या मन्त्रोच्चारण पूर्वक अग्नि में आहुति देती थीं[2]। कैकेयी को मन्त्रज्ञा कहा गया है[3]। सीता को संध्याकालिक उपासना में रत बताया गया है[4]। हनुमान के द्वारा सीता से वार्तालाप करने के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क यह सूचित करता है कि वे द्विजों द्वारा प्रयोग की जाने वाली संस्कृत भाषा तथा अन्यान्य सामान्य भाषाओं से परिचित थीं तथा उन्हें उनका सम्यक् ज्ञान था[5]। हनुमान द्वारा राम के नाम से अंकित अंगूठी देने पर सीता उसे ध्यान से देखती हैं, इससे स्पष्ट होता है कि पढ़ लिख सकती थीं[6]। स्पष्ट है कि कन्याओं को वैदिक शिक्षा प्राप्त होती थी । सीता के द्वारा विभिन्न स्थलों पर व्यक्त किये गये विचार यह स्पष्ट करते हैं कि पितृ गृह में उनको सम्यक् शिक्षा प्राप्त हुई थी ।

युद्ध की समाप्ति पर राक्षसियों को मारने के लिये उद्यत हनुमान को रोकने के सन्दर्भ में उन्होंने अनेक श्लोकों को उद्धृत किया था[7]। इसके

- -

१- रामा० अयो० का० ४।३३

२- अग्निं जुहोतिस्म तदा मन्त्रवत् कृतमंगला ।। रामा० अयो० का० २०।१५

३- रामा० अयो० का० १४।६१

४- सन्ध्याकालमना: श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी ।। रामा० सु० का० १४।४९

५- रामा० सु० का० ३०।१८-१९

६- वही ३६। २ , ४

७- रामा० यु० का० ११३।४३ ।

अतिरिक्त सीता ने वनवास काल में राम को किस प्रकार की वृत्ति अपनानी चाहिये , इस सम्बन्ध में जो तपस्वी के कथानक का उल्लेख किया है , तथा क्षात्र धर्म व धर्माचरण के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं , वे उनके सम्यक् शिक्षित होने की धारणा को पुष्ट करते हैं[१]। वन जाने के लिये उद्यत राम के द्वारा सीता को यह उपदेश दिये जाने पर कि उनको परिवार के सदस्यों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये , सीता बड़े दृढ़ता से कहती हैं कि - " मुझे किसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये , इस विषय में मेरी माता और पिता ने मुझे अनेक प्रकार से शिक्षा दी है , इसलिये इस विषय में मुझे उपदेश देने की कोई आवश्यकता नहीं है[२]। राम के साथ वन में जाने के लिये उन्होंने जो तर्क दिये हैं , वे उनकी शैक्षिक प्रबुद्धता को स्पष्ट करते हैं[३]। वे श्रुति के वचनों को उद्धृत करती हैं जिसको कि उन्होंने ब्राह्मणों के मुख से सुना था[४]। सीता को सामयिक कर्तव्यों तथा राजधर्म का ज्ञाता बताया गया है[५]। सीता ने अपने विलाप के सन्दर्भ में स्त्रियों के गर्भाशय की शल्य क्रिया के सम्बन्ध में संकेत किया है[६]।

विवाह के बाद भी सीता को निरन्तर शिक्षा प्राप्त होती रही - यथा पति , सास तथा अन्यान्य लोगों से[७]। वन जाते समय कौशल्या द्वारा पातिव्रत का उपदेश दिये जाने पर सीता कहती हैं कि " मैंने श्रेष्ठ स्त्रियों

- -

१- वही, रामा० अरण्यका० ६। १-३३

२- वही - अयो० का० २७। १०

३- वही - अयो० का० २७। ७

४- वही अयो० का० २६। १७

५- अभिज्ञा राजधर्माणां ----- । रामा० अयो० का० २६। १४

६- रामा० यु० का० ३२। ६

७- रामा० अयो० का० २६। २७-२८ , ३६। १६-२६ ।

माता आदि के मुख से नारी के सामान्य और विशेष धर्मों का श्रवण किया है। मैं जानती हूं कि पति ही स्त्री का देवता है[१]।

सीता चौदह वर्षों के वनवासकाल में राम के साथ विभिन्न आश्रमों में गयीं थीं, जहां उनका साक्षात्कार ऋषियों मुनियों तथा उनकी पत्नियों से हुआ था। उनसे भी उनका जीवन प्रभावित हुआ था। बारह वर्षों के आश्रमवास के पश्चात् चौंतीस वर्षों की आयु तक सीता पंडिता बन चुकी थी[२]। अनसूया ने भी पातिव्रत धर्म के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण शिक्षा दी थी[३]। सीता को स्वयं भी इस सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान था, क्योंकि वे स्थान-स्थान पर सावित्री, रोहिणी तथा अन्य साध्वी स्त्रियों का उल्लेख करती हैं[४]। स्पष्ट है कि सीता को समय-समय पर माता, पिता तथा अन्य स्वजनों से शिक्षा प्राप्त हुई थी और सीता ने उसको सम्यक् रूप से ग्रहण भी किया था[५]।

अशोक वाटिका में हनुमान के द्वारा सीता को पहचानने पर अकस्मात विद्या सम्बन्धी अनेक उपमाओं का निसृत होना[६] यह स्पष्ट करता है कि हनुमान को सीता एक सुशिक्षित तथा पंडित महिला प्रतीत हुई होगी[७]। इसी प्रकार रावण को फटकारते हुए वे कहती हैं " जिस प्रकार विद्या आत्मज्ञानी स्नातक ब्राह्मण की ही सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार मैं उन रघुनाथ की

- -

१- रामा० अयो० का० ३९।३१

२- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन संस्कृति, पृ० १५८-१५९

३- रामा० अयो० का० ११७।२९

४- वही अयो० का० ११८। १०-१२

५- वही अयो० का० ११८।८ - ९

६- रामा० सु० का० १५।३३, ३८, ३९

७- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन संस्कृति, पृ० १५८-१५९ ।

की भार्या होने के योग्य हूं[१]। सीता उच्च शिक्षा की बारीकियों से सुपरिचित रहीं होंगी, तभी तो हनुमान द्वारा किये गये अपने पति की शिक्षा और उनके अंगों के शास्त्रीय वर्णन को ठीक तरह से आंक सकीं[२]। सीता राम से वन चलने के लिये आग्रह करते हुए कहती हैं कि - " एक भिक्षुणी ने उनके कौमार्यकाल में उनके बनवास की बात कही थी[३]। परन्तु डा० सरकार के अनुसार यहाँ वनवास का अर्थ बीहड़ जंगलों के कष्ट न लगाना चाहिये, क्योंकि राम सीता के बनवास का अधिकांश समय भिन्न-भिन्न आश्रमों में बीता था[४]।

स्त्रियां मन्त्रोच्चारण भी करती थीं। राम के वन जाते समय कौशल्या ने स्वस्तिवाचन करते हुए उत्कर्ष लाने वाली विशल्यकरणी नामक औषधि को मन्त्र पढ़कर राम के हाथ में बांधा था[५]। इस प्रकार उन्होंने विधिपूर्वक स्वस्तिवाचन किया[६]।

मन्थरा ने जिन वचनों द्वारा कैकेयी को उकसाया है, वे उसके राजनीतिक ज्ञान को स्पष्ट करते हैं[७]। कैकेयी उसकी बुद्धि की दाद देते हुए कहती हैं कि - " कुब्जे, तू एक श्रेष्ठ स्त्री है, मैं तेरी बुद्धि की अवहेलना नहीं कर सकती, बुद्धि के द्वारा किसी कार्य को निश्चय करने में तू इस पृथ्वी

- -

१- रामा० यु० का० २१।१७

२- रामा० यु० का० ५।३५, एस० एन० व्यास - रामायणकालीन संस्कृति, पृ० १५६।

३- रामा० अयो० का० २६।१३

४- एस० एन० व्यास - रामायण कालीन संस्कृति, पृ० १५५

५- रामा० अयो० का० २५। ३८-३६

६- समाप्य च स्वस्त्ययनं यथाविधि ।। रामा० अयो०का० २५।४६

७- रामा० अयो० का० ७।२३, २५-२६।८।५-७, २२-२५, २७-३०।

में सभी कुब्जाओं में उत्तम है , तेरे बिना राजा का यह षड्यन्त्र मेरी समझ में नहीं आता[१]। उसके द्वारा प्राप्त विस्तृत ज्ञान की चर्चा करते हुए कहती है - " असुरराज शम्बर को जिन सहस्त्रों मायाओं का ज्ञान है , वे सब तेरे हृदय में स्थित है , इसके अलावा भी तू हजारों मायायें जानती है। इसी में तेरी मति , स्मृति और बुद्धि , क्षात्र विद्या तथा नाना प्रकार की मायायें निवास करती हैं[२]। स्पष्ट है कि उसे इन सब विद्याओं का सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ था ।

बालि की पत्नी तारा भी विदुषी महिला थी । राजधर्म की वह सम्यक् ज्ञाता थी । सुग्रीव के द्वारा पुनः ललकारने पर किसी षड्यन्त्र की आशंका से उसकी बुद्धि व्याकुल हो उठती है और वह बालि से समय के अनुकूल राम से मित्रता स्थापित करने के लिये कहती है[३]। उसको मन्त्रों का ज्ञाता भी बताया गया है । उसने बालि की मंगलकामना के लिये स्वस्तिवाचन किया था[४]। हनुमान के द्वारा तारा को यह परामर्श देने पर कि वह अंगद का राज्याभिषेक कराये , वह दो टूक उत्तर देते हुए कहती है - " अंगद के विषय में आपकी यह सलाह मानने योग्य नहीं है । आपको यह समझना चाहिये कि पुत्र के वास्तविक बन्धु [सहायक] पिता और चाचा ही हैं , माता नहीं[५]। बालि तारा को सर्वज्ञ कहता है[६]। वह सूक्ष्म विषयों के निर्णय करने तथा नाना प्रकार के उत्पात के चिन्हों को समझने में सर्वथा निपुण

- -

१- वही रामा० ६।३८-४०

२- वही रामा० ६।४५-४६

३- रामा० कि० का० १५। ११-१४

४- ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद् विजयैषिणी ।। रामा० कि०का० १६।१२

५- रामा० कि० का० २१।१५

६- वही कि० का० १७।४१ ।

थी । बालि कहता है - " तारा की सम्मति का परिणाम कभी उल्टा नहीं होता [१] । स्पष्ट है कि तारा बुद्धिमती स्त्री थी , और उसकी सम्मति का सभी आदर करते थे । इससे स्पष्ट होता है कि उसको अच्छी शिक्षा प्राप्त हुई होगी ।

इस प्रकार रामायण में जहां ऊपर वर्णित सद्योवधुओं के उदाहरण प्राप्त होते हैं , वहीं दूसरी ओर ब्रह्मवादिनी महिलाओं के भी दर्शन होते हैं । मेरुसावर्णि की कन्या स्वयंप्रभा और वेदवती ऐसी ही ब्रह्मवादिनी महिला थी [२] । सीतान्वेषण करते हुए वानरों को धर्मपरायण तपस्विनी [३] , सभी प्राणियों के हित में तत्पर [४] , एकाग्रहृदया [५] , वल्कल और मृगचर्म धारण किये हुए , नियमित आहार करती हुई , तपस्या में संलग्न , अपने तेज से दीप्त तपस्विनी स्वयंप्रभा के दर्शन हुए थे [६] ।

स्वयंप्रभा सर्वज्ञ थी [७] । वानरों के द्वारा यह कहने पर कि हम लोग आपका क्या उपकार करें । वह उत्तर देते हुए कहती है कि - " धर्मानुष्ठान में लगी रहने के कारण मुझे किसी से कोई प्रयोजन नहीं रह गया है [८] । वह

- -

१- रामा० कि० का० २२।१३-१४
२- वही कि० का० ५१।१६ , एस० एन० व्यास - रामायण कालीन संस्कृति , पृ० १४२ ।
३- रामा० कि० का० ५१।१
४- वही कि० का० ५१। ६-१०
५- वही कि० का० ५२।१
६- वही कि० का० ५०। ३६-४०
७- रामा० कि० का० ५२।१८
८- वही कि० का० ५२। १६-२० ।

अपने नियमों के पालन और तपोजनित उत्तम प्रभाव से सभी वानरों को गुफा से बाहर करने का असम्भव कार्य भी कर दिखाती है[१]। स्पष्ट है कि वह तपस्या के क्षेत्र में बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। स्वयंप्रभा ने वानरों का आतिथ्य सत्कार किया था[२]। पुरुषों के समान स्त्रियों के भी आश्रमवासी बनकर शिक्षा ग्रहण करने के सम्बन्ध में व्यास का मत है कि - " रामायण के अनुसार उस समय देश में ऐसे कई आश्रम स्थापित थे, जहां सुशिक्षित तपस्विनियां धर्म चर्चा और कर्मकाण्ड में निरत रहती थीं[३]।

एक दूसरी तपस्विनी महिला वेदवती का नाम उल्लेखनीय है। यह अपने नाम के अनुरूप साक्षात् वाङ्मयी स्वरूपा ही थी। ये ब्रह्मर्षि कुशध्वज की पुत्री थी[४]। वेदवती ने आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ऋषियों द्वारा अपनाये जाने वाले तपस्या के मार्ग को अपनाया था। उसका तेज अप्रतिहत था[५]।

निरन्तर तपस्या में रत रहने के कारण उसने तपस्याजनित महान पुण्य का अर्जन किया था, जिससे वह सर्वज्ञ हो चुकी थी। वह रावण से कहती है - " पौलस्त्यनन्दन मैंने आपको पहचान लिया है, आप जाइये, त्रिलोकी में जो कोई भी वस्तु विद्यमान है, वह सब मैं तपस्या द्वारा जानती हूं[६]। राजकुमारी वेदवती को अपनी पारिवारिक परम्पराओं के अनुसार एक आश्रम में वेदों और कर्मकाण्ड की उच्च शिक्षा मिली थी[७]।

१- वही कि० का० ५२।२५-२७

२- वही कि० का० ५२।१६

३- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन संस्कृति, पृ० १४३

४- रामा० उ० का० १७। ८-१०

५- वही उ० का० १७।२

६- रामा० उ० का० १७।२६

७- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन संस्कृति, पृ० १४३ ।

अत्रि पत्नी अनसूया ने भी तपस्या के क्षेत्र में महान सफलता प्राप्त की थी । अत्रि मुनि राम से महाभागा , धर्मपरायणा, तपस्विनी अनसूया का परिचय देते हुए कहते हैं कि - " एक समय दस वर्षों तक वृष्टि नहीं हुई , उस समय जब सारा जगत दग्ध होने लगा , तब जिन्होंने उग्र तपस्या से युक्त तथा कठोर नियमों से अलंकृत होकर अपने तप के प्रभाव से यहां फलमूल उत्पन्न किये , और मन्दाकिनी को पवित्र धारा बहायी , तथा जिन्होंने दस हजार वर्षों तक तपस्या करके अपने उत्तम व्रतों के प्रभाव से ऋषियों के समस्त विघ्नों का निवारण किया था , वे ही ये अनसूया देवी हैं । इन्होंने देवताओं के कार्य के लिये अत्यन्त उतावली होकर दस रात के बराबर एक ही रात बनायी थी[1]। तपस्विनी अनसूया का संसार के सभी प्राणी सम्मान करते थे , क्रोध तो उनमें लेशमात्र नहीं था[2]।

वह अपने सत्कर्मों के कारण ही संसार में अनसूया के नाम से विख्यात थीं[3]। स्पष्ट है कि ऋषियों के मध्य अनसूया को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । वे उच्च प्रशिक्षित थी ।

अहल्या गौतम ऋषि के पास धरोहर के रूप में बहुत दिनों तक आश्रम में रहीं , बाद में उन्होंने अहिल्या को ब्रह्मा को लौटा दिया । इस काल में अवश्य अहिल्या को शिक्षा प्रदान की गयी होगी[4]। बाद में ब्रह्मा गौतम के उस महान इन्द्रिय संयम और तपस्या विषयक सिद्धि को जानकर

१- रामा० अयो० का० ११७। ९-१२

२- वही अयो० का० ११७।१३

३- रामा० अयो० का० ११७।१४

४- वही उ० का० ३०।२६ ।

अहल्या को उन्हें ही पत्नी रूप में प्रदान कर देते हैं[१]। बहुत सम्भव है कि गौतम के आश्रम में कन्याओं को प्रशिक्षित करने की व्यवस्था रही हो। वहां दूर-दूर से माता-पिता अपनी पुत्रियों को वर्षों तक आश्रमवासिनी बनाकर रखते थे, और ऐसी कन्याओं का कभी-कभी उनके गुरुओं से विवाह कर दिया जाता था[२]।

रामायण में हमें एक अन्य सिद्ध तपस्विनी शबरी के दर्शन होते हैं। शबरी भिक्षुणी थी[३]। कबन्ध शबरी का परिचय देते हुए राम से कहता है कि - " मतंग मुनि के आश्रम में रहने वाले अन्य मुनि तो चले गये, परन्तु उनकी सेवा में रहने वाली तपस्विनी, धर्मानुष्ठान में रत शबरी आपके दर्शन की इच्छा से रुकी हुई है[४]। शबरी जाति बहिष्कृत [वर्ण से - बाह्य होने] पर भी विज्ञान से बहिष्कृत नहीं थी। उसे परमात्मा के तत्त्व का नित्य ज्ञान प्राप्त था[५]। मुकर्जी का कहना है कि - " शबरी शबर जाति की नहीं थी, यह केवल नाम था[६]। वह आश्रम में रहकर मुनिजनोचित वृत्ति का पालन करते हुए तपस्या में रत रहती थी। राम ने उस धर्मपरायणा तपस्विनी से पूछा था कि - " क्या तुमने सारे विघ्नों पर विजय पा ली। क्या तुम्हारी तपस्या बढ़ रही है, क्या तुमने क्रोध और आहार को काबू में कर लिया है, तुमने जिन नियमों को स्वीकार किया है, वे निभ तो जाते हैं न। तुम्हारे मन में सुख और शान्ति है न। तुमने जो गुरुजनों की

- -

१- रामा० उ० का० ३०।२७

२- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन संस्कृति, पृ० १४४

३- आर० के० मुकर्जी - एन्शियेंट इण्डियन एजुकेशन, पृ० ४३

४- रामा० अरण्य का० ७३।२६-२७

५- रामा० अरण्य का० ७४। १८-१६

६- आर० के० मुकर्जी - एन्शियेंट इण्डियन एजुकेशन, पृ० ४३ ।

सेवा की है , वह पूर्ण रूप से सफल हो गयी है[1]। सिद्धा , तपस्विनी बूढ़ी शबरी सभी सिद्धों के द्वारा सम्मानित थी[2]। अपने गुरु मतंग के दिव्य लोक चले जाने पर उस आश्रम का भार शबरी पर आ पड़ा था , वह जैसे तैसे आश्रम का संचालन कर रही थी तथा अपने गुरु के कहे अनुसार राम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी[3]। उसने राम को आश्रम की दयनीय अवस्था से अवगत कराया था तथा सम्पूर्ण आश्रम के पूर्व स्मृति को संजो कर रखने वाली वस्तुओं के दर्शन कराये थे[4]। अन्त में आप्तकाम हुई शबरी ने अपने गुरु के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए मस्तक पर जटा एवं शरीर पर चीर एवं कालामृग चर्म धारण करके अपने को आग में होमकर प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी शरीर प्राप्त किया[5]।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रत्येक वर्ण की स्त्रियों के लिये ज्ञान के मार्ग खुले थे , उन पर किसी प्रकार के प्रतिबन्ध नहीं थे तथा वे इच्छानुसार जीवन यापन कर सकती थीं । स्त्रियों के ऊपर आश्रम संचालन का महत्वपूर्ण भार रहता था ।

रामायणकालीन स्त्री शिक्षा के बारे में डा० एस० सी० सरकार ने कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं - " रामायण काल में दक्षिण पूर्वी भारत की महिलायें आश्रमों में रहकर पुरुषों की ही तरह सर्वोच्च ज्ञान में दीक्षित हो सकती थीं । उनकी शिक्षा और प्रभाव की ख्याति दूर-दूर

१- रामा० अरण्य का० ७४।८-९

२- वही अरण्यका० ७४।१०

३- वही अरण्यका० ७४।१५-१६

४- वही अरण्यका० ७४। २१-२८

५- रामा० अरण्यका० ७४। ३३-३४ ।

तक फैली हुयी थी , आर्थिक या अन्य संकट के समय उन्हें वर्षों तक किसी आश्रम की सारी व्यवस्था भी सौंपी जा सकती थी । अन्य प्रदेशों से आने वाले राजकुमारों की सहानुभूति प्राप्त कर वे अपने आश्रम के पुनरुत्थान के लिये प्रयत्नशील रहती थी । प्रचलित धारणा के विपरीत शबरी का राम का दर्शन मात्र करना उतना बड़ा ध्येय नहीं था , जितना कि उन्हें आश्रम की दयनीय उपेक्षित दशा दिखाकर उनका सहयोग प्राप्त करना , जिससे उसके आश्रम को पुन: पहले जैसा महत्व प्राप्त हो सके[१]।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि रामायणकालीन समाज में स्त्रियों में शिक्षा की कमी नहीं थी । प्राय: सभी स्त्रियों को सामान्य शिक्षा प्राप्त होती थी , जिससे कि वे अपने जीवन के कर्तव्यों का निर्वाह सरलता से कर सकें । कुछ स्त्रियों को विशेष शिक्षा भी प्राप्त होती थी, ये ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में निष्णात होती थीं ।

महाभारतकालीन समाज में हमें सामान्य रूप से क्षत्रिय तथा ब्राह्मण कन्याओं के ही शिक्षित होने के उदाहरण प्राप्त होते हैं । पी० एन० प्रभु लिखते हैं कि - " महाभारत में हम यह पाते हैं कि पुरुषों के समान ही स्त्रियां भी शिक्षा पाती थीं[२]। सामान्यत: इस काल में लड़कियां घर में ही नियुक्त अध्यापक या अपने अभिभावकों द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करती थीं , आश्रमों में जाकर शिक्षा प्राप्त करने के उदाहरण हमें नहीं प्राप्त होते ।

- -

१- एस० सी० सरकार - " एज्यूकेशनल आइडियाज एण्ड इन्स्टीट्यूशन इन एंश्यंट इंडिया , पृ० ८७ ।
एस० एन० व्यास - रामायणकालीन संस्कृति , पृ० १९५

२- पी० एन० प्रभु - हिन्दू सोशल आर्गेनाइजेशन , पृ० १३६ ।

इस काल में भी हमें कुछ नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी स्त्रियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं । इस सम्बन्ध में सन्यासिनी सुलभा का नाम उल्लेखनीय है । सुलभा ने मोक्ष धर्म की शिक्षा ली थी और मुनिव्रत धारण करके वह सर्वत्र विचरण करती रहती थीं[१]। सम्पूर्ण जगत में विचरण करते हुए ही उसने सन्यासियों के मुख से मोक्षधर्म के सम्बन्ध में राजा जनक की प्रशंसा सुनकर उनके दरबार में जा पहुंची थीं[२]। मोक्ष तथा योग धर्म के सम्बन्ध में उसका तथा जनक का संवाद यह सिद्ध करता है कि वह योग धर्म की अच्छी ज्ञाता थी[३]। योग तथा मोक्षधर्म को सम्यक् ज्ञाता जानकर ही राजा जनक ने सुलभा का अत्यधिक सम्मान तथा आदर किया था[४]।

शिवा नामक वेदपरायण एक ब्राह्मण दुहिता ने समग्र वेदों का अध्ययन करके बाद को तपस्या द्वारा सिद्धि प्राप्त किया था । ये भी ब्रह्मचारिणी थीं[५]। कुरुक्षेत्र के सिद्धाश्रम में ब्रह्मचारिणी शाण्डिल्य दुहिता ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त किया था[६]।

इसी प्रकार अन्यान्य स्त्रियों को भी बाल्यकाल में अपने पिता,

- -

१- महा० शा० प० ३२०।१८६

२- वही शा० प० ३२०।८, १२

३- वही शा० प० ३२० अध्याय

४- वही शा० प० ३२० । ५३, १६२

५- अत्र सिद्धा शिवा नाम ब्राह्मणी वेदपारगा ।
अधीत्य चाखिलान् वेदान् लेभे स्वं देहमक्षयम् ।।
महा० उद्योग प० १०६।१६
देखिये - सुखमय भट्टाचार्य - महाभारतकालीन समाज, पृ० २२
पी० एन० प्रभु - हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन, पृ० १३६ ।

६- अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा कौमार ब्रह्मचारिणी ।
योगयुक्ता दिवं याता तपः सिद्धा तपस्विनी ।। महा० शल्य प० ५४।६८ ।

अभिभावकों , गृहागत ऋषियों , अतिथियों तथा मनीषियों से शिक्षा प्राप्त हुई थी । द्रौपदी ने बृहस्पति नीति की शिक्षा अपने घर पर आये हुए एक ब्राह्मण के मुख से अपने भाइयों के साथ ही प्राप्त की थी[१]। बाद के समय में भी उसके लिये ज्ञान प्राप्ति के द्वार खुले थे । द्रौपदी पर उसके पति युधिष्ठिर का बड़ा प्रभाव पड़ा था । हापकिन्स ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त करते हुए लिखा है - " द्रौपदी अत्यन्त शिक्षित और आज्ञाकारिणी स्त्री थी , और अपने साधु पति युधिष्ठिर से बुद्धिमत्ता पूर्वक शास्त्रों पर विचार करती है , बहुत सी बुद्धि द्रौपदी ने युधिष्ठिर से बाद के जीवन में प्राप्त किया[२]। द्रौपदी को विदुषी तथा पण्डिता कहा गया है[३]। वह युधिष्ठिर को क्षात्रियधर्म के अनुसार आचरण करने के लिये प्रेरित करती है[४]। प्रह्लाद और बलि के पुरातन इतिहास का वर्णन कर तेज व क्षमा के विभिन्न अवसरों का उल्लेख कर युधिष्ठिर को समयानुकूल आचरण करने के लिये प्रेरणा देती है[५]। युधिष्ठिर के साथ संवाद में वह पुरुषार्थ पर विशेष बल देते हुए राजनीति के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती है । इससे स्पष्ट होता है कि वह राजनीतिशास्त्र की प्रकाण्ड पंडिता थी , जिसकी सम्यक् शिक्षा उसे प्राप्त हुई थी[६]। युधिष्ठिर द्वारा जुयें में द्रौपदी को दांव पर लगाये जाने पर उसने जिस निर्भीकता से सभासदों से प्रश्न किया तथा अपने हारे जाने के सम्बन्ध में तर्क रखा , वह उसकी सम्यक् शिक्षा का ही द्योतक है[७]।

१- महा० वन० प० ३२। ६०-६२

२- हापकिन्स - " सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इण्डिया , पृ० २८३ ।

३- महा० वनपर्व २७। २

४- वही वन० प० २७। ३७-४०

५- महा० वनपर्व २८ अध्याय

६- वही वनप० ३२। ५३-५८

७- वही सभापर्व ६७। ४१ , ६८। ७-१३ ।

दु:शासन द्वारा वस्त्र खींचे जाने पर वह भगवान श्रीहरि का स्मरण करती है , जिसकी शिक्षा उसे पूर्वकाल में महात्मा वशिष्ठ से मिली थी[१]। द्रौपदी पंडिता तथा ब्रह्मवादिनी थी[२]।

राजनीति के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाली , राजनीतिशास्त्र की प्रकाण्ड पंडिता , राजनीति में अपनी बहुज्ञता के लिये प्रसिद्ध विदुला का नाम उल्लेखनीय है[३]। सिन्धुराज से हारकर वापस आये हुए अपने पुत्र को पुन: युद्ध में प्रवृत्त करने के लिये उसने जो उपदेश दिये थे , वे राजनीतिशास्त्र की अमूल्य निधि है[४]। कुन्ती ने विदुला के वचनों को ही उद्धृत करते हुए अपने पुत्रों को क्षत्रिय धर्म के अनुसार आचरण करने के लिये प्रेरित किया था[५]। इससे स्पष्ट होता है कि इन्हें राजनीतिशास्त्र की अच्छी शिक्षा प्राप्त हुई थी ।

कुन्ती को गृहागत ऋषि दुर्वासा के द्वारा वैदिक मन्त्र प्रयोग विधि सहित प्राप्त हुआ था । दुर्वासा ने कुन्ती को मन्त्र प्रदान करते हुए कहा था कि - " तुम इस मन्त्र द्वारा जिस-जिस देवता का आवाहन करोगी , उसी-उसी के अनुग्रह से तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा[६]। उस मन्त्र के प्रयोग से ही

- -

१- महा० सभाप० ६८।४१

२- महा० विराट प० १।३ , अनु०प० ३।८३ । अल्टेकर - पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० १३ और एजूकेशन इन एन्शियेंट इण्डिया , पृ० २२५ , हारीत के आधार पर कहा है कि ब्रह्मवादिनियां अविवाहित रहती थीं, परन्तु डा० मुकर्जी ने " एन्शियेंट इण्डियन एजूकेशन " पृ० ५१ में यह मत व्यक्त किया है कि वे शिक्षा के बाद विवाह कर लेती थी, द्रौपदी इस अर्थ में भी ब्रह्मवादिनी है ।

३- महा० उद्योग प० १३३। २-३

४- महा० उद्योग प० १३४-१३५ अध्याय

५- वही १३३।१ , १३० वां अध्याय

कुन्ती ने युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन को प्राप्त किया था[१]। बाद में कुन्ती ने उसी मन्त्र को माद्री को भी सिखाया था, जिससे उसके नकुल और सहदेव दो पुत्र उत्पन्न हुए थे[२]।

आश्रमवासी कन्याओं को स्वयं अपने पिता तथा अन्य अभ्यागत ऋषियों से ज्ञान प्राप्त होता था। शकुन्तला को अपने जन्म का वृत्तान्त आश्रम में आये हुए एक ऋषि तथा पिता कण्व के बीच हुए वार्तालाप के द्वारा ही ज्ञात हुआ था[३]।

शकुन्तला ने दुष्यन्त के आश्रम पधारने पर बड़े ही शालीन ढंग से पाद्य, अर्घ्य देकर उनका स्वागत किया था और कुशल क्षेम पूछा था[४]। महर्षि कण्व ने शकुन्तला को पातिव्रत्य विषयक धर्म का उपदेश दिया था[५]। दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला को न स्वीकार किये जाने पर उसने राजदरबार में जिस ओजस्वी वाणी में तार्किक ढंग से दुष्यन्त के वचनों का प्रतिवाद किया है, वह उसके उच्च शिक्षित होने को प्रमाणित करते हैं[६]। इस सन्दर्भ में वह अनेक वैदिक मन्त्रों को उद्धृत करती है[७]। स्पष्ट है कि उसे वेदों का ज्ञान था।

- -

१- वही आदि प० १२२।५, १४, ३५

२- वही आदि प० १२३। १५-१६

३- वही आदि प० ७१।१६, ७२। १८-१६

४- महा० आदि प० ७१। ४-६

५- वही आदि प० ७३।३१, पृ० २१७, ७४।६

६- वही आदि प० ७४।२८-७२, ८२-१०६

७- वही आदि प० ७४। ६२-६३, ७४।५१ ।

द्रोण पत्नी कृपी भी शिक्षित महिला थी । वह परम बुद्धिमती, महान व्रत का पालन करने वाली तथा शम दम के नियमों के पालन में रत रहती थी[१] । वह सदैव अग्निहोत्र, धर्मानुष्ठान तथा इन्द्रिय संयम में अपने पति का साथ देती थी[२] । शुक्राचार्य की प्रिय पुत्री देवयानी कच के साथ ही रहकर गाती, आमोद-प्रमोद करते हुए शिक्षा प्राप्त करती थी[३] ।

महर्षि देवल की पुत्री सुवर्चला विदुषी महिला थी । उसने अपने विद्वान् पति श्वेतकेतु से महत्वपूर्ण तथा गूढ़ आध्यात्मिक विषयों पर प्रश्न किये तथा वादविवाद किया[४] । उसके द्वारा प्रकट किये गये विचारों के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसे अध्यात्म सम्बन्धी उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त हुई थी ।

उमा ने महेश्वर से जिस प्रकार अध्यात्म सम्बन्धी प्रश्न किये हैं, वे किसी अल्पज्ञान वाले के लिये सम्भव नहीं है । महेश्वर कहते हैं कि - " तुम्हारे सिवा इस योगधर्म के विषय में अन्य प्रश्न नहीं कर सकता था[५] । महेश्वर द्वारा उमा को भूत और भविष्य को जानने वाली, धर्म के तत्वों को समझने वाली, और स्वयं भी धर्म का आचरण करने वाली, कार्य कुशल, इन्द्रिय संयम और मनोनिग्रह से सम्पन्न बताया है[६] । उनके द्वारा स्त्री धर्म का वर्णन किया गया है[७] । विवाह के बाद कुन्ती ने द्रौपदी को महत्वपूर्ण शिक्षा दी थी[८] ।

- -

१- महा० आदि प० १३०। ४८-४९

२- वही आदि प० १२९।४६

३- वही आदि प० ७६।२६

४- महा० शा० प० २२० वाँ अध्याय

५- महा० अनु० प० १४५ , पृ० ६०१९

६- वही अनु० प० १४६। २-३

७- वही अनु० प० १४६। ३१-४४

स्त्रियाँ न केवल अध्यात्म ज्ञान में निष्णात होती थी वरन् वे अध्यात्म मोक्ष तथा योग सम्बन्धी विषयों पर व्याख्यान देती थी और विद्वान् ऋषिगण भी उनके उपदेशों को प्रमाणस्वरूप मानते थे। सरस्वती और तार्क्ष्य मुनि के बीच उसी प्रकार का संवाद हुआ था। संशययुक्त तार्क्ष्य मुनि ने अध्यात्म सम्बन्धी अनेक विषयों पर सरस्वती से प्रश्न किये थे, जिनका समाधान सरस्वती ने किया था[१]।

पतिव्रता स्त्री और कौशिक ब्राह्मण के उपाख्यान में पतिव्रता स्त्री ने जिस प्रकार ब्राह्मणों के महत्व को बताने के लिये अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणों के प्रभाव का उल्लेख किया है[२] तथा जिस प्रकार " ब्राह्मण " शब्द की व्याख्या की है[३] तथा सनातन परमधर्म के विषय में जो वर्णन किया है, उससे यह प्रमाणित होता है कि इस क्षेत्र में उसे सम्यक् ज्ञान था, और उसको इस सम्बन्ध में अच्छी शिक्षा प्राप्त हुई थी। वह कौशिक ब्राह्मण को जो कि अपने को धर्मज्ञ, विद्वान् तथा पवित्र मानता था, को चुनौती देते हुए कहती है - " तुम्हें धर्म का यथार्थ ज्ञान नहीं है, और परम धर्म के विषय में जानकारी के लिये वह उसे मिथिलापुरी के धर्मव्याध के पास भेजती है[४]। स्पष्ट है कि वह उस समय के परमधर्म के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों के सम्पर्क में आ चुकी थी और जिनके ज्ञान से वह संतुष्ट हो चुकी थी, उसी के पास परमधर्म के ज्ञान के लिये उसने कौशिक ब्राह्मण को भेजा था। वह सनातन धर्म का वर्णन करते हुए कहती है कि - " धर्मज्ञ पुरुष सत्य और सरलता को सर्वोत्तम धर्म बताते हैं, सनातन धर्म के स्वरूप को बताना तो अत्यन्त कठिन है, परन्तु

- -

१- महा० शान्तिपर्व ३१८ वाँ अध्याय ।

२- महा० वन प० २०६। २२-२६

३- वही वन प० २०६। ३२-३८

४- वही वन प० २०६। ४३-४४

वह सत्य में प्रतिष्ठित है । जो वेदों के द्वारा प्रमाणित हो , वही धर्म है , यह वृद्ध पुरुषों का उपदेश है[१]।

द्रौपदी के द्वारा सत्यभामा को स्त्रीधर्म की अच्छी शिक्षा प्रदान की गयी है । इस सन्दर्भ में उसके द्वारा स्वयं किये जाने वाले कर्त्तव्यों की जो विवेचना की गयी है , उससे यह स्पष्ट होता है कि उसको राजधर्म , अर्थशास्त्र , पातिव्रत्य धर्म तथा एक सुगृहणी के लिये जो आवश्यक कर्त्तव्य है , उन सबको अच्छी शिक्षा मिली थी[२]। द्रौपदी को धर्मज्ञा और धर्मचारिणी कहा गया है[३]। द्रौपदी ने कीचक के वध के लिये व्रत की दीक्षा ग्रहण किया था[४]। युधिष्ठिर द्रौपदी को मोक्षधर्म , क्षमा , सत्य एवं दान तथा धर्म के विषय में उपदेश देते हैं[५]।

शाण्डिली को सम्पूर्ण तत्वों को जानने वाली सर्वज्ञा एवं मनस्विनी कहा गया है । इन्होंने कैकयराज की पुत्री सुमना को पतिव्रता स्त्रियों के कर्त्तव्य की महत्वपूर्ण शिक्षा प्रदान की थी[६]। अपने पातिव्रत के प्रभाव से उन्हें देवलोक की प्राप्ति हुई थी । उस समय स्त्रियाँ गेरुवा वस्त्र धारण कर सकती थीं , वल्कल पहन सकती थीं तथा बड़ी-बड़ी जटायें धारण कर आध्यात्मिक उन्नति के लिये प्रयास कर सकती थीं । तभी तो शाण्डिली कहती है - " मैंने देवलोक में आने के लिये गेरुवा वस्त्र धारण नहीं किया , वल्कल वस्त्र नहीं

- -

१- श्रुति प्रमाणो धर्मः स्यादिति वृद्धानुशासनम् ।।
महा० वन० प० २०६। ४०-४१

२- महा० वन प० २३३ अध्याय

३- वही वन प० २०३।७

४- वही विराट पर्व १६।५१

५- वही विराट प० १६।५२

६- वही अनु० प० १२३।२ ।

पहना , मूड़ नहीं मुड़ाया और बड़ी-बड़ी जटायें नहीं रखायी[१]। वरन् श्रेष्ठ गृहस्थ धर्म का पालन कर देवलोक प्राप्त किया था[२]। स्पष्ट है कि मोक्ष प्राप्ति के दो मार्ग थे - एक के अनुसार स्त्रियां तपस्वी का जीवन व्यतीत करती थी , और दूसरे के द्वारा गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए मोक्ष मार्ग का अवलम्बन करती थी । कन्याओं के लिये दोनों मार्ग खुले हुए थे । वे किसी भी मार्ग से चलकर ज्ञान प्राप्त कर सकती थीं । शाण्डिली ने न केवल स्वयं धर्म का पालन किया था , वरन् वह अन्य कन्याओं को भी नारी धर्म की शिक्षा देती थी[३]। स्पष्ट है कि स्त्रियां भी शिक्षक हो सकती थीं ।

कन्यायें पितृगृह में अग्निहोत्र में अग्नि को प्रज्ज्वलित करने का कार्य करती थीं[४]। इससे स्पष्ट है कि कन्याओं को वैदिक कर्मकाण्डों की शिक्षा बाल्यावस्था से ही दी जाती थी ।

ब्राह्मणी गौतमी भी गुण अवगुण को जानने वाली[५] और निरन्तर शान्ति के साधन में संलग्न रहती थीं[६]। व्याध के उकसाये जाने पर भी गौतमी के द्वारा जिस क्षमा तथा धैर्य का परिचय दिया गया तथा व्याध को जो उपदेश दिया गया है , वह उनकी विद्वता को स्पष्ट करता है[७]।

अत्रिपत्नी अनसूया भी ब्रह्मवादिनी महिला थी[८]।

१- महा० अनु० प० १२३।८

२- महा० अनु० प० १२३।२०

३- वही अनु० प० १२३।१५

४- वही सभा प० ३१।२८

५- वही अनु० प० १।२४

६- वही अनु० प० १।२०

७- वही अनु० प० १। २१-३३

८- वही अनु० प० १४।६५ ।

वशिष्ठ पत्नी अरुन्धती भी तपस्या में बहुत आगे बढ़ी हुई थी। शील और शक्ति में वशिष्ठ के ही समान थी, इनसे ऋषियों, पितरों और देवताओं ने गुह्यतम धर्म के विषय में पूछा था[1]। अरुन्धती ने धर्म के गुह्यतम रहस्य का वर्णन किया था, जिसकी सभी के द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी थी[2]। ब्रह्मा जी उनके इस धर्म के अद्भुत रहस्य वर्णन से प्रभावित होकर कहते हैं कि - तुम धन्य हो, तुमने रहस्य सहित अद्भुत धर्म का वर्णन किया है। मैं तुम्हें वरदान देता हूं, तुम्हारी तपस्या सदा बढ़ती रहे[3]। अरुन्धती अपने नाम की शास्त्रीय विवेचना करते हुए कहती है कि - " मैं अरु अर्थात् पर्वत, पृथ्वी और द्युलोक को अपनी शक्ति से धारण करती हूं। अपने स्वामी से कभी दूर नहीं रहती और उनके मन के अनुसार चलती हूं, इसलिये मेरा नाम अरुन्धती है[4]। स्पष्ट है कि अरुन्धती को अध्यात्म विषयक उच्च शिक्षा प्राप्त हुई थी। महान ऋषियों के द्वारा भी उनका सम्मान किया जाता था।

सप्तर्षियों के मध्य रहकर उनकी सेवा करने वाली दासी गण्डा भी कम शिक्षित नहीं थी। वह अपने नाम की व्याख्या करते हुए कहती है - गडि धातु से गण्ड शब्द की सिद्धि होती है, यह कपोल का वाचक है, मेरा कपोल [गण्ड] ऊंचा है, इसलिये लोग मुझे गण्डा कहते हैं[5]।

- -

१- महा० अनु० प० १३०।१-२

२- वही अनु० प० १३०। ३-१२

३- वही अनु० प० १३०।१३

४- वही अनु० प० ९३।९६

५- वही अनु० प० ९३।९८ ।

स्पष्ट है कि शूद्र होते हुए भी गण्डा को सम्यक् शिक्षा प्राप्त हुई होगी , तभी तो वह संस्कृत के अनुसार अपने नाम की व्युत्पत्ति बता सकी। बिना शिक्षा के शब्दों की इस प्रकार व्याख्या करना सम्भव नहीं है।

ऋषि पत्नियों के लिये ज्ञान प्राप्ति के मार्ग खुले रहते थे। वे आश्रमों में आने वाले अन्य अभ्यागत ऋषियों से अनेक प्रकार की महत्वपूर्ण चर्चायें सुनतीं थीं और ज्ञान प्राप्त करती थीं। उपमन्यु को माता ने , शंकर जी के स्वरूप के सम्बन्ध में ऐसी ही एक चर्चा मुनियों के मुख से सुनी थी , जिसे उसने अपने पुत्र उपमन्यु को सुनाया था[१]। श्रीकृष्ण पत्नी जाम्बवती ने तपस्या के लिये जाते समय श्रीकृष्ण के लिये स्वस्तिवाचन किया था[२]। सावित्री ने विधिपूर्वक उपवास कर सावित्री देवता का दर्शन कर अग्नि में आहुति देकर ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया था[३]। सावित्री को अश्वपति ने धर्मशास्त्र के वचन सुनाये थे[४]। स्त्रियों को पौराणिक आख्यानों को सुनने में भी रुचि रहती थी। एक चक्रा नगरी में ब्राह्मण के घर समागत एक ब्राह्मण ने अनेक सुन्दर तथा कल्याणमयी कथायें सुनायी थीं[५]।

महाभारत काल में नारी शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए सी० वी० वैद्य ने लिखा है कि - " स्त्रियों को वेदों की शिक्षा न दी जाती होगी , क्योंकि वेद पढ़ाने के लिये उनके उपनयन आदि संस्कार होने का वर्णन कहीं नहीं पाया जाता। वे आगे लिखते हैं - " उनकी शिक्षा

- -

१- महा० अनु० प० १४। १३७-१३८

२- वही अनु० प० १४। ३६-४१

३- वही वन प० २९३। २८

४- वही वन प० २९३। ३४

५- वही आदिपर्व १६४। ५ ।

उतनी ही होगी कि उन्हें मामूली लिखना-पढ़ना आ जाये , वे धार्मिक कथाओं और विचारों को भली-भांति जानकर प्रकट कर सकें और कुछ धार्मिक ग्रन्थों का पठन कर लें[1]। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि यह सत्य है कि महाभारत में जहां कन्याओं के अन्य जातिकर्मादि संस्कारों के किये जाने के उल्लेख हैं , वहां उपनयन संस्कार होने का उल्लेख नहीं प्राप्त होता , परन्तु फिर भी सुलभा आदि ब्रह्मवादिनियों की योग तथा मोक्ष धर्म के सम्बन्ध में गहरी पैठ , ध्रुवचैला का आध्यात्मिक संवाद इस बात को प्रमाणित करते हैं कि उन्हें इस प्रकार की शिक्षा अवश्य प्राप्त हुई होगी तथा वैदिक शिक्षा प्राप्त करने में किसी प्रकार का निर्बन्ध नहीं था । ऋषि कन्याओं को इस प्रकार के अवसर अधिक सुगम तथा सुलभ थे , तथापि इनकी संख्या नगण्य थी ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इस काल में सभी कन्याओं को सामान्य शिक्षा प्रदान की जाती थी , कुछ कन्यायें विशेष शिक्षा भी प्राप्त करती थीं ।

ललित कलाओं की शिक्षा -

अत्यन्त प्राचीनकाल से कन्याओं को ललित कलाओं की जैसे - संगीत , नृत्य और चित्रकारी की शिक्षा प्राप्त करने के लिये उत्साहित किया जाता रहा है । सामवेद के मन्त्रों का उच्चारण लड़कियों के द्वारा विशेष रूप से होता था । इससे स्पष्ट है कि वे लोग संगीत विद्या में अवश्य पारंगत होती थीं[2]

१- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० २१५

२- अल्तेकर - पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० २० ।

पत्नीकर्मैव ते ऽत्र कुर्वन्ति यदुद्गातारः ।। श्रौ० सू० १४।३।१।३५ ।

इस काल में कन्याओं को ललित कलाओं की शिक्षा प्रदान करने के लिये अभिभावकों द्वारा विशेष प्रबन्ध किया जाता था । महाभारत में राजा विराट के द्वारा अपनी कन्या उत्तरा को तथा उसके समान अवस्था वाली अन्य राजकुमारियों को नृत्यकला की शिक्षा प्रदान करने के लिये बृहन्नला की नियुक्ति की गयी थी[1] । सी० वी० वैद्य ने लिखा है कि उत्तरा के साथ-साथ महलों की और कुछ बाहर की भी कुमारी कन्यायें सीखतीं थीं[2] । नृत्यकला सिखलाने के लिये राजा विराट ने नृत्यशाला का निर्माण करवाया था , जिसमें दिन के समय कन्यायें नृत्य करती थीं तथा रात में अपने-अपने घर चली जाती थीं[3] । इससे स्पष्ट है कि बाहरी लड़कियां भी नृत्य सीखती थीं । बृहन्नला रूपधारी अर्जुन ने विराट कन्या उत्तरा उसकी सखियों तथा सेविकाओं को भी गीत , वाद्य एवं नृत्यकला की शिक्षा प्रदान की , इससे वे सबके प्रिय हो गये[4] । प्राचीनकाल में छात्राणियों को गाना , नाचना सिखाया जाता था[5] ।

उत्तरा को गीत , वादित्र तथा नृत्यकला सिखलाने के लिये बृहन्नला की नियुक्ति यह स्पष्ट करती है कि कन्याओं को ललित कलाओं की शिक्षा देने के लिये पुरुष शिक्षक नहीं नियुक्त किये जाते थे । मत्स्यराट् के द्वारा जहां बृहन्नला की गीत , नृत्य और बजाने की कलाओं का परीक्षण किया गया था , वहीं तरुणी स्त्रियों के द्वारा उनके नपुंसकत्व की जांच करायी

- -

१- महा० विराट प० ११।१०

२- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० २१६

३- महा० विराट प० २२।१६

४- वही विराट प० ११।१२-१३

५- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० २१५ ।

गयी थी और काफी विचार विमर्श के बाद बृहन्नला को कन्यान्त:पुर में नृत्यकला की शिक्षा देने के लिये नियुक्त किया गया था[१]। द्रौपदी ने भीम से अपनी बात गान्धार स्वर में मधुर ध्वनि फैलती हुई वीणा की भाँति मीठे वचनों में बतायी थी[२]। इससे स्पष्ट है कि द्रौपदी को भी संगीत विद्या का ज्ञान था, तभी तो उसने गान्धार स्वर में प्रवचन किया। युधिष्ठिर के यहां एक लाख दासियां थीं, जो नाचने और गाने की कला में अत्यन्त निपुण थीं[३]। बाद के वैदिक साहित्य में ये कलायें पुरुषों के लिये नहीं थीं[४]। और सूत्रों में विद्यार्थियों को इनसे दूर रहने के लिये कहा गया है[५]।

इस सम्बन्ध में अनेक संस्कृत लेखकों द्वारा ६४ कलाओं का उल्लेख किया गया है, और महाभारत में भी यत्र-तत्र इसका उल्लेख आया है[६]। राजा की दासियों को प्राय: इन कलाओं में दक्ष बताया गया है[७]। कामसूत्र में वात्स्यायन ने कहा है कि - " कला के रूप में इन ६४ कलाओं की शिक्षा धनी परिवार

- -

१- महा० विराट प० ११। ११-१२

२- वीणेव मधुरालापा गान्धारं साधु मूर्च्छती। महा० विराटप० १७।१४ ।
मन: श्रुतिहरी नादी मनो मोक्ष्यतीव मे। महा० स्त्री पर्व० २५।४-८ ।

३- महा० वन० प० २३३।४७

४- तै० सं० ६।१।६।५, मै० सं० ३।७।३, शत० ब्रा० ३।२।४। ३-८

५- पार० गृ० सू० २।७।३, गौतम० ध० सू० २।१३, आप०ध०सू० १।१।३।२ ।

६- महा० सभा पर्व ६१।६। अनु० प० १०४।१४६, १८।३८, वात्स्यायन के कामसूत्र [१।३।१६] में इस विषय पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। ६४ कलाओं में कौन-कौन सी कलायें हैं, इनका विस्तृत उल्लेख किया गया है। इन कलाओं का वर्णन " ललित विस्तर ", शुक्रनीतिसार और " प्रबन्धकोश " में भी आया है।

७- महा० सभा० प० ६१।६ चतु:षष्टि विशारदा: ।

की कन्याओं , राजकुमारियों और गणिकाओं को दी जाती थी[१]। यह स्वाभाविक भी है , क्योंकि कला की शिक्षा के लिये धन , श्रम और समय की आवश्यकता होती है । अतः गरीबों के द्वारा इतना पैसा खर्च करना तथा समय दे पाना सम्भव नहीं हो सकता था । महाकाव्य में हम पाते हैं कि राजाओं के द्वारा इन कलाओं को प्रोत्साहन प्रदान किया जाता था और अन्तःपुर में इनको व्यवहार में लाया जाता था । दासी लड़कियां इन कलाओं में विशेष दक्ष होती थीं[२]।

रामायण काल में भी हम कन्याओं को ललित कलाओं में प्रवीण पाते हैं । कुशनाभ कन्यायें सुन्दर अलंकारों से अलंकृत होकर उद्यान भूमि में गाती, बजाती और नृत्य करती हुई आमोद-प्रमोद में मग्न थीं[३]। रावण पत्नियां भी नाचने और बजाने में निपुण थीं[४]।

रावण के अन्तःपुर में प्रायः सभी स्त्रियां ललित कलाओं में दक्ष थीं । उन्हें न केवल इन कलाओं का सामान्य ज्ञान था , वरन् उसमें वे प्रचक्षण थीं तभी तो नृत्यनिपुणा कोई सुन्दरी स्त्री गाढ़ निद्रा में सोकर भी वासनावश जागृत अवस्था की ही भांति नृत्य के अभिनय से सुशोभित हो रही थीं[५]। ये स्त्रियां अनेक प्रकार के वाद्यों जैसे - वीणा, पटह , विपञ्ची , [विशेष प्रकार की वीणा] मृदंग , पणव , डिण्डिम , आडम्बर आदि से परिचित थीं[६]। इन स्त्रियों के इन कलाओं के प्रति प्रेम को इंगित करते

१- वात्स्यायन - कामसूत्र - १।३। २२-२३ , पृ० २६

२- महा० सभा प० ६१।६ , रामा० यु० का० १०।३८

३- रामा० बाल का० ३२।१३

४- वही यु० का० १०।३२

५- रामा० यु० का० १०।३६

६- वही यु० का० १०। ३०-४५ ।

सुर कवि लिखते हैं कि - " जैसे कामिनियां अपने चाहने वाले को छाती से लगाकर सोती हैं , उसी प्रकार कितनी ही सुन्दरियां विचित्र-विचित्र वाद्यों का आलिंगन कर सो रही थीं[1]। रावण के अन्त:पुर में कोई स्त्रियां तो गीति गाने से और कोई नृत्य करने से थक गयी थीं[2]। ये स्त्रियां संगीत विद्या की बारीकियों से भी परिचित थीं । वानरयूथपति हनुमान ने उस पान भूमि को ऐसी सहस्त्रों नारियों से युक्त देखा - जो गति के समुचित अभिप्राय को अपनी वाणी द्वारा प्रकट करने वाली , देश और काल को समझने वाली और उचित बात बोलने वाला थी[3]।

स्वयंप्रभा की सखी हेमा भी नृत्य और गीत की कला में निपुण थीं[4]। स्पष्ट है कि रावण के राज्य में ये कलायें अपने चरमोत्कर्ष में थीं । यद्यपि कन्यायें किस प्रकार इन कलाओं की शिक्षा प्राप्त करती थीं , इसका विवरण उपलब्ध नहीं है । परन्तु उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि संगीत , नृत्य तथा विभिन्न प्रकार के वाद्यों के शिक्षण की अच्छी व्यवस्था रही होगी । स्त्रियां कलाप्रेमी होती थीं , क्योंकि हम देखते हैं कि प्राय: प्रत्येक स्त्री किसी न किसी कला में दक्ष है । ऐसे समृद्धिमय वातावरण में इन कलाओं का विकास होना स्वाभाविक था ।

बाद के समय में कन्याओं को इन कलाओं में योग्यता प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया जाता रहा है । शिष्ट परिवारों में महिलाओं के जिन कलाओं में निपुण होने की आशा की जाती थी - कामसूत्र के अनुसार - उनमें मुख्य स्थान नृत्यकला और संगीत का था[5]।

१- वही (रामा०) सु० का० १०।४६

२- वही सु० का० ११। ५-६

३-रामा० सु० का० ११। ७-८

४- वही कि० का० ५१।१७

५- वात्स्यायन - कामसूत्र १।३।१६ ।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महाकाव्य काल में कन्याओं को सम्यक् शिक्षा प्रदान की जाती थी , यह अवश्य है कि उन्हें यह शिक्षा किसी संस्था में न प्राप्त होकर घर में ही नियुक्त शिक्षक , माता-पिता तथा अन्य लोगों से प्राप्त होती थी ।

00--------00

अध्याय - ३

विवाह

विवाह

विश्व के प्राय: सभी समाजों में अति प्राचीनकाल से विवाह का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है । भारतीय सभ्यता व संस्कृति के अन्तर्गत विवाह को अत्यन्त पवित्र संस्कार माना जाता है , इसलिये स्त्री व पुरुष दोनों के लिये विवाह परमावश्यक माना गया है । विवाह की परिभाषा करते हुए वेस्टरमार्क ने लिखा है - " विवाह स्त्री और पुरुष का एक ऐसा सम्मिलन है , जो एक निश्चित संस्कार के माध्यम से समाज द्वारा स्वीकृत होता है , यह कहा जा सकता है कि मानवीय संस्था के रूप में सामाजिक मान्यता विवाह की एक सार्वभौम विशेषता है ।" विवाह से उत्पन्न होने वाले अधिकारों और कर्तव्यों के विषय में वे आगे लिखते हैं कि - " विवाह में दोनों पक्षों के सम्मिलन में भाग लेने की स्थिति में तथा इसमें उत्पन्न होने वाले बच्चों की स्थिति में अधिकार और कर्तव्य निहित होते हैं । सर्वप्रथम यह विनियमित काम सम्बन्ध है , इसी के साथ यह एक आर्थिक संस्था है , जो विभिन्न रूपों में सम्बन्धित व्यक्तियों के स्वामित्व सम्बन्धी अधिकारों को निर्धारित करती है[१]। डा० राधाकृष्णन के अनुसार विवाह एक वैध परिवार की स्थापना के लिये सामाजिक अधिकार पत्र अधिक है , और यौन सम्भोग के लिये अनुज्ञापत्र कम[२]। विवाह का अर्थ है - सामाजिक और कभी-कभी धार्मिक कारणों से पुरुष और स्त्री का सम्मिलन[३]।

१- डा० वेस्टरमार्क - विवाह और समाज , पृ० १७

२- डा० राधाकृष्णन - धर्म और समाज , पृ० १७७

३- बी० बनर्जी - दि हिन्दू ला आफ मैरेज एण्ड स्त्रीधन , पृ० २२ ।

स्पष्ट है कि विवाह एक स्वीकृत सामाजिक संस्था है , जो यौन सम्बन्धों को वैधता प्रदान करती है तथा अनेक प्रकार के अधिकारों और कर्तव्यों को जन्म देती है ।

विवाह तथा उससे उत्पन्न होने वाली परिवार नामक संस्था का जन्म भारतवर्ष में अतिप्राचीनकाल में हो ही गया था । यद्यपि कुछ विद्वानों का विचार है कि भारत में भी अन्य देशों की भांति विवाह संस्था का जन्म कामचार से ही हुआ है[1]। इस सम्बन्ध में महाकाव्य में प्राप्त कुछ कथन भी उल्लेखनीय हैं । पाण्डु कुन्ती से कहते हैं कि - हे कुन्ती , मैं धर्म के जानने वाले महात्माओं के द्वारा कहे गये पौराणिक धर्म के विषय में बतारहा हूं , सुनो - प्राचीनकाल में स्त्रियां कामचार के सम्बन्ध में स्वतन्त्र थीं , वे अपने पतियों आदि से न रोकी जाकर भोग के सुख की आशा में घूमा करती थीं, वे कुमारी दशा से ही व्यभिचार किया करती थीं , इससे उनको अधर्म नहीं होता था , क्योंकि वही पूर्वकाल का धर्म था । महर्षि लोग भी प्रमाण से दर्शाये हुए इस धर्म की प्रशंसा करते हैं , उत्तर गुरुओं में आज तक इस धर्म की पूजा हो रही है , क्योंकि वह सनातन धर्म स्त्रियों पर कृपायुक्त है । महर्षि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने ही यह मर्यादा स्थापित की थी कि आज से जो नारी अपने पति को छोड़कर व्यभिचार करेगी , उसे घोर दुखदायी भ्रूणहत्या का पाप लगेगा और यदि पुरुष किसी ब्रह्मचारिणी पतिव्रता स्त्री तजकर परायी नारी से मिलेगा उसको भी वैसा ही पाप लगेगा । इस प्रकार उन उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने ही बलपूर्वक धर्म के अनुसार यह मर्यादा ठहरायी थी , और तभी से यह प्रचलित है[2]।

१- अल्तेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन , पृ० ३० ।
सुखमय भट्टाचार्य - महाभारतकालीन समाज , पृ० ३ ।
जयचन्द्र विद्यालंकार - भारतीय इतिहास की रूपरेखा - खण्ड १ , पृ० २०१ ।

२- महा० आदिप० १२२।३-२१ । पी० थामस - हिन्दू रिलीजन कस्टम्स एण्ड

महाभारत में दीर्घतमा की कथा भी कामचार की इस प्राचीन प्रथा को पुष्ट करती है। पत्नी प्रद्वेषी के द्वारा असंतुष्ट हो जाने पर दीर्घतमा ने यह कहा कि आज से मैं ऐसी लोकमर्यादा की स्थापना करता हूं कि नारी एक पति पर जीवन भर निर्भर करेगी, एक पति जीवित रहे या मर जाये, कोई स्त्री दूसरे पति की शरण नहीं ले सकेगी। यदि कोई नारी दूसरा पति कर ले तो वह पतित होगी, इसमें सन्देह नहीं है[१]।

कामचार का तीसरा प्रमाण हमें कर्णपर्व में कर्ण द्वारा वाहीक तथा मद्र देश की स्त्रियों के सम्बन्ध में दिये गये वर्णन से प्राप्त होता है। वाहीक देश की स्त्रियों के बारे में वह कहता है - " वहां की स्त्रियां अपने शरीर में चन्दनादि सुगन्ध लगाना छोड़कर, मद्य पीकर और नग्न होकर घर द्वार और नगर के बाहर नाचती और गाती हैं, मैथुन से कभी तृप्त नहीं होती और इच्छानुसार वर्तन करती है[२]। " मद्रदेश की स्त्रियों के बारे में कहता है - " जैसे क्षत्रियों में भीख मांगने वाला क्षत्रिय, ब्राह्मणों में व्रतहीन ब्राह्मण, स्त्रियों में मद्र देश की स्त्रियां नीच हैं, वैसे ही पृथ्वी में वाहीक देश नीच है[३]। सहदेव के द्वारा दक्षिण दिशा के विजय के सन्दर्भ में माहिष्मती नगरी का वर्णन किया गया है, जहां की स्त्रियां स्वेच्छापूर्वक

१- अद्यप्रभृति मर्यादा मया लोके प्रतिष्ठिता ।।
एक एव पतिर्नार्या यावज्जीवं परायणम् ।
मृते जीवति वा तस्मिन्नापरं प्राप्नुयान्नरम् ।।
महा० आदि० प० १०४।३४-३७

२- अनावृता मैथुने ताः कामचाराश्च सर्वशः ।।
महा० कर्णप० ४४।१२-१३

३- स्त्रीणां मद्रस्त्रियोऽशुभाः ।। महा० कर्णप० ४४।२३ ।

वर का वरण करने के लिये विचरण किया करती थीं[१]। उत्तर कुरुओं के देश में भी विवाह की प्रथा विद्यमान नहीं थी[२]।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर कुछ विद्वानों ने प्राचीन भारत में कामचार की सत्ता से विवाह संस्था का जन्म स्वीकार किया है, जो कि उपर्युक्त तथ्यों का सम्यक् विश्लेषण करने पर समीचीन प्रतीत नहीं होता।

इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम यह उल्लेखनीय है कि कामचार की सत्ता को सिद्ध करने वाले जो कथन कहे गये है, वे विशेष सन्दर्भ को लेकर कहे गये हैं। अत: किसी भी विषय पर निर्णय करने से पूर्व हमें उस समय की परिस्थितियाँ, सन्दर्भ तथा किस प्रकार के व्यक्ति द्वारा ये वचन कहे गये हैं, उन पर दृष्टिपात करना होगा। कामचार के सम्बन्ध में पाण्डु द्वारा उद्धृत वचन विशेष सन्दर्भ को लेकर हैं, क्योंकि एक ओर कुन्ती नियोग करने के लिये प्रस्तुत नहीं है, और पाण्डु दूसरी ओर कुन्ती को नियोग के लिये प्रेरित करते हैं, क्योंकि वे स्वयं पुत्रोत्पादन में असमर्थ हो चुके हैं और उन्हें पुत्र प्राप्ति की प्रबल आकांक्षा है[३]। अत: वे अपने पक्ष के समर्थन में प्राचीनकाल के अनावृत धर्म का वर्णन करते हैं तथा मदयन्ती द्वारा[४] वशिष्ठ से पुत्रप्राप्ति तथा स्वयं का जन्म भी कृष्णद्वैपायन व्यास से हुआ आदि अनेक कथानकों का वर्णन करते हैं और उसके विपरीत कुन्ती पतिव्रता भद्रा का[५] उदाहरण प्रस्तुत करती है। अत: पाण्डु के वचनों को तर्कसंगत नहीं माना जा सकता।

१- वरिष्यस्तत्र नार्यो हि यथेष्टं विचरन्त्युत ॥

महा० सभा प० ३१।३८

२- यत्र नार्य: कामचारा भवन्ति। शा० प० १०२।२६ देखिये - अल्टेकर - " दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० ३६।

३- महा० आदिप० १२१। २७-२७

४- महा० आदिप० १२२। २२-२४

कर्ण के द्वारा कहे गये वचन भी विश्वसनीय नहीं प्रतीत होते , क्योंकि कर्ण द्वारा ये वचन उस समय कहे गये जब कि शल्य उसकी निन्दा करता है और प्राय: देखा जाता है कि दूसरे की निन्दा के सन्दर्भ में व्यक्ति सत्य-असत्य सभी प्रकार की बातें कहता है । अत: कर्ण ने जो बातें कहीं वे सर्वथा सत्य हों , स्वीकार नहीं किया जा सकता , क्योंकि कर्ण द्वारा लगाये गये आरोपों का उत्तर देते हुए शल्य कहते हैं - " दूसरों के दोष कहने में सब निपुण होते हैं , परन्तु अपने दोषों को कोई नहीं जानते हैं , और कोई जानकर भुला देते हैं । स्वधर्म के अनुसार रहने वाले तथा दुष्टों को दण्ड देने वाले राजा सब देशों में हैं । जैसे सब देवता एक स्वभाव के नहीं होते , वैसे ही सब मनुष्य भी एक स्वभाव के नहीं हैं[1] । दीर्घतमा की कथा को भी इस सम्बन्ध में प्रामाणिक तथा तर्कसंगत नहीं माना जा सकता । "हरिदत्त वेदालंकार" ने अपनी पुस्तक " हिन्दू परिवार मीमांसा" में इस विषय पर विस्तृत प्रकाश डाला है[2] ।

वेस्टरमार्क ने भी कामचार की कल्पना का जोरदार शब्दों में खण्डन करते हुए लिखा है कि - " जिन लोगों के सम्बन्ध में काम स्वच्छन्दता की स्थिति में रहने की कल्पना की जाती है , उनका विस्तार पूर्वक परीक्षण करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि उनमें से किन्हीं भी कथनों को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता अथवा उनमें से किसी से भी काम स्वच्छन्दता

- -

१- महा० कर्ण० ४५। ४३-४४

२- हरिदत्त वेदालंकार - " हिन्दू परिवार मीमांसा", पृ० ४-६ ।

के अस्तित्व की संभावना तक का ज्ञान नहीं होता[१]। महाभारत की कथा केवल कल्पना प्रसूत है[२]।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि कामचार के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये विचार तर्कसंगत नहीं हैं। इसके विपरीत हमारे यहाँ अत्यन्त प्राचीनकाल से सम्यक् रूप से विकसित विवाह संस्था के दर्शन होते हैं। पूर्व वैदिक काल में जब कि अपने कर्मकाण्ड सहित बहुत थोड़े से संस्कार अस्तित्व में आये थे, वैवाहिक रीति रिवाजों का विकास हो चुका था और ऋग्वेद[३] तथा अथर्ववेद[४] में उन्हें काव्यमय अभिव्यक्ति प्राप्त हुई थी। विवाह को एक आवश्यक धार्मिक कर्तव्य माना जाने लगा था। परिवार मुख्यसंस्था थी, यथपि परिवार पितृसत्तात्मक होते थे[५]।

विवाह के उद्देश्य -

भारतीय समाज व्यवस्थापकों के अनुसार विवाह का उद्देश्य मात्र कामोपभोग न होकर सामाजिक तथा आध्यात्मिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति

१- डा० वैस्टरमार्क - विवाह और समाज, पृ० २०

१० सम एसपैक्ट्स आफ सोशल लाइफ इन महाभारत - सोशल लाइफ इन एन्सियेंट इण्डिया, - डा० डी० सी० सरकार, कलकत्ता १९७१, ।
डा० नत्थूराम गुप्त - महाभारत एक समाजशास्त्रीय अनुशीलन, पृ० ५० ।

२- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० २४८ [प्रथम भाग]

३- ऋ० १०।८५, राजबली पाण्डेय - हिन्दू संस्कार, पृ० १९५

४- अथर्ववेद १४। १।२

५- जी० सी० पाण्डे - फाउन्डेशन आफ इंडियन कल्चर, पृ० २९ ।

करना है[१]। हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार विवाह के मुख्य तीन प्रयोजन धर्म का पालन सन्तान की प्राप्ति और रति है[२]। ऋग्वेदकालीन समाज में गार्हस्थ्य यज्ञ तथा सन्तानोत्पादन के लिये विवाह को अनिवार्य माना गया था[३]। शतपथ ब्राह्मण में नारी को पुरुष की अर्द्धांगिनी कहा गया है, अत: जब तक व्यक्ति विवाह नहीं करता तथा सन्तानोत्पत्ति नहीं करता वह पूर्ण नहीं है[४]। बृहदारण्यक उपनिषद में इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है - " प्रारम्भ में पुरुष एकाकी था, परन्तु इससे उसे आनन्द प्राप्त नहीं हुआ, उसने दो की इच्छा की। उसने अपने को दो भागों में विभाजित किया तब उससे पति और पत्नी हुए और जब उस स्त्री के साथ वह सम्मिलित हुआ, तब मनुष्य उत्पन्न हुए[५]।

पुरुष ने पहले स्त्री की, तत्पश्चात् सन्तान तथा बाद में धन की कामना की, जिससे कि वह कर्म कर सके[६]। राधाकमल मुकर्जी ने इस सम्बन्ध में लिखा है - " जीवन में प्रत्येक व्यक्ति को सृष्टिकर्ता के इस आदि यज्ञ का क्रम चलाये रखना पड़ता है, जो उसने अपनी अद्वैत एकता से अनेक रूपा सृष्टि का प्रत्येक जीवधारी द्वारा उसी एक आत्मा के साक्षात्कार करने के साधन स्वरूप उत्पन्न करके प्रारम्भ किया[७]।

- -

१- गजानन शर्मा - प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी
   डा० अच्युतानन्द धिल्डियाल - प्राचीन भारतीय सामाजिक संस्थायें, पृ०८६।
   श्री शम्भुरत्न त्रिपाठी - भारतीय सामाजिक संरचना और संस्कृति, पृ० ५८।

२- हरिदत्त वेदालंकार - हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० ६

३- ऋ० १०।८५।३६, ५।३।२, ५।२८।३, ३।५३।४

४- अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायते असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि हि सर्वो भवति ।। शत०ब्रा० ५।२।१।१०, ८।७।२।३, तै०सं० ६।१।८।५ ऐत० ब्रा० १।२।५।

५- बृहदा० उप० १।४।३

६- बृहदा० उप० १।४।१७

कालान्तर में तीन ऋणों[१] के सिद्धान्त के विकास तथा पिण्डादिक क्रियाओं के लिये पुत्र की महत्ता बढ़ जाने के कारण विवाह प्राय: सभी व्यक्तियों के लिये अनिवार्य हो गया । इस प्रकार विवाह का प्रथम उद्देश्य सन्तानोत्पादन था ।

वैदिक साहित्य में कहा गया है कि अविवाहित पुरुष धार्मिक दृष्टि से अपूर्ण रहता है और वह श्राद्ध इत्यादि कार्यों में पूर्ण रूप से भाग नहीं ले सकता[२]। इस काल में पति तथा पत्नी दोनों साथ-साथ यज्ञ में भाग लेते थे[३]। पत्नी के अभाव में यज्ञ पूर्ण नहीं माना जाता था , इसलिये भी विवाह परमावश्यक था । ऐतरेय ब्राह्मण में पत्नी को जाया कहा गया है , क्योंकि पुरुष अपनी पत्नी के गर्भ में प्रवेश कर पुन: पुत्र रूप में जन्म पाता है[४]।

इस प्रकार विवाह का दूसरा मुख्य उद्देश्य धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन करना है ।

इन उद्देश्यों के साथ-साथ रति को कम महत्व नहीं प्रदान किया गया है । मनु[५] ने उत्तम रति भी विवाह का एक कारण बताया है । वात्स्यायन ने कामसूत्र में कहा है कि - " बाल्यकाल में मुख्यतया विद्या ग्रहण करे , यौवन में अर्थ और काम का संचय करे तथा वृद्धावस्था में धर्म और मोक्ष का[६]।

- -

१- जायमानो वै ब्राह्मणास्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्य: प्रजया पितृभ्य: । तै० सं० ६।३।१०।५ ।

२- अयज्ञो व एष योऽपत्नीक: । तै० ब्रा० २।२।२।६

३- ऋ० ८।३१।५ , १० , ८।२७।७

४- ऐत० ब्रा० ७।३।१

५- मनु० ६।२८

६- बाल्ये विद्याग्रहणादीनर्थान् । अर्थ कामं च यौवने । स्थाविरे धर्म मोक्षं च ।

महाकाव्य काल में भी प्राय: विवाह के यही उद्देश्य थे । रामायण के अन्तर्गत हम अनेक लोगों को पुत्र के अभाव में चिन्तित पाते हैं । दशरथ स्वयं इस चिन्ता से ग्रसित थे[१]। और इसके लिये उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ का आयोजन किया था[२]। क्योंकि वंशपरम्परा तथा पिण्डादिक क्रियायें पुत्र पर ही आश्रित रहती हैं, जो कि विवाह का प्रमुख उद्देश्य था[३]। राजर्षि कुशनाभ ने भी श्रेष्ठ पुत्र प्राप्ति के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ का आयोजन किया था[४]। वीर तथा श्रेष्ठ पुत्रों की प्राप्ति के लिये स्त्रियां भी लालायित रहती थीं । गन्धर्वी सोमदा के द्वारा मुनि चूली से उनके ही समान ब्रह्मतेज से सम्पन्न पुत्र प्राप्ति की इच्छा व्यक्त की गयी थी[५]।

वीर पुत्रों की प्राप्ति के लिये स्त्रियां तपस्या करती थीं[६]। दिति ने कश्यप से इन्द्रहन्ता पुत्र की प्राप्ति के लिये घोर तपस्या की थी[७]। नारायण को पुत्र रूप में प्राप्त करने के लिये कश्यप ने अदिति के साथ महान तप किया था[८]। श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति के लिये कैकसी द्वारा विश्रवा मुनि से प्रार्थना की गयी थी[९]। सगर ने पुत्र प्राप्ति के लिये अपनी पत्नियों के साथ घोर तपस्या किया था[१०]। पुत्र जन्म पर महान हर्ष होता था[११]।

१- सुखमय भट्टाचार्य - महाभारत कालीन समाज, पृ० ५

२- रामा० बालका० १५।२

३- वही ३४।१

४- वही ३३।१६

५- वही ४६।२

६- रामा० बाल का० ४६।८

७- वही २६। १५-१६

८- वही २६।११

९- वही उ० का० ९।२२, २४-२५

१०- वही बाल का० ३८।५

धर्माचरण के लिये भी विवाह की आवश्यकता होती थी । यज्ञ कार्य पत्नी के अभाव में पूर्ण नहीं माना जाता था । राजा दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में उनके साथ उनकी पत्नियों ने भी दीक्षा ग्रहण की थी[१]। राम राज्याभिषेक के समय रामके साथ सीता को भी व्रत की दीक्षा प्रदान की गयी थी[२]। राम के द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने पर सीता के अभाव में उनको सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा रखनी पड़ी थी[३]। गार्हस्थ धर्मों के पालन के लिये भी विवाह की आवश्यकता होती थी[४]।

रति भी विवाह का एक उद्देश्य था । महातपस्वी नीलकण्ठ ने उमादेवी के साथ विवाह करके उनको नववधू के रूप में सामने उपस्थित होने पर उनके साथ रतिक्रीड़ा आरम्भ की[५]। इसका प्रधान उद्देश्य पुत्र प्राप्ति ही था । देवताओं के द्वारा इस कार्य में बाधा डाले जाने पर उमा देवी देवताओं को सन्तानहीन हो जाने का शाप देती है[६]। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के यथायोग्य सेवन पर बल दिया गया है । राम भरत को राजनीति के उपदेश के सन्दर्भ में पुरुषार्थों के सम्यक् सेवन पर बल देते हैं[७]। राम स्वयं धर्म, काम और अर्थ के तत्व के सम्यक् ज्ञाता थे[८]। और वे धर्म और अर्थ का संग्रह करते हुए तदनुकूल काम का सेवन करते थे[९]।

१- श्रीमांश्च सह पत्नीभी राजा दीक्षामुपाविशत् ।। रामा० बालका० १३।४१ ।

२- रामा० अयो० का० ५।११, ६।१-४

३- वही उ० का० ९१।२५

४- वही बालका० १८।५८

५- रामा० बाल का० ३६।५-६

६- वही ३६।२१-२२

७- वही अयो० का० १००।६२-६३

८- वही १।२२

९- अर्थ धर्मौ च संगृह्य सुखतन्त्रो न चालसः ।

महाभारत काल में भी हम विवाह के इन्हीं उद्देश्यों को पाते हैं। पुत्रोत्पादन इस काल में भी विवाह का प्रधान उद्देश्य था, और इसका महत्व और बढ़ गया। यही कारण था कि वंशपरम्परा को बनाये रखने तथा पितृ ऋण से मुक्ति के लिये अनेक अनिच्छुक ऋषि मुनियों को भी विवाह के बन्धन[1] में बंधना पड़ा। ऋषि जरत्कारु जो उर्ध्वरेता नैष्ठिक ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत करना चाहते थे, उन्हें भी अपने[3] पितरों की दुर्दशा को देखकर[2] अपने इस संकल्प से विरत होना पड़ा था। क्योंकि वंशपरम्परा क्षीण होने के कारण वे पितर नरक में गिरने की स्थिति में थे[4]। ब्रह्मा के कथनानुसार संतान को सबसे उत्कृष्ट धर्म माना गया है[5]। जरत्कारु के पितर लोग कहते हैं कि - वंशपरम्परा के अभाव में तुम्हारे पितर अत्यन्त दीन हो नीचे की ओर मुंह करके गड्ढे में लटक रहे हैं। तुम उत्तम रीति से पत्नी के साथ विवाह कर लो और उसके द्वारा संतान उत्पन्न करो[6]। शकुन्तला दुष्यन्त की राजसभा में विवाह के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहती है - ' भार्या पुरुष का आधा अंग है, भार्या उसका सबसे उत्तम मित्र है। भार्या धर्म, अर्थ और काम का मूल है और संसार सागर से तरने की इच्छा वाले पुरुष के लिये भार्या ही प्रमुख साधन है, जिनके पत्नी हैं, वे ही यज्ञ आदि कर सकते हैं, सपत्नीक पुरुष ही सच्चे गृहस्थ हैं। जो पत्नी से युक्त हैं, मानो वे लक्ष्मी से सम्पन्न हैं[7]। रति, प्रीति

- -

१- महा० आदि प० ४६।५

२- महा० आदि प० ४५। ३-१०

३- वही ४६। ६-१०

४- संतान प्रक्षयाद् ब्रह्मन्पताम निरये शुची ।। महा० आदि ४५।१३

५- संतानं हि परो धर्म स्वमाह पितामह: ।। महा० आदि प० ४५।१४

६- महा० आदि प० ४५।२२, सुखमय भट्टाचार्य - महाभारतकालीन समाज, पृ० ५

७- महा० आदि प० ७४।४१-४३ ।

तथा धर्म पत्नी के ही अधीन हैं , पत्नी अपना आधा अंग है , यह श्रुति का वचन है । वह धन , प्रजा , शरीर , लोकयात्रा , धर्म , स्वर्ग , कृषि तथा पितर इन सबकी रक्षा करती है[1]।

पत्नी को जाया कहा गया है , क्योंकि पति ही पत्नी के गर्भ से पुत्र रूप में पुनः जन्म लेता है और इस प्रकार जो सन्तान उत्पन्न होती है , वह संतति की परम्परा द्वारा अपने पहले के मरे हुए पितामहों का उद्धार कर देती है[2]। पुत्र " पुत् " नामक नरक से पिता का त्राण करता है , इसलिये साक्षात् ब्रह्मा जी ने उसे पुत्र कहा है[3]। स्पर्श करने योग्य वस्तुओं में पुत्र को श्रेष्ठ माना गया है[4]। इस काल में पुत्र प्राप्ति के लिये अनेक राजाओं द्वारा तपस्या की गयी थी । राजा प्रतीप ने पुत्र प्राप्ति के लिये पत्नी के साथ तप किया था[5]। विचित्रवीर्य और चित्रांगद के असमय बिना सन्तानोत्पादन के मृत्यु हो जाने पर कुलपरम्परा के समाप्त हो जाने के भय से सत्यवती व्यग्र हो उठती है - और भीष्म से आग्रह करती है कि वह विवाह कर सन्तानोत्पादन कर पितरों को नरक में गिरने न दे[6]। यद्यपि उन्होंने इस बात को स्वीकार नहीं किया था और बाद में व्यास के द्वारा पुत्र उत्पन्न किये गये थे[7]। सन्तानोत्पादन की शक्ति नष्ट हो जाने के कारण पाण्डु पुत्र प्राप्ति के लिये निरन्तर चिन्तित रहते थे - क्योंकि सन्तानहीन के लिये स्वर्ग का दरवाजा बन्द रहता है[8]।

१- वही ७४।५१

२- महा० आदि ७४।३७-३८

३- पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।। महा० आदि ७४।३९

४- पुत्र स्पर्शवतां वरः ।। महा० आदि ७४।५७

५- महा० आदि ९७। १७

६- दारांश्च कुरु धर्मेण मा निमज्जीः पितामहान् ।। महा० आदि १०३।८-११

७- महा० आदि प० १०६। ५३-५५

पाण्डु के अनुसार - मनुष्य इस पृथ्वी पर चार प्रकार के ऋण - पितृ ऋण , देव ऋण , ऋषि ऋण और मनुष्य ऋण लेकर उत्पन्न होते हैं। उन सबका ऋणधर्मत: चुकाना चाहिये। जो मनुष्य यथासमय इन ऋणों का ध्यान नहीं रखता , उसके लिये पुण्यलोक सुलभ नहीं होते। यह मर्यादा धर्मज्ञ पुरुषों ने स्थापित की है[1]। सम्पूर्ण लोकों में संतान धर्ममयी प्रतिष्ठा है। सदा धर्म का प्रतिपादन करने वाले धीर पुरुष ऐसा ही मानते हैं। संतानहीन मनुष्य इस लोक में यज्ञ , दान , तप और नियमों का भली-भांति अनुष्ठान कर ले तो भी उसके सब कर्म पवित्र नहीं कहे जाते[2]। वे पुत्र प्राप्ति के लिये कुन्ती से आग्रह करते हैं कि तुम मेरे सदृश अथवा मेरी अपेक्षा भी श्रेष्ठ पुरुष से संतान उत्पन्न करो[3]।

धर्मानुष्ठान में भी पत्नी की आवश्यकता होती थी। द्रोणाचार्य ने भी पुत्र के लोभ से निरन्तर धर्मानुष्ठान , अग्निहोत्र इत्यादि में साथ देने के लिये शरद्वान की पुत्री कृपी को धर्मपत्नी के रूप में ग्रहण किया[4]। मनुष्य को नियमानुसार दिन का विभाजन कर त्रिवर्ग का सेवन करना चाहिये उनमें से किसी एक की भी उपेक्षा अथवा आसक्ति उचित नहीं। पूर्वान्ह में धन का तदनन्तर धर्म का तथा उसके बाद काम का सेवन करे[5]। विवाह द्वारा

- -

१- ऋणैश्चतुर्भि: संयुक्ता जायन्ते मानवा भुवि ।
   पितृदेवर्षिमनुजैर्देयं तेभ्यश्च धर्मत: ।
   एतानि तु यथाकालं यो न बुध्यति मानव: ।।
   न तस्य लोका: सन्तीति धर्मविद्भि: प्रतिष्ठितम् ।।
   महा० आदि प० ११९। १७-२०

२- महा० आदि प० ११९। २८-२९

३- वही ११९।३०

४- वही १२९। ४५-४६

५- महा० अनु० प० २२।२० ।

स्त्री प्राप्ति पर ही सब निर्भर है - " साध्वी स्त्री कुल की वृद्धि करती है , साध्वी स्त्री घर में परम पुष्टि रूप है तथा साध्वी स्त्री घर की लक्ष्मी है , रति है , मूर्तिमती प्रतिष्ठा है तथा संतान , परम्परा की आधार है[१]। अष्टावक्र विवाह के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं - " मैं विषयों से अनभिज्ञ हूं , केवल धर्म के लिये संतान की प्राप्ति मुझे अभीष्ट है , अत: यही मेरे विवाह का उद्देश्य है, ऐसा होने पर मैं पुत्रों द्वारा अभीष्ट लोकों में जाऊंगा , इसमें संशय नहीं है[२]। कन्या का योग्य पुरुष से विवाह ही सुख और सुयोग्य संतान की उत्पत्ति का कारण समझा जाता था[३]। उत्तम रति भी विवाह का उद्देश्य था । स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध को बड़ा घनिष्ठ तथा सूक्ष्म मानते हुए रति को साधारण धर्म माना गया है[४]। धर्मशास्त्रों में भी धर्म , अर्थ और काम के सम्यक् सेवन पर बल दिया गया है[५]। दक्ष का कहना है - स्त्री से ही धर्म , अर्थ , काम इन त्रिवर्ग का फल प्राप्त होता है[६]।

विवाह न केवल सांसारिक वरन् पारलौकिक सुख का साधन भी है । विवाह अभ्युदय और नि:श्रेयस दोनों ही दृष्टि से अनुकूल है[७]।

- -

१- महा० अनु० प० अध्याय २२ , पृ० ५५४६ ।

२- वही १६।६०

३- वही ४४।३६

४- भार्या पत्योर्हि सम्बन्ध: स्त्रीपुंसो: स्वल्प एव तु ।
रति: साधारणो धर्म इति चाह स पार्थिव: ।। महा० अनु० प० ४५।६

५- मनु० ३।४-५ , व्यास २।१७-१८

६- दक्ष स्मृति ४।२ तथा धर्मार्थकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते ।

७- सुरेन्द्रनाथ मित्र - " राष्ट्र राज्य और समाज के सम्बन्ध में भारतीय विचार, पृ० २८२ ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इस काल में भी विवाह का उद्देश्य पुत्रोत्पादन , सहधर्म का पालन , उत्तम रति तथा त्रिवर्ग का सेवन था । त्रिवर्ग के सम्यक् सेवन पर बहुत बल दिया गया है और विवाह ही त्रिवर्ग के सेवन का मुख्य साधन था ।

विवाह की अनिवार्यता -

उपर्युक्त वर्णित विवाह के उद्देश्यों के कारण ही भारतीय समाज व्यवस्थापकों ने प्राय: प्रत्येक स्त्री पुरुष के लिये विवाह को आवश्यक तथा अनिवार्य बताया था ।

विवाह यद्यपि स्त्री व पुरुष दोनों के लिये आदर्श माना जाता था, परन्तु समाज इस पर जोर नहीं देता था कि विवाह हर कीमत पर किया जाय । यदि योग्य वर अथवा कन्या के मिलने में कठिनाई हो तब भी[1]। वैदिक काल में पिता के घर में ही बूढ़ी हो जाने वाली कन्याओं के उदाहरण प्राप्त होते हैं , जिनको " अमाजु: " कहा जाता था[2]।

रामायण काल में भी हमें आजीवन अविवाहित रहने वाली स्त्रियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं । स्वयंप्रभा तथा वेदवती ऐसी ही स्त्रियां थीं[3]। स्वयंप्रभा मेरुसावर्णि की कन्या थीं । ब्रह्मर्षि कुशध्वज की पुत्री वेदवती योग्य पति न प्राप्त होने के कारण जीवन पर्यन्त अविवाहित रहकर तपस्या में रत रही[4]। शबरी भी आजीवन तपस्या में

- -

१- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० ३२ ।

२- ऋ० २।१७।७

३- रामा० कि० का० ५१।१५

४- वही उ० का० १७।२ , १७। ६-१० , १७।१७ ।

रत रही[१]। इसी प्रकार महाभारत में हमें सन्यासिनी सुलभा के दर्शन होते हैं, जिसने कि योग्य पति के न प्राप्त होने पर अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए मुनिव्रत की दीक्षा ली थी[२]।

कालान्तर में विवाह कन्याओं के लिये अनिवार्य समझा जाने लगा था। पुरुष को यह सुविधा प्राप्त थी कि अगर वह चाहे तो बिना विवाह किये भी मोक्ष मार्ग का आश्रम ले सकता था, उसके लिये क्रमशः आश्रमों का पालन अनिवार्य नहीं था[३]। परन्तु कन्याओं को यह सुविधा प्राप्त न थी। इस सम्बन्ध में महाभारत में वर्णित कुणिगर्ग की कन्या सुभ्रू का उदाहरण उल्लेखनीय है। सुभ्रू ने योग्य पति न प्राप्त होने के कारण पिता के चाहने पर भी विवाह न किया और घोर तपस्या में रत रही। वृद्धावस्था प्राप्त होने पर स्वर्ग जाने की इच्छा की, परन्तु उसी समय नारद आये और बोले कि हमने देवलोक में सुना है बिना विवाही कन्या को स्वर्ग नहीं मिलता। तब उस कन्या ने अपना आधा तपः पुण्य देकर शृंगवान ऋषि से विवाह किया और एक रात निवास कर अन्त में स्वर्ग को गयी[४]। दीर्घतमा ऋषि ने यह लोकमर्यादा स्थापित की थी कि आज से जो नारी अविवाहित रहेगी उसे

- -

१- रामा० अरण्य का० ७४ अध्याय। यहाँ सन्त स्त्री के लिये श्रमणी शब्द का प्रयोग किया गया है। उनके गुरु मतंग यज्ञ करते थे, वह बुद्धकालीन भिक्षुणी नहीं सिद्ध होती।

२- महा० शा० प० ३२०।१८६

३- वही शा० प० ६१।७, ६०।१०-११, २३४।४ ।

४- महा० शल्यपर्व ५२। ७-२३। देखिये - सुखमय भट्टाचार्य - महाभारतकालीन समाज, पृ० ६ ।

उसे पाप लगेगा और उनके पास प्रचुर धन होते हुए भी उनका भोग व्यर्थ होगा , वे नित्य निन्दा तथा अकीर्ति की पात्र होंगी[१]।

कन्या का विवाह न होना उसके किसी दोष का सूचक होता था , क्योंकि सन्यासिनी सुलभा से जनक ने कहा था कि तुम अपने ही किसी दोष के कारण अविवाहित होकर स्वतंत्र हो[२]। ऋषि अष्टावक्र ने उत्तर दिशा से यह प्रश्न किया था " देवि , तुम स्वतंत्र अर्थात अविवाहित कैसे हो , मुझे इसका कारण बताओ[३]। जो कन्या पति को प्राप्त नहीं करती , उसका जन्म इस लोक में व्यर्थ है और उसे परलोक में सद्गति प्राप्त नहीं हो सकती[४]। पति और पुत्र से हीन युवती का अन्न आयु का नाश करने वाला समझा जाता था[५]।

इसके अतिरिक्त सृष्टि की निरन्तरता के लिये सन्तानोत्पादन की आवश्यकता , धर्माचरण तथा काम सुख की प्राप्ति का साधन होने से भी हमारे धर्मशास्त्रों में गृहस्थाश्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। तथा अन्य आश्रमों से इसे श्रेष्ठ माना गया है। यही एक ऐसा आश्रम है , जिसमें कामोपभोग की भी छूट दी गयी है , क्योंकि काम को महत्वपूर्ण बताया

१- अपतीनां तु नारीणामद्यप्रभृति पातकम् ।
महा० आदि प० १०४। ३६-३७

२- अथवापि स्वतन्त्रासि स्वदोषेणेह कर्हिचित् ।। महा० शा० प० ३२०।६४

३- महा० अनु० प० २०।२०

४- वही आदि प०

५- वही शा० प० ३६।२७ ।

गया है ।[१] दूसरे विवाह का महत्त्व इसलिये भी बढ़ जाता है, क्योंकि विवाह द्वारा ही मनुष्य को पत्नी तथा उसके द्वारा सन्तान की प्राप्ति होती है । ऋग्वेद में कहा गया है कि पत्नी ही घर है ।[२] महाभारत में भी कहा गया है - " पुत्र, पौत्र, पतोहू तथा अन्य भरणपोषण के योग्य कुटुम्बीजनों से भरा पूरा होने पर भी गृहस्थ का घर उसकी पत्नी के बिना सूना होता है । वास्तव में घर को घर नहीं कहते, घरवाली का नाम ही घर है, घरवाली के बिना घर जंगल के समान है । पुरुष के धर्म, अर्थ और काम स्त्री के द्वारा ही सिद्ध होते हैं ।[३] गृहस्थाश्रम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है - " यज्ञों का सम्पादन ही कर्म कहलाता है, जहाँ ये कार्य किये जाते हैं, वह गृहस्थ आश्रम ही सिद्धि का पुण्यमय क्षेत्र है और यही सबसे महान आश्रम है ।[४] गृहस्थ धर्म का पालन अत्यन्त दुष्कर बताया गया है ।[५] प्रजावर्ग का भी मूल कारण यही आश्रम है । तपस्या को श्रेष्ठ माना गया है, परन्तु इस गार्हस्थ्य धर्म में ही सारी तपस्या प्रतिष्ठित है ।[६]

वेदों के सिद्धान्त को जानने वाले ब्राह्मण यह कहते हैं कि यह गृहस्थाश्रम सब आश्रमों में ऊँचा है ।[७] अन्य तीन आश्रम एक ओर और

१- ऋ० १०।१०।७, ८, १४, तैत्तिरीयोपनिषद - भृगुवल्ली - तृतीयाध्याय: ३।४६-४७, शत० ब्रा० ८।६।३।१-२ छान्दोग्य २।१३ ।

२- ऋ० ३।५३।४, शत० ब्रा० ५।२।१।१०, ऐतरेय आरण्यक १।२।४

३- महा० शा० प० १४४। ५, ६, १२-१३

४- महा० शा० प० ११।१५

५- वही शा० प० ११।२०

६- वही शा० प० ११।२१, १२।२२, २३।६

७- महा० शा० प० १२।६ ।

गृहस्थाश्रम दूसरी ओर रखने पर गृहस्थाश्रम ही महत्वपूर्ण सिद्ध होता है, क्योंकि यहां भोग और स्वर्ग दोनों सुलभ है। यही मुनियों का मार्ग है, यही लोकवेत्ताओं की गति है।[1] गृहस्थ आश्रम में ही देवताओं, पितरों तथा अतिथियों के लिये किये जाने वाले आयोजन की प्रशंसा की जाती है, केवल यहीं धर्म, अर्थ, काम - ये तीनों सिद्ध होते हैं।[2] देवता, पितर, अतिथि और भृत्यगण सदा गृहस्थ का ही आश्रय लेकर जीवन निर्वाह करते हैं तथा अन्य प्राणी भी गृहस्थों से ही पालित होते हैं, अतः गृहस्थ ही सबसे श्रेष्ठ है।[3] इस बात पर बल दिया गया था कि पहले याचकों, पितरों और देवताओं के ऋण से उऋण हो जाने के पश्चात् ही अन्य आश्रमों को ग्रहण करना चाहिये।[4] हमारे समाज व्यवस्थापकों द्वारा प्रत्येक को यह परामर्श दिया गया है कि - " गृहस्थ पुरुष अपनी आयु के दूसरे भाग तक गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए घर पर ही रहे, धर्मानुसार स्त्री से विवाह करके उसके साथ अग्निस्थापना करने के पश्चात नित्य अग्निहोत्र आदि करे और उत्तम व्रत का पालन करता रहे।[5]

गृहस्थाश्रम को सब धर्मों का मूल कहा गया है। इस आश्रम में व्यक्ति तीनों ऋणों से मुक्त होकर दूसरे आश्रमों में प्रवेश करे।[6] इसी प्रकार मनुस्मृति में भी कहा गया है - " जिस प्रकार सभी प्राणी वायु का

महा०
१- वही शा० प० १२।१२-१३
२- महा० शा० प० १२।१८
३- वही शा० प० २३।४-५
४- वही शा० प० २४।६
५- वही शा० प० २४३।१
६- गृहस्थस्त्वेषधर्माणां सर्वेषां मूलमुच्यते। महा० शा० प० २३४। ६-७ ।

आश्रय लेकर जीवित रहते हैं , उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर आश्रित हैं।[१] क्योंकि माता बनने के लिये स्त्रियां उत्पन्न की गयी हैं और पिता बनने के लिये पुरुष , इसलिये वेद की आज्ञा है कि प्रत्येक पुरुष अपनी स्त्री के साथ धर्म का पालन करे।[२]

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में जब कन्याओं को उच्चकोटि की शिक्षा प्रदान की जाती थी , तब तक विवाह उनके लिये अनिवार्य नहीं था , जैसा कि सुलभा ने अविवाहित रहकर जीवन व्यतीत किया , परन्तु कालान्तर में जब ये उच्च शिक्षा से वंचित कर दी गयी तो विवाह उनके लिये आवश्यक तथा अनिवार्य बना दिया गया । अन्य दृष्टिकोणों से भी गृहस्थाश्रम का महत्व होने के कारण विवाह प्राय: सभी के लिये अनिवार्य तथा आवश्यक था ।

विवाह के प्रकार -

विवाह की पद्धति तथा विवाह के प्रकारों का विस्तृत वर्णन हमें गृह्यसूत्रों , धर्मसूत्रों तथा स्मृतियों में ही प्राप्त होता है । यद्यपि इनमें से कुछ प्रकार वैदिक काल में ही व्यवहार में आ चुके थे।[३] इन गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों आदि में थोड़े व्यतिक्रम के साथ प्राय: सभी ने विवाह के आठ प्रकार माने हैं जैसे - ब्राह्म , प्राजापत्य , दैव , आर्ष , गान्धर्व , राक्षस ,

---

१- यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तव: ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा: ।। मनु० ३।७७

२- मनु ९।९६

३- उपाध्याय - " वीमेन इन ऋग्वेद ", पृ० ९५-९६ , (१९४१)

आसुर और पैशाच ।[१] कुछ धर्मसूत्रों जैसे कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने विवाह के छ: प्रकार ही माने हैं और प्राजापत्य व पैशाच को छोड़ दिया है ।[२] इसी प्रकार नामों के क्रम में भी अन्तर पाया जाता है , जैसे आश्वलायन में ब्राह्म , दैव , प्राजापत्य एवं आर्ष के क्रम से है । मनुस्मृति में क्रमश: ब्राह्म , दैव , आर्ष , प्राजापत्य , आसुर , गान्धर्व , राक्षस तथा पैशाच विवाह के आठ प्रकार माने गये हैं ।[३]

रामायण काल में यद्यपि स्पष्ट रूप से विवाह के प्रकारों का वर्णन उपलब्ध नहीं होता , परन्तु उस काल में वर्णित विवाहों के आधार पर हम विवाह के प्रकारों का निर्धारण कर सकते हैं । रामायण में छ: प्रकार के विवाहों का वर्णन आया है ।[४] ब्राह्म विवाह के अन्तर्गत हम कुशनाभ कन्याओं , रोमपाद की पुत्री शांता , राजा तृणविन्दु की कन्या तथा भरद्वाज की कन्या के विवाह को ले सकते हैं । क्योंकि इन सभी विवाहों में अभिभावकों द्वारा सोच-समझकर किसी योग्य व्यक्ति को सालंकृत कन्या प्रदान की गयी ।

राजा कुशनाभ ने अपने मन्त्रियों के साथ विचार विमर्श कर काम्पिल्या नगरी में निवास करने वाले ब्रह्मदत्त के साथ अपनी सौ कन्याओं का विवाह किया था ।[५] इसी प्रकार राजा रोमपाद ने ऋषि ऋष्यश्रृंग को अपनी नगरी में आमन्त्रित कर अपनी पुत्री शांता का विधिवतविवाह

- -

१- आश्व० गृ० सू० १।६ , गौतम ४।४-१३ , नारद स्त्रीपुंस ३८-३६ ३।१ , ५६ वां प्रकरण आदि ।

२- आप० ध० सू० २।५।११।१७-२० , २।५।१२।१-२

३- मनु० ३।२७-३४

४- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० १२० ।

५- रामा० बाल का० ३३।१०, १६-२० ।

किया था।[1] राजा तृणाबिन्दु ने अपनी कन्या का विवाह महर्षि पुलस्त्य से किया था।[2] विश्रवा के उत्तम आचरण को जानकर महामुनि भरद्वाज ने अपनी कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया था।[3]

रामसीता, लक्ष्मण उर्मिला तथा भरत, शत्रुघ्न के विवाहों को हम " प्राजापत्य विवाह " के अन्तर्गत रख सकते हैं। क्योंकि इसके अन्तर्गत वर व कन्या को साथ-साथ धर्माचरण की आज्ञा प्रदान कर सालंकृत कन्या को प्रदान किया जाता है। जनक राम से कहते हैं कि - " रघुनन्दन ! यह पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्मचारिणी के रूप में उपस्थित है, इसे स्वीकार करो, यह परम पतिव्रता, महान सौभाग्यवती और छाया की भाँति सदा तुम्हारे पीछे चलने वाली होगी।[4] इसी प्रकार उन्होंने उर्मिला लक्ष्मण को[5], तथा कुशध्वज की दोनों कन्याओं माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति को भरत तथा शत्रुघ्न के लिये प्रदान किया।[6]

वर से शुल्क या धन लेकर कन्या व्याहने का रिवाज संभवत: उत्तर पश्चिमी सीमांत के आर्यों में प्रचलित था।[7] कैकय नरेश द्वारा कैकयी का विवाह दशरथ के साथ[8] उससे उत्पन्न पुत्र को युवराज बनाने की प्रतिज्ञा के बाद ही हुआ था।

१- रामा० बाल का० १०।३२

२- वही उ० का० २।२५

३- वही उ० का० ३।३

४- इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव ।
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना ।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा ।। रामा० बाल० का० ७३।२६-२७

५- रामा० बाल का० ७३।३०

६- वही बाल का० ७३। ३१-३३

७- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज, पृ० १२०

जब वर और कन्या परस्पर प्रेमासक्त हो संभोग के उद्देश्य से विवाह करते हैं , तो उसे गान्धर्व विवाह की संज्ञा प्रदान की गयी है । राजर्षियों , ब्रह्मर्षियों , दैत्यों , गन्धर्वों तथा राक्षसों की कन्यायें काम के वशीभूत होकर रावण की पत्नियां बन गयी थीं और कुछ रमणियां काम से मोहित होकर स्वयं उसकी सेवा में उपस्थित हो गयी थीं ।[१] उसके यहां ऐसी कोई स्त्री नहीं थी , जिसे वह बलात् हर लाया हो , वे सबकी सब उसे अपने अलौकिक गुणों से उपलब्ध हुई थीं ।[२] इसी प्रकार शूर्पणखा ने राम के प्रति कामासक्त होकर विवाह की इच्छा प्रकट की थी ।[३]

इस काल में राक्षसों में " राक्षस विवाह " प्रचलित था । रावण ने अनेकानेक नरेशों , ऋषियों , देवताओं , और दानवों की कन्याओं का अपहरण किया था , वह राक्षस जिस कन्या अथवा स्त्री को दर्शनीय रूप सौन्दर्य से युक्त देखता , उसके रक्षक बन्धुजनों का वध कर अपहरण कर लेता ।[४] इसी प्रकार मधु दैत्य द्वारा रावण की मौसेरी बहन कुम्भीनसी का अपहरण किया गया था ।[५]

राक्षसों में इन विवाहों के प्रचलित होने पर भी विवाह संस्कार को महत्त्वपूर्ण माना जाता था , तथा अग्नि को साक्षी मानकर इसका सम्पादन किया जाता था । रावण ने अग्नि प्रज्ज्वलित करके ही मंदोदरी का पाणिग्रहण किया था ।[६]

- -

१- रामा० यु० का० ९।६८-६९

२- वही यु० का० ९।७०

३- वही अरण्य का० १७। ८-९ , २४-२५

४- वही उ० का० २४। १-३

५- त्वामतिक्रम्य मधुनाराजन् कुम्भीनसीहृता ।। रामा० उ० का० २५।२६

६- रामा० उ० का० १२। १८-२० ।

आर्येतर जातियों जैसे वानरों में भी विवाह संस्कार का प्रचलन था । यद्यपि यह अवश्य है कि हम उनमें यौन सम्बन्धों के प्रति कुछ अनियमिततायें पाते हैं । जैसा कि प्रारम्भ में बालि द्वारा अपने छोटे भाई सुग्रीव की वधू के साथ काम सम्बन्ध स्थापित किया था ।[१] और बालिकी मृत्यु के पश्चात् सुग्रीव द्वारा अपने बड़े भाई की पत्नी तारा को अपनी पत्नी बना लेना[२] यह सूचित करता है कि उनमें यह अनियमित प्रथायें प्रचलित थीं , तथा समाज में उनका कोई विरोध नहीं था । यद्यपि अंगद के द्वारा अपने चचा के इस व्यवहार की कटु आलोचना की गयी थी ।[३] सम्भवत: यह आर्य जातियों के प्रभाव का ही परिणाम था ।

उपर्युक्त कुछ यौन अनियमितताओं के होते हुए भी इन आर्येतर जातियों में विवाह संस्था दृढ़मूल हो चुकी थी , क्योंकि " तारा ने किष्किन्धा के विवाहित तथा अविवाहित वानरों का उल्लेख किया था ।[४]

रावण द्वारा सीता का अपहरण भी राक्षस विवाह का ही उदाहरण है ।[५] रावण के द्वारा सीता से उसकी पत्नी बन जाने का अनुरोध करने पर तथा सीता के द्वारा आपत्ति करने पर कि मैं राम की

- -

१- रामा० कि० का० ८।१७ , १०।२७ , १८। १८-१६

२- वही कि० का० ३५।५

३- भ्रातुर्ज्येष्ठस्य यो भार्यां जीवतो महिषीं प्रियाम् ।
 धर्मेण मातरं यस्तु स्वीकरोति जुगुप्सित: ।।
 कथं स धर्मं जानीते येन भ्राता दुरात्मना ।   रामा० कि०का० ५५।३-४
 आर० सी० मजुमदार - एन्शियेंट इंडिया , पृ० २०८

४- अभार्या: सहभार्याश्च सन्त्यत्र वनचारिण: । रामा० कि० का० १६।१६

५- रामा० अरण्य का० ४६। १६ , २३ ।

विवाहिता पत्नी हूं। रावण कहता है कि - " मुझे वरण करने में तुम्हें धर्मलोप की आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि तुम्हारे साथ मेरा जो सम्बन्ध होगा, वह आर्ष धर्मशास्त्रों द्वारा समर्थित है।[1] यहां पर " आर्ष " का अर्थ एस० एन० व्यास ने उस विवाह विधि से लिया है, जो अर्द्ध सभ्य जातियों में प्राचीन काल से प्रचलित थी।[2] रावण ने यहां पर यह बात सीता को धोखे में डालने के लिये कही है, वास्तव में ऐसे पापपूर्ण कृत्यों का समर्थन धर्मशास्त्रों में कहीं नहीं है। कुमारी कन्या का अपहरण धर्मशास्त्रों में राक्षस विवाह कहा गया है, किन्तु वह भी निन्द्य माना गया है, इस प्रकार टीकाकारों द्वारा इसका अर्थ " राक्षस विवाह " किया गया है।

दुर्दान्त राक्षसों द्वारा बलोन्मत्त होकर अनेक कन्याओं के साथ बलात्कार किया गया था, जिसको धर्मशास्त्रों द्वारा पैशाच विवाह की संज्ञा दी गयी है। रावण द्वारा रम्भा[3] तथा वेदवती[4] के साथ बलात्कार किया गया था। पुञ्जिकस्थला अप्सरा का भी उसने बलात् उपभोग किया था।[5]

इसी प्रकार अयोध्या वापस आते हुए सीता ने पुष्पक विमान को रोककर तारा, रुमा तथा अन्य प्रमुख वानर पत्नियों को अयोध्या

- -

१- आर्षोऽयं दैवि निष्पन्दो यस्त्वामभिभविष्यति ।।

रामा० अरण्य का० ५५। ३४-३५

२- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज, पृ० १२०

३- रामा० उ० का० २६। ३६-४१

४- वही उ० का० १७। २७-२८

५- वही युद्ध का० १३। ११-१२ ।

ले चलने की इच्छा राम से प्रकट की थी।[१] वालि की मृत्यु के बाद तारा द्वारा जो विलाप किया गया था, वह पति-पत्नी के सम्बन्धों की प्रगाढ़ता को स्पष्ट करता है।[२]

इस प्रकार उस काल में हम प्राय: विवाह के उन उन्हीं सब प्रकारों का प्रचलन देखते हैं, जिनका कि बाद में धर्मशास्त्रों में सम्यक् वर्णन किया गया है व उनके लक्षण बताये गये हैं।

महाभारत में हम अनेक स्थलों पर अष्टविध विवाहों का उल्लेख पाते हैं। भीष्म द्वारा इन अष्टविध विवाहों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है - " विद्वानों ने कन्या को यथाशक्ति वस्त्राभूषणों से विभूषित करके गुणवान वर को बुलाकर उसे कुछ धन देने के साथ ही कन्यादान करना उत्तम [ब्राह्म विवाह] बताया है, कुछ लोग एक जोड़ा गाय और बैल लेकर कन्यादान करते हैं [यह आर्ष विवाह है]। कितने ही मनुष्य धन लेकर कन्यादान करते हैं [यह आसुर विवाह है], कुछ लोग बलात् कन्या का हरण करते हैं [यह राक्षस विवाह है] दूसरे लोग वर और कन्या की परस्पर अनुमति होने पर विवाह करते हैं [यह गान्धर्व विवाह है]। कुछ लोग अचेत् अवस्था में पड़ी हुई कन्या को उठा ले जाते हैं [यह पैशाच विवाह है], कुछ लोग वर और कन्या को एकत्र करके स्वयं ही उनसे प्रतिज्ञा कराते हैं कि हम दोनों गार्हस्थ्य धर्म का पालन करेंगे, फिर कन्या पिता दोनों की पूजा करके अलंकार युक्त कन्या का वर के लिये दान करता है, उसे [प्राजापत्य कहते हैं], कुछ लोग आर्ष विधि [यज्ञ] करके ऋत्विज को कन्या देते हैं, उसे [दैव विवाह] कहा गया है। इस प्रकार

१- रामा० युद्धका० १२३। २४-२५

२- वही कि० का० ३३ सर्ग ।

विद्वानों ने विवाह का यह आठवां प्रकार माना है।[1] इस प्रकार क्रमशः ब्राह्म , आर्ष , आसुर , राक्षस , गान्धर्व , पैशाच , प्राजापत्य , दैव ये क्रम परिलक्षित होता है। वहीं अन्यत्र अष्टविध विवाहों का वर्णन करते हुए यह क्रम रखा गया है - ब्राह्म , दैव , आर्ष , प्राजापत्य , आसुर , गान्धर्व , राक्षस तथा आठवां पैशाच।[2]

इसके अतिरिक्त अनुशासन पर्व में विवाह के प्रकारों की जो सूची दी गयी है , उसमें पांच प्रकार के ही विवाहों का उल्लेख किया गया है। वे इस प्रकार हैं - " ब्याहने योग्य वर को बुलाकर उसके साथ कन्या का विवाह करना उत्तम ब्राह्मणों का धर्म (ब्राह्म विवाह) है। जो धन आदि के द्वारा वरपक्ष को अनुकूल करके कन्यादान किया जाता है , वह शिष्टब्राह्मण और क्षत्रियों का धर्म कहा जाता है (इसी को (प्राजापत्य - विवाह) कहते हैं। जब कन्या के माता-पिता अपने पसंद किये वर को छोड़कर जिसे कन्या पसन्द करती है तथा जो कन्या को चाहता हो , ऐसे वर के साथ उस कन्या का विवाह करते हैं , तब वेदवेत्ता पुरुष उस विवाह को गान्धर्व धर्म कहते हैं , कन्या के बन्धु-बांधवों को लोभ में डालकर उन्हें बहुत सा धन देकर कन्या को खरीद लिया जाता है , उसे मनीषी पुरुष असुरों का धर्म कहते हैं। रोती , कलपती जिस कन्या का बलात् हरण किया जाता है , उसे राक्षस विवाह कहते हैं।[3]

- -

१- महा० आदिप० १०२। १२-१५

२- अष्टावेव समासेन विवाहा धर्मतः स्मृताः ॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥ महा० आदि प० ७३। ८-९

३- महा० अनु० प० ४४। ५-८ ।

त्रिपाठी जी के अनुसार आर्येतर जातियों में ये चार प्रकार गान्धर्व , राक्षस , आसुर और पैशाच इसी नाम से प्रचलित थे ।[१] इन पांच ब्राह्म , प्राजापत्य , गान्धर्व , आसुर और राक्षस विवाहों में। पूर्वकथित तीन विवाह धर्मानुकूल है और शेष दो पापमय हैं । आसुर और राक्षस विवाह किसी भी प्रकार न करना चाहिये । ब्राह्म , क्षात्र , गान्धर्व ये तीन विवाह धर्मानुकूल बताये गये हैं । वे पृथक हों या अन्य विवाहों से मिश्रित , करने ही योग्य हैं ।[२] वही आदिपर्व में कहा गया है कि पूर्वकथित जो चार विवाह - ब्राह्म , दैव , आर्ष , प्राजापत्य हैं , उन्हें ब्राह्मण के लिये उत्तम समझो । और ब्राह्म से लेकर गान्धर्व तक क्रमशः छः विवाह क्षत्रिय के लिये धर्मानुकूल बताये गये हैं । राजाओं के लिये तो राक्षस विवाह का भी विधान है । वैश्यों और शूद्रों में आसुर विवाह ग्राह्य माना गया है । अन्तिम पांच विवाहों में तीन तो धर्मसम्मत हैं और दो अधर्म रूप माने गये हैं । पैशाच और आसुर विवाह कदापि करने योग्य नहीं हैं । गान्धर्व और राक्षस दोनों क्षत्रिय जाति के लिये धर्मानुकूल ही हैं , ये दोनों विवाह परस्पर मिले हों या अलग-अलग क्षत्रिय के लिये करने योग्य ही हैं ।[३]

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि समय-समय पर विवाह के विविध प्रकारों की मान्यता में अन्तर आता रहा । विवाह

- -

१- डी० एम० त्रिपाठी - " मैरिज फार्मेस अन्डर एन्शियेंट हिन्दू ला " पृष्ठ ७ से १० ।

२- ब्राह्मः क्षात्रोऽथ गान्धर्व एते धर्म्या नरर्षभ ।
पृथक् वा यदि वा मिश्राः कर्तव्या नात्र संशयः ।। महा०अनु०प० ४४।८-१०

३- महा० आदि ७३। १०-१३ ।

के अष्टविध प्रकारों में प्रथम चार को प्रशस्त माना गया है तथा अन्तिम चार को अप्रशस्त की श्रेणी में रखा गया है ।

क्षत्रियों के लिये गान्धर्व विवाह तथा राक्षस विवाह को भी मान्यता प्रदान की गयी थी ।[1] बाद की सूची में आसुर और राक्षस विवाह की अत्यधिक निन्दा की गयी है , वहीं आदिपर्व में भीष्म काशिराज की कन्याओं का अपहरण करते हुए स्वयंवर को क्षत्रिय के लिये प्रशस्य बताते हैं और उसमें भी क्षत्रिय के लिये उस विवाह को श्रेष्ठ बताते हैं , जिसमें समस्त राजाओं को परास्त कर कन्या का अपहरण किया जाता है[2] जो कि आसुर विवाह का रूप है । अत: हम कह सकते हैं कि अनुशासनपर्व में वर्णित पंचविध विवाहों में जहां आसुर और राक्षस की निन्दा की है , सम्भवत: पैशाच विवाह का उसमें अन्तर्भाव है , क्योंकि पैशाच विवाह की सर्वत्र निन्दा की गयी है , और उसे पापमय माना गया है ।

प्रथम चार प्रकारों में पिता द्वारा या किसी अन्य अभिभावक द्वारा कन्या का दान किया जाता है , जब कि अन्य चार विवाहों में कन्या का दान नहीं किया जाता । यहां " दान " शब्द का प्रयोग गौण अर्थ में किया गया है जिसका अर्थ है पिता के अभिभावकीय उत्तरदायित्व का भार तथा कन्या के नियन्त्रण का भार पति को दे दिया गया है ।[3]

- -

१- महा० आदि प० ७३।११

२- वही आदिप० १०२।१६

३- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास , पृ० २९७ [प्रथम भाग]

कन्यादान को विवाह का श्रेष्ठ ढंग माना गया है। क्योंकि पिता या अभिभावक द्वारा काफी विचार विमर्श के बाद योग्य वर के साथ सालंकृत कन्या का दान किया जाता है जिससे धर्म, अर्थ तथा काम त्रिवर्ग की प्राप्ति हो सके। उत्तम सन्तान की प्राप्ति के लिये भी वर और कन्या का योग्य होना आवश्यक माना जाता था। इसलिये कन्यादान को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।[१] प्रथम चार प्रशस्य विवाहों में ब्राह्म विवाह को इसीलिये श्रेष्ठता प्रदान की गयी है कि इसमें बिना किसी शर्त कन्या का दान अभिभावक द्वारा किया जाता है। जब कि अन्य विवाहों में कोई न कोई शर्त अवश्य रहती है। जैसा कि मनुस्मृति में कहा गया है -

" ब्राह्म आदि चारों विवाहों में क्रम से शिष्ट, सम्मत तथा ब्रह्म वर्चस्वी ब्रह्म तेज वाले पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे स्वरूपवान, सत्वगुण से युक्त, धनवान, यशस्वी, पूर्ण भोग भोगने वाले तथा धर्मात्मा होकर सौ वर्ष जीते हैं, अन्य नीच विवाहों में क्रूर, झूठे व ब्रह्म धर्म से वैर करने वाले पुत्र उत्पन्न होते हैं। अत: निन्दित विवाहों का त्याग कर दें।[२] याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रथम चार विवाहों को श्रेष्ठ बताते हुए उनसे उत्पन्न सन्तति को कुल को तारने वाला बताया है।[३]

इस प्रकार प्राय: सभी धर्मशास्त्रकारों ने प्रथम चार ब्राह्म, दैव, आर्ष तथा प्राजापत्य को श्रेष्ठ माना है।[४] सभी ने ब्राह्म को सर्वश्रेष्ठ माना है और बाद के विवाहों को कम श्रेष्ठ माना है।[५]

- -

१- अग्नि पुराण २११।३७, नारद पुराण १।५।७५, अग्नि ३३६

२- मनु ३।३९-४२

३- याज्ञ० स्मृ० १।५८-६१, देखिये गौतम ४।२४-२७, आपस्तम्ब २।५।१२।३

४- मनु ३।२४, गौतम ४।१२, आप० ध० सू० २।५।१२।३, नारद स्त्रीपुंस ४४।

५- आप० ध० सू० २।५।१२।२, बौधा० ध० सू० १।११।९-११ ।

पैशाच की निन्दा सभी ने की है।[१] प्रारम्भ में ब्राह्मणों के लिये प्रथम चार प्रशस्य, क्षत्रिय के लिये एक राक्षस विवाह और वैश्य तथा शूद्र के लिये आसुर विवाह को श्रेष्ठ माना है।[२] वहीं दूसरी तरफ प्रथम छः ब्राह्मणों के लिये, क्षत्रिय के लिये अन्त के चार विवाह [आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच] और वैश्य तथा शूद्र के लिये आसुर, गान्धर्व और पैशाच विवाह का विधान है।[३] मनु के अनुसार तीन प्रकार के विवाह [प्राजापत्य, गान्धर्व और राक्षस] धर्म युक्त हैं, दो आसुर और पैशाच अधर्मयुक्त हैं। अतः आसुर और पैशाच विवाह को कभी नहीं करना चाहिये।[४] जब कि मनु ने ही [३।२४] में वैश्य तथा शूद्र के लिये आसुर विवाह को प्रशस्त माना है। मनु ने " गान्धर्व तथा राक्षस विवाह अलग-अलग मिश्र [मिले हुए] क्षत्रियों के लिये धर्मयुक्त माना है। मिश्र से तात्पर्य है जब स्त्री पुरुष के परस्पर अनुरागपूर्वक संवाद से विवाह करने वाला पुरुष युद्धादि के द्वारा विरुद्ध पक्ष को जीतकर उस कन्या के साथ विवाह करता है, तब उन गान्धर्व और राक्षस विवाह को मिश्र कहते हैं।[५]

स्वयंवर -

महाकाव्य में हम विवाह की स्वयंवर विधि को बहुतायत से पाते हैं। वैसे तो " स्वयंवर " का तात्पर्य यह होता है कि " स्वयंवर " अर्थात

- -

१- मनु ३।२५

२- बौधा० ध० सू० १।११।१०, मनु ३।२४

३- मनु ३।२३

४- वही ३।२५

५- वही ३।२६ एवं बौधा० ध० सू० १।११। १३-१६ ।

कन्या अनेक वरों में से स्वयं एक वर का चुनाव करे । परन्तु कालान्तर में " स्वयंवर " का जो वास्तविक अर्थ था , वह तो विलुप्त होता गया और उसमें अत्यन्त जटिलतायें बढ़ने लगीं तथा अब यह कन्या की इच्छा पर निर्भर न रहकर अभिभावकों की इच्छा पर निर्भर हो गया । क्योंकि इसमें पिता या अभिभावक कोई न कोई शर्त अवश्य जोड़ देते थे । जिससे कन्या वर को चुनने में स्वतंत्र नहीं होती थी , अपितु उसे शर्त को पूरा करने वाले को ही अपनाना पड़ता था । इस श्रेणी में हम सीता तथा द्रौपदी आदि के स्वयंवर को रख सकते हैं । इसके साथ ही " स्वयंवर " के वास्तविक अर्थ को चरितार्थ करने वाले " स्वयंवर " भी हुए हैं ।

प्रारम्भ में सम्भवतः स्वयंवर सभी जातियों के लिये था ।[१] द्रौपदी के स्वयंवर में क्षत्रियों के साथ-साथ ब्राह्मणों ने भी भाग लिया था ।[२] पाण्डव ब्राह्मण वेश में ही स्वयंवर सभा में उपस्थित हुए थे ।[३] और इसी रूप में अर्जुन ने लक्ष्यभेद कर द्रौपदी को प्राप्त किया था ।[४]

लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में यह क्षत्रियों तक ही सीमित हो गया होगा क्योंकि ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन के लक्ष्य भेदकर द्रौपदी को प्राप्त कर लेने के पश्चात आहत दर्प वाले राजा कहते हैं कि - " स्वयंवर में कन्या द्वारा वरण प्राप्त करने का अधिकार ही ब्राह्मणों को नहीं है । लोगों में यह बात प्रसिद्ध है कि स्वयंवर क्षत्रियों का ही होता

१- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास , पृ० ३०० (प्रथम भाग)

२- महा० आदिप० १८४।१४

३- वही आदिप० १८७।१

४- वही आदिप० १८७। २१, २८ ।

है।[1] इससे यह प्रतीत होता है कि यद्यपि क्षत्रिय यह मानते थे कि स्वयंवर केवल उन्हीं के वर्णका होता है, परन्तु यह कोई सर्वमान्य नियम नहीं था, अपितु उसमें अन्यवर्ण वाले भी भाग लेते थे, अन्यथा ब्राह्मण वेषधारी अर्जुन लक्ष्य भेद करने के लिये उद्यत ही नहीं हो सकते थे। क्योंकि अर्जुन के साथ द्रौपदी के चले जाने पर द्रुपद धृष्टद्युम्न से पूछते हैं कि -" क्या द्रौपदी को पाने वाला मनुष्य अपने समान वर्ण (क्षत्रिय कुल) का ही कोई श्रेष्ठ पुरुष है? अथवा वह अपने से भी श्रेष्ठ ब्राह्मणकुल का है? मेरी कृष्णा का स्पर्श कर किसी निम्न वर्ण वाले मनुष्य ने आज मेरे मस्तक पर अपना बायां पैर रख दिया।[2]

इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण स्वयंवर में भाग ले सकते थे, अवश्य शूद्रों को इसमें भाग लेने का अधिकार नहीं था। कर्ण को लक्ष्यवेध करने के लिये उद्यत देखकर द्रौपदी ने कहा कि -" मैं सूत जाति के पुरुष का वरण नहीं करूंगी।[3] यद्यपि कृष्णा के स्वयंवर की जो घोषणा की गयी थी, उसमें इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं था। घोषणा में केवल यही कहा गया था कि -" जो वीर इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर प्रस्तुत बाणों द्वारा लक्ष्य वेध करेगा, वही मेरी पुत्री को प्राप्त कर सकेगा।[4]

- -

१- न च विप्रेष्वधीकारो विद्यते वरणंप्रति ।
स्वयंवर: क्षत्रियाणामितीयं प्रथिता श्रुति: ।। महा०आदिप० १८८।७

२- महा० आदिप० १९१।१६

३- नाहं वरयामि सूतम् । महा० आदिप० १८६।२३

४- महा० आदिप० १८४।११ ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि स्वयंवर के माध्यम से विवाह करने पर भी अभिभावकों की यही इच्छा होती थी कि कन्या समान वर्ण के पुरुष से ही ब्याही जाय । लक्ष्यवेध के पश्चात द्रुपद द्वारा व्यक्त की गयी चिन्ता इस बात को स्पष्ट करती है ।[१] जहाँ तक ब्राह्मणों के स्वयंवर में भाग लेने का प्रश्न है, उन्हें मनाही तो नहीं थी, परन्तु चूंकि युद्ध क्षत्रियों का ही प्रमुख कार्य था और स्वयंवर में अक्सर युद्ध की सम्भावना रहती थी और अधिकांश ब्राह्मण वर्ण इस कला में निपुण नहीं होते थे । केवल कुछ ही ब्राह्मण धनुर्वेद में पारंगत थे, इसलिये क्षत्रिय इस ओर से निश्चिन्त रहते थे, लेकिन जब कोई ब्राह्मण इस प्रकार का साहस कर बैठता तो वे उसे पसन्द नहीं करते थे । हापकिन्स लिखते हैं कि - " कवि का इरादा हम लोगों को यह विश्वास दिलाने का है कि चुनाव केवल क्षत्रिय जाति में ही होता था लेकिन ऐसे कथानक हैं, जिनसे यह मालुम पड़ता है कि ब्राह्मण लोग भी बराबर से भाग लेते थे ।[२]

ब्राह्मण कन्याओं ने भी " स्वयंवर विधि " से वरों का वरण किया था । यद्यपि उनके स्वयंवर इतने विशाल तथा भव्य नहीं होते थे, जैसे कि क्षत्रियों के होते थे । शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ने स्वयंवर विधि से ही ययाति का पति रूप में वरण किया था ।[३] वह ययाति से

१- महा० आदिप० १६१।१४-१५

२- हापकिन्स - " दि सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इंडिया, पृ० १०२ ।

३- स्वयंवरं वृणे शीघ्रं निवेश्य च नाहुषम् ।। महा० आदि प० ८१।२७, पृ०

कहती है - " राजन् मैंने आपका वरण कर लिया है ।[1] बाद में अभिभावक विधिवत कन्या वर को समर्पित कर देते थे ।[2] इसी प्रकार ऋषि देवल पुत्री सुवर्चला के लिये भी स्वयंवर का आयोजन किया गया था । समस्त ब्राह्मण कुमारों को आमन्त्रित कर देवल अपनी पुत्री सुवर्चला से कहते हैं - " बेटी , ये जो मुनि यहां पधारे हैं , वे वेदवेदांगों से सम्पन्न , कुलीन और शीलवान हैं , इन लोगों में से महान व्रतधारी ऋषि कुमार को पति बनाना चाहो , उसे चुन लो , उसी के साथ मैं तुम्हारा विवाह कर दूंगा ।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मणों में भी स्वयंवर विधि प्रचलित थी , तथापि वह क्षत्रियों की भांति न होकर ब्राह्मणों के सात्विक गुण के अनुसार शान्त ढंग से होती थी ।

स्वयंवर की अनेक कोटियों में प्रथम कोटि में हम कुन्ती तथा दमयन्ती के स्वयंवर को ले सकते हैं । जिसमें कि कन्याओं ने अपनी इच्छा के अनुसार स्वयंवर में वर का वरण किया । कुन्ती ने स्वयंवर सभा में उपस्थित हुए राजाओं में पाण्डु का वरण किया था ।[4] और दमयन्ती ने स्वयंवर सभा में अनेकानेक समागत राजाओं में अपने ईप्सित नल का वरण किया था ।[5]

१- राजन् वृतोऽस्या । महा० आदिप० ८१।२७

२- महा० आदिप० ८१।३१

३- वही शा० प० २२० अध्याय , पृ० ५६-५८ ।

४- महा० आदिप० १११।८-६

५- वही वन प० ५७।२७-२८ ।

दूसरी कोटि में हम सावित्री द्वारा स्वयंवरण के उदाहरण को ले सकते हैं जिसमें उसके पिता ने कहा था - " बेटी , तू किसी मनोवांछित वर का वरण कर ले , जिस पुरुष को तू पति रूप में प्राप्त करना चाहे , उसका मुझे परिचय दे देना , मैं सोच-समझकर उसके साथ तेरा ब्याह कर दूंगा ।[1]

तीसरी कोटि में हम सीता[2] तथा द्रौपदी[3] के स्वयंवर को ले सकते हैं , जिसमें निर्धारित शर्त पूरी करने पर ही कन्या प्राप्त की जा सकती है । महाभारत मीमांसा में सी० वी० वैद्य इस प्रकार के विवाह को स्वयंवर मानने से इन्कार करते हैं ।[4]

क्षत्रियों में स्वयंवर को श्रेष्ठ माना गया है और उसमें भी राजाओं को परास्त कर कन्या अपहरण को और अधिक श्रेष्ठ माना गया है ।[5]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि " हापकिन्स " प्राजापत्य विवाह को स्वयंवर से जोड़ते हैं और प्राजापत्य विवाह को स्वयंवर की तरह मानते हैं , उनका मत है कि स्वयंवर को ही बाद में प्राजापत्य नाम दिया गया है ।[6]

- -

१- प्रार्थित: पुरुषो यश्च स निवेद्यस्त्वया मम ।
विमृश्याहं प्रदास्यामि वरयत्वं यथेप्सितम् ।। महा० वन प० २९३।३३

२- रामा० बाल का० ६६। १७-१८

३- महा० आदिप० १८४।११

४- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० २३२

५- महा० आदिप० १०२।१६

६- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इंडिया , पृ० ३०३-३०४ ।

परन्तु उनका यह मत उचित नहीं कहा जा सकता । क्योंकि प्राजापत्य विवाह के अन्तर्गत वर और कन्या को साथ-साथ धर्माचरण करने की प्रतिज्ञा कराकर कन्या का दान किया जाता है , जब कि स्वयंवर में कन्या द्वारा स्वयं अपने इच्छित वर का वरण किया जाता है , बाद में अवश्य ही उसके स्वरूप में रूपान्तरण होता गया और यह मात्र कन्या की इच्छा पर आधारित न रहा । स्वयंवर को हम गान्धर्व और राक्षस विवाह का मिश्र रूप अवश्य कह सकते हैं । ऐसा ही मन्तव्य डा० गुप्त ने भी व्यक्त किया है ।[1] बाद में गान्धर्व और राक्षस विवाह के ही मिश्ररूप को मान्यता दी गयी जैसा कि भीष्म ने काशिराज की कन्याओं के स्वयंवर में कन्याओं का अपहरण करते हुए अपहरण को राजाओं के लिये श्रेष्ठ बताया है ।[2] दूसरे यह उल्लेखनीय है कि स्वयंवर का आयोजन इसलिये किया जाता था कि कन्या अपने इच्छित वर को प्राप्त कर सके , जैसा कि पहले से ही नल के गुणों से आसक्त दमयन्ती ने स्वयंवर में नल का वरण किया था ।[3] और नल के पुन: खो जाने के बाद उसने पुन: स्वयंवर विधि से ही नल को खोज निकालने का उपाय सोचा , जब कि प्राजापत्य में इस प्रकार के प्रेम तथा इच्छित वर को प्राप्त करने का कोई विधान नहीं था । हापकिन्स ने अनुशासन पर्व में वर्णित ब्राह्म , क्षात्र और गान्धर्व में क्षात्र को प्राजापत्य मानकर उसको स्वयंवर का रूपान्तरण मान लिया है , परन्तु यह मत भी उचित नहीं है । क्षात्र विवाह सम्भवत: स्वयंवर ही था , यह अवश्य है कि उसमें कुछ शर्तें भी जोड़ दी जाती थीं और उन

- -

१- डा० नत्थूलाल गुप्त - महाभारत एक समाजशास्त्रीय अनुशीलन , पृ० ८१

२- महा० आदि प० १०२।१६

३- वही वन०प० ५४।१३ , ६७। २०-२८

४- महा० अनु० प० ४४।१० ।

शर्तों को पूरा करने पर ही कन्या प्रदान की जाती थी। इसी प्रकार का मत मीमांसाकार ने भी व्यक्त किया है।[१] और इस प्रकार के क्षात्र विवाह में ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों भाग लेते थे। जैसा कि द्रौपदी के स्वयंवर में दोनों वर्णों के लोगों ने भाग लिया था। रुक्मिणी का विवाह राक्षस व गान्धर्व मिश्रित था।[२]

गान्धर्व विवाह का परिणाम ही स्वयंवर की विधि थी और बाद में उसमें राक्षस विवाह का भी मिश्रण हो गया। जैसा कि आदि पर्व में कहा गया है - " गान्धर्व और राक्षस दोनों विवाह क्षत्रिय जाति के लिये धर्मानुकूल ही है उनके विषय में तुम्हें सन्देह नहीं करना चाहिये। वे दोनों विवाह परस्पर मिले हों या पृथक्-पृथक हों क्षत्रिय के लिये करने योग्य ही हैं।[३] कण्व कहते हैं - " क्षत्रिय के लिये गान्धर्व विवाह श्रेष्ठ माना गया है। स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे को चाहते हों, उस दशा में उन दोनों का एकान्त में जो मन्त्र हीन सम्बन्ध स्थापित होता है, उसे " गान्धर्व विवाह " कहा गया है।[४] इस प्रकार के विवाह गन्धर्वों में होते थे, इसीलिये इसे " गन्धर्व " नाम दिया गया। गान्धर्व कामातुर

- -

१- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा, पृ० २३१ ।

२- सुखमय भट्टाचार्य - महाभारत कालीन समाज, पृ० ११
भट्टाचार्य के अनुसार स्वयंवर में ब्राह्म एवं गान्धर्व विवाह मिश्रित थे। पृ० ११

३- गान्धर्व राक्षसौ क्षत्रे धर्म्यौ तौ मा विशङ्किथाः ।
पृथग् वा यदि वा मिश्रौ कर्तव्यौ नात्र संशयः ॥ महा० आदि प० ७३।१२
देखिये सुखमय भट्टाचार्य महाभारतकालीन समाज, पृ० १२

४- क्षत्रियस्य हि गान्धर्वो विवाहः श्रेष्ठ उच्यते ।
सकामायाः सकामेन निर्मन्त्रो रहसि स्मृतः ॥ महा० आदिप० ७३।२७ ।

होते थे , जैसा कि तैत्तिरीय संहिता[1] तथा ऐतरेय ब्राह्मण[2] का कथन है। गान्धर्व और अप्सरा हिमालय में रहने वाली मानवी जातियाँ मानी जा सकती हैं , उनमें प्रचलित गान्धर्व विवाह आर्य लोगों विशेषत: क्षत्रियों में होने लगा।[3] अनुशासन पर्व के अनुसार गान्धर्व विवाह वह है - जिसमें अभिभावक अपने ईप्सित वर को छोड़कर कन्या के अभिप्रेत वर से उसका विवाह करते हैं।

वैद्य का कहना है कि दमयन्ती का विवाह अनुशासन पर्व में वर्णित गान्धर्व विवाह के अनुसार ही है।[4] गान्धर्व विवाह सामान्यत: एकान्त में किये गये समझौते पर आश्रित होता था। इसके लिये " संयोग " शब्द का प्रयोग किया जाता था। महाकाव्य की अनेक कहानियों में गान्धर्व विवाह व्यवहार में लाया गया है। दुष्यन्त और शकुन्तला का विवाह गान्धर्व विवाह का उदाहरण है।[5] यह विवाह के प्रकारों में अत्यन्त प्राचीन और स्वाभाविक था , यही कारण था कि कुछ सूचियों में इसे किसी विशेष वर्ण के लिये नहीं कहा गया।[6]

- -

१- तै० सं० ६।१।६।५ स्त्रीकामा वै गन्धर्वा: । ऐत० ब्रा० १।५।१

२- ऐत० ब्रा० ५।१ , मै०सं० ३।७।३। अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन - गान्धर्व कामी प्रकृति के माने जाते थे। पृ० ४२।

३- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा - पृ० २३२

४- सी० वी० वैद्य - " महाभारत मीमांसा , पृ० २३२

५- महा० आदिप० ७३।६ , २१४।२४

६- वही अनु०प० ४४।१० , मनु ३।२३ , नारद १२।४२, ४४ सबके लिये माना है। महा० आदि प० ७३।४ विवाहानां हि रम्भोरु: गान्धर्व: श्रेष्ठ उच्यते। बौधायन १।११।२०।१२-१४ क्षत्र और वैश्य के लिये मान्य माना है। वात्स्यायन - " कामसूत्र " ३।२९-३० में पारस्परिक प्रेम के द्वारा सम्पन्न होने वाले विवाह को सभी विवाहों में श्रेष्ठ माना है॥

हापकिन्स[१] स्वयंवर को पुरानी पद्धति या संस्कार नहीं मानते, वे इस सम्बन्ध में तर्क देते हुए कहते हैं कि - " यदि यह पुरानी पद्धति होती तो इसका उल्लेख अवश्य कानून की पुरानी पुस्तकों में पाया जाता।" हापकिन्स का यह मत भी उचित प्रतीत नहीं होता। क्योंकि ऋग्वेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि युवक व युवतियां परस्पर प्रेम व सौन्दर्य से आकर्षित होकर विवाह बन्धन में बंधने का प्रयास करते थे। युवती को बहुत से विवाहेच्छुकों में से किसी एक को चुनने की स्वतंत्रता रहती थी।[२] राजा पुरुमित्र की कन्या शुन्ध्यु या कमद्यु के विमद ऋषि से विवाह का उल्लेख है।[३] सायणाचार्य ने ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ११६ वें सूक्त के प्रथम मन्त्र का[४] भाष्य करते हुए उपरोक्त विवाह का वर्णन किया है। कमद्यु ने विमद को स्वयंवर सभा में पति चुना, ज्यों ही विमद अपनी पत्नी के साथ जा रहा था, स्वयंवर में आये हुए अन्य राजाओं ने उस पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में अश्विनीकुमारों ने विमद की सहायता की और वधू को अपने रथ में बैठाकर उसके पति के घर पहुंचा दिया गया। स्पष्ट है कि उस काल में स्वयंवर की प्रथा थी, अवश्य ही उसका स्वरूप महाकाव्य के समान इतना विस्तृत नहीं था। हापकिन्स ने पिशल[५] के मत को उद्धृत किया है, जिसने कि ऋग्वेद में स्वयंवर की प्रथा को माना है, परन्तु हापकिन्स इसे नहीं स्वीकार करते और कहते हैं कि यह कोई ऐसा संस्कार नहीं था जो

- -

१- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इंडिया, पृ० ३०४।

२- ऋ० १०।२७।१२

३- ऋ० १०।३९।७ - " युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम्

४- डा० शिवदत्त ज्ञानी - वेदकालीन समाज, पृ० १६३।

५- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इंडिया, पृ० ३०६।

कि महाकाव्य में वर्णित स्वयंवर के मुकाबले का हो । "

पुराणों में भी स्वयंवर का वर्णन आया है । विष्णु पुराण में आया है कि - " प्रद्युम्न ने रुक्मी की पुत्री को स्वयंवर में प्राप्त किया था ।[1] इसी पुराण में वर्णन है कि काशिराज को अपनी कन्या के आग्रहवश स्वयंवर का आयोजन करना पड़ा , जिसमें उसने अपने मनोनुकूल पति का वरण किया था ।[2] युधिष्ठिर ने शिबि देश के राजा गोवासन की पुत्री देविका को स्वयंवर में प्राप्त किया ।[3]

राक्षस विवाह -

जैसा कि हमने उपर्युक्त वर्णन में देखा है कि स्वयंवर में जब कन्यायें अपने इच्छित वर को वरण नहीं कर पाती थीं और उनका अपहरण कर लिया जाता था तो उसको " राक्षस विवाह " की श्रेणी में रखा गया है । स्मृतियों में प्रतिपादित व्यवस्था के अनुसार युद्धहृता कन्या के साथ सम्बन्ध विवाह को राक्षस विवाह के अन्तर्गत रखा गया है ।[4] अल्तेकर के अनुसार राक्षस विवाह का उचित नाम क्षात्र विवाह ही होना चाहिये । वह हमें इतिहास काल के पूर्व के समय की स्मृति दिलाता है , जब कि स्त्रियां

- -

१- प्रद्युम्नोऽपि महावीर्यो रुक्मिणस्तनयां शुभाम् ।
स्वयंवरे तां जग्राह —————— ।। विष्णु पु० ५।२८।६

२- विष्णु पु० ३।१८।७७

३- महा० आदिपर्व ९५।७६

४- युद्धहरणेन राक्षसः ——— । विष्णु स्मृ० २४।२५ , राक्षसो युद्धहरणात् । याज्ञ स्मृ० १।६१ , मनु ३।३३ ।

युद्ध की पारितोषिक समझी जाती थी । इस प्रकार के विवाह में विजेता दुल्हन को ले जाता था और उससे विवाह कर लेता था ।[१]

भीष्म के द्वारा स्वयंवर में उपस्थित काशिराज की कन्याओं का अपहरण राक्षस विवाह का ही उदाहरण है ।[२] दूसरा उदाहरण अर्जुन द्वारा सुभद्रा का हरण है । कृष्ण अर्जुन से स्वयं अपनी बहन सुभद्रा के अपहरण का परामर्श देते हुए कहते हैं कि - " क्षत्रियों के लिये विवाह का स्वयंवर एक प्रकार है , परन्तु उसका परिणाम सन्दिग्ध होता है , क्योंकि स्त्रियों का स्वभाव अनिश्चित हुआ करता है । बलपूर्वक कन्या का हरण भी शूरवीर क्षत्रियों के लिये विवाह का उत्तम हेतु कहा गया है , ऐसा धर्मज्ञ पुरुषों का मत है , इसलिये तुम इसका हरण कर ले जाओ ।[३] अर्जुन के द्वारा सुभद्रा का हरण कर लिये जाने पर वे वृष्णिवंशियों को समझाते हुए कहते हैं - " अर्जुन यह जानते हैं कि सात्वत वंश के लोग धन के लोभी नहीं हैं , अतः धन लेकर कन्या ली नहीं जा सकती , स्वयंवर में कन्या के मिल जाने का पूर्ण निश्चय नहीं रहता , भला कौन ऐसा वीर होगा जो पशु की तरह पराक्रम शून्य होकर कन्यादान की प्रतीक्षा में बैठा रहेगा । इसलिये अर्जुन ने सभी दोषों पर दृष्टिपात कर क्षत्रिय धर्म के अनुसार बलपूर्वक कन्या का अपहरण किया है ।[४]

१- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० ३७

२- महा० आदिप० १०२।१७

३- वही आदिप० २१८।२१-२२

४- अर्थं लुब्धान् न वः पार्थो मन्यते सात्वतान् सदा ।
स्वयंवरमनाकृष्यं मन्यते चापि पाण्डवः ।।
प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत् कोऽनुमन्यते ।
० ० ० ० ० ० ० ० ०

अल्टेकर लिखते हैं कि - यह तर्क यौद्धिक विचारधारा की एक अच्छी झलक प्रदर्शित करता है।[1] दुर्योधन ने स्वयंवर सभा में उपस्थित कलिंगराज की कन्या का अपहरण किया था।[2] महान असुर केशी द्वारा अपने को चाहने वाली दैत्य सेना का अपहरण किया गया था।[3]

यहाँ पर यह द्रष्टव्य है कि पराक्रम द्वारा हरकर लायी जाने वाली कन्याओं में अगर वह मन से भी दूसरे किसी को पति रूप में वरण करने का मन्तव्य करती थी तो वर को उसे स्वीकार करने में थोड़ी मानसिक उलझन का सामना करना पड़ता था और वे ऐसी कन्या से विवाह करने को उद्यत नहीं होते थे। जैसा कि भीष्म द्वारा काशिराज की तीन कन्याओं का अपहरण कर लाने पर दो कन्याओं का विवाह तो उन्होंने विचित्रवीर्य के साथ कर दिया[4] परन्तु उनकी बड़ी बहन अम्बा के यह कहने पर कि मैंने पहले से मन ही मन राजा शाल्व का वरण कर लिया था और स्वयंवर में भी मैं उन्हीं का वरण करती, भीष्म असमंजस में पड़ गये और तब ब्राह्मणों से काफी विचार विमर्श करने के बाद उन्होंने अम्बा को शाल्व के यहाँ जाने की अनुमति दे दी।[5]

इस प्रकार जहाँ एक ओर मन से भी दूसरे पुरुष को वरण करने वाली कन्या को स्वीकार करने में आर्य लोग कठिनता का अनुभव करते थे

- -

१- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० ३७

२- महा० शा० प० ४।१२-१३

३- वही वनपर्व २२४।३-४

४- वही आदिप० १०२।६५

५- वही आदिप० १०२। ६१-६४ ।

वहीं पर जयद्रथ द्वारा द्रौपदी का अपहरण इस बात को सूचित करता है कि विवाहित पत्नियों का भी अपहरण होता था और लोग इस प्रकार की स्त्रियों को भी पत्नी बनाने के इच्छुक रहते थे , लेकिन इसके लिये उन्हें उसके पतियों या उसके अन्य रक्षकों को परास्त करना आवश्यक रहता था । जैसा कि धौम्य ऋषि कहते हैं - " जयद्रथ , तू क्षत्रियों के प्राचीन धर्म पर दृष्टिपात कर । पाण्डवों को परास्त किये बिना द्रौपदी को ले जाने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है ।[1] इससे स्पष्ट है कि क्षत्रियों का पुरातन काल से यह धर्म रहा है कि वे दूसरे क्षत्रिय को जीतकर उसकी विवाहिता स्त्री को भी हरण कर लेते थे ।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस रीति में पत्नी के ऊपर जीतने वाले का ही अधिकार होता था और उसे सहमत होने के लिये एक वर्ष का समय दिया जाता था ।[3] श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण भी राक्षस विवाह का उदाहरण है ।

सम्भव है कि बाद में उसके असहमत होने पर उस पर अधिकार कर लिया जाता रहा हो परन्तु यह धर्मसम्मत प्रथा नहीं रही होगी , क्योंकि जब धर्म के ज्ञाता क्षत्रिय मन से भी दूसरे का वरण करने वाली कन्या को वरण नहीं करते थे , जैसा कि भीष्म द्वारा काशिराज की कन्याओं के उदाहरण से स्पष्ट है ।[4] फिर ऐसे गर्हित कार्य का समर्थन वे कैसे करते होंगे ।

- -

१- नेयं शक्या त्वया नेतमविजित्य महारथान् ।
धर्मं क्षत्रस्य पौराणमवेक्षस्व जयद्रथ ।। महा० वनप० २६८।२६

२- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० २३४

३- महा० शा० प० ६६।५

४- महा० आदि० १०२।६१ , ६२ ।

आसुर विवाह -

आसुर विवाह में कन्या विक्रय प्रमुख होता था । इसमें वरपक्ष कन्यापक्ष के लोगों को पर्याप्त धन देकर कन्या प्राप्त करता था[1] और तत्पश्चात् उससे विवाह करता था । महाभारत में यह वैश्यों और शूद्रों के लिये ग्राह्य माना गया है ।[2] असुरों में प्रचलित होने के कारण इसका नाम आसुर पड़ गया । असुर कौन है ? इस सम्बन्ध में मीमांसाकार ने लिखा है कि - " ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर असल में असुर पर्शियन अथवा पारसी हैं , और वेद आर्यों में प्रचलित विवाह की यह प्रथा भारती आर्यों में भी थी ----- विशेषकर पंजाब की कुछ जातियों में आसुर विवाह हुआ करते थे ।[3]

इस सम्बन्ध में मद्रराज शल्य द्वारा उसकी बहन माद्री का विवाह उल्लेखनीय है । भीष्म द्वारा पाण्डु के लिये माद्री का वरण करने पर शल्य कुछ संकोच से कहते हैं कि - " इस कुल में पहले के श्रेष्ठ राजाओं ने कुछ शुल्क लेने का नियम चला दिया है , वह अच्छा हो या बुरा , मैं उसका उल्लंघन नहीं कर सकता ------ यह हमारा कुलधर्म है , और वही हमारे लिये परम प्रमाण है ।[4] " भीष्म इसे स्वीकार करते हुए कहते हैं - " यह उत्तम धर्म है , स्वयं स्वयंभू ब्रह्मा जी ने इसे धर्म कहा है , यदि तुम्हारे पूर्वजों

- -

१- महा० आदिप० १०२।१४

२- वही आदिप० ७३।११

३- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० २३२-२३३

४- महा० आदि प० ११३। ६-११ ।

ने इसे स्वीकार कर लिया तो कोई दोष नहीं , साधु पुरुषों द्वारा सम्मानित यह कुलमर्यादा हम सबको विदित है ।[१] भीष्म से धन प्राप्त करने के पश्चात शल्य ने माद्री का विवाह पाण्डु के साथ किया ।[२] अल्टेकर ने इस विवाह के सम्बन्ध में लिखा है - " इस प्रथा के पीछे सम्भवत: यह विचारधारा थी कि कन्या को बिना मूल्य लिये प्रदान कर देना उसके तथा ~~तथा~~ उसके परिवार के लिये असम्मानजनक स्थिति का द्योतक होता था ।[३] राजा दुर्योधन ने अपनी कन्या सुदर्शना के शुल्क रूप में अग्नि से यह याचना की थी कि इस नगरी में आपका सदा निवास रहे ।[४] ऋचीक द्वारा कन्या शुल्क चुकाने पर गाधि ने अपनी पुत्री सत्यवती का विवाह किया था ।[५] ययाति कन्या माधवी के शुल्क रूप में गालव ने चार राजाओं से आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े प्राप्त किये थे ।[६] भीम ने वीर्यशुल्का काशिराज की कन्या का शुल्क चुकाकर विवाह किया था ।[७] सत्यवती का होने वाला पुत्र राज्याधिकारी हो , यह शुल्क शान्तनु से दाशराज ने मांगा था ।[८] सीता भी वीर्यशुल्का थी ।[९]

- -

१- धर्म एष परो राजन् स्वयमुक्त: स्वयम्भुवा ।
नात्र कश्चन दोषोऽस्ति पूर्वैविधिरयंकृत: ।। महा०आदिप० ११२।१२-१३

२- महा० आदिप० ११२।१४-१६

३- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० ३६

४- महा० अनु० प० २।३१

५- वही अनु० प० ४।१० , १८-१९

६- वही उद्योग प० ११५।१३ , ११६।१४

७- वही आदिप० ९५।८०

८- वही आदि प० १००।७६ , पृ० ३१०

९- रामा० बाल का० ६६।२० ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत के काल में कन्याशुल्क की प्रथा प्रचलित थी , वह चाहे धन के रूप में हो अथवा " वीर्य " इत्यादि अन्य शुल्क रखा गया हो । लेकिन अब इस प्रथा के विरोध में जनमत प्रबल होता जा रहा था , यद्यपि जहां अब भी यह प्रथा प्रचलित थी , उनमें इतना नैतिक साहस उत्पन्न नहीं हो सका था कि वे खुलकर उसका विरोध करते । अनुशासन पर्व में कन्या विक्रय की निन्दा करते हुए कहा गया है - " जो क्रय और शुल्क को मान्यता देते हैं , वे धर्मज्ञ नहीं हैं , ऐसे लोगों को कन्या नहीं देनी चाहिये , और न ऐसी कन्या के साथ विवाह करना चाहिये , क्योंकि भार्या किसी प्रकार भी खरीदने या विक्रय करने की बात नहीं है जो दासियों को खरीदते और बेचते हैं , वे बड़े लोभी और पापात्मा हैं , ऐसे ही लोगों में पत्नी को खरीदने या बेचने की निष्ठा होती है ।[१] भीष्म भी इसकी कटु निन्दा करते हैं ।[२] जो व्यक्ति कन्या विक्रय करते हैं वे कुम्भीपाक आदि सात नरकों से भी निकृष्ट नरक में पड़ते हैं ।[३] और वे विवाह में लिये जाने ' गोमिथुन ' के जोड़े को लिया जाना भी उचित नहीं समझते , क्योंकि मूल्य थोड़ा लिया जाय या बहुत कन्या विक्रय हो जाता है ।[४] कन्या विक्रय को उपपातक की श्रेणी में रखा गया है ।[५] उस समय इस प्रथा के प्रचलन की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि - " यद्यपि

- -

१- ये मन्यन्ते क्रयं शुल्कं न ते धर्मविदो नराः ।
महा० अनु० प० ४४। ४५-४७

२- महा० अनु० प० ४५। २०

३- वही अनु० प० ४५। १८-१६

४- वही अनु० प० ४५। २०

५- वही अनु० प० ६३। १२८ , ६४। ३१

कुछ पुरुषों ने ऐसा आचरण किया है , परन्तु यह सनातन धर्म नहीं है । दूसरे लोगों में बहुत सी प्रवृत्तियां लोकाचारवश देखी जाती है ।[1] सभी मनुष्यों के विक्रय की निन्दा की गयी है , फिर अपनी सन्तान को तो बेचना अधर्म ही है ।[2]

यहां यह स्वीकार किया गया है कि अगर कन्या के लिये वर से आभूषण इत्यादि लेकर पुन: उसे दे दिया जाता है तो यह विक्रय नहीं है । कन्या के लिये कोई वस्तु स्वीकार करके कन्या का दान करना सनातन धर्म है ।[3]

धर्मशास्त्र लेखकों ने भी कन्या विक्रय की कटु निन्दा की है ।[4] पद्म पुराण में कहा गया है - " जिसने अपनी पुत्री को विवाह में बेंचा है , उसके मुख को नहीं देखना चाहिये ।[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ लोगों में इस प्रथा के प्रचलित होने पर भी इसका काफी विरोध किया गया है , कालान्तर में यह विरोध उग्र होता गया , और विद्वानों ने इस प्रकार के विवाह की तीव्र भर्त्सना की है ।

- -

१- वही अनु० प० ४५।२१

२- अन्योऽप्यथ न विक्रेयो मनुष्य: किं पुन: प्रजा: । महा० अनु०प० ४५।२३

३- महा० अनु प० ४५।३३

४- बौ० ध० सू० १।११।२०-२१ , बौधायन के अनुसार खरीदी हुई दुल्हन कानूनी पत्नी नहीं हो सकती है । वशि ३८४ , इस प्रकार की पत्नी से उत्पन्न पुत्र को पिण्डदान का अधिकार नहीं होता ।

५- पद्मपुराण , ब्रह्मखण्ड २४।२६ ।

पैशाच विवाह -

महाभारत में यद्यपि अष्टविध विवाहों में पैशाच विवाह का नामोल्लेख किया गया है, परन्तु प्राय: सभी धर्मशास्त्रकारों तथा महाकाव्यों[१] में भी इसकी कटु निन्दा की गयी है, विवाह प्रकारों में इसे सबसे गर्हित तथा निन्द्य माना गया है। महाभारत में इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण नहीं प्राप्त होता। सम्भवत: समाज व्यवस्थापकों द्वारा इस विवाह को इसलिये मान्यता दी गयी ताकि उन कन्याओं का भविष्य सुरक्षित हो सके, जिनका कि अपहरण कर लिया जाता था, अथवा जिसके साथ बलात्कार किया जाता था। आपस्तम्ब ने तो इस विवाह का उल्लेख भी नहीं किया है और मनु तथा शंख का कहना है कि पैशाच विवाह अधम है।[२] बलात्कार के लिये दण्ड का भी विधान किया गया था।[३]

प्राजापत्य विवाह -

विवाह के प्रकारों में प्राजापत्य विवाह का भी उल्लेख किया गया है। प्राजापत्य विवाह में वर से सहधर्माचरण की प्रतिज्ञा कराकर कन्या प्रदान की जाती थी[४], परन्तु न केवल प्राजापत्य में वरन् समस्त

- -

१- महा० अनु० प० ४४।६, आदि प० ७३।१२

२- मनु० ३।२१, शंख ४।२, मनु ३।४१-४२

३- मनु ८।३६४, ३७८-३७९, याज्ञ० अध्याय २ स्त्रीसंग्रह प्रकरण, अर्थशास्त्र - कौटिल्य अधिकरण ४ कन्या प्रकर्म।

४- मनु ३।३०, आश्व० ग० सू० १।६।३, याज्ञ० स्मृ० १।६०।

प्रकार के विवाहों में इस प्रकार की अपेक्षा की जाती थी कि पति पत्नी सहधर्माचरण का पालन करें । तथापि प्राजापत्य की विशेषता यह थी कि इसमें कन्या का पिता वर को बुलाता नहीं था , किन्तु वर स्वयं प्रार्थी के रूप में आता था और पिता वर से [illegible] का वचन प्राप्त कर लेता था ।[1] इसमें पति व पत्नी की समान स्थिति होती थी और दोनों की समान कानूनी अधिकार होते थे । परन्तु यह स्थिति को प्रभावित करता था ।[2] क्योंकि महाभारत में विवाह की जो सूची दी गयी है उसमें इसको चौथे स्थान पर रखा गया है । इस प्रकार का विवाह केवल उन्नत समाजों में ही सम्भव था । महाभारत में इस प्रकार के विवाह का कोई दृष्टान्त नहीं प्राप्त होता ।

आर्ष विवाह -

इस विवाह का उदाहरण भी हमें महाभारत में नहीं प्राप्त होता , यद्यपि इसका भी सैद्धान्तिक उल्लेख आया है ।[3] आर्ष विवाह में वर पक्ष से " गोमिथुन " लेने का विधान था , जो सम्भवतः आसुर विवाह जिसमें कि वरपक्ष से कन्या शुल्क लिया जाता था , का ही अविकसित रूप था , यद्यपि बाद में विवाह में " गोमिथुन " लेने की प्रथा का भी विरोध किया गया है ।[4]

- -

१- राजबलि पाण्डेय - हिन्दू संस्कार , पृ० २१३ । [illegible] पृ० ३१५ । व्याख्याकार ने ठीक ही परामर्श दिया है कि विवाह के प्रकारों में प्राजापत्य में दोनों को साथ-साथ धर्माचरण की आज्ञा दी गयी है । इसमें पत्नी की अनुमति के बिना वह संन्यास तथा वानप्रस्थ का आश्रम नहीं ले सकता । संस्कार प्रकाश , पृ० ८५६-८५८

२- [illegible] पिता [illegible] कन्याम् [illegible] विवाहः स प्राजापत्यः । वेद , पी०वी० काणे के अनुसार । भा० २ , पृ० ५०१

दैव विवाह -

शुन:शेप तथा इन्द्र के इस आशीर्वादात्मक शपथ से कि " ब्रह्मचर्यव्रत पूर्ण करके आये हुए यजुर्वेदी अथवा सामवेदी विद्वान् को कन्यादान दे ।[१] दैव विवाह का परिचय प्राप्त होता है । यद्यपि इसका भी स्पष्ट उदाहरण नहीं है ।

ब्राह्म विवाह -

ब्राह्म विवाह ब्राह्मणों में प्रचलित था और सभी विवाहों में इसे श्रेष्ठ माना गया था ।[२] उद्दालक ने अपनी पुत्री सुजाता का विवाह ऋषि कहोड के साथ इसी विधि से किया था ।[३] ऋषि वदान्य ने अपनी पुत्री का विवाह अष्टावक्र के साथ इसी विधि से किया था ।[४] ब्राह्मण कन्याओं के विवाह प्राय: इसी विधि से होते थे ।

वैध ने यह मत व्यक्त किया है कि - " धीरे-धीरे विवाह के सभी प्रकारों का रूपान्तरण ब्राह्म विवाह में हो गया , क्योंकि इसका

- -

१- महा० अनु० प० ६३।१३२ , ६४।४४

२- महा० आदिप० ७३।१०-११ प्रशस्तोश्चतुर: पूर्वान्ब्राह्मणस्योपधारय ।

महा० अनु० प० ४४।६ , देखिये मनु ३।२५ , ३।२४ ।

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ युधिष्ठिर: ।

मेयर - " सेक्सुअल लाइफ इन एन्शियेंट इंडिया " पृ० ५११ में बहुत ही रोचक बात कही है कि इसे नैतिक आधार पर नहीं वरन् ब्राह्मणों ने स्वार्थपूर्ण आधार पर ऐसा बनाया था ।

३- महा० वन प० १३२।६

४- वही अनु० प० २१।१७ ।

मुख्य स्वरूप दान है [1], और बाद में प्राय: सभी प्रकार के विवाहों में चाहे वह स्वयंवर हो , आसुर विवाह हो या राक्षस , विवाह संस्कार अनिवार्य था , जिसमें कि विधिवत् संकल्पपूर्वक कन्या का दान किया जाता था । अर्जुन द्वारा द्रौपदी को स्वयंवर में जीत लेने पर भी द्रुपद के द्वारा उन्हें बुलाकर विधिवत् विवाह संस्कार सम्पन्न किया गया था ।[2] इसी प्रकार भीष्म द्वारा काशिराज की कन्याओं के अपहरण के बाद उनका विधिवत् विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ था ।[3] इसी प्रकार अर्जुन सुभद्रा का भी विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ था ।[4] स्पष्ट है कि सभी प्रकार के विवाहों में विधिवत् विवाह संस्कार का होना अनिवार्य था , इसके बिना विवाह पूर्ण नहीं माना जाता था , उसकी कोई वैधानिक स्थिति नहीं होती थी ।

विवाह की वैधानिकता -

अनुशासनपर्व में युधिष्ठिर के द्वारा विवाह की वैधानिकता के सम्बन्ध में बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है कि विवाह की पूर्णता मात्र कन्या शुल्क ले लेने से ही हो जाती है या इस सम्बन्ध में पाणिग्रहण संस्कार महत्वपूर्ण है ।[5] काफी विचार विमर्श के बाद भीष्म द्वारा यह मत व्यक्त किया गया है कि " कन्या के विवाह के निर्धारण में कन्या

- -

१- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० २३४

२- महा० आदि प० १९४।२० , १९७। ११-१३

३- महा० आदिप० १०२।६५

४- वही आदिप० २२०।१३

५- वही अनु० प० ४४।१८-२०

शुल्क महत्त्वपूर्ण नहीं है , केवल मूल्य दे देने से विवाह का अन्तिम निश्चय नहीं हो जाता है [उसमें परिवर्तन की सम्भावना रहती ही है] यह समझकर ही मूल्य देने वाला मूल्य देता है , और फिर उसे वापस नहीं मांगता , सनातन पुरुष कभी-कभी मूल्य लेकर भी विशेष कारणवश कन्यादान नहीं करते हैं ।[1]

पाणिग्रहण की महत्ता को वे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि - " जब तक कन्या का पाणिग्रहण संस्कार न हो जाय , उसे मांगना चाहिये , पहले मरुद्गणों ने उन्हें यह अधिकार दिया है , अतः पाणिग्रहण से पूर्व तक वर या कन्या एक दूसरे के लिये प्रार्थना कर सकते हैं ।[2] इस सम्बन्ध में वे वाह्लीक के मत को उद्धृत करते हैं कि - " अगर मूल्य देना ही कन्या के विवाह का निर्णायक है तब तो स्मृति का यह कथन व्यर्थ होगा कि कन्या का पिता एक वर से शुल्क ले लेने पर भी दूसरे गुणवान वर का आश्रय ले सकता है , जो शुल्क को ही विवाह का निर्णायक मानते हैं , पाणिग्रहण को नहीं , उनके इस कथन को धर्मज्ञ प्रमाण नहीं मानते ।[3] कन्यादान के सम्बन्ध में तो लोगों का कथन भी प्रसिद्ध है कि कन्यादान हुआ , जो क्रय

- -

१- न हि शुल्कपराः सन्तः कन्यां ददति कर्हिचित् ।। महा०अनु०प० ४४।३१

२- महा० अनु० प० ४४।३५

३- यदि वः शुल्कतो निष्ठा न पाणिग्रहणात् तथा ।
लाभान्तरमुपाशीत् प्राप्तशुल्क इति स्मृतः ।।
न हि धर्मविदः प्राहुः प्रमाणं वाक्यतः स्मृतम् ।
येषां वै शुल्कतो निष्ठा न पाणिग्रहणात् तथा ।।
महा० अनु० प० ४४। ४३-४४

और शुल्क को मान्यता देते हैं , वे धर्मज्ञ नहीं और न ही उनके पास इस बात का प्रमाण है।[1] सप्तपदी की पूर्णता पर ही विवाह पूर्ण माना जाता था। सप्तपदी के सातवें मन्त्र में पाणिग्रहण के मन्त्रों की सफलता होती है। जिस पुरुष को जल से संकल्प करके कन्या का दान किया जाता है , वही उसका पाणिग्रहीता पति होता है , और उसी की वह पत्नी मानी जाती है। विद्वान् पुरुष इसी प्रकार कन्यादान की विधि बताते हैं।[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विवाह की पूर्णता पाणिग्रहण संस्कार से होती थी , कन्या शुल्क से नहीं। विवाह की वैधानिकता के लिये पाणिग्रहण संस्कार अनिवार्य था , बिना इसके विवाह संस्कार पूर्ण नहीं माना जाता था।

<u>सशर्त विवाह -</u>

इस काल में कुछ ऐसे विवाहों के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं , जिनमें कोई न कोई शर्त रखी गयी है। कुछ उदाहरणों में यह शर्त कन्या द्वारा रखी गयी है , और किसी में वर के द्वारा , और उनमें से किसी एक के द्वारा भी शर्त भंग किये जाने पर विवाह सम्बन्ध भंग हो जाता था। इस सम्बन्ध में शकुन्तला , सत्यवती , जरत्कारु तथा गंगा शान्तनु के विवाह उल्लेखनीय हैं। जरत्कारु मुनि ने यह शर्त रखी थी कि - " मैं

१- महा० अनु० प० ४४।४५

२- पाणिग्रहण मन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमेपदे ।
पाणिग्रहस्य भार्या स्याद् यस्य चाभि: प्रदीयते ।। महा० अनु०प० ४४।५५

उसी कन्या से विवाह करूंगा , जो मेरे नामवाली हो , भिक्षा की भांति मुझे समर्पित कर दे , तथा जिसके भरण-पोषण का भार मुझ पर न हो ।[१] तथा यदि वह अप्रिय कार्य कर बैठेगी , तो मैं उसका परित्याग कर दूंगा ।[२]

शर्त स्वीकार किये जाने पर जरत्कारु ने विवाह किया और बाद में शर्त भंग होने पर उन्होंने अपनी पत्नी का परित्याग कर दिया ।[३] गंगा ने भी शांतनु से विवाह के लिये शर्त रखी थी कि - आपको मेरे किसी काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये , और यदि आपने इसके विपरीत किया तो मैं आपका परित्याग कर दूंगी ।[४] राजा के द्वारा उन शर्तों के मान लेने पर उन्होंने विवाह किया ।[५] गंगा द्वारा उत्पन्न हुए पुत्रों को जल में प्रवाहित करने से रोकने पर[६] गंगा शर्त के अनुसार शान्तनु को छोड़कर चली जाती है ।[७] शकुन्तला ने भी दुष्यन्त के साथ शर्त रखी थी कि - मेरे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हो , वह आपके बाद युवराज हो ।[८] दुष्यन्त के द्वारा शर्त के स्वीकार किये जाने पर ही वह समागम के लिये उद्यत हुई थी ।[९] इसी प्रकार सत्यवती के पितादाशराज ने भी शान्तनु के समक्ष यह

१- महा० आदि प० ४६।१८

२- वही आदि प० ४७।३ , ४७। ८-६

३- महा० आदिप० ४७।२४-२५ , ३०

४- वही आदिप० ६८। ३-४

५- वही आदि प० ६८।५

६- वही आदि प० ६८। १३-१६

७- वही आदि प० ६८।१७

८- वही आदि प० ७३। १६-१७

९- वही आदि प० ७३।१८ ।

शर्त रखी थी कि उसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हो , वह आपके बाद राजा हो ।[१] प्रारम्भ में इस शर्त के स्वीकार न करने पर उसने सत्यवती का शान्तनु से विवाह नहीं किया , अनन्तर देवव्रत के द्वारा इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने पर वह विवाह के लिये उद्यत हुआ था ।[२]

विवाह में पिता की स्वीकृति -

वर के द्वारा याचना करने पर कन्यायें स्वयं अपना वाग्दान करने के लिये स्वतन्त्र नहीं होती थीं , वरन् पिता की स्वीकृति आवश्यक थी । महाराज कुशनाभ की सौ कन्याओं पर कामासक्त वायु देवता द्वारा प्रणययाचना[३] करने पर कन्यायें वायुदेवता के इस प्रस्ताव को नहीं स्वीकार करती हैं और कहती हैं कि - " हम लोगों के ऊपर पिता का प्रभुत्व है , वे जिसे हमें देंगे वही हमारा पति होगा , वह समय कभी न आवे जब हम पिता की अवहेलना करके कामक्रोया अधर्मपूर्वक स्वयं ही वर ढूढ़ने लगें ।[४] स्पष्ट है कि पिता की स्वीकृति के बिना अपना वाग्दान करना या किसी की प्रणय याचना को स्वीकार करना कुलोचित मर्यादा के विपरीत समझा जाता था । कुशनाभ अपनी कन्याओं के इस व्यवहार से बहुत प्रसन्न होते हैं और इसे महान कार्य की संज्ञा देते हैं ।[५]

- -

१- महा० आदि प० १००।५६

२- वही आदि प० १००।९७

३- रामा० बाल का० ३२। १७-१८

४- पिता हि प्रभुरस्माकं दैवतं परमं च सः ।
यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति ।।
रामा० बाल का० ३२। २२, ३३।३

राजा दण्ड के द्वारा शुक्राचार्य की पुत्री अरजा के प्रति कामासक्त होने पर वह उसको चेतावनी देते हुए कहती है - " राजन् बलपूर्वक मेरा स्पर्श न करो । मैं पिता के अधीन रहने वाली कुमारी कन्या हूं । यदि मुझे पत्नी ही बनाना है तो धर्मशास्त्रोक्त सन्मार्ग से चलकर मेरे पिता से मुझको मांग लो ।[१]

वर को प्राय: अभिभावकों से ही कन्या की याचना करनी पड़ती थी । सीता से विवाह के इच्छुक कई राजाओं ने जनक से सीता को मांगा था ।[२] इसी प्रकार वशिष्ठ ने कुशध्वज की दोनों कन्याओं का भरत और शत्रुघ्न के लिये वरण किया था ।[३] राक्षस हेति ने स्वयं ही याचना करके काल की कुमारी भगिनी भया के साथ विवाह किया था ।[४] हेति ने अपने पुत्र विद्युत्केश के लिये सन्ध्या की पुत्री का वरण किया था ।[५]

इसी प्रकार महाभारत काल में भी कन्यायें पितृवशा होती थी । कामासक्त राजा संवरण के द्वारा तपती से आत्मदान की प्रार्थना करने तथा गान्धर्व विवाह द्वारा अपने को अपनाने की प्रार्थना करने पर[६] तपती कहती है - " मैं पितृवशा हूं , और इस शरीर पर मेरा कोई अधिकार नहीं है , आप पिता से मेरी याचना कर सकते हैं । स्त्रियां कभी स्वतन्त्र

- -

१- राजन् कन्या पितृवशास्म्यहम् । रामा० उ० का० ८०। ६-११

२- वर्धमानां ममात्मजाम् ।। वरयामासुरागत्य राजानो ।
रामा० बाल का० ६६। १५-१६

३- रामा० बाल का० ७२। ४-६

४- वही उ० का० ४।१६

५- वही उ० का० ४।२०

६- महा० आदि प० १७१। १८-१६ ।

नहीं होती ।[१] दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला से आत्मदान की प्रार्थना किये जाने पर वह इसी प्रकार का उत्तर देती है कि " पिता ही मेरे प्रभु हैं , वह मुझे जिसे देंगे , वही मेरा पति होगा । कुमारावस्था में पिता , जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्र रक्षा करता है ।[२] कच इसी कारण देवयानी के प्रणय प्रस्ताव को ठुकरा देता है ।[३] ययाति भी बिना शुक्राचार्य की अनुमति के विवाह के लिये प्रस्तुत नहीं होते हैं ।[४] सत्यवती भी अपने को " पितृवशा " बताती है ।[५]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कन्यायें स्वयं विवाह करने के लिये स्वतन्त्र न थी , वरन् पिता की अनुमति आवश्यक थी । हापकिन्स[६] लिखते हैं कि " पिता की सम्मति कानूनी दृष्टि से आवश्यक थी ।

- -

१- नाहमीशाऽऽत्मनो राजन् कन्या पितृमतीह्यहम ।

o o o o o o o o o

नहि स्वतन्त्रा हि योषित: ।। महा० आदि प० १७१। २०-२२

२- पिता हि मे प्रभुर्नित्यं दैवतं परमं मतम् ।

यस्य वा दास्यति पिता स मे भर्ता भविष्यति ।।

o o o o o o o o o

न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।। महा० आदि प० ७३।५ , पृ० २१३

३- महा० आदि प० ७७।१७

४- कन्यां सदा पितृवशानुगम् ।। महा० आदि प० ८३।७५

५- महा०आदि प०" ८१।२६

६- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियंट इंडिया , पृ० ३००   ।

इस काल में भी प्राय: वर के द्वारा ही कन्या का वरण किया जाता था। भीष्म ने विचित्रवीर्य के लिये काशिराज की कन्याओं का वरण किया था।[१] इसी प्रकार गान्धारी तथा माद्री की याचना भी उनके पिताओं से भीष्म द्वारा की गयी थी।[२] भीष्म के द्वारा ही इन सब कन्याओं का वरण किया गया था - इस पर हापकिन्स ने लिखा है कि - " पहले पुरुषों के द्वारा ही चुनाव होता था, जैसा कि भीष्म ने काशिराज की कन्याओं का स्वयं वरण किया था।[३]

इसी प्रकार ऋचीक द्वारा गाधिपुत्री सत्यवती की[४], अगस्त्य के द्वारा लोपामुद्रा का[५] वरण किया गया था। अगस्त्य के भय से पहले किसी राजकुमार ने उसका वरण नहीं किया था।[६] पुत्री को युवावस्था में देखकर अश्वपति सावित्री से कहते हैं - " अब किसी वर के साथ तेरा ब्याह कर देने का समय आ गया है, परन्तु [तेरे तेज से प्रतिहत हो जाने के कारण] कोई भी मुझसे तुझे नहीं मांग रहा है।[७] इससे स्पष्ट है कि प्राय: वर पक्ष के द्वारा ही पिता आदि से कन्याओं की याचना की जाती थी।

विवाह की आयु -

कन्याओं की विवाह योग्य आयु का अध्ययन करने पर

- -

१- महा० आदि प० १०२।११, स्वयं कन्या वरयामास ।

२- वही आदि प० १०६। ६-११, ११२।५-६

३- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इंडिया, पृ० ३०४, आदि प० १०२।११

४- महा० अनु० प० ४।७

५- वही वन पर्व ९७।२१

६- वही वन पर्व ९६।२८

७- वही वनपर्व २९३। ३१-३२ ।

स्पष्ट होता है कि उनका विवाह प्राय: युवावस्था प्राप्त करने के बाद ही होता था । इस सम्बन्ध में महाकाव्य विशेषकर महाभारत में विरोधाभास पाया जाता है , क्योंकि इसमें पुरानी व नयी दोनों परम्पराओं के दर्शन होते हैं । कथा भाग से उपदेशक भाग में स्थिति भिन्न पायी जाती है । यह परिवर्तित होते हुए समाज की विभिन्न स्थितियों का प्रतिनिधित्व करता है । इसलिये विरोधाभास स्वाभाविक था ।

वैदिक काल में कन्याओं का विवाह प्राय: युवावस्था प्राप्त करने के बाद ही होता था ।[१]

इसको स्पष्ट करने वाले अनेक उद्धरण वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं । अथर्ववेद में कहा गया है कि " ब्रह्मचर्य का पालन करने के बाद ही कन्या पति को प्राप्त करती है ।[२] भारतीय मनीषियों के द्वारा मनुष्य की सौ वर्षों की आयु की कल्पना की गयी है और जीवन को चार आश्रमों में बांटा गया है । प्रत्येक के लिये २५ वर्ष निर्धारित किये गये हैं । ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात् ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था । अत: युवावस्था में विवाह होना स्वाभाविक था । सुश्रुत ने भी यही कहा है कि - " पुरुष की शारीरिक शक्तियों का पूर्ण विकास पच्चीस वर्ष की आयु में होता है और स्त्री का विवाह सोलह वर्ष की आयु में होता है ।[३]

१- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० ५६
   राधाकृष्णन - धर्म और समाज , पृ० १६ ।
   शिवदत्त ज्ञानी - वैदकालीन समाज , पृ० १६२
   बी० एस० उपाध्याय - " वीमेन इन ऋग्वेद " , पृ० ५०-५४
   राजबलि पाण्डेय - " हिन्दू संस्कार " , पृ० ३१६-३१७
२- ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।। अथर्व० ११।५।१८
३- सुश्रुत ३५-८ ।

ऋग्वेद[१] में पिता के घर रहने वाली अनेक अविवाहित कन्याओं के उदाहरण प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद[२] में सूर्या व सोम के विवाह का जो वर्णन आया है, उससे स्पष्ट होता है कि विवाह युवावस्था में ही होता था। वधू को दिया जाने वाला आशीर्वाद कि वह पति गृह में शासन करने वाली हो[३] किसी अल्पवयस्का बालिका पर चरितार्थ नहीं हो सकता। अथर्ववेद के अनुसार पति की कामना करने वाली कन्या ही पितृलोक से पतिलोक की ओर जाती है[४]।

यह वधू पति की कामना वाली बनकर यहां आयी है[५]। अथर्ववेद के वैवाहिक मन्त्रों से भी स्पष्ट है कि कन्यायें युवावस्था में ही विवाहित होती थीं[६]। ऋग्वेद में कहा गया है जब कन्या सुन्दर है और विभूषित है, तो वह सब पुरुषों के झुण्ड में से अपना पति ढूढ़ लेती है[७]। इससे स्पष्ट होता था कि लड़कियां इतनी प्रौढ़ होती थी कि उनमें अपना साथी चुनने की क्षमता थी।

१- ऋ० ५।१।११७।७, २।१७।७, १०।४०।५

२- ऋ० १०।८५।२२, १०।८५।६, १०।८५।४६, अथर्व० १४।१।६, २।१४।१ ।

३- ऋ० १०।८५।४६

४- अथर्व० १४।२।५२

५- अथर्व० २।३०।५, ऋ० ६।५६।३

६- अथर्व० १४।१।२, ६, ६, १५, १७-१८, १६-२० आदि राजबलि पाण्डेय - हिन्दू संस्कार, पृ० २३४ ।।

७- ऋ० १०।२७।१२ ।

गृह्यसूत्रों[1] तथा धर्मसूत्रों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विवाह युवावस्था में ही होते थे। गोभिलीय गृह्यसूत्र[2] और हारीतमुनि[3] के अनुसार " नग्निका " कन्या का विवाह सर्वथा अनुचित है। " नग्निका " कन्या के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ के अनुसार नग्निका कन्या से तात्पर्य युवावस्था प्राप्त कन्या से है और कुछ के अनुसार अल्पवयस्का कन्या से है।

अधिकांश गृह्यसूत्रों में उल्लिखित चतुर्थी कर्म जो कि विवाह के चार दिनों के बाद सम्पादित होता था[4] तथा वर व वधू अधिक नहीं तो कम से कम तीन रात्रि तक सम्भोग न करें[5] यह स्पष्ट होता है कि विवाह युवावस्था में ही होते थे। मनु के अनुसार भी ऋतु वाली कन्या विवाह के उपयुक्त है।[6]

१- शां० गृ० सू० १।१७।५ , आप० गृ० सू० ३।८।८ , खादिर गृ० सू० १।४।१० , आश्व० गृ० सू० १।८।१० , खादिर गृ० सू० ३०।१ । राजबलि पाण्डेय - हिन्दू संस्कार , पृ० ३१८ [विस्तृत विवरण के लिये देखिये] पी० वी० चौधरी - वीमेन इन वैदिक रिचुवल , पृ० ३६

२- गो० गृ० सू० ३।४।५-६

३- हारीत १।१२।२

४- देखिये गोभिल २।५।१ , शां० १।१८-१९ , खादिर १।४।१२-१६ , पारस्कर १।११, आप० ८।१०-११ , हिरण्यकेशि - १।२३-२४ आदि । देखिये - पी० एम० आप्टे - सोशल एण्ड रिलीजियस लाइफ इन दि गृह्य सूत्राज - पृ० १७-१९ ।

५- आश्व० १।८।१० , आप० ८।८-९ , शांखायन १।१७।५ , मानव १।१४।१४ काठक ३०।१ , बौ० गृ० सू० १।४।९ आदि । पी० वी० चौधरी - वीमेन इन वैदिक रिचुवल, पृ० ४१

६- मनु० ९।८९

बौद्धकाल में भी विवाह प्राय: युवावस्था प्राप्त करने पर ही होते थे । थेरीगाथा के अनुसार इसिदासी का पूर्व जन्म में सोलह वर्ष की आयु में विवाह हुआ था ।[१] धम्मपद टीका में उल्लेख मिलता है कि - " षोडशियां पुरुष समागमार्थी उत्कंठित हो जाती थी ।[२] सोलह वर्ष की आयु में ही मद्रराज कन्या फुसति का परिणय सम्पन्न हुआ था ।[३] इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस काल में कन्याओं का विवाह सामान्यत: १६ वर्ष की आयु में होता था ।

रामायण तथा महाभारत काल में भी हम पूर्वकाल से चली आ रही परम्परा का ही निष्पादन प्राप्त करते हैं । रामायण में विवाह योग्य वय क्या थी । इसका स्पष्ट उल्लेख तो नहीं प्राप्त होता , परन्तु इस काल में आर्य तथा आर्येतर जातियों में विवाह के जो उदाहरण प्राप्त होते हैं , उनके अनुशीलन से हम विवाह योग्य वय का निर्धारण करने का प्रयास करेंगे ।

इस सम्बन्ध में हम सर्वप्रथम सीता के उदाहरण को लेते हैं । सीता का विवाह " स्वयंवर विधि " से हुआ था और स्वयंवर विधि के द्वारा वर के चुनाव की कल्पना हम अल्पवयस्क बालिका द्वारा नहीं

- -

१- थेरीगाथा ४४५
२- धम्मपद अट्ठकथा १०२ ।
३- जातक ४ , पृ० ४८४ , जातक १ , पृ० ४५६
४- रामा० अयो० का० ११८।३८ ।

कर सकते । दूसरे विवाह के पश्चात् सीता आदि चारों बहनें अपने-अपने पतियों के साथ एकान्त में रहकर बड़े आनन्द से समय व्यतीत करने लगीं ।[१] सीता को विवाह योग्य देखकर जनक बड़े चिन्ता में पड़ गये थे ।[२] सीता की आयु उनके विवाह होते-होते और अधिक बढ़ गयी होगी , क्योंकि जब सीता विवाह योग्य हुई तो जनक ने स्वयंवर का आयोजन किया[३] और उस स्वयंवर में समागत राजा सीता को न प्राप्त कर सके , क्योंकि वे निर्धारित शर्त को पूरा करने में असमर्थ थे । अत: उन राजाओं ने अपने को अपमानित समझकर मिथिला का घेरा डाल दिया और एक वर्ष तक घेरा डाले रहे , तब जनक ने देवताओं की तपस्या कर चतुरंगिणी सेना प्राप्त कर , उनको परास्त किया , तब घेरा समाप्त हुआ ।[४] तब दीर्घकाल के पश्चात् राम लक्ष्मण का आगमन होता है , और राम के साथ सीता का विवाह होता है ।[५] इससे स्पष्ट है कि सीता अपने विवाह के समय काफी बड़ी हो गयी थी ।

कुशनाभ कन्याओं का विवाह भी युवावस्था में सम्पन्न हुआ था ।[६] उक्त वायु देवता के प्रणय प्रस्ताव को ठुकराने वाली कुशनाभ कन्यायें रूप और यौवन से सम्पन्न थीं ।[७]

- -

१- रेमिरे मुदिता: सर्वा भर्तृभिर्मुदिता रह: ।। रामा० बालका० ७७।१३-१४

२- पतिसंयोग सुलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता ।
चिन्तामभ्यगमद् दीनो वित्तनाशादिवाधन: ।। रामा०अयो०का० ११८।३४

३- रामा० अयो० का० ११८।३८ , बालका० ६६।१७

४- वही बाल का० ६६।१८-२५

५- वही अयो० का० ११८। ४४ , ५२

६- वही बाल का० ३२।१८-१६

७- वही बाल का० ३२।१२ , १५ यौवनशालिन्यो रूपवत्य: स्वलंकृता: ।

तृणाबिन्दु की कन्या विवाह के समय गर्भधारण करने योग्य हो गयी थी।[1] इसी प्रकार भरद्वाज पुत्री का विश्रवा के साथ पाणिग्रहण होने के बाद एक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ था।[2]

राक्षसों में भी युवावस्था प्राप्त होने पर ही विवाह होता था। क्योंकि विवाह के पश्चात् अपनी-अपनी रमणियों के साथ विहार करना इस तथ्य की ओर संकेत करता है। सन्ध्या की पुत्री से विवाह करने वाला विद्युत्केश अपनी पत्नी के साथ उसी तरह रमण करने लगा, जिस प्रकार इन्द्र शची के साथ करते हैं।[3] ग्रामणी नामक गन्धर्व ने अपनी देववती नामक कन्या का विवाह राक्षस सुकेश के साथ किया था जो कि यौवन से सुशोभित थीं।[4] सुकेश के पुत्रों ने भी विवाह के पश्चात् अपनी पत्नियों के साथ रहकर लौकिक सुख का उपभोग किया था।[5] सुमाली पुत्री कैकसी भी विवाह के समय प्रौढ़ावस्था को प्राप्त कर चुकी थी, क्योंकि वह अपनी पुत्री से कहता है - " बेटी, अब तुम्हारे विवाह के योग्य समय आ गया है, क्योंकि इस समय तुम्हारी युवावस्था बीत रही है॥[6] रावण आदि तीनों भाइयों के विवाह भी युवावस्था में ही हुए थे।[7]

१- रामा० उ० का० २।१७
२- वही उ० का० ३।३-५
३- वही उ० का० ५।२२
४- वही उ० का० ५।१-२
५- वही उ० का० ५।३४-३५
६- पुत्रि प्रदानकालोऽयं यौवनं व्यतिवर्तते ॥ रामा० उ० का० ९।६-७
७- रामा० उ० का० १२।१९-२०, २२-२४ ।

उनकी पत्नियाँ भी उस समय युवावस्था में थीं , क्योंकि विवाह के बाद वे तीनों राक्षस अपनी-अपनी पत्नी को साथ ले सुखपूर्वक रमण करने लगे ।[१] कुशध्वज की पुत्री वेदवती भी जब बड़ी हुई तो देवता , यक्ष , राक्षस , गन्धर्व , नाग उसकी याचना करने के लिये आये ।[२] स्पष्ट है कि ब्राह्मण कन्याओं का विवाह भी युवावस्था प्राप्त करने पर ही होता था ।

रावण द्वारा जिन कन्याओं का अपहरण किया गया था , वे भी सब युवती थीं ।[३] रावण की मौसेरी बहन कुम्भीनसी , जिसका अपहरण मधु दैत्य ने कर लिया था , युवावस्था में पदार्पण कर चुकी थीं । विभीषण कहते हैं कि - " जब कन्या विवाह के योग्य हो जाय , तो उसे योग्य पति के हाथ में दे देना ही उचित है । हम भाइयों को यह कार्य अवश्य ही पहले कर लेना चाहिये था ।[४] ब्रह्मा के द्वारा गौतम के पास धरोहर के रूप में रखी गयी अहल्या को उस समय पत्नी रूप में अर्पित किया जब वह युवावस्था को प्राप्त हो गयी थी ।[५]

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कन्याओं का विवाह युवावस्था में ही होता था । यह अवश्य है कि वृद्ध विवाह प्रचलित था , और कभी-कभी कन्या तथा पति की आयु में काफी अन्तर होता था । जैसा कि दशरथ ने वृद्धावस्था में कैकयी से विवाह

- -

१- रामा० उ० का० १२।२७-२८

२- वही उ० का० १७।१०-११

३- वही उ० का० २४। २-३

४- वही उ० का० २५। २७-२८

५- वही उ० का० ३०। २४-२७ ।

किया था , कैकैयी दशरथ को प्राणों से भी प्रिय थी ।[1] इसी प्रकार त्रिजटा की भार्यां तरुणी थी ।[2]

महाभारत काल में भी कन्याओं का विवाह प्राय: युवावस्था प्राप्त करने के बाद ही होता था । क्योंकि इस काल में स्वयंवर की प्रथा बहुतायत से प्रचलित थी और स्वयंवर में कन्या को स्वयं ही वर के गुण दोषों का परीक्षण कर वरण करना होता था । इसलिये कन्यायें प्राय: युवती होती थी । स्वयंवर सभा में पाण्डु का वरण करने वाली कुन्ती विवाह के समय " रूपयौवनशालिनी " थी ।[3] विवाह के पश्चात पाण्डु अपनी दोनों पत्नियों कुन्ती और माद्री के साथ आनन्दपूर्वक यथेष्ट विहार करने लगे ।[4] विदुर के साथ विवाहित देवक पुत्री भी सुन्दर रूप और युवावस्था से सम्पन्न थी ।[5] काशिराज की कन्यायें जिनका स्वयंवर सभा में भीष्म ने अपहरण किया था , विवाह के समय सयानी थी , उनकी अवस्था सोलह वर्ष की हो चुकी थी ।[6] शान्तनु से सशर्त विवाह करने वाली गंगा यौवनकालिक व्यवहार में विचक्षण थी ।[7]

१- स वृद्धस्तरुणीं भार्यां प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ।।
रामा० अयो० का० १०।२३

२- रामा० अयो० का० ३२।३०

३- महा० आदि प० १११।२

४- वही आदि प० ११२।२०

५- वही आदि प० ११३।१२

६- वही आदि प० १०२।६७

७- वही आदि प० ९८।१० ।

कुन्ती[१] और सत्यवती[२] ने विवाह के पूर्व ही गर्भ धारण किया था । अपने पति धृतराष्ट्र को अन्धा जानकर गान्धारी ने अपनी आँखों में पट्टी बांध ली थी, यह कार्य किसी छोटी आयु की लड़की का नहीं हो सकता ।[३] स्वयंवर सभा में नल को वरण करने वाली दमयन्ती[४] पहले से ही नल के गुणों के प्रति आकृष्ट थी । स्वयं अपने वर का चुनाव करने वाली सावित्री[५] युवावस्था में पदार्पण कर चुकी थी । लोपामुद्रा[६] ने जब युवावस्था में प्रवेश किया, तथा अगस्त्य ने यह जानकर कि अब वह गृहस्थी चलाने के योग्य हो गयी है, पुत्रोत्पत्ति के विचार से उसके साथ विवाह किया । स्पष्ट है कि लोपामुद्रा गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कार्यों को करने में समर्थ हो चुकी थी । शर्याति कन्या सुकन्या विवाह से पूर्व युवती हो गयी थी ।[७] दुष्यन्त के साथ सम्बन्ध स्थापित करने वाली शकुन्तला पूर्ण युवती हो चुकी थी ।[८] माधवी ने विवाहोपरान्त तुरन्त गर्भ धारण किया था ।[९]

१- महा० आदि प० ११०।१७-१८
२- वही आदि प० ६३।८४
३- वही आदि प० ११०।१४
४- वही वन प० ५४। १, ८
५- वही वन प० २९३। ३१, यौवनस्थां तु तां दृष्ट्वा ------- ।
६- वही वन प० ९६।२६, ९७। १-२
७- वही वन प० १२२।६
८- वही आदि प० ७३।३३
९- वही उद्योग प० ११६।१६, ११७।१८, ११८।२०, ११९।१८ ।

तपती को युवावस्था में प्रविष्ट हुई देख पिता सूर्य को बड़ा कष्ट हुआ था ।[1] चित्रांगदा ने विवाह के बाद गर्भ धारण किया था ।[2] उलूपी ने कामासक्त होकर अर्जुन से आत्मदान की याचना की थी ।[3] सुभद्रा भी वयः प्राप्त थी , जिसे देखते ही अर्जुन आसक्त हो गये थे ।[4] द्रौपदी ने जब युवावस्था में पदार्पण किया था , तभी उसके स्वयंवर का आयोजन किया गया था ।[5] गुणकेशी को विवाह योग्य देखकर उसके पिता मातलि चिन्तित थे ।[6]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इस काल में कन्याओं का विवाह युवावस्था प्राप्त करने के बाद ही होता था । इस तथ्य की सिद्धि एक और सिद्धान्त से होती है । यह निर्विवाद है कि उस समय विवाह के दिन पति-पत्नी का समागम होने की परिपाटी थी ।[7] साथ ही विवाह के सम्बन्ध में कन्या के अक्षतयौनित्व तथा शुद्धता पर बहुत ही बल दिया जाता था । इस सम्बन्ध में द्रौपदी के विवाह में कुछ चमत्कार दिखायी पड़ता है । द्रौपदी का विवाह पांचों पाण्डवों के साथ-साथ पृथक्-पृथक दिन हुआ ।[8] और विचित्रता यह थी कि द्रौपदी प्रतिवार विवाह के

- -

१- महा० आदि प० १७०।११

२- महा० आदि प० २१४।२६-२७

३- वही उद्योग प० २१३।२०

४- वही उद्योग पर्व २१८। १४-१५

५- वही आदि प० १८४। ११ , १८६।५

६- वही उद्योग प० ९७।१४

७- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० २३३

८- महा० आदि प० १९७। ११ , १३ ।

दूसरे दिन कन्याभाव को ही प्राप्त हो जाती थी ।[१] इस तथ्य से भी यह स्पष्ट है कि कन्या विवाह के समय युवती हो ।

महाकाव्य के समय कन्याओं की विवाह की आयु के सम्बन्ध में हापकिन्स लिखते हैं कि - " महाकाव्य का सर्वव्यापी नियम यह रहा और " ~~महाकाव्य का सर्वव्यापी नियम यह रहा और~~ ऐसा कानून भी था कि लड़कियां विवाह के लिये बाध्य की जाती थीं , जब कि वे वयस्क नहीं होती थीं । और इस सम्बन्ध में उत्तरा का उदाहरण देते हैं कि विवाह के पहले वह छोटी कन्या नग्न रूप में प्रकट होती है , लड़की कुछ और बड़ी हो जाती है तो छोटी राजकुमारी के रूप में उसकी दिलचस्पीमात्र गुड़िया के लिये कपड़े लेने तक सीमित रहती है तथा अर्जुन के द्वारा उत्तरा के साथ विवाह के लिये इंकार करना सिद्ध करता है कि उस समय वह छोटी बच्ची थी ।[२]

हापकिन्स का मत तथ्यों पर आधारित नहीं है । इस सम्बन्ध में प्रथम उल्लेखनीय बात यह है कि इस काल में कन्याओं के विवाह के जो उदाहरण प्राप्त होते हैं , वह हापकिन्स के उपर्युक्त मत को खण्डित करते हैं । महाभारत में हमें एक भी बालविवाह का उदाहरण नहीं प्राप्त होता तथा जहां तक अर्जुन के द्वारा उत्तरा के साथ विवाह प्रस्ताव को इंकार करने का प्रश्न है , वह इसलिये इंकार नहीं किया गया कि उत्तरा विवाह के समय छोटी बच्ची थी , परन्तु अर्जुन द्वारा इस प्रस्ताव को अस्वीकार

१- महा० आदि प० १६७।१४

२- हापकिन्स - दि सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इंडिया , पृ० २५४ ।

करने का कारण संसार के समक्ष अपने को चरित्रवान सिद्ध करना था । क्योंकि अर्जुन स्वयं कहते हैं कि - " जब वह वयस्क हो चुकी थी , तब मैं उसके साथ एक वर्ष तक रहा हूं , ऐसी अवस्था में यदि मैं उसके साथ विवाह करूंगा तो आपको या किसी अन्य मनुष्य को मेरे चरित्र के बारे में सन्देह होगा और यह युक्तिसंगत ही होगा , इसलिये मैं आपकी पुत्री को पुत्रवधू के रूप में ग्रहण करूंगा । ------ मैं अभिशाप और मिथ्यापवाद से डरता हूं (यदि मैं आपकी पुत्री को पत्नी रूप में ग्रहण करूं तो लोग यह कल्पना कर सकते हैं कि इन दोनों में पहले से ही अनुचित सम्बन्ध था) अत: मैं आपकी पुत्री उत्तरा को पुत्रवधू के रूप में ग्रहण करता हूं ।[1] साथ ही साथ अर्जुन ने अकेले तथा सबके सामने भी उत्तरा को शिक्षा दी थी , ऐसी अवस्था में एक गुरु की ही भांति अर्जुन ने उत्तरा को पुत्री के भाव से देखा था और उत्तरा भी अर्जुन को गुरु के ही समान मानती थी , इसलिये भी इस सम्बन्ध को अर्जुन ने ठुकरा दिया ।[2] स्पष्ट है कि उत्तरा विवाह के समय बच्ची नहीं वरन् विवाह योग्य हो चुकी थी । यह अवश्य है कि अर्जुन तथा उत्तरा की आयु में काफी अन्तर रहा होगा । इस प्रकार के हमें अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं । उदाहरणार्थ - शान्तनु सत्यवती से विवाह के लिये उस समय उद्यत हुए जब कि उनका पुत्र देवव्रत इतना बड़ा हो चुका था कि वह स्वयं अपने पिता के लिये कन्या याचना कर सका ।[3] इसी प्रकार सुकन्या अभी युवती थी जब कि च्यवन

- -

१- महा० विराट प० ७२। ४-५ , ७

२- वही विराटप० ७२। २-३

३- महा० आदि प० १००।७५ ।

नितान्त वृद्ध थे ।[1] जरुत्कारुमुनि भी वृद्ध थे ।[2] अर्जुन ने अपनी तथा उत्तरा की आयु के अन्तर को देखते हुए ही कहा था - " मेरा पुत्र अभिमन्यु आपका सुयोग्य दामाद और आपकी पुत्री का उपयुक्त पति होगा ।[3] सामान्यत: कोई भी व्यक्ति सामान्य परिस्थिति में किसी वृद्ध से अपनी कन्या का विवाह करने के लिये प्रस्तुत नहीं होता था । उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि " हापकिन्स " का मत समीचीन नहीं है ।

सामान्यत: जब कन्याओं के विवाह युवावस्था में होते थे तब पुरुषों के विवाह का अल्पआयु में होने का प्रश्न ही नहीं उठता । विचित्रवीर्य[4], पाण्डु[5], धृतराष्ट्र[6], विदुर[7] के विवाह युवावस्था में ही सम्पन्न हुए थे ।

ऊपर युवावस्था में कन्याओं के जो उदाहरण दिये गये हैं वे सभी क्षत्रिय कन्याओं के हैं । अब हम देखेंगे कि ब्राह्मण कन्याओं की इस सम्बन्ध में क्या स्थिति थी ? इस सम्बन्ध में अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इस काल में न केवल क्षत्रिय कन्याओं के वरन् ब्राह्मण कन्याओं के विवाह भी युवावस्था प्राप्त करने के पश्चात् ही होते थे । यद्यपि इस

- -

१- महा० वन प० १२३।५-११

२- वही आदि प० ४४।११-१२ , १६ , २०

३- वही विराट प० ७२।८

४- वही आदि प० १०२।२

५- वही आदि प०१११।५-७

६- वही आदि प० १०६ अध्याय

७- वही आदि प० ११३।१२ ।

सम्बन्ध में उदाहरण अत्यन्त स्वल्प हैं , जो उपलब्ध हैं , वे ही इस तथ्य की पुष्टि के लिये पर्याप्त हैं । इस सम्बन्ध में शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का उदाहरण उल्लेखनीय है । जिस समय कच शुक्राचार्य के समीप शिक्षा प्राप्त कर रहे थे , आचार्य कन्या देवयानी युवावस्था में पदार्पण कर चुकी थी ।[१] और कच के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाने के कारण उसने विवाह की प्रार्थना की थी ।[२] कच के अस्वीकार करने पर दीर्घकाल के पश्चात् देवयानी का विवाह ययाति से हुआ था ।[३] इस बीच देवयानी की आयु काफी हो गयी थी । सुवर्चला भी श्वेतकेतु से विवाह के समय प्रौढ़ हो चुकी थी , क्योंकि जब वह विवाह के योग्य हुई तब उसके पिता ने योग्य वर की प्राप्ति के लिये स्वयंवर का आयोजन किया , परन्तु उसने किसी भी वर को पसन्द नहीं किया , तब सब वर चले गये और वह अपने पिता के ही घर में रह गयी , जब काफी दिनों बाद श्वेतकेतु आये तब उसका विवाह श्वेतकेतु से हुआ ।[४] इसी प्रकार सुभ्रू का उदाहरण आया है जिसने कि वृद्धावस्था में नारद के उपदेश से विवाह किया था ।[५] बक राक्षस की कथा में ब्राह्मण अपनी पुत्री को राक्षस का आहार नहीं बनने देता क्योंकि उसके विचार से उचित समय पर उसे भर्ता के अधीन करना था , स्पष्ट है कि उस समय वह कुमारी थी । इस श्लोक

- -

१- महा० आदि प० ७६।२५ , देवयानीं कन्यां सम्प्राप्त यौवनाम् ।

२- वही आदि प० ७७।४-५

३- वही आदि प० ८१।१ , ३६

४- वही शा० प० २२० अध्याय ।

५- वही शल्यपर्व ५२ अध्याय ।

से भी स्पष्ट है कि इस काल में ब्राह्मणों की पुत्रियां विवाह योग्य होने पर ही ब्याही जाती थी ।[1]

बाल विवाह -

महाकाव्य में यत्र-तत्र बालविवाह के जो संकेत प्राप्त होते हैं , अब हम उन वचनों की सत्यता का परीक्षण करेंगे । रामायण में इस सम्बन्ध में एक उदाहरण आया है । अरण्यकाण्ड में रावण से अपना परिचय देते हुए सीता अपनी आयु के सम्बन्ध में कहती हैं - " विवाह के बाद बारह वर्षों तक मैं अयोध्या में रही , और जब राम का वनवास हुआ , उस समय मेरे पति की अवस्था पच्चीस साल से ऊपर की थी और मेरी अवस्था वर्षगणना के अनुसार जन्मकाल से लेकर वनगमन तक अठारह साल की हो गयी थी ।[2] इससे यह तात्पर्य निकलता है कि सीता विवाह के समय छः वर्ष की थी । परन्तु जैसा कि सीता के विवाह की आयु के सम्बन्ध में वर्णन कर चुके हैं , यह विवरण मेल नहीं खाता । यह उद्धरण अवश्य ही बाद का तथा क्षेपक होगा ।[3] विवाह के बाद राम के साथ सीता का

- -

१- बालामप्राप्तवयसमजातव्यञ्जना कृतिम् ।
   भर्तुरर्थाय निक्षिप्तां न्यासं धात्रा महात्मना ।। महा०आदि प० १५६।३५
   सी० वी० वैद्य - महाभारतमीमांसा , पृ० २२४ ।

२- रामा० अरण्य का० ४७।४ उषित्वा द्वादश समाः इक्ष्वाकूणां निवेशने ।
   ४७।१० , मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः ।
   अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते ।।

३- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० ११५-१६ ,
   अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० ५३

विहार[१], एक दूसरे के प्रति प्रगाढ़तर प्रीति[२], तथा उनके द्वारा विवाहोपरान्त पत्नी विषयक कर्तव्यों की पूर्ति[३] छ:वर्षीय बालिका द्वारा सम्भव नहीं है। साथ ही विवाह के समय उनकी माता ने अग्नि के समक्ष जो उपदेश दिया था, उसकी विस्मृति अभी तक नहीं हुई थी।[४] स्पष्ट है कि सीता उस समय इस प्रकार के उपदेशों के ग्रहण करने योग्य थी।

उपर्युक्त तथ्य यह सिद्ध करते हैं कि सीता अपने विवाह के समय एक अबोध बालिका नहीं वरन् अपने कर्तव्यों को पूर्ण करने में सक्षम तरुणी थी।

महाभारत में इस सम्बन्ध में जो उद्धरण प्राप्त होते हैं, वे कथा भाग में प्राप्त उद्धरणों से मेल नहीं खाते, ये बाद की परिवर्तित परिस्थितियों में उपदेशक भाग में प्राप्त होते हैं। अब कन्याओं की विवाह की आयु अत्यन्त कम हो गयी थी, क्योंकि वे वैदिक शिक्षा से वंचित हो गयी थी और विवाह को उपनयन का समस्थानीय मान लिया गया था।[५] महाभारत के उपदेशक भाग में एक श्लोक आया जिसमें कि कन्या की विवाह योग्य आयु मनु द्वारा कथित आयु से भी कम बतायी गयी है कि - तीस वर्ष का पुरुष दस वर्ष की कन्या को, जो रजस्वला न हुई हो,

- -

१- रामश्च सीतया सार्धं विजहार बहूनृतून् ।। रामा० बालका० ७७।२५

२- रामा० बाल का० ७७।२७-२८

३- वही अयो० का० ५।२६, ५।२८, ६।१-४

४- वही अयो० का० ११८। ८-६

५- मनु २।६७ ।

पत्नी रूप में प्राप्त करे अथवा इक्कीस वर्ष का पुरुष सात वर्ष की कुमारी कन्या के साथ विवाह करे।[1] इस सम्बन्ध में मीमांसाकार ने लिखा है कि - यह पाठ मनु के भी इस ओर का है और मूल के पाठ को बदलकर उस समय की परिस्थिति में उत्पन्न हो गया है। निबन्धकारों ने महाभारत का जो पाठ " कुमारीं दशवार्षिकीम् " दिया है, वही मूल पाठ रहा होगा।[2] मीमांसाकार का यह मत उचित प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह द्रष्टव्य है कि इसी पर्व में यह कहा गया है कि - " बुद्धिमान पुरुष को ऐसी कन्या से विवाह करना चाहिये, जो विवाह के योग्य अवस्था " वयस्थां " को प्राप्त हो गयी हो।[3] यहाँ पर " वयस्थां " से तात्पर्य ऐसी अवस्था से है जब कि कन्या में तारुण्य के लक्षण प्रकट हो चुके हों, क्योंकि संस्कृत में " वयस्थां " का तात्पर्य एक सामान्य अवस्था न होकर तारुण्य अवस्था से होता है, जो बाल्यावस्था से भिन्न होती है। बाल्यावस्था के समाप्त होने पर जब तारुण्य अवस्था आती है, उसी को " वयस्थां " कहते हैं। अतः इससे भी " कुमारीं दशवार्षिकीम् " का मेल नहीं बैठता। अतः यह कथन बाद के ही समय का होगा। अन्यत्र कहा गया है कि - " तरुण अवस्था आने पर विवाह की चर्चा सुनकर ब्याह की इच्छा रखने वाली कन्याओं के हृदय में भी आशा होती है, यह कल्पना युक्त होती है।[4]

- -

१- महा० अनु० प० ४४।१४ त्रिंशद्वर्षो दशवर्षां भार्यां विन्देत नग्निकाम्।
एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षामवाप्नुयात् ॥

मिलाइये मनु ९।९४ त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥

२- चि० वि० वैद्य - महाभारतमीमांसा, पृ० २२६

३- वयस्थां च [illegible] : कन्यामावोढुमर्हति ॥ महा० अनु०प० ४४।१२

४- ऋतुकालाभिकामिनां च कन्यानां भवति स्थिति ॥ महा०अनु०प० १२८।१८

स्पष्ट है कि कुछ ऐसी कन्यायें भी होती थीं जिनका कि तरुण अवस्था में भी विवाह नहीं होता था । कलियुग की बुराइयों का वर्णन करते हुए कहा गया है - " इस काल में विवाह असमय में ही होंगे और छोटी अवस्था के स्त्री पुरुष गर्भ धारण करेंगे । इससे स्पष्ट है कि बिना युवावस्था के विवाह को निन्दनीय माना जाता था ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस काल में सामान्य रूप से विवाह युवावस्था प्राप्त करने के बाद ही होते थे , और यह आयु सोलह से अठारह वर्षों के बीच होती थी । आधुनिक काल में भी अनेक समाजशास्त्रियों ने विवाह की इस आयु को उचित माना है , क्योंकि इस समय तक कन्या का पूर्ण शारीरिक तथा भावात्मक विकास हो जाता है , और यह समय नये वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने का सबसे उचित समय होता है ।[2]

विवाह के सम्बन्ध में पिता का दायित्व -

वर और कन्या के विवाह के सम्बन्ध में पिता का महत्वपूर्ण दायित्व होता था । कन्या के सम्बन्ध में यह उत्तरदायित्व और बढ़ जाता

- -

१- महा० वन प० १८८। ६०

२- हैवलक एलिस [" साइकोलिजी आफ सेक्स , वा० ६]
" सेक्स इन सोसाइटी " अध्याय १२ , पृ० ३६५-३६७
एस० राधाकृष्णन - " रिलीजन एण्ड सोसाइटी " पृ० १७०
[१६४७ लन्दन] पी० एन० प्रभु - " हिन्दू सोशल आर्गेनाइजेशन
पृ० १८५-१६० ।

था । क्योंकि कन्यादान को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है ।[१] पिता का यह महत्वपूर्ण दायित्व होता था कि वह उचित समय पर कन्या का योग्य पुरुष के साथ विवाह करे । इस सम्बन्ध में पिता अत्यधिक विचार विमर्श के बाद निर्णय लेते थे ।[२] सीता को वीर्यशुल्का बनाने के पीछे उद्देश्य योग्यतम वर की प्राप्ति करना था ।[३] राक्षस भी इस सम्बन्ध में सचेष्ट होते थे । सुमाली अपनी पुत्री कैकसी से कहता है - " तुम्हें विशिष्ट वर की प्राप्ति हो , इसके लिये हम लोगों ने अथक प्रयास किया है , क्योंकि कन्यादान के सम्बन्ध में हम धर्मबुद्धि रखने वाले हैं । तुम्हारा पति तुम्हारे समान योग्य होना चाहिये ।[४] मय राक्षस योग्य पति की प्राप्ति के लिये अपनी कन्या को लेकर भूमण्डल में विचरण कर रहा था ।[५]

कुशध्वज अपनी पुत्री वेदवती के लिये भगवान विष्णु को दामाद रूप में चाहते थे ।[६]

- -

१- महा० अनु० प० ४४।१-२
२- रामा० बालका० ३३।१० , कुशनाभ कन्याओं के विवाह के लिये राजा ने अपने मन्त्रियों से विचार विमर्श किया था । पुत्रों के विवाह के संबंध में भी पर्याप्त विचार विमर्श होता था । दशरथ ने पुरोहित तथा अन्य बन्धु बान्धवों के साथ बैठकर पुत्रों के विवाह के विषय में विचार किया था । रामा० बालका० १८।३७-३८
३- रामा० बालका० ६६। १५ , १६
४- रामा० उ० का० ९।८
५- रामा० उ० का० १२।११
६- रामा० उ० का० १७।१०-१२ ।

महाभारत के काल में भी हम प्राय: पिताओं को कन्याओं के लिये योग्यतम पति प्राप्ति के विषय में चिन्तित देखते हैं।[१] क्योंकि कहा गया है कि - " जो कन्या उत्पन्न हो जाती है, उसे किसी योग्य वर को सौंप देना आवश्यक होता है। यदि ठीक समय पर कन्याओं का दान हो गया तो पिता धर्मफल का भागी होता है। जो भाई या बन्धु उचित समय पर कन्या का किसी योग्य वर के साथ विवाह नहीं करता, वह भ्रूणहत्या के फल का भागी होता है, जो भाई बन्धु कन्या को विषयभोगों से वंचित कर घर में रोके रखता है, वह कन्या द्वारा अनिष्ट चिन्तन किये जाने के कारण भ्रूणहत्या के पाप का भागी होता है।[२]

१- महा० आदि प० १७०।११, १५-१६ सूर्य ने संवरण को योग्य जानकर अपनी पुत्री तपती को दिया था।
महा० उद्योग प० ९७। १४, २१ ९८ से १०३ अध्याय, मातलि ने गुणकेशी के विवाह के लिये योग्यतम पति की खोज में कई लोकों का भ्रमण किया था। महा० आदि ७३।२८, कण्व शकुन्तला व दुष्यन्त के सम्बन्ध से प्रसन्न थे। महा० वनप० २९३।३१-३२, अश्वपति ने योग्यपति की प्राप्ति के लिये सावित्री को भेजा था। महा० शा० प० २२० अध्याय। महा० अनु० प० १९।१४, २१।१७ ऋषि वदान्य ने अष्टावक्र की कठिन परीक्षा के बाद उनको अपनी कन्या सौंपी थी।
महा० वन० प० ६६।३०।

२- महा० अनु० प० २२ अध्याय, पृ० ५५५६
कन्या [illegible] दातव्या कुलपुत्राय धीमते ।।
महा० अनु० प० १०४। १२४
अप्रदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन् पति:
महा० वन० प० २९३।३५ ।

इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि - " अयोग्य पुरुष को कन्या नहीं देना चाहिये , क्योंकि सुयोग्य पुरुष को कन्यादान करना ही काम सम्बन्धी सुख और सुयोग्य संतान की उत्पत्ति का कारण है ।[1] इस सम्बन्ध में " अगर कन्या के लिये शुल्क भी ले लिया गया हो तो उसका भी विचार नहीं करना चाहिये , अपितु उत्तम पात्र को ही कन्या देना चाहिये ।[2] कन्या के पाणिग्रहण होने से पहले का वैवाहिक मंगलाचार और मन्त्र प्रयोग हो जाने पर भी , अगर किसी अयोग्य वर को छोड़कर किसी दूसरे योग्य वर के साथ कन्या व्याह दी जाय तो दाता को केवल मिथ्याभाषण का पाप लगता है ।[3]

साथ ही कन्याओं को भी यह छूट दी गयी है कि अगर पिता या अन्य बान्धव समय पर अपने इस उत्तरदायित्व का पालन न करें तो ऋतुमती होने के पश्चात कन्या तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करे , अनन्तर वह स्वयं किसी को अपना पति बना सकती है । ऐसी स्थिति में उसका उस पुरुष के साथ सम्बन्ध तथा उत्पन्न होने वाली सन्तान निम्न श्रेणी की नहीं समझी जाती , अगर वह ऐसा नहीं करती तो प्रजापति की दृष्टि में निन्दनीय होती है ।[4]

- -

१- महा० अनु० प० ४४।३६

२- वही अनु० प० ४४।५१

३- तत्पाणिग्रहणात् पूर्वमन्तरं यत्र वर्तते ।
सर्वमङ्गलमन्त्रं वै मृषावादस्तुपातक: ।। महा० अनु० प० ४४।५४

४- महा० अनु०प० ४४।१६-१७ त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कन्या ऋतुमती सती ।
चतुर्थे त्वथ सम्प्राप्ते स्वयंभर्तार
प्रजा न हीयते तस्या रतिश्च भरतर्षभ ।।
अतोऽन्यथा वर्तमाना भवेद् वाच्या प्रजापते: ।।
इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है - विष्णु ध० सू० २४।४०-४१, बौधायन ध०सू० ४।१।१४ , वशिष्ठ ध०सू० १७।६७

जो अपनी रूपवती कन्या का बड़ी उम्र हो जाने पर भी उसका योग्य वर के साथ विवाह नहीं करता , उसे ब्रह्महत्यारा समझना चाहिए ।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि समय पर कन्या का योग्य पुरुष के साथ विवाह करना पिता का महत्त्वपूर्ण दायित्व होता था और जो व्यक्ति अपने इस दायित्व को पूरा नहीं करता था , उसको पतित समझा जाता था ।

वधू और वर के वरणीय गुण -

वधू और वर के वरणीय गुणों में प्राय: दोनों के कुल , शील और वृत्त की सदृशता पर बल दिया जाता था ।

इस काल में " कुल " को विशेष महत्व दिया जाता था । साथ ही कन्या शुभ लक्षणों से सम्पन्न हो इस बात पर विशेष बल दिया जाता था । प्राय: सभी सूत्रकारों ने इस बात पर बल दिया था कि कन्या स्वस्थ , सुन्दर , बुद्धिमती और शुभ लक्षणों वाली होनी चाहिए ।[२] भरद्वाज गृह्यसूत्र के अनुसार कन्या से विवाह करते समय चार बातें देखनी चाहिये - धन , सौन्दर्य , बुद्धि एवं कुल ।[३]

१- महा० अनु० प० २४।६

२- वशिष्ठ ध० सू० १।३८ , विष्णु ध० सू० २४।११ ,
आश्व० गृ० सू० १।५।३ , बौधायन गृ० सू० १।५।६ , मनु ३।४ , १० ।
याज्ञ० १।५२ , विष्णु पु० ३।१०

३- भारद्वाज गृ० सू० १।११ ।

वात्सायन ने भी बुद्धिमती , स्वस्थ , निरोग चरित्रवान अच्छे कुल की तथा रूपवती कन्या को वरण योग्य माना है ।[१]

महाकाव्य काल में भी कुल को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था । विश्वामित्र कहते हैं - " इन दोनों कुलों में जो धर्मसम्बन्ध स्थापित होने जा रहा है , सर्वथा एक दूसरे के योग्य हैं । सीता महान कुल में उत्पन्न हुई थी ।[२] मय रावण को ब्रह्मा के कुल का बालक समझकर ही उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करने को उद्यत हुआ था । यद्यपि रावण को विश्रवा से क्रूर प्रकृति का होने का जो श्राप मिला था , उससे वह परिचित था ।[३]

महाभारत में भी कहा गया है कि उच्चकुल की कन्या से ही विवाह करना चाहिये ।[४] ऐश्वर्य को चाहने वाले को " अज्ञातकुलशीला " से विवाह नहीं करना चाहिये ।[५] विदुर ने उन लोगों की आलोचना की है जो कि उत्तम कुल में उत्पन्न होकर भी सदाचार विहीन हैं , उनके अनुसार वास्तव में कुलीन वही है जो सदाचार सम्पन्न हैं ।[६]

१- वात्सायन - कामसूत्र ३।१।२

२- रामा० बाल का० ७२।३ , सु० का० १६।५

३- वही उ० का० १२।२०-२१ । विदित्वा तेन सा दत्ता तस्य पैतामहं कुलम् ।

४- महा० अनु० प० १०४।१२३ महाकुले प्रसूतां च ।
वशिष्ठ ध० सू० ८।३८ ।
महा० अनु० प० १०४।१३६ महाकुले निवेष्टव्यं सदृशे वा युधिष्ठिर ।

५- वही अनु० प० १०४।१३६ अवरामतिला चैव न ग्राह्या भूतिमिच्छता ।

६- महा० उद्योग प० ३६। २३-३१ , बौ० ध० सू० १।५।१० , २६ , २६ ,
याज्ञ० १।५४ ।

पाप से छुटकारा पाने के लिये उच्च कुल में विवाह करना चाहिये।[1] साथ ही यह भी कहा गया है कि स्त्री रत्न है, इसलिये उसे कुल का विचार किये बिना अगर वह श्रेष्ठ है, तो ग्रहण करना चाहिये। जल और रत्न के समान स्त्रियां सदैव पवित्र होती हैं।[2] जब कि समाज में वैवाहिक बन्धन इतने कड़े नहीं थे तब कुल को इतना महत्व नहीं दिया जाता था। शान्तनु ने निषाद पुत्री सत्यवती से विवाह किया था।[3]

कन्या के अन्य वरणीय गुणों पर प्रकाश डालते हुए भीष्म कहते हैं - " श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न उत्तम लक्षणों से सम्पन्न, विवाह योग्य अवस्था को प्राप्त, सुलक्षणा कन्या से विवाह करना चाहिये।[4] उत्तम लक्षणों से सम्पन्न, श्रेष्ठ आचरण से प्रशंसित, मनोहारिणी तथा दर्शनीय कन्या के साथ विवाह करना चाहिये।[5] गान्धारी और माद्री को दर्शनीय तथा उत्तम कुल में उत्पन्न होने के कारण ही भीष्म उनको वरण करने के लिये तैयार हुए थे।[6] गान्धारी के द्वारा तपस्या करके सौ पुत्रों की प्राप्ति का वरदान उसका वरणीय गुण बन गया था।[7]

- -

१- महा० शा० प० १३४। १२-१३

२- वही शा० प० १६५।३२, स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ।
अद्भ्यो हि स्त्रियो रत्नमपि इत्यवधर्मतः ॥

मिलाइये मनु २।२३८-२४०, व० ध० सू० १३।५१-५३

३- महा० आदि प० ६७।२७, १००।४७

४- महा० अनु० प० १०४। १२२-१२३, महाकुले प्रसूतां च प्रशस्तां लक्षणैस्तथा
वयस्थां च महाप्राज्ञः कन्यामावोढुमर्हति ॥

५- महा० अनु० प० १०४।१३४

६- वही आदि प० १०६।५-६.

तपती सुन्दर रूप, सदाचार, साधु स्वभाव, और मनोहारिणी थी।[1] केवल कुन्ती शुभ लक्षणों से सम्पन्न थी।[2] माद्री बहुलक्षणा सम्पन्ना थी।[3] कुलीन होने के साथ-साथ रूपवान होना भी आवश्यक था।[4] क्योंकि रूप और यौवन को स्त्रियों का बल बताया गया है।[5] इसलिये कन्याओं को मनोज्ञा तथा दर्शनीया होना चाहिये।[6] महाकाव्य में कन्या की शारीरिक बनावट के सम्बन्ध में बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया गया है।[7] सीता ने स्त्रियों के शुभ लक्षणों का वर्णन किया है जिससे कि स्त्रियाँ राजा के साथ महारानी के पद पर अभिषिक्त होती हैं। दुर्भाग्य को सूचित करने वाले विलक्षण के लक्षणों का उन्होंने वर्णन किया है।[8]

- -

१- महा० आदि प० १७०।६

२- वही शा० प० २२० अध्याय, पृ० ५६८८

३- वही उद्योग पर्व ११६।३

४- वही आदि प० ११०।६ कुलीना ।
रामा० सु० का० ६।७२, १६।५

५- महा० शा० प० ३२०।७२ रूपयौवनसौभाग्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम् ।

६- महा० अनु० प० १०४।१३५ मनोज्ञां च तामिच्छन्तीह मनीषिणः ।।
आप० गृ० सू० १।३।२० । वात्स्यायन - " कामसूत्र " में यह परामर्श दिया है कि बुद्धि चाहने वाले को ऐसी कन्या से विवाह करना चाहिये जो बुद्धिमान और सुशील हो, यह सामान्य नियम है।

७- महा० उद्योग प० ११६।२, विराट प० ६।१०, रामा० कि० का० ५५।७-१३, ५५।२ महा० अनु० प० १०४।१३६

८- रामा० सु० का० ४८।६, महा० उद्योग प० ११।२०-२१ । इसी करि लक्षणों से जानती है कि उसका पति जीवित है।

विवाह के लिये वर्ज्य कन्याओं के बारे में कहा गया है - " जो कन्या किसी अङ्ग से हीन हो अथवा अधिक अङ्गवाली हो , जो समान गोत्र और प्रवर वाली हो , जो माता के कुल [नाना के वंश में] उत्पन्न हुई हो , उसके साथ विवाह नहीं चाहिये ।[1] जिसकी योनि अर्थात कुल का पता न हो तथा जो नीच कुल में पैदा हुई हो , जिसके शरीर का रंग पीला हो तथा जो कुष्ठ रोग वाली हो , उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिये ।[2] जो मृगी रोग से दूषित कुल में उत्पन्न हुई हो , नीच हो , सफेद कोढ़ वाले और राज्यक्ष्मा के रोगी मनुष्य के कुल में पैदा हुई हो , उसको भी त्याग देना चाहिये ।[3] अत: कन्या ऐसी होनी चाहिये , जो निरोग और स्वस्थ हो । मनु ने भी कुल को महत्व देते हुए दस त्याज्य कुलों की सूची दी है , जहां से कन्या को नहीं ग्रहण करना चाहिये ।[4] इस सूची को देखने से ऐसा आभास होता है कि स्मृतिकार वंश परम्परा के प्रभाव से परिचित थे , क्योंकि प्राय: देखा जाता है कुछ रोग वंशपरम्परा से चलते हैं , और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित हो जाते हैं ।[5]

- -

१- वर्जयेद् व्यंगिनी नारीं तथा कन्यां नरोत्तम ।
 समार्षां व्याधितां चैव मातु: स्वकुलजां तथा ।। महा० अनु० प० १०४।१३०

२- महा० अनु० प० १०४।१३२ अयोनिं च वियोनिं च न गच्छेत विचक्षण: ।
 पिंगलां कुष्ठिनीं नारीं न त्वमुद्वोढुमर्हसि ।।

३- महा० अनु० प० १०४।१३३

४- मनु ३।६-७ , याज्ञ० १।५४ , और भी देखिये मनु ३।२३८ , मनु ३।६२-६५ । मनु ३।८ ।

५- पी० एन० प्रभु - हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन , पृ० १५८ ।

वर के वरणीय गुणों में कुल , शील तथा सदाचार पर बल दिया जाता था । प्राय: सभी सूत्रकारों ने वर के वरणीय गुणों में - कुल , अच्छा चरित्र , शुभगुण , सुन्दर स्वास्थ्य , विद्या आदि पर विशेष बल दिया है।[१] स्मृतिकारों ने जो गुण कन्याओं के लिये आवश्यक बताये थे , उनके अनुसार वे सब योग्यतायें दूल्हा के लिये भी आवश्यक होती है , अतिदेश के द्वारा।[२] विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पादन था , इसलिये स्मृतिकारों ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि उसकी सन्तान उत्पन्न करने की क्षमता की जांच अच्छी प्रकार करनी चाहिये।[३] भीष्म वर के वरणीय गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं - " सत्पुरुषों को चाहिये कि वे पहले वर के शील स्वभाव , सदाचार , विद्या , कुल , मर्यादा और कार्यों की जांच करें । यदि वह सभी दृष्टियों से गुणवान प्रतीत हो तो उसे कन्या प्रदान करें।[४] तीनों लोकों में अपनी कन्या के लिये योग्य पति की खोज करते हुए नागकुमार सुमुख मातलि के मन में अपनी एकाग्रता , धैर्य , रूप तथा तरुण अवस्था के कारण समा गया था।[५]

- -

१- आश्व० गृ० सू० १।५।२ , आप० गृ० सू० ३।२०
यम [स्मृतिचन्द्रिका १ , पृ० २०२-२०३] ने वर के सात गुण बताये हैं - कुल , शील , वपु , यश , विद्या एवं सनाथता । आश्व० गृ० सू० ने कुल को अधिक महत्त्व दिया है।

२- याज्ञ० १।५५

३- याज्ञ० १।५५ , नारद १२।८ , शारीरिक गठन पर विशेष बल दिया है । नारद १२।८ युवक के पुंसत्व की परीक्षा आवश्यक होती थी ।

४- महा० अनु० प० ४४।२

५- वही उद्योग प० १०३।२२ ॥

सुमुख के पितृहीन होने पर भी उसके शील , शौच और इन्द्रियसंयम आदि गुणों से प्रभावित होकर मातलि ने उसको वरण किया था ।[१] धृतराष्ट्र अंधे हैं यह जानकर गान्धारराज सुबल के मन में बड़ा विचार हुआ , परन्तु उन्होंने उनके कुल , प्रसिद्धि और आचार आदि के विषय में विचार करके गान्धारी का विवाह धृतराष्ट्र के साथ कर दिया ।[२] इससे स्पष्ट है कि लोग कुल , प्रसिद्धि तथा यश इत्यादि को अधिक महत्त्व देते थे । संवरण के उत्तम कुल को देखकर ही सूर्य तपती का विवाह करने को उद्यत हुए थे ।[३] वर के वरणीय गुणों पर प्रकाश डालते हुए ऋषि वदान्य अष्टावक्र से कहते हैं - " जिसके दूसरी कोई स्त्री न हो , जो परदेश में न रहता हो , विद्वान् , प्रियवचन बोलने वाला , सम्मानित , वीर , सुशील , भोग भोगने में समर्थ , कान्तिमान और सुन्दर पुरुष हो , उसी के साथ कन्या का विवाह करना चाहिये ।[४] देवल अपनी पुत्री के लिये ऐसा वर चाहते थे " जो श्रोत्रिय ब्राह्मण होने के साथ-साथ प्रिय वचन बोलने वाला , महातपस्वी और अविवाहित हो ।[५]

इस काल में वर व वधू का सदृश होना आवश्यक माना जाता था । क्योंकि कहा गया है कि " जिनका धन समान है , विद्या एक सी है , उन्हीं में विवाह और मैत्री का सम्बन्ध हो सकता है , असमान में नहीं ।[६]

- -

१- महा० उद्योग प० १०४।१०-११

२- वही आदि प० १०९।११-१२

३- वही आदि प० १७१।१९

४- वही अनु० प० १९।१४

५- वही शा० प० २२० अध्याय , पृ० ४६८८

६- महा० आदि प० १३०।१० यथोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम् ।

इक्ष्वाकु कुल दशरथ तथा जनक के बीच जो सम्बन्ध हुआ था , वह सब प्रकार से सदृश था । वशिष्ठ जनक से कहते हैं - " ये (राम इत्यादि चारों भाई) आपकी कन्याओं के योग्य हैं और आपकी कन्यायें इनके योग्य हैं।[1] विश्वामित्र कहते हैं " इन दोनों कुलों में जो धर्मसम्बन्ध स्थापित होने जा रहा है , सर्वथा एक दूसरे के योग्य है । रूप , वैभव की दृष्टि से भी समान योग्यता का है ।[2] अशोकवाटिका में हनुमानजी देखकर राम और सीता की सदृशता को देखकर आश्चर्यचकित रह गये थे ।[3] वात्सायन ने भी वर वधू की सदृशता पर बल देते हुए कहा है - " दो व्यक्तियों में जो सामाजिक स्थिति में बराबर नहीं है ; उनका दाम्पत्य जीवन प्राय: सुखी नहीं रहता । सामाजिक खेलकूद जैसे शक्ति परीक्षा , वैवाहिक सम्बन्ध और सामाजिक मेलजोल लगभग समान होना चाहिये ।[4] जहां पति पत्नी की स्थिति समान हो , उसी को वात्सायन उत्तम विवाह मानते हैं ।[5] इस प्रकार स्पष्ट है कि वर व वधू को समान गुण , बुद्धि और योग्यता वाला होना चाहिये ।

गोत्र , सपिण्ड इत्यादि अन्य प्रतिबन्ध -

हिन्दू शास्त्रकारों के अनुसार मनुष्यों को अपने गोत्र , सप्रवर

१- रामा० बालका० ७०।४५

२- रामा० बाल का० ७२।३ सदृशो धर्मसम्बन्धः सदृशो रूपसम्पदा ।

३- वही सु० का० १५।५१ , १६।५

तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम् ।

राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा ।।

४- वात्सायन - कामसूत्र , ३।१ , २२-२४

५- वही , कामसूत्र ३।१ , २५ , २६ ।

तथा सपिण्ड में विवाह नहीं करना चाहिये । बहुत से ऋषियों ने जिनमें विष्णु तथा नारद आदि मुख्य हैं , सगोत्र एवं सप्रवर कन्या से विवाह अमान्य ठहराया है ।[१] पिता की तरफ से गोत्र से कार्य होता है और मातृपक्ष से सम्बन्धित सपिण्ड है । कोई भी व्यक्ति उस स्त्री से विवाह न करे जो मातृपक्ष से सपिण्ड हो ।[२] मनु के अनुसार कन्या सगोत्र नहीं होनी चाहिये ।[३] सपिण्ड विवाह में प्रतिबन्ध केवल सात या पांच पीढ़ी तक होता है , इसका तात्पर्य यह है कि सातवें पीढ़ी में सपिण्ड सम्बन्ध समाप्त हो जाता है । किन्तु सगोत्र पर प्रतिबन्ध अनगिनत पीढ़ियों तक चलता है ।[४] महाभारत में कहा गया है कि " प्रारम्भ में मूलगोत्र चार ही थे - अङ्गिरा , कश्यप , वशिष्ठ और भृगु । बाद में कर्म के अनुसार अन्य गोत्र उत्पन्न हो गये , ये नये गोत्र और उनके नाम उन गोत्र प्रवर्तक महर्षियों की तपस्या से ही साधु समाज में सुविख्यात एवं सम्मानित हुए हैं ।[५] जी० सी० पाण्डेय लिखते हैं - " परम्परागत कथा विशेष रूप से सात सिद्ध पुरुषों का वर्णन करती है , और यह मानती है कि वे संस्थापक थे ब्राह्मण जाति के अथवा गोत्रों के ।

- -

१- विष्णु ध० सू० २४।६ , याज्ञ० १।५३ , नारद स्त्रीपुंस , ७ ।

२- गौ० गृ० सू० ३।४।४-५ , हारीत गृ० सू० १।२७।२ , मनु ३।५ , याज्ञ० १।५३ , बौधायन २।१।३७ , वशिष्ठ २६।६-१० ।

३- मनु ३।५

४- मनु ५।६० , बौधायन १।११।२ , वशिष्ठ २२।५ , व्यास २।१-२

५- महा० शा० प० २९६।१७-१८ मूल गोत्राणि चत्वारि समुत्पन्नानि पार्थिव ।
अङ्गिराः कश्यपश्चैव वशिष्ठो भृगुरेव च ।।
कर्मतोऽन्यानि गोत्राणि समुत्पन्नानि पार्थिव ।
नामधेयानि तपसा तानि च ग्रहणात्सताम् ।।

प्राचीन गाथाओं में इनका वर्णन काल्पनिक अर्द्ध दैवी व्यक्तियों की तरह आया है । यह भी संकेत किया गया है कि सामान्य रूप से उनके नाम केवल दैवी पुरोहितों के नाम थे ।[1] महाभारत में भी उपर्युक्त परम्परा का पालन करते हुए कहा गया है - " जो कन्या माता के सपिण्ड और पिता के गोत्र की न हो , उसी का अनुगमन करे ।[2] महाकाव्य की कहानियां जो कि प्राचीन सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करती है , सगोत्र और सप्रवर विवाहों के विरुद्ध कुछ नहीं कहती । प्रारम्भ में ये प्रतिबन्ध इतने कड़े न थे । इसी प्रकार मातृ सम्बन्धी सपिण्ड के प्रतिबन्ध का प्रश्न है । महाभारत से यह स्पष्ट होता है कि चन्द्रवंशी आर्यों में इस नियम का पालन अनिवार्य न था । मामा की बेटी से विवाह आजकल वर्ज्य है , परन्तु पाण्डवों के समय चन्द्रवंशी आर्यों में इसकी मनाही न थी । श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का विवाह उसके मामा रुक्मी की बेटी से हुआ था और प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्ध का विवाह भी उसकी ममेरी बहन के साथ हुआ था । सुभद्रा का अर्जुन के साथ विवाह भी इसी प्रकार का था । सुभद्रा अर्जुन के मामा की बेटी थी । भीम का विवाह शिशुपाल की पुत्री से हुआ था । शिशुपाल की मां और कुन्ती दोनों बहनें थीं । इससे यह स्पष्ट होता है कि मामा की बेटी से विवाह चन्द्रवंशी आर्य विशेष प्रशस्त मानते थे ।[3]

१- पी० डी० पाण्डेय - फाउन्डेशन आफ इण्डियन कल्चर , पृ० २३

२- अनु० प० ४४।१८ असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
इत्येतामनुगच्छेत तं धर्मं मनुरब्रवीत् ॥
सम्भवतः यह मनु वर्तमान मनुस्मृति के रचयिता से प्राचीन हो सकते हैं ।

३- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० २४४ । वसुदेव देवकी और अक्रूर का आहुक की कन्या के साथ विवाह सगोत्र ही था ।
अल्तेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० ७२ ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रारम्भ में जब मौलिक रूप से ये कहानियाँ लिखी गयीं , इस प्रकार के विवाहों के साथ किसी प्रकार के पाप अथवा प्रायश्चित्त की भावना निहित नहीं थी । इन प्रतिबन्धों का पालन अनिवार्य नहीं था ।

<u>अन्य प्रतिबन्ध - मातृहीन कन्या से विवाह की मनाही</u>

वैदिक काल से ही मातृहीन कन्या विवाह के अयोग्य मानी जाती थी । ऋग्वेद में कहा गया है - " जिस प्रकार एक भ्रातृहीन कन्या अपने पुरुष सम्बन्धी [पिता के कुल] के यहाँ लौट आती है उसी प्रकार उषा अपने सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करती है ।[1] अथर्ववेद में कहा गया है - " उन्हें भ्रातृहीन स्त्रियों के समान गौरवहीन होकर बैठे रहना चाहिये ।[2] धर्मशास्त्रों में भी इसी प्रकार विचार व्यक्त किया गया है ।[3] हापकिन्स लिखते हैं कि - " आर्यों के नियम के अनुसार भ्रातृहीन कन्याओं से विवाह नहीं करना चाहिये और ऐसी कन्या के लिये ऋग्वेद कहता है कि साधारण तरीके से उस कन्या का विवाह नहीं होना चाहिये , बल्कि सड़क की एक साधारण औरत हो जाय ।[4]

- -

१- अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनयेधनानाम् ।
ऋ० १।१२४।७ , संस्कार प्रकाश [पृ० ७५७] ने इस वैदिक मंत्र को , इस पर यास्क की निरुक्त व्याख्या को तथा वशिष्ठ को उद्धृत किया है ।

२- अथर्व० १।१७।१

३- मानव गृ० सू० १।७।८ , मनु ३।११ , याज्ञ० १।५३

४- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इंडिया , पृ० ३५८ ।

मातृहीन कन्या से विवाह न करने के पीछे यह विचारधारा कार्य कर रही थी कि मातृहीन कन्या पुत्रिकाधर्म वाली होती थी अर्थात ऐसी पुत्री से जो पुत्र उत्पन्न होता था , वही नाना को पिण्डदान आदि देता था । ऐसी स्थिति में उस पुरुष का विवाह का जो लक्ष्य होता था कि पुत्र उत्पन्न होगा । वह पिण्डादिक क्रियायें करेगा तथा पितृ ऋण को चुकायेगा वह पूर्ण नहीं होता था । ऐसे पुत्र पर पिता का अधिकार न होकर नाना का अधिकार होता था । इसलिये लोग ऐसी कन्या से विवाह करने को मना करते थे ।[1]

महाभारत में भी इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर कहा गया है - " जिस कन्या के पिता अथवा भाई न हो , उसके साथ कभी विवाह न करना चाहिये , क्योंकि वह पुत्रिका धर्मवाली मानी जाती है ।[2] चित्रांगदा पुत्रिका धर्मवाली थी , इसलिये अर्जुन के द्वारा उसके साथ विवाह की इच्छा व्यक्त करने पर चित्रवाहन कहते हैं - " मेरी यह पुत्री पुत्रिका धर्मवाली है , इससे जो पुत्र उत्पन्न होगा , वह यहीं रहकर इस कुलपरम्परा का प्रवर्तक होगा । इस शर्त को स्वीकार करने पर ही इसके साथ विवाह हो सकता है । अर्जुन के द्वारा इस शर्त को स्वीकार करने पर उनका विवाह उसके साथ होता है । इस प्रकार अर्जुन अपने होने वाले पुत्र के अधिकार से वंचित हो गये । यही कारण था कि लोग मातृहीन कन्या से विवाह नहीं करते थे ।[3]

१- ऋ० १।१२४।७ बिना भाई की लड़की दुश्चरित्रता से पुरुषों के पीछे घूमती है । गौतम २८।२० , मनु ३।११ ।

२- यस्यास्तु न भवेद् भ्राता पिता वा भरतर्षभ ।
नोपयच्छेत तां जातु पुत्रिकाधर्मिणी हि सा ॥
महा० अनु० प० ४४।१५

अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह -

प्राचीन काल में सवर्ण विवाह का बंधन उतना कठोर नहीं था , जितना कि हम आजकल देखते हैं । यद्यपि सवर्ण विवाह को श्रेष्ठ माना गया था[१] , तथापि समाज में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह भी प्रचलित थे । इसमें से अनुलोम विवाह तो विहित माना गया है , परन्तु प्रतिलोम विवाह की धर्मशास्त्रकारों द्वारा तीव्र भर्त्सना की गयी है।[२] इन दो प्रकार के विवाहों से ही विभिन्न उपजातियों की उद्भावना हुई है।[३] वैदिक साहित्य में अनेक अन्तर्जातीय विवाहों के उदाहरण प्राप्त होते हैं।[४] शतपथ ब्राह्मण[५] ने वाजसनेयी संहिता [२६।३०] को उद्धृत कर लिखा है कि वह [राजा] वैश्य नारी से उत्पन्न पुत्र का राज्याभिषेक नहीं करता ।

महाकाव्य में भी अनेक अनुलोम विवाहों के उदाहरण प्राप्त होते हैं । रामायण में ऋष्यश्रृंग और शान्ता का विवाह अनुलोम विवाह

- -

१- महा० आदि प० ४७।४ , आप० ध० सू० २।६।१३।१ , एवं ३ मानव गृ० सू० १।७।८ , गौ० ध० सू० ४।१ , मनु ३।४ , ३।१२ बौ० ध० सू० १।८।१-६ , विष्णु ध० सू० २४।१-४

२- आप० ध० सू० २।६।१३।१ एवं ३ , गौ० ध० सू० ४।१

३- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास , पृ० २७७ [प्रथम भाग]

४- शतपथ ब्रा० ४।१।५ सुकन्या और च्यवन का विवाह , सुकन्या क्षत्रिया थी , जब कि च्यवन भृगु के वंशज थे । इसी प्रकार ब्राह्मण ऋषि श्यावाश्व का विवाह राजा रथवीति की पुत्री से हुआ था । ऋ० ५।६१।१७-१६ ।

५- शतपथ ब्रा० १३।२।६।८ ।

का उदाहरण है । ऋष्यश्रृंग ब्राह्मण थे , जब कि शान्ता क्षत्रिय थी ।[१]

इसी प्रकार श्रवण कुमार के पिता वैश्य और माता शूद्रा थी ।[२] उत्तरकाण्ड में अनेक अनुलोम विवाहों के उदाहरण प्राप्त होते हैं । राजर्षि तृणबिन्दु ने अपनी कन्या का विवाह महर्षि पुलस्त्य के साथ किया था ।[३] रावण के राजर्षियों , ब्रह्मर्षियों , दैत्यों , गन्धर्व तथा राक्षस जातीय पत्नियां थीं ।[४] गन्धर्व और राक्षसों के मध्य भी विवाह सम्बन्ध स्थापित हुए थे । ग्रामणि नामक गन्धर्व ने राक्षस सुकेश के साथ देववती का विवाह उसके साथ किया था ।[५] इसी प्रकार नर्मदा नाम की गन्धर्वी ने राक्षस जाति की न होने पर भी अपनी तीन पुत्रियों ह्री , श्री और कीर्ति का विवाह सुकेश के तीनों राक्षसजातीय पुत्रों के साथ किया था ।[५]

महाभारत काल में सवर्ण विवाह को प्रशस्य मानते हुए भी अन्य वर्णों से विवाह सम्बन्ध स्थापित करने में प्रतिबन्ध अधिक कठोर नहीं थे , वरन् इस काल में हमें अनेक अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों के उदाहरण प्राप्त होते हैं । महाभारत में कहा गया है - " ब्राह्मण के लिये चार स्त्रियां शास्त्रविहित हैं - ब्राह्मणी , क्षत्रिया , वैश्या और शूद्रा । इनमें से शूद्रा केवल रति की इच्छा वाले कामी पुरुष के लिये विहित है ।[६] क्षत्रिय

१- रामा० अयो० का० ६३।५१ शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप ।

२- वही उ० का० २।२४-२५ , २७-२८

३- वही यु० का० ६।६८

४- वही उ० का० ५।१-२

५- वही उ० का० ५।३१-३३

६- महा० अनु० प० ४७।४ , मनु० ३।१३ , बौ० ध० सू० १।८।१-६ , विष्णु ध० सू० २४।१-४ ।

के लिये भी दो वर्णों की भार्यायें शास्त्र विहित हैं - क्षत्रिया तथा वैश्या। तीसरी शूद्रा भी उसकी भार्या हो सकती है, परन्तु शास्त्र से उसका समर्थन नहीं होता।[१]

वैश्य की एक ही वैश्य कन्या ही धर्मानुसार भार्या हो सकती है, दूसरी शूद्रा भी होती है, परन्तु शास्त्र से उसका समर्थन नहीं होता है।[२] शूद्र की एक ही अपनी जाति की ही स्त्री भार्या होती है, दूसरी किसी प्रकार नहीं।[३]

समाज की स्थिति निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। सिद्धान्ततः ब्राह्मण की शूद्रा भार्या का उल्लेख तो किया गया, परन्तु अब उसका विरोध किया जाने लगा। विद्वानों द्वारा इसकी कटु निन्दा की गयी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य - ये तीन वर्ण द्विजाति कहलाते हैं, अतः इन तीन वर्णों में ही ब्राह्मण का विवाह धर्मतः विहित है।[४] अन्याय से, लोभ से अथवा कामना से शूद्र जाति की कन्या भी ब्राह्मण की भार्या होती है, परन्तु शास्त्रों में उसका कहीं विधान नहीं मिलता।[५] शूद्रा स्त्री से विवाह करने वाला ब्राह्मण प्रायश्चित्त का भागी होता है। शूद्रा के गर्भ से संतान उत्पन्न करने पर ब्राह्मण को दूना पाप लगता है, इसे दूना प्रायश्चित्त करना पड़ता है।[६] इतने पर भी समाज में

१- महा० अनु० प० ४७।४७

२- महा० अनु० प० ४७।५१

३- वही अनु० प० ४७।५६

४- वही अनु० प० ४७।७

५- वही अनु० प० ४७।८, ३।१४, याज्ञ० १।५७, विष्णु ध० सू० २६।५-६, पार० गृ० सू० १।४, वशिष्ठ ध० सू० १।२५। सभी ने शूद्रा स्त्री से विवाह की भर्त्सना की है।

६- महा० अनु० प० ४७।९-१०, शा० प० १६५।२७-२८।

कुछ उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं। एक ब्राह्मण की निषाद जाति की कन्या भार्या थी।[१] एक दुराचारी ब्राह्मण का वर्णन आया है जिसकी शूद्र जाति की स्त्री भार्या थी, जो पहले किसी दूसरे की पत्नी रह चुकी थी।[२]

इस काल में समाज में अनुलोम विवाहों के उदाहरण बहुतायत से प्राप्त होते हैं। ऋचीक तथा सत्यवती का विवाह[३], च्यवन ऋषि व सुकन्या[४], ऋष्यश्रृंग का शान्ता से विवाह[५], अगस्त्य लोपामुद्रा[६], जमदग्नि - रेणुका[७], पराशर व सत्यवती[८] के विवाह इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त वर्णित विवाहों में पुरुष तो ब्राह्मण वर्ण के थे और कन्यायें क्षत्रिय वर्ण की थीं। इससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण प्राय: क्षत्रिय कन्याओं से विवाह करते थे और इस प्रकार के विवाह समाज में निन्दनीय नहीं माने जाते थे। इसी प्रकार शान्तनु द्वारा सत्यवती को निषादकन्या जानकर भी उसके साथ विवाह में किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं हुई।[९] धृतराष्ट्र के वैश्यजातीय भार्या के द्वारा एक पुत्र युयुत्सु का जन्म हुआ था।[१०]

- -

१- वही आदि प० २६।३

२- वही शा० प० १७३।५

३- महा० शा० प० १७३।५

४- वही वन० प० ११५।२१, अनु० प० ४।१६

५- वही वन प० १२२ वां अध्याय

६- वही वन० प० ११३ वां अध्याय

७- वही वन० प० ६७ वां अध्याय

८- वही आदि प० ६३। ७०-८६

९- वही आदि प० १००। ४८-५१

१०- वही आदि प० ११४। ४२-४३ ।

प्रतिलोम विवाह -

जब धन पाकर या धन के लोभ में आकर अथवा कामना के वशीभूत होकर जब उच्च वर्ण की स्त्री नीच वर्ण के पुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेती है , तब वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न होती है ।[1] इसीलिये यह कहा गया है कि पुरुष अपने उच्च वर्ण की स्त्री से विवाह न करे । इस प्रकार के विवाहों की प्रतिलोम संज्ञा दी गयी है । और इस प्रकार सम्पन्न विवाहों की कटु निन्दा की गयी है । शुक्र पुत्री देवयानी द्वारा ययाति का वरण किये जाने पर वर्णसंकरता की आशंका से ययाति विवाह के लिये उद्यत नहीं होते और कहते हैं - " भद्रे ! मैं क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ , और तुम ब्राह्मण कन्या हो , अत: तुम्हारे साथ मेरा समागम नहीं होना चाहिये ।[2] क्षत्रिय लोग आपसे कन्यादान लेने के अधिकारी नहीं हैं ।[3] जब शुक्राचार्य यह वर देते हैं कि " इस विवाह में प्रत्यक्ष दीखने वाला वर्णशंकर जनित महान अधर्म तुम्हारा स्पर्श नहीं करेगा ।[4] शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के मन में पत्नी विषयक कामना उत्पन्न हो जाती है , परन्तु कहीं यह ब्राह्मण कन्या तो नहीं है , वे असमंजस में पड़ जाते हैं । वे सोचते हैं कि - " क्षत्रिय कन्या के सिवा दूसरी किसी स्त्री की ओर मेरा मन कभी नहीं जाता , ब्राह्मण कन्या की ओर आकृष्ट होना मेरे मन को कदापि सह्य नहीं है ।[5]

- -

१- अर्थाल्लोभाद् वा कामाद् वा वर्णानां चाप्यनिश्चयात् ।
अज्ञानाद् वापि वर्णानां जायते वर्णसंकर: ।। महा० अनु० प० ४८।१

२- महा० आदि प० ७८।२४ , पृ० २४४

३- वही आदि प० ८१।१८ , १९-२२ , ८१।२६

४- वही आदि प० ८१।३२-३३ अधर्मात् त्वां विमुञ्चामि ।

५- वही आदि प० ७१।१३ , पृ० २०९ ।

शकुन्तला के द्वारा जन्म वृत्तान्त सुनाये जाने पर कि वह क्षत्रिय कन्या ही है । क्योंकि विश्वामित्र जन्म से तो क्षत्रिय ही है । वह उससे विवाह का प्रस्ताव करते हैं ।[१] इससे स्पष्ट है कि वर्णसंकरता के भय से लोग अपने से उच्च वर्ण की कन्या से विवाह के लिये उद्यत नहीं होते थे । इसके पीछे सामाजिक रहस्य भी था । पुरुष अपनी स्त्री के सामाजिक स्थिति तक नहीं पहुंच पाता , जब कि स्त्री पुरुष की सामाजिक स्थिति को प्राप्त कर लेती है । इसलिये यह अच्छा है कि विवाह अगर समवर्ण में नहीं है तो पति उच्चवर्ण का होना चाहिये ।[२]

धर्मलोप की आशंका से ही विदुर ने ऐसी कन्या से विवाह किया जो शूद्रजातीय स्त्री के गर्भ से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न हुई थी ।[३] अगर वह चाहते तो क्षत्रिय कन्या से विवाह कर सकते थे , परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया । स्वयंवर सभा में द्रौपदी का यह कथन कि - " मैं सूत पुत्र का वरण नहीं करूंगी ।[४] स्पष्ट है इस प्रकार के प्रतिलोम विवाह निन्द्य थे । परन्तु समाज में इस प्रकार के विवाहों का अभाव नहीं पाया जाता था । क्योंकि अगर ऐसा होता तो जिस समय कर्ण लक्ष्यभेद के लिये उद्यत हुआ था , स्वयंवर सभा में उपस्थित धृष्टद्युम्न आदि अन्य राजा रोकते , परन्तु किसी ने ऐसा नहीं किया , इससे स्पष्ट है कि वीरता के प्रण वाले विवाहों में इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता था । दुर्योधन अग्नि को गरीब तथा दूसरी जाति ब्राह्मण जानकर अपनी कन्या नहीं देना चाहते थे ।[५] साथ ही आदर्श तथा व्यवहार में सदैव अन्तर पाया जाता है क्योंकि

१- महा० आदि प० ७३।१

२- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया , पृ० २६६ ।

३- महा० आदि प० ११३। १२-१३

४- वही आदि प० १८६।२३

निर्धारित आदर्शों के अनुसार समाज का प्रत्येक व्यक्ति नहीं चल पाता क्योंकि वे अत्यधिक उच्च होते हैं। यद्यपि यह कहा गया है कि - नीच कुल से भी उत्तम स्त्री को ग्रहण कर ले, स्त्रियां, रत्न और जल ये धर्मतः दूषणीय नहीं होते।[१] द्रौपदी के विवाह के सम्बन्ध में द्रुपद की व्यक्त की गयी चिन्ता इस बात को स्पष्ट करती है कि समाज में प्रतिलोम विवाह मान्य नहीं थे।[२]

सुलभा को ब्राह्मणी जानकर जनक ने उसे वर्णसंकर न करने के लिये कहा था।[३]

इस प्रकार के विवाहों के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनमें आर्यों द्वारा अप्सराओं तथा अन्य मानवेतर कन्याओं के साथ सम्बन्ध स्थापित किये गये। इस सम्बन्ध में घृताचि प्रमति, उर्वशी, पुरुरवा, भीम की राक्षसी भार्या हिडिम्बा[४], जरत्कारु ऋषि की भार्या नाग कन्या[५] शान्तनु की भार्या गंगा[६] के अर्जुन की भार्या उलूपी के उदाहरण उल्लेखनीय है। इनमें किसी प्रकार वर्णों का विचार नहीं किया।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शास्त्रकारों द्वारा अनुलोम विवाहों को मान्यता दी गयी थी, तथा प्रतिलोम विवाहों की

१- महा शा० प० १६५।३२

२- वही आदि प० १६१। १५-१७

३- महा० शा० प० ३२०।५६

४- वही आदि प० १५४। ३ , १८ , २० , २१-३०

५- वही आदि प० ४७।५

६- वही आदि प० ६८।५ ।

निन्दा किये जाने पर भी समाज में इस प्रकार के विवाह अप्रचलित न थे । सवर्ण विवाह को प्रशस्थ मानने के कारण इस ओर प्रवृत्ति बढ़ रही थी कि अपने ही वर्ण की कन्या से विवाह करे । अपने से निकृष्ट तथा उच्च वर्ण की कन्या का त्याग कर दे , मनुष्य अपने ही वर्ण की कन्या लाकर उसके साथ विवाह करे , जो हव्य और कव्य देने वाले पुत्र का प्रसव कर सकती है ।[1] युधिष्ठिर की मैं सवर्ण भार्या हूं ।[2] द्रौपदी की यह गर्वोक्ति तथा मैं असवर्णा के साथ सम्बन्ध नहीं करता हूं , यह प्रतीप का गंगा से कथन[3] तथा असवर्णता के कारण माहिष्मती के राजा[4] दुर्योधन का विप्रवेषधारी अग्नि को अपनी कन्या देने की अनिच्छा सवर्ण विवाह की प्रशस्यता को स्पष्ट करती है ।

कालान्तर में स्मृतियों में असवर्ण विवाहों की निन्दा की जाने लगी और अपने ही वर्ण में विवाह श्रेष्ठ माना गया । आपस्तम्ब स्मृति का कहना है कि - " दूसरी जाति की कन्या से विवाह करने पर महापातक लगता है और २४ कृच्छ्रों का प्रायश्चित करना पड़ता है ।[5] मार्कण्डेय पुराण में राजा नाभाग की कथा आयी है जिसने एक वैश्य कन्या से राक्षस विवाह किया था और वह पाप का भागी हुआ था ।[6] स्पष्ट है कि स्मृतियों के काल में असवर्ण विवाह पातक समझा जाने लगा था । समाज इस प्रकार के विवाहों को प्रशस्त न मानता था ।

१- महा० अनु० प०

२- वही सभाप० ६६।११ , तमिमां धर्मराजस्य भार्यां सदृशवर्णजाम् ।

३- वही सभा प० ३१।३१ ।

४- महा० सभा प० ३१।३१

५- आपस्तम्ब स्मृति

६- मार्कण्डेय पुराण १०१।२२-३६ ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महाभारत के कथा भाग में अनुलोम विवाह प्रचलित थे तथा उन्हें निंदनीय नहीं माना जाता था , बाद के भाग में सवर्ण विवाह को अधिक प्रशस्य माना जाने लगा तथा प्रतिलोम विवाहों की सर्वत्र निन्दा की गयी है ।

बहुपत्नित्व -

भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत एकपत्नीत्व को ही आदर्श माना गया है । वैदिक साहित्य में इस आदर्श को सूचित करने वाले शब्द " दम्पत्ति " का उल्लेख अनेक स्थानों पर आया है ।[१] एकपत्नित्व आदर्श रूप में स्वीकृत होते हुए भी समाज में बहुपत्नित्व की प्रथा के भी दर्शन होते हैं , यद्यपि यह प्रथा सामान्य वर्गों में प्रचलित न होकर राजाओं तथा ऐश्वर्यवान व्यक्तियों में ही प्रचलित थी ।[२] वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर पत्नियों द्वारा अपनी सपत्नियों के प्रति पति के प्रेम को घटाने के लिये मन्त्रों का प्रयोग किया गया है ।[३] शतपथ ब्राह्मण में आया है कि - " चार पत्नियां सेवा में लगी हैं - महिषी , (अभिषिक्त - रानी) , वावाता , परिवृक्ता (त्यागी हुई) एवं पालागली (निम्न जाति की) ।[४] न केवल राजा वरन् कुछ ऐश्वर्यवान ब्राह्मण भी कभी एक से अधिक पत्नियां रखते थे । याज्ञवल्क्य की दो पत्नियां थीं ।[५]

१- ऋ० ५।३।२ , ८।३१।५ , १०।६८।२

२- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० १०४

३- ऋ० १०।१४५।६ , अथर्व० ३।१८।१-६ । १०।१५६।५-६ इन्द्र की कई रानियां थीं । तै० सं० ६।६।४।३ एक पुरुष दो पत्नियां ग्रहण करता है

४- शतपथ ब्रा० १३।४।१।८-६ , ऐत० ब्रा० ३३।१ , १२।११, तै०ब्रा० ३।८।४

५- बृहदा० उप० ४।५।१-२ एवं २।४।१ । वाजसनेयी संहिता २३।२४ ,

सूत्रकाल में कुछ ऋषियों ने एकपत्नीत्व के आदर्श को दुहराया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र[१] के अनुसार " धर्म एवं सन्तति से युक्त एक ही पत्नी यथेष्ट है, किन्तु धर्म एवं सन्तान में एक के अभाव में इसकी पूर्ति के लिये दूसरी पत्नी भी की जा सकती है।

महाकाव्य काल में भी एकपत्नीत्व के आदर्श[२] को मानते हुए भी हम राजघरानों में प्राय: बहुपत्नीत्व के ही दर्शन करते हैं। इस प्रथा के शिकार प्राय: सभी राजा थे - आर्य, वानर तथा राक्षस सभी राजाओं के अन्त:पुर स्त्रियों से भरे थे। दशरथ के स्वयं तीन प्रमुख रानियों के अतिरिक्त साढ़े तीन सौ रानियां थी।[३] उस राजाओं के प्राय: चार मुख्य रानियां होती थी - महिषी, वावाता, परिवृक्ति और पालागली, इसमें से कुछ टीकाकारों ने महिषी को क्षत्रिया, वैश्य जातीय स्त्री को वावाता और शूद्रजातीय स्त्री को परिवृत्ति कहा है।[४] डा० एस० सी० सरकार के अनुसार " पालागली कोई निम्न वर्ण की रानी होती थी, और इससे यह संकेत मिलता है कि उच्च राजकीय कर्मचारी अपनी लड़कियों का विवाह राजनीतिक लाभ की दृष्टि से राजाओं से कर देते थे।[५] परन्तु दशरथ की तीनों रानियां क्षत्रिया ही थीं।

- -

१- आप० ध० सू० २।५।११। १२-१३
२- रामा० उ० का० ६६।७ आदर्श राजाराम एकपत्नी व्रती थे।
३- रामा० अयो० का० ३४।१३ अर्धसप्तशतास्तत्र प्रमदा: ।।
४- महिष्या परिवृत्याथ वावातामपरां तथा ।। रामा० बाल० का० १४।३५
५- एस० सी० सरकार - सम एस्पैक्ट्स आफ दि अर्लियस्ट सोशल हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० ८७ ।

राजा सगर के दो पत्नियां थीं[1], सम्भवत: राजा जनक के भी दो पत्नियां थीं, क्योंकि सीता को पालन-पोषण के लिये उन्होंने ज्येष्ठ रानी को प्रदान किया, जो उन्हें अधिक प्रिय थी।[2] बालि और सुग्रीव के अन्त:पुर भी अनेकानेक स्त्रियों से भरे पूरे थे, बालि की पहले तारा और रुमा दो पत्नियां थीं, जिन्हें बाद में सुग्रीव ने प्राप्त कर लिया था।[3] रावण का अन्त:पुर भी राक्षस, यक्ष, नाग, गन्धर्व और मनुष्य जाति की कन्याओं से भरा हुआ था। वाल्मीकि ने रावण के अन्त:पुर को " प्रमदावन " की संज्ञा दे डाली है।[4]

क्षत्रियों के अतिरिक्त ब्राह्मणों में भी इस प्रथा के दर्शन होते हैं। कश्यप की आठ स्त्रियां थीं।[5] मुनि विश्रवा ने पहले भरद्वाज की पुत्री और बाद में सुमाली की पुत्री कैकसी से विवाह किया था।[6] ब्रह्मदत्त ने कुशनाभ की सौ कन्याओं से विवाह किया था।[7] यह बहुपत्नित्व की प्रथा समाज के वैभवशाली वर्गों में ही प्रचलित थी।[8]

- -

१- रामा० बालका० ३८।३-४

२- वही अयो० का० ११८।३३

३- वही कि० का० २५।३४-३६, ४३-४५, ३३।२२, ५६, ५८, ३५।५

४- रामा० सु० का० ६।६, ६।६८, ६।३३-४१, ५८, १०।३०-५३

५- वही अरण्य का० १४।११-१२

६- वही उ० का० ३।३, ६।२१-२३

७- वही बाल का० ३३।२०-२२

८- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज, पृ० १२८।

जी० बनर्जी ने संख्या (स्त्री व पुरुषों की) के आधार पर विवाह का वर्गीकरण किया है।[1] नीतिशास्त्र तथा समाजशास्त्र की दृष्टि से बहुपत्नी विवाह की अपेक्षा निम्नकोटि का है।[2] इस बहुपत्नी प्रथा का भारतीय समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था। इस प्रथा के कारण ही राजाओं के अन्तःपुर प्रायः राग द्वेष और आपसी कलह के केन्द्र होते थे। इन षड्यन्त्रों ने राजनीतिक दृष्टि से शक्तिहीन बना दिया था।[3] सपत्नियां आपस में एक दूसरे को नीचा दिखाने के प्रयास में रत रहती थीं, उनके अपने-अपने गुट होते थे, जो अपनी-अपनी स्वामिनियों के हितों की रक्षा में तत्पर रहते थे।[4]

बहुपत्नी की प्रथा यद्यपि राजपरिवारों में प्रचलित थी तथापि भारतीय शास्त्रकार इस प्रथा की बुराइयों से अवगत थे, यही कारण है कि उन्होंने समाज के समक्ष एकपत्नीव्रत के आदर्श को ही सामने रखा, और उसकी प्रशंसा की। अन्ध मुनि अपने पुत्र श्रवण कुमार को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं - " तुम उन दिव्य लोकों को प्राप्त करो, जहां एकपत्नीव्रत का आचरण करने वाले प्रयाण करते हैं।[5]

- -

१- जी० बनर्जी - " दि हिन्दू ला आफ मैरिज एन्ड स्त्रीधन, पृ० २७-२८

२- वही, पृ० २६

३- आर० सी० मजूमदार - एन्शियेंट इंडिया, पृ० २०६
एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज, पृ० १३१, बहुपत्नी प्रथा आर्य संस्कृति का एक दुर्बल अंग थी।

४- अयो० का० ८।६-१२। दशरथ, कौशल्या और सुमित्रा तथा कैकेयी के अपने - गुट थे - रामा० अयो० का० ४।१६-२७, १२।१०६, ४।३६, ४।४३-४४। अयो० का० ७।२६ ।

५- या मतिः एकपत्नीव्रतस्य च। तां मतिं गच्छ पुत्रक ॥

इस प्रथा की बुराइयों को ध्यान में रखकर राम ने आजीवन एकपत्नीव्रत का पालन किया था । परन्तु कुछ लोगों ने रामायण के एकाधिक उद्धरणों के आधार पर यह अनुमान लगाने का प्रयास किया है कि राम के अनेक पत्नियां थीं । इस सम्बन्ध में मन्थरा द्वारा " रामस्य-परमा: स्त्रिया " [राम की श्रेष्ठ स्त्रियाँ] का उल्लेख किया है , जो कि राम के राज्याभिषेक से अतीव प्रसन्न होंगी[१], परन्तु यहां पर " परमा: " का अर्थ अनेक न होकर " श्रेष्ठ स्त्रियाँ " से है जो कि राम के लिये कौशल्या और सुमित्रा की तरह वन्दनीय थीं[२]। " परमा स्त्रिया: " का अर्थ राम के अन्त:पुर की सुन्दर स्त्रियाँ सीता देवी और उनकी सखियां भी किया गया है । साथ ही पूरे रामायण में कवि द्वारा कहीं पर भी राम की सीता के अतिरिक्त अन्य किसी पत्नी का उल्लेख नहीं किया गया है । लंका में प्राण त्याग के लिये उद्यत सीता का यह कथन कि - " जब आप पिता की आज्ञापालन कर लौटेंगे , तब सफल मनोरथ हो बहुत सी सुन्दरियों के साथ रमण करेंगे[३], परन्तु यह सीता की मात्र आशंका थी , यथार्थता नहीं । राम ने सीता के साथ ही शेष जीवन व्यतीत किया और सीता निर्वासन के बाद अश्वमेघ यज्ञ में सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा रखते हैं[४], क्योंकि इस समय राम चाहते तो धर्मकार्य के लिये दूसरी स्त्री से विवाह कर सकते थे , और इस सम्बन्ध में धर्मशास्त्र द्वारा भी छूट दी गयी है , परन्तु राम ने ऐसा नहीं किया ।

- -

१- रामा० अयो० का० ८।१२ हृष्टा: खलु भविष्यन्ति रामस्य परमा: स्त्रिया

२- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० १३२

३- रामा० यु० का० ३२।१४

४- वही उ० का० ६६।७ ।

महाभारत के समय में भी सामान्यत: क्षत्रियों में बहुपत्नित्व की प्रथा प्रचलित थी । उनकी अपनी राजकीय तथा साम्पत्तिक स्थिति के कारण अनेक स्त्रियों को प्राप्त कर लेना कठिन नहीं था । जनमत भी इस प्रथा के विरुद्ध नहीं था । पुरुषों का अनेक स्त्रियों से विवाह करना अधर्म नहीं माना जाता था ।[१] महाभारत बहुपत्नित्व के अनेकों उदाहरणों से भरा पड़ा है । माता-पिता को विवाहित पुरुषों से अपनी कन्याओं के विवाह करने में किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं होती थी । विचित्र वीर्य की दोनों पत्नियां एक ही राजा काशिराज की पुत्रियां थीं ।[२] इसी प्रकार अर्जुन की अनेक पत्नियां थीं ,[३] यह जानते हुए भी कृष्ण अपनी बहन सुभद्रा[४] और विराट राजा अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह करने को प्रस्तुत थे ।

१- महा० आदि० प० १५७।३६ नाप्यधर्म: कल्याण बहुपत्नीकृतां नृणाम् ।
महा० आश्व० पर्व - ७६।१४
नापराधोऽस्ति सुभगे भर्तृणां बहुभार्यतां ।।
महा० आदि प० १६४।२७ एकस्य बह्वयां विहिता महिष्य: कुरुनन्दन: ,
द्रुपद का कथन है ।

२- महा० आदि प० ६५।५१ , १०२।६५-६६

३- महा० आदि प० १६७।१३ , ६५।७४-७५ , २१४।२६ , २१३।३३-३४
अर्जुन की पत्नियों के नाम - द्रौपदी , चित्रांगदा , उलूपी । अर्जुन के अतिरिक्त अन्य भाइयों के भी दूसरी पत्नियां थीं ।
महा० आदि प० ६५।७६ , युधिष्ठिर की दूसरी पत्नी देविका थी ।
महा० आदि प० १५४।१६-२० , ६५।७७ , भीम ने हिडिम्बा और बलन्धरा नाम की कन्याओं से विवाह किया था । महा० आदि प० ६५।[illegible] ,
नकुल की दूसरी पत्नी करेणुमती थी । महा० आदि प० ६५।८० सहदेव ने मद्रकुमारी विजया से विवाह किया था ।

४- महा० आदि प० २१६।२१ ।

पाण्डु की दो पत्नियां थीं - कुन्ती और माद्री।[१] शान्तनु ने गंगा[२] से विवाह करने के पश्चात सत्यवती से विवाह किया था।[३] ययाति की देवयानी[४] और शर्मिष्ठा[५] दो पत्नियां थीं। राजा अजमीढ़ के चार पत्नियां थीं - कैकेयी, गान्धारी, विशाला तथा ऋक्षा।[६] वसुदेव की चार पत्नियां थीं - देवकी, भद्रा, रोहिणी, मदिरा।[७] श्रीकृष्ण की आठ पटरानियों के अतिरिक्त सोलह हजार और रानियां थीं।[८] वैद्य इसे काल्पनिक तथा अतिशयोक्तिपूर्ण मानते हैं।[९] द्रौपदी के स्वयंवर में समागत अनेक राजा पहले से ही विवाहित थे - जैसे शाल्व, जरासंध और शिशुपाल।[१०]

पिता द्वारा अपनी अनेक पुत्रियों को एक ही वर से विवाह कर देने की प्रथा प्रचलित थी।[११] एक प्रक्षिप्त अंशानुसार धृतराष्ट्र का विवाह गान्धारी आदि १० बहनों से हुआ था। पं० भगवद्दत्त के अनुसार कभी ये श्लोक क्षेपक नहीं थे, इन श्लोकों से यह ज्ञात होता है कि गान्धारी आदि

१- महा० आदि प० ९५।५८

२- वही आदि प० ९५।४७

३- वही आदि प० ९५।४८, १०१।१

४- वही आदि प० ८१।३१, ३६

५- वही आदि प० ८२।२४

६- वही आदि प० ९५।३७

७- वही मौसल प० ७।१९-२०

८- वही मौसल इन्ट्रोडक्शन, पृ० १३, सभा ३८, पृ० ८०८- ८११।

९- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा, पृ० २२९

१०- महा० आदि प० १८५।१३, २१, २३, २४

११- महा० आदि प० ६६।११, दक्ष ने अपनी ४९ कन्याओं में १० धर्म को,

दस बहनों का विवाह धृतराष्ट्र से हुआ था , प्रतीत होता है कि एक मास पिण्ड से धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों की कथा गढ़ने के लिये ये श्लोक शनैः-शनैः महाभारत से लुप्त हुए हैं , वस्तुतः इन्हीं दस बहनों से धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे ।[१] परन्तु अन्य किसी स्थान पर इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता । धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों की कथा को ठीक बैठाने के लिये यह मत व्यक्त किया गया है ।

परन्तु इन अनेक विवाहित पत्नियों में सबका स्तर समान नहीं होता था , बल्कि उनमें से एक ही जो कि ज्येष्ठ होती थी तथा राजनीतिक दृष्टि से प्रभावशाली राजा की पुत्री होती थी , उसी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता था । वही राजा के साथ धार्मिक कर्त्तव्यों को पूरा करती थी , तथा अन्य अधिकारों का उपयोग करती थी । उसी को महिषी पद पर अभिषिक्त किया जाता था ।[२] जैसा कि पांचों पाण्डवों की दूसरी पत्नियों के होते हुए भी महाकाव्य में द्रौपदी का उल्लेख ही प्रमुख पत्नी के रूप में हुआ है , अन्य का नाम के अतिरिक्त कोई भी उल्लेख नहीं है । रावण ने भी सीता से कहा था कि - " तुम्हारा अभिषेक महिषी पद पर कर दूंगा , अन्य सब स्त्रियां तुम्हारी सेवा करेंगी ।[३]

१- भारतवर्ष का बृहद् इतिहास - द्वितीय भाग [सं० २०१७] पृ० १५३ , पादटिप्पणी १ । नत्थूलाल गुप्त - महाभारत एक समाजशास्त्रीय अनुशीलन , पृ० ११३ ।

२- महा० आदि प० १६८। ७-८

३- रामा० यु० का० २०।१६ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव ।।

क्षत्रियों के अतिरिक्त ब्राह्मणों को भी अनेक पत्नियों से विवाह का अधिकार प्राप्त था।[१] परन्तु व्यवहार में उन्होंने इस प्रथा का पालन न कर एकपत्नीव्रत के आदर्श को ही अपनाया। प्रमुख ब्राह्मणों जैसे - जमदग्नि[२] गौतम[३], द्रोण[४], कृप, जरत्कारु[५], वशिष्ठ[६], अत्रि[७] बकवधपर्व में ब्राह्मण[८] सबकी एक पत्नी ही थी।

स्पष्ट है कि इस काल में भी बहुपत्नी प्रथा सामान्यत: उच्च तथा सम्पन्नवर्गों में ही प्रचलित थी। सामान्यत: लोग एकपत्नीव्रत के आदर्श का ही पालन करते थे।

बहुपतित्व -

एक पुरुष का अनेक स्त्रियों से विवाह करने की प्रथा तो आर्यों में प्राचीन काल से ही प्रचलित थी, जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट भी है। परन्तु एक स्त्री का अनेक पुरुषों से विवाह करने की प्रथा आर्यों में प्रचलित नहीं थी। इसे धर्मसम्मत नहीं माना जाता था,

- -

१- महा० आदि प० १५७।३५-३६, अनु० प० ४४।११, ४७।७
२- वही वन प० ११६।२
३- महा० आश्वमे० ५६।२६
४- वही आदि प० १२६।४६-४७
५- वही आदि १४।२-७, ४६।१६-२३, ४७।५
६- वही आदि १७३।५
७- वही अनु० प० १४।६५
८- वही आदि प० १५६।३२।

और न ही जनमत इसके पक्ष में था । तथापि अपवाद स्वरूप एकाधिक उदाहरण महाकाव्य में प्राप्त हो जाते हैं । रामायण काल में दक्षिण भारत की अनार्य जातियों में बहुपतिप्रथा के भी संकेत मिलते हैं।[१] महाभारत में बहुपतित्व का एकमात्र उदाहरण द्रौपदी का है , जिसका विवाह पांचों पाण्डवों से हुआ था।[२] युधिष्ठिर के द्वारा यह कहे जाने पर कि यह कृष्णा हम सबकी महारानी होगी।[३] द्रुपद यह सुनकर आश्चर्य चकित हो उठते हैं और कहते हैं - " यह तो वेद विरुद्ध है और तुम धर्म के ज्ञाता और पवित्र हो , अत: तुम्हें लोक और वेद के विरुद्ध यह अधर्म नहीं करना चाहिये।[४] स्त्री के अनेक पति हों , ऐसा कहीं सुनने में आया नहीं है । स्त्री के लिये अनेक पति प्राप्त करना अपराध समझा जाता था।[५] धृष्टद्युम्न ने भी इस प्रथा का विरोध किया था।[६] इस आक्षेप का प्रतिवाद करते हुए तथा इसको धर्मसम्मत ठहराने के लिये युधिष्ठिर द्वारा अनेक तर्क प्रस्तुत किये गये जिसमें प्रथम उन्होंने कहा कि - माता के ये वचन कि - " भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे "[७] [तुम सब मिलकर इसे पाओ] अत: द्रौपदी हम सब की महारानी होगी , हमारी माता ने पहले ही आदेश दे रखा है।[८] गुरुजनों की आज्ञा को धर्मसंगत माना गया है , और समस्त गुरुओं में माता परम

- -

१- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० १३३

२- महा० आदि प० १६७। १२-१३

३- महा० आदि प० १६४।२३ सर्वेषां महिषीराजन् द्रौपदी नो भविष्यति ।

४- महा० आदि प० १६४।२७-२८

५- वही आदि प० १६४।२७ नैकस्या बहव: पुंस: श्रूयन्ते पतय: क्वचित् ।

६- महा० आश्वमे० ७६।१४ ।

६- महा० आदि प० १६५।१० , १२

७- वही आदि प० १६०।२

८- वही आदि प० १६४।२३ ।

गुरु मानी गयी है ।[१] इसलिये हम पांचों भाइयों के साथ होने वाले सम्बन्ध को इसको परम धर्म मानते हैं ।[२]

२- दूसरे भाइयों में फूट पड़ जाने के भय से भी युधिष्ठिर ने द्रौपदी को पांचों भाइयों की पत्नी बनाना ही उचित समझा ।[३]

३- तीसरे युधिष्ठिर कहते हैं - मेरी वाणी कभी झूठ नहीं बोलती और मेरी बुद्धि कभी अधर्म में नहीं लगती , इसलिये यह किसी प्रकार अधर्म नहीं है ।[४]

वे अपने पक्ष के समर्थन में अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि पुराणों में सुना जाता है कि - " जटिला नाम वाली गौतम गोत्र की कन्या ने सात ऋषियों के साथ विवाह किया था , इसी प्रकार कण्डु मुनि की पुत्री वार्क्षी ने दस प्रचेताओं के साथ , जिनका एक ही नाम था और आपस में भाई-भाई थे , विवाह सम्बन्ध स्थापित किया था ।[५] कुन्ती भी युधिष्ठिर के इस मत का समर्थन करती है ।[६] यह प्रथा तिब्बत और सीलोन में चालू है , जहां कि पति लोग आपस में प्राय: एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं, प्राय: वे भाई-भाई होते हैं ।[७] व्यास भी अनेक कथाओं

१- महा० आदि प० १९५।१६ माता परमको गुरु: ।

२- वही आदि प० १९५।१७

३- वही आदि प० १९०।१५-१६

४- वही आदि प० १९५।१३

५- वही आदि प० १९५। १४-१५

६- वही आदि प० १९५।१८

७- पी० बनर्जी - हिन्दू ला आफ मैरेज एण्ड स्त्रीधन , पृ० २७

के माध्यम से द्रौपदी और पाण्डवों के इस विवाह को धर्मसम्मत ठहराते हैं।[१] इस प्रकार व्यास जी द्वारा पाँचों पाण्डवों के साथ द्रौपदी के विवाह को उचित तथा धर्मसम्मत ठहराये जाने पर भी द्रुपद निश्चिन्त न हो सके और बड़े ही अन्यमनस्क भाव से द्रौपदी का विवाह किया।[२]

समाज में इस प्रकार के विवाहों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। कर्ण कहता है - " नारी के लिये एक ही पति विहित है, पाँच की पत्नी बनी हुई यह द्रौपदी बन्धकी है।[३]

समाज में इस प्रकार की व्यवस्था का प्रचलन न हो सके - इसके लिये व्यास का यह आदेश था कि - " द्रौपदी का विवाह देवविहित होने के कारण निर्दोष था, किन्तु अन्य किसी को ऐसा नहीं करना चाहिये।[४] मजूमदार लिखते हैं " उस समय बहुपति की प्रथा प्रचलित थी, क्योंकि यह महाकाव्य प्राचीन कथाओं पर आधारित था, द्रौपदी का विवाह एक महत्त्वपूर्ण अंश था, जिसे बाद के पाठान्तरों में भी बदला नहीं जा सकता था, परन्तु बाद के काल में यह बन्द हो गयी।[५] इस विषय में चि० वि० वैद्य ने लिखा है कि - " एक स्त्री के अनेक पति करने की प्रथा उन चन्द्रवंशी

- -

१- महा० आदि प० १९६। २८-३०, १९६।४४-५२, १९६।५३

२- वही आदि प० १९७। १-४

३- वही सभाप० ६८।३५

४- महा० आदि पृ० ७६४, फुटनोट १९२४। डॉ० वनमाला भवालकर - " महाभारत में नारी ", पृ० १६४।

५- आर० सी० मजूमदार - एन्सियेंट इंडिया, पृ० २११।

आर्यों में थी , जो हिमालय से नये-नये आये थे । इसमें विशेष बात यह होती थी कि ये अनेक पति एक ही कुटुम्ब के सगे भाई होते थे । अब आज भी हिमालय की तरफ पहाड़ी क्षेत्रों में यह प्रचलित है , परन्तु भारती आर्यों में प्रारम्भ से इस प्रथा के प्रतिकूल मत था ।[१] के० एम० कपाड़िया के अनुसार - " पाण्डवों की बहुपतित्व की प्रथा इस जनजाति का इतना महत्वपूर्ण सांस्कृतिक लक्षण हो गयी थी कि ब्राह्मण लेखकों को उसका वर्णन करने के लिये बाध्य होना ही पड़ा ।[२]

इस प्रकार से विवाहित स्त्रियों की समाज में क्या स्थिति थी । इस पर विस्तृत प्रकाश तो नहीं पड़ता , परन्तु द्रौपदी को तो पतिव्रता माना गया था , और उसे परिवार में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । यद्यपि समाज के अन्य लोगों द्वारा इसकी आलोचना की जाती थी , जैसा कि कर्ण के कथन से स्पष्ट था ।[३] इसमें स्त्री को सम्पत्ति के समान समझा जाता था और द्रौपदी भी वैसी ही थी ।[४]

- -

१- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० २३०

२- के० एम० कपाड़िया - भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार , पृ० ५७
[प्रथम रूपान्तर]

३- महा० सभा प० ६८।३५

४- सक्सेना - " सोशल इकोनोमी आफ द पौलिएन्ड्रियस पीपुल अध्याय ३ पृ० २८-२९ , विवाह और तलाक के नियम , यह स्पष्ट करते हैं कि बहुपतित्व में स्त्री सम्पत्ति होती थी । द्रौपदी का दांव पर लगाया जाना , इसी स्थिति को स्पष्ट करता है । बहुपतित्व एक बुरा प्रथा थी , परन्तु लोग इसे पसन्द नहीं करते थे । महा० आश्वमे० १८।१४ , आदि प० १५८। ३५-३६ ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि बहुपतित्व की प्रथा सामान्य प्रथा न थी तथा समाज में इसे आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महाकाव्य काल में विवाह को एक समझौता न मानकर पवित्र संस्कार माना जाता था । विवाह का न केवल सामाजिक वरन् आध्यात्मिक महत्त्व भी था । विवाह ही एक ऐसा पवित्र संस्कार है जो कि कल तक अपरिचित दो प्राणियों को कभी न टूटने वाले बन्धन में बांध देता है । स्त्री और पुरुष जो कि ईश्वर की महत्त्वपूर्ण सृष्टि है, जिनके आपसी सहयोग से ही सामाजिक संगठन सुस्थिर रहता है, इसीलिये यह सम्बन्ध अग्नि को साक्षी मानकर किया जाता था । धार्मिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिये भी विवाह परमावश्यक था । पति और पत्नी न केवल इस लोक में एक दूसरे के साथी होते थे, वरन् परलोक में भी, मृत्यु के बाद वे एक दूसरे की प्रतीक्षा करते थे ।[1] यह सम्बन्ध सनातन [अभिन्न] माना जाता[2], एवं प्रकार के दोनों में पत्नीदान को सर्वश्रेष्ठ माना गया था ।[3] विवाह को एक " वास्तविक संगति " " शुद्ध हृदयों का सम्मिलन " माना जाता था ।

१- महा० आदि प० ७४।४५। रामा० कि० का० २४।३५, अयो० का० २६।१८ अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा । इसीलिये सीता राम से वन ले चलने का आग्रह करती है । रामा० युद्ध का० ११६।१६ ।

२- महा० आदि प० ७४। ४७-४७, रामा० कि० का० २४।३८

३- रामा० कि० का० २४।३७ ।

अध्याय - ४

पत्नी

पत्नी

भारतीय मनीषियों ने जीवन के विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति के लिये मानव जीवन को " चार आश्रमों " में विभाजित किया है - ब्रह्मचर्य , गृहस्थ , वानप्रस्थ और सन्यास ।[१] प्राय: मनुष्यों से यह आशा की जाती थी कि वे यथाक्रम यथासमय इन आश्रमों के कर्तव्यों का पालन करेंगे । ब्रह्मचर्याश्रम में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात जब व्यक्ति विवाह कर नये जीवन में प्रवेश करता है , उसे शास्त्रकारों द्वारा गृहस्थाश्रम की संज्ञा प्रदान की गयी है । गृहस्थाश्रम में ही व्यक्ति त्रिवर्ग का सेवन करता है , तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करता है ।[२] यही कारण है कि प्राय: सभी शास्त्रों में गृहस्थाश्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है ।[३] इन सब कार्यों को सफलता पूर्वक सम्पादित करने में सहभागी होती है - उसकी पत्नी । पत्नी के अभाव में व्यक्ति अपने कार्यों का सम्पादन सफलता पूर्वक नहीं कर सकता । यही कारण है कि भारतीय समाज दर्शन के अन्तर्गत पत्नी को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है ।

१- मनु १२।९७ , महा० अनु०प० १०४।१ " शतायुर्युक्त पुरुष: " महा० शा० प० २४२।१५ - आयुष्मस्तु चतुर्मार्गं । गौतम ३।२ , बौधा० ध० सू० ६२।६-१७ , वशि० ध० सू० ७।१ , मनु ६।८७ ।

२- महा० शा० प० १२।१८ , २१ , २२ , २३।६ , ११।२०

३- मनु ३।७७-७८ , महा० शा० प० २३४। ६-७ , आश्व० ४४।१६ , ४५।१३ , शा० प० १२।११-१२ , ६४।६ , रामा० अयो०का० १०६।२२

कन्या के रूप में चाहे उसे कहीं-कहीं कष्ट का कारण कह दिया गया हो , परन्तु कन्या ज्यों ही वधू का रूप ग्रहण करती है , उसकी स्थिति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है ।

पत्नी का महत्व -

स्त्री और पुरुष विधाता की महत्वपूर्ण सृष्टि है । शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है " पति अपनी पत्नी का आधा भाग है , इसलिये जब तक वह पत्नी नहीं प्राप्त करता , अधूरा रहता है , पत्नी प्राप्त करने पर ही वह पूर्ण होता है ।[१] स्पष्ट है कि भारतीय समाज दर्शन के अन्तर्गत जितनी महत्ता पुरुष को प्रदान की गयी है , उतनी ही स्त्री को भी । यही कारण है कि ईश्वर की कल्पना अर्द्धनारीश्वर के रूप में की गयी है ।

महाकाव्य काल में भी पत्नी की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी । यद्यपि समाज पितृसत्तात्मक था , और विवाह प्राय: अभिभावकों के संरक्षकत्व में होते थे ।[२] परन्तु उससे स्त्रियों के महत्त्व में कोई अन्तर नहीं आता था । मातृसत्तात्मक परिवार का केवल एक उदाहरण महाभारत में प्राप्त होता है ।[३]

१- शत० ब्रा० ५।२।१।१० , अर्धो ह्वाऽएष आत्मनो यज्जाया न विन्दते , अथ यदैव जायां विन्दते ----- तर्हि हि सर्वो भवति ।। तै० सं० ६।१।८।५ , मनु ३।५६-५८

२- रामा० बाल का० ७२।७-११ , महा० वन प० २९५।८ , विराट प० ७१।३१-३३ , ७२।३४

३- महा० कर्णपर्व ४५।१३ ।

हिन्दुओं के विषय में यह प्रकट होता है कि स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा उत्तम थी, उससे यह प्रकट होता है कि समाज मातृसत्तात्मक था। जिसमें स्त्रियां सम्पत्ति की स्वामिनी होती थी और अपने बच्चों की अभिभावक भी।[१] इस काल में भी मनुष्य के लिये भार्या उसकी श्रेष्ठतम सखा और उसका आधा भाग थी। भार्या ही त्रिवर्ग का मूल है, संसार सागर से तरने की इच्छा वाले पुरुष के लिये भार्या ही प्रमुख साधन है।[२] जिनके पत्नी हैं, वे ही यज्ञ आदि कर्म कर सकते हैं, सपत्नीक पुरुष ही सच्चे गृहस्थ है, वे ही सुखी और प्रसन्न रहते हैं तथा जो पत्नी से युक्त हैं, मानो वे लक्ष्मी से युक्त है [क्योंकि पत्नी ही घर की लक्ष्मी है]।[३] जिस प्रकार स्त्रियों की परमगति या आश्रय पुरुष है, उसी प्रकार पति के लिये पत्नी ही परम आश्रय होती थी। वह उसकी सहधर्मिणी तथा पति का माता के समान पालन-पोषण करने वाली होती थी।[४] पत्नी ही संङ्गिनी या मित्र होती है, धर्मकार्यों में स्त्रियां पिता की भांति पति की हितैषिणी होती हैं। संकट के समय माता के समान दुख में हाथ बंटाती तथा सेवा करती हैं।[५]

- -

१- पी० थामस - हिन्दू रिलीजन कस्टमस एण्ड मैनर्स, पृ० ६१

२- अर्ध भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतम: सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यत: ।। महा० आदि० प० ७४।४१

३- भार्यावन्त: क्रियावन्त: सभार्या गृहमेधिन: ।
भार्यावन्त: प्रमोदन्ते भार्यावन्त: श्रियान्विता: ।। महा०आदि०प० ७४।४२

४- महा० आदिप० १५६।३१, ऐत० ब्रा० ७।३।१३, सखाह जाया,
संयुक्त निकाय १।६।४ भरिया च परमा सखा।

५- महा० आदिप० ७४।४३ ।

स्त्रियाँ धर्मसिद्धि का मूल कारण है , रतिभोग , नमस्कार और परिचर्या उन्हीं के अधीन है , इसलिये स्त्रियों का सम्मान करना चाहिये ।[१] पति और पत्नी का संयुक्त नाम दम्पत्ति है , जिसका अर्थ है प्रत्येक क्षेत्र में उनका सम्मिलित स्वामित्व ।[२] स्त्रियों को घर की लक्ष्मी कहा गया है , वे अत्यन्त सौभाग्यशालिनी , आदर के योग्य , पवित्र और घर की शोभा होती है ।[३] वास्तव में घर को घर नहीं कहते , घरवाली का नाम ही घर है , घरवाली के बिना घर जंगल के समान होता है ।[४] वृक्ष के नीचे भी जिसकी पत्नी साथ है , उसके लिये घर वहीं पर हैं और स्त्री से रहित अट्टालिका भी दुर्गम गहन वन के समान है ।[५] स्त्री त्रिवर्ग की साधिका होती है , परदेश जाने पर भी वह उसके लिये विश्वसनीय मित्र के समान है ।[६] पुरुष की प्रधान सम्पत्ति उसकी पत्नी ही कही जाती है , इस लोक में जो असहाय है , उसे भी लोक यात्रा में सहायता देने वाली उसकी पत्नी ही है ।[७] विपत्ति से पीड़ित मनुष्य के लिये स्त्री औषधि के समान है ।[८]

- -

१- महा० अनु० प० ४६।१०

२- वही अनु० प० १४६।३६-४० , १४१।४३ दम्पत्योः समशीलत्वं धर्मः स्याद् गृहमेधिनः ।

३- महा० उद्योग प० ३८।११

४- वही शा० प० १४४।५-६

५- वही शा० प० १४४।१२

६- वही शा० प० १४४।१३ , आदि प० ७४।५१

७- वही शा० प० १४४।१४

८- वही शा० प० १४४।१५ , आदि प० ७४।५० ।

संसार में स्त्री के समान कोई बन्धु नहीं है , स्त्री के समान कोई आश्रय नहीं है और स्त्री के समान धर्मसंग्रह में सहायक भी दूसरा कोई नहीं है।[१] शकुन्तला स्त्री महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहती है - " पत्नी अपना आधा अंग है , यह श्रुति का वचन है , स्त्रियों पर ही लोक तथा परलोक आश्रित हैं। स्त्रियां पति के जन्म लेने का सनातन पुण्यक्षेत्र हैं , ऋषियों में भी क्या शक्ति है कि बिना स्त्री के सन्तान उत्पन्न कर सकें।[२] इसीलिये सुशीला स्त्री का पाणिग्रहण सबके लिये अभीष्ट होता है , क्योंकि पति अपनी पतिव्रता स्त्री को इहलोक में प्राप्त करता ही है , परलोक में भी प्राप्त करता है।[३] पत्नी का महत्त्व इसलिये भी होता है कि - पति ही पत्नी के भीतर गर्भरूप से प्रवेश करके पुत्ररूप में जन्म लेता है , यही जाया का जायात्व है , जिसे पुराणवेत्ता विद्वान् कहते हैं।[४] पति के अभाव में पत्नी ही उसके द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों को करती है। नागराज अपनी पत्नी की प्रशंसा करते हुए कहता है - " मैं अपनी एवं अपने भाग्य की विशेष रूप से प्रशंसा करता हूं , जो तुम जैसी सद्गुणी पत्नी प्राप्त हुई।[६] राम के मन में सीता के प्रति अगाध स्नेह था , पत्नी सीता के सान्निध्य में उनके सभी कष्ट दूर हो गये थे।

- -

१- महा० आदि प० ७४।५२

२- वही आदि प० ७४।४७

३- वही आदिप० ७४।३७

४- वही शा० प० ३५६।३-४

५- वही शा० प० ३६०।१६

६- रामा० अरण्य का० ६३।५-६ ।

आर्येतर जातियों के लोग चञ्चल चित्त होने के कारण अधिक दिनों तक अपनी पत्नियों से अलग नहीं रह सकते थे ।[१]

इस प्रकार आर्यजीवन में पत्नी का महत्वपूर्ण स्थान था । पति और पत्नी दोनों एक दूसरे के पूरक थे । इसीलिये महाकाव्य में पत्नी की इतनी प्रशंसा की गयी है ।

पत्नी के विभिन्न स्वरूप -

भिन्न-भिन्न समयों तथा भिन्न-भिन्न उत्तरदायित्वों का पालन करने के कारण पत्नी के विभिन्न स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं । अब हम उसके भिन्न-भिन्न रूपों में किये जाने वाले कार्यों का वर्णन करेंगे , जो कि उसकी महत्वपूर्ण स्थिति के द्योतक हैं ।

१- गृहिणीपद -

स्त्री पुरुष की प्रकृति के आधार पर ही समाज व्यवस्थापकों ने उन दोनों के उत्तरदायित्वों का निर्धारण किया है । गृहस्थी की आन्तरिक व्यवस्था का भार स्त्री पर ही होता था । ऋग्वेद में स्त्री के गृहिणी पद का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया गया है - जायेदस्तं[२] [स्त्री ही घर है] । अपने पति को प्रसन्न करने के लिये वह सुन्दर वस्त्र

- -

१- रामा० अरण्यका० ५४।६ , १७

२- ऋ० ३।५३।४ , ३।५३।६ , पत्नी को आनन्द का भण्डार बताया गया है । ऋ० १०।८५।२५ , १०।८५।४६ , गृहिणी को गृहपत्नी बनकर सास , ससुर , देवरों तथा ननदों पर शासन करने के लिये कहा गया है ।

धारण करती थी[१] व सदैव प्रसन्नचित्त रहती थी।[२]

वह प्रात:काल जल्दी उठती थी, परिवार के सदस्यों को जगाती थी और नौकरों को अपने-अपने काम पर लगाती थी।[३]

महाकाव्य काल में भी पत्नी को इन्हीं सब कार्यों को सम्पादित करना पड़ता था। उससे अपने से बड़ों के प्रति आदर सम्मान तथा छोटे के साथ स्नेह व प्रेम का व्यवहार करने की आशा की जाती थी। राम वन जाने से पूर्व सीता को तद्विषयक कर्तव्यों का उपदेश करते हुए कहते हैं - "प्रतिदिन सबेरे उठकर देवताओं की विधिपूर्वक पूजा करके महाराज दशरथ की वन्दना करनी चाहिए तथा धर्मत: माता कौशल्या भी तुमसे विशेष सम्मान पाने योग्य हैं।[४] जो मेरी शेषमातायें हैं उनके प्रति भी तुम्हें वैसा ही व्यवहार करना चाहिये, क्योंकि स्नेह, उत्कृष्ट प्रेम तथा पालन-पोषण की दृष्टि से सभी मातायें मेरे लिये समान हैं। भरत और शत्रुघ्न के साथ वे भाई तथा पुत्र के समान व्यवहार करने का आग्रह करते हैं।[५] राज्याभिषेक के पश्चात् सम्राज्ञी होते हुए सीता स्वयं ही समान रूप से सब सासुओं की सेवा करती थीं और पूर्वाह्नकाल में देवपूजन आदि

- -

१- ऋ० १।१२२।२

२- ऋ० ४।५८।८ अभिप्रवन्त समनेव योषा: कल्याण्य: स्मयमानासो अग्निम्।

३- ऋ० १।१२४।४

४- रामा० अयो० का० २६।३०-३१

५- वही अयो० का० २६।३२-३३। अयो० का० २६।३५, वे सेवा का उपदेश देते हैं।

करती थीं।[१] बनवास काल में भी सीता का यह प्रेम कम न हुआ था, और प्राय: वे उनके बारे में चिन्तित रहती थीं।[२] भृत्यजनों की देखभाल का दायित्व भी गृहस्वामिनी पर ही होता था।[३]

महाभारत में भी गृहिणी के सुन्दर स्वरूप का वर्णन किया गया है। गृहिणी को गृह सम्बन्धी पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे, तथा गृहस्थी का सम्यक् संचालन करना उसका महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व था। द्रौपदी इस कार्य में अहर्निश रत रहती थी। वह अपनी दिनचर्या पर प्रकाश डालते हुए सत्यभामा से कहती है - " मैं सावधानी से सर्वदा सवेरे उठकर समुचित सेवा के लिये सन्नद्ध रहती हूं। गुरुजनों की सेवा से ही मेरे पति अनुकूल रहते हैं।[४] माता कुन्ती की भोजन, वस्त्र, जल आदि से द्रौपदी स्वयं सेवा करती थी।[५] वह युधिष्ठिर के महलों में हजारों की संख्या में रहने वाले ब्राह्मणों, गृहस्थों और यतियों की भोजन, वस्त्र, और जल के द्वारा यथायोग्य सेवा करती थी।[६] समस्त भृत्यों में काम का बंटवारा तथा उनकी देखभाल द्रौपदी ही करती थी।[७] गृहसम्बन्धी अन्य

१- रामा० उ० का० ४२।२८

२- वही सु० का० २५।११

३- वही अयो० का० ३०।४३-४५। अयो० का० ३२।२४-२५। राम ने सीता के साथ अपने भृत्यों को चौदह वर्ष पर्यन्त के लिये धन प्रदान किया था और आग्रह किया था कि वे उनके घर में ही रहें।

४- महा० वन प० २३३।३६

५- वही वन० प० २३३।४०-४१, विराट प० २०।२३

६- वही वन० प० २३३। ४२-४४, ४५

७- वही वन० प० २३३।५२

समस्त कार्य जैसे - घर तथा बर्तनों की सफाई तथा यथासमय भोजन की व्यवस्था , सबका सम्पादन द्रौपदी स्वयं करती थी ।[१] आय व्यय पर भी नियन्त्रण गृहस्वामिनी का ही होता था ।[२] द्रौपदी कहती है - "मुझ पर जो भार रक्खा गया था , उसे दुष्ट स्वभाव के स्त्री पुरुष नहीं उठा सकते थे , परन्तु मैं सब प्रकार के सुखोपभोग छोड़कर रात दिन इस दुर्वह भार को वहन करती थी ।[३]

गृहिणी को सबसे पहले उठना और सबसे बाद में सोना पड़ता था ।[४] राजसूय यज्ञ में द्रौपदी स्वयं पहले भोजन कर इस बात को देखती थी कि सब मनुष्यों ने खा लिया है कि नहीं ।[५]

सास का तिरस्कार करना बहुत बड़ा पाप समझा जाता था ।[६] सास के समान ही बहुयें श्वशुर का भी सम्मान करती थीं ।[७] कुन्ती अपने श्वशुर व्यास को देवता के समान मानती थीं ।[८] सावित्री ने भी बड़े मनोयोगपूर्वक अपने सास-श्वसुर की सेवा की थी और अपने गुणों द्वारा

१- महा० वन० प० २३३।२६
२- वही वन० प० २३३। ५३-५४
३- वही वन० प० २३३।५५
४- महा० वन० प० २३३।५८
५- वही सभा प० ५२।४८
६- वही अनु० प० ६३।१२७ , ६४।३८
७- वही आश्रमवा० २६।३७
८- वही आश्रमवा० ३०।१ ।

सबको सन्तुष्ट कर दिया था।[१] वधुयें नित्यप्रति सास ससुर को प्रणाम करती थी और उनकी आज्ञा लेकर ही कोई कार्य करती थीं।[२] पति के बड़े भाई का भी परिवार में अत्यधिक सम्मान होता था। परिवार के लोगों पर उसका शासन होता था, अत: वधुयें अपने पति के बड़े भाई तथा उनकी स्त्री की भी सेवा शुश्रूषा करती थीं। आर्या कुन्ती ने महाभारत युद्ध के पश्चात अपने पुत्रों के पास न रहकर वन जाते हुए अपने जेठ जिठानी धृतराष्ट्र तथा गान्धारी का अनुसरण किया था, तथा वन में रहकर वे उनकी सेवा में शिष्या की भांति अहर्निश तत्पर रहती थीं।[३]

युद्ध में स्वजनों की मृत्यु का समाचार सुनकर मूर्च्छित हुए धृतराष्ट्र के समीप उनकी स्नुषायें उपस्थित थीं और जलसिंचनादि से उनकी सेवा कर रही थीं।[४] शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म की सेवा में वृद्ध स्त्रियां भी पंखे से हवा कर रही थीं।[५] वधुयें यद्यपि श्वसुर के समक्ष लज्जाशील रहती थीं, परन्तु वे उनसे भयभीत नहीं होती थी। धृतराष्ट्र को उनकी सभी वधुयें तथा पाण्डु की स्त्रियां घेरकर बैठी हुई थी।[६] ब्राह्मण स्नुषा के मन में यह दृढ़ श्रद्धा थी कि अपना देह, प्राण तथा धर्म श्वसुर की सेवा के लिये होता है, और उसी से परम लोक की प्राप्ति होती है।[७]

१- महा० वन० प० २९५। १९-२०

२- वही वन प० २९६। २३-२४

३- वही आश्रमवा० २७। १६-१७, १९।६

४- महा० शल्य प०

५- वही भीष्मप० १२१।४

६- वही आश्रमवा० १५। ३-४ " वधूजनवृतो राजा।"

७- वही शा० प० ९०।७६

साधारणतया प्रारम्भ में नववधुओं को अपने सास-श्वसुर द्वारा जो स्त्री धर्म की शिक्षा प्रदान की जाती थी , उसका वे पालन करती थी ।[१] सास-ससुर की सेवा करना स्त्री का प्रथम कर्तव्य होता था ।[२] सास श्वसुर की सेवा और ब्राह्मण , देवता, अतिथि की पूजा से स्त्रियाँ देवलोक प्राप्त करती थीं ।[३] उमा स्त्रीधर्म पर प्रकाश डालते हुए कहती है " जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठने में रुचि रखती हैं , घरों के कामकाज में योग देती हैं , घर को साफ सुथरा रखती हैं, जो पति के साथ प्रतिदिन अग्निहोत्र करती , देवताओं को पुष्प और बलि अर्पण करती , समस्त पोष्य वर्ग को भोजन से तृप्त कर स्वयं भोजन करती , घर के लोगों को सन्तुष्ट रखती हैं , ऐसी ही नारी सतीधर्म के फल से युक्त होती हैं ।[४] युधिष्ठिर ने संजय से कुरुकुल की श्रेष्ठ स्त्रियों को यह सन्देश भिजवाया था कि - " वे श्वसुरजनों के पति क्रूरता रहित कल्याणकारी बर्ताव करती हैं न ।[५] दैत्यों की पत्नियों द्वारा गृहिणी के कर्तव्यों का सम्यक् पालन न करने के कारण ही लक्ष्मी उनको छोड़ देती हैं ।[६] कुन्ती

- -

१- महा० वन० प० २३३।३३

२- वही वन० प० २३३।३८ , रामा० अयो० का० २६।३०-३२। महा० अनु० प० १४६।१५ , वात्सायन - कामसूत्र ४।५

३- वही अनु० प० १२३।१०

४- महा० अनु० प० १४६। ४८-५० , ५१

५- वही उद्योग प० ३०।३५

६- वही शा० प० २२८।६०

ने विवाह के पश्चात द्रौपदी को गृहसम्बन्धी सब कार्य सौंप दिये थे ।[१] सासुयें ऋषि मुनियों से प्राप्त ज्ञान का लाभ अपने पुत्रवधुओं को देती थीं ।[२]

सास तथा वधू के मधुर सम्बन्ध -

महाकाव्य काल में हम सास तथा वधुओं में बहुत ही मधुर सम्बन्ध देखते हैं । जहां एक ओर वधुयें अपने सास-श्वसुर की सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझती थी , वहीं सास ससुर भी स्नुषायें के प्रति हार्दिक स्नेह का व्यवहार करते थे । सदैव वधुओं से घिरी हुई गान्धारी तारकाओं के बीच में स्थित रोहिणी की भांति शोभा पाती थी ।[३] धृतराष्ट्र ने द्रौपदी को अपनी सर्वोत्तम स्नुषा कहकर वर दिये थे ।[४] गान्धारी को भी द्रुपद कुमारी कृष्णा अपनी समस्त पुत्रवधुओं में सबसे प्रिय थी ।[५] वधुओं के आने पर सासुयें बड़े प्रेम से उनका स्वागत करती थीं ।[६] कुन्ती ने नवविवाहिता द्रौपदी तथा सुभद्रा को मंगलसूचक आशीर्वाद दिये थे ।[७] द्रौपदी की पग-पग

१- महा० आदि प० १६२। ४-६ , १६३।६

२- वही अनु० प० ६४।३ , ३६

३- महा० सभा प० ५८। २७-२८ ददर्श तत्रगान्धारी ------- ।
स्नुषाभि: संवृतां शश्वत् ताराभिरिवरोहिणीम् ।।

४- महा० सभा प० ७१। २७ , ३३

५- वही आश्रमवासिक २६।४१

६- रामा० बालका० ७७।११ , १४ , महा० आदिप० १६६।२०

७- महा० आदि प० १६८। ७-११ ।

पर प्रशंसा करने वाली कुन्ती ने कृष्ण से कहा था - " हे जनार्दन , सभी पुत्रों से द्रौपदी मुझे अधिक प्रिय है ।[१] कुन्ती को अपने पुत्रों के वनवास तथा राज्य से भ्रष्ट होने का उतना दुख नहीं था , जितना अपनी प्यारी वधू द्रौपदी के सभा में अपमानित किये जाने का दुख था ।[२] वे अपने पुत्रों को द्रौपदी के बताये मार्ग पर चलने का आदेश देती हैं ।[३] द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए कुन्ती कहती हैं - " तुमने अपने शील सदाचार से दोनों कुलों का नाम ऊंचा किया है , तुम स्त्री धर्म को जानती हो , तुम्हें कर्तव्य का उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है ।[४] कुन्ती ने द्रौपदी को सब वस्तुयें समर्पित कर सम्मान किया था ।[५]

न केवल राजपरिवारों वरन् वीतराग ऋषि मुनि तथा तपोवन में रहने वाले ब्राह्मणों के परिवारों में भी स्नुषायें पर्याप्त सम्मान तथा प्यार प्राप्त करती थीं । पुलोमा राक्षस द्वारा अपहृत भृगुपत्नी पुलोमा को सान्त्वना देकर अपने वाग्दान से श्वसुर ब्रह्मा ने उसके अश्रुओं को एक पवित्र नदी के रूप में परिणित कर दिया ।[६] उसी प्रकार वाग्दत्ता पुत्रवधू

१- महा० वही उद्योग प० ६०।४३ , ४६
सर्वैः पुत्रैः प्रियतरा द्रौपदी मे जनार्दन ।

२- वही उद्योग प० १३७। १७-१८ , ६०।८५-८६

३- वही उद्योग प० १३७।२० , ६०।८०
" द्रौपद्याः पदवीं चर " ।

४- महा० सभाप० ७६।४-५ , उद्योगप० १३७। १२-१३

५- वही उद्योग प० ६०।४५

६- वही आदि प० ६। ५-६ ।

प्रमद्वरा को सर्पदंश से मृत्यु होने पर शोक से व्याकुलप्रमति,[१] यवक्रीत द्वारा शीलभंग किये जाने पर रोती हुई स्नुषा को सान्त्वना देते हुए अपराधी को शाप देने वाले रैभ्य,[२] पुत्र और स्नुषा द्वारा अभ्यर्चित होकर वांछित वर देने वाले ऋचीक के पिता[३] ये सब उदाहरण स्नुषाओं के प्रति श्वसुरों के स्नेहपूर्ण व्यवहार को प्रदर्शित करते हैं। वनवासकालिक सीता के कष्टों को सोचकर कौशल्या तथा दशरथ व्यग्र हो उठते थे।[४] दशरथ की स्त्रियां राम से सीता को न ले जाने का आग्रह करती हैं और कहती हैं कि वधू सीता को देखकर ही हम जीवन धारण करेंगी।[५] राज्याभिषेक के समय माताओं ने स्वयं अपने हाथों से सीता का श्रृंगार किया था।[६] रोती हुई सीता को देखकर दशरथ धैर्य खो बैठते हैं।[७]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इस काल में सास श्वसुर तथा स्नुषाओं के सम्बन्ध इतने मधुर थे, जिसकी कि हम आज के युग में परिकल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

पति के प्रति स्त्री के कर्तव्य -

पति सेवा स्त्री का प्रधान कर्तव्य था, क्योंकि स्त्री के लिये

- -

१- महा० आदिप० ८।२६-२७
२- वही वनपर्व १३६। ६-६, १२
३- वही वनप० ११५। ३२-३४
४- रामा० अयो० का० ४२।१६-२०, ४३।७-८, ५६।२४, २७, ६१।३-६
५- रामा० अयो० का० ३७।१७, १६, ४०।४४
६- वही युद्ध का० १२८।१७
७- वही अयो० का० १२। ७३-७५ ।

पति सबसे बड़ा देवता है। पत्नी के लिये पति ही सब कुछ था। जैसे बिना तार की वीणा नहीं बज सकती, बिना पहिये का रथ नहीं चल सकता है, उसी प्रकार नारी सौ बेटों की माता होने पर भी बिना पति के सुखी नहीं हो सकती। क्योंकि पति ही अपरिमित सुख प्रदान करता है।[१] पति धनी हो अथवा निर्धन, सम अथवा विषम स्थिति में हो, स्त्री के लिये वह देवता के तुल्य है। स्त्री के लिये पति ही उसका गुरु, गति तथा धर्म है।[२]

दशरथ को छोड़कर राम के साथ जाने के लिये उद्यत कौशल्या को राम ने जो उपदेश दिया है, वह उस समय के स्त्रीधर्म के आदर्श को अभिव्यंजित करता है। पति सेवा ही स्त्री का सनातनधर्म है, क्योंकि स्त्री के लिये पति ही स्वामी, श्रेष्ठ गुरु और प्रभु होता है।[३] पत्नी के लिये यज्ञ उपवासादिक की आवश्यकता नहीं है, पति सेवा ही उसके लिये यज्ञ तथा उपवास है।[४]

- -

१- नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ॥ रामा० अयो०का० ३९।२९
रामा० अयो० का० ३९।३० मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥

२- रामा० अयो० का० ३९।२५, ३९।३१, ३९।२७, ३९।२४, २१।६०

३- रामा० अयो० का० २४।१३, २४।१६, २४।२१ अयो० का० २७।९,
२४।२४-२५

४- वही अयो० का० २४। २६-२७ ।

पति सेवा ही स्त्री का सनातन धर्म है , प्राय: श्रुति तथा स्मृतियाँ सभी में इसका वर्णन है।[१] स्त्री के लिये लोक और परलोक में एकमात्र पति ही गति है , पिता , पुत्र , माता , सखियाँ यह अपना शरीर भी उसका सच्चा सहायक नहीं है।[२] पत्नी ही केवल अपने पति के भाग्य का अनुसरण करती है , अत: पति भक्ति ही स्त्री का एकमात्र कर्तव्य है।[३]

पति से वियुक्त होने पर नारी अपने जीवन को व्यर्थ समझने लगती थी।[४] सीता अपने वनवासी शूरवीर पति की सेवा करना अधिक अच्छा समझती है।[५] इसीलिये वे राम से वन चलने के लिये आग्रह करती हैं कि - वन जाने पर मेरे सारे पाप दूर हो जायेंगे , क्योंकि स्वामी ही स्त्री के लिये सबसे बड़ा देवता है।[६] स्त्री न केवल लोक में वरन् परलोक में भी पति का अनुसरण करती है , इस सम्बन्ध में वे श्रुति बचनों को उद्धृत करती है।[७]

१- रामा० अयो० का० २४।२७-२८ , २४।२९-१/२

२- वही अयो० का० २७।६ , ६१।२४

३- वही अयो० का० २७। ४-५ , २७।९

४- वही अयो० का० २९।७

५- वही अयो० का० २९।१५

६- वही अयो० का० २९।१६

७- वही अयो० का० २९।१७-१८

दयनीय अवस्था वाले पतियों को सेवा भी स्त्रियां देवता के समान करती थी।[१] स्त्री के लिये पति पालक और वरदाता होता है, पति का अपमान करना स्त्री के लिये निन्दित कर्म है, स्त्रियों के लिये पति की इच्छा का महत्त्व करोड़ों पुत्रों से अधिक है।[२] कौशल्या स्त्री धर्म से विज्ञ थी।[३] अत: दशरथ द्वारा मनाये पर वह स्त्री धर्म को याद कर लज्जित हो उठती है।[४] अनसूया सीता की प्रशंसा करते हुए कहती है - " बन्धु बान्धवों को छोड़कर और उनसे प्राप्त होने वाली मान प्रतिष्ठा का परित्याग करके वन में आये हुए श्रीराम का तुम अनुसरण कर रही हो, यह सौभाग्य की बात है।[५] वे सीता को पति सेवा का उपदेश देती हैं और कहती हैं कि प्रत्येक समय राम का अनुसरण करते हुए अपने स्वामी की सहधर्मिणी बनो, इससे तुम्हें सुयश और धन की प्राप्ति होगी।[६]

सीता राम से सम्बन्धित समस्त कार्यों को स्वयं करती थीं।[७] सीता की सबसे बड़ी आकांक्षा यही थी कि मैं निरन्तर पति की सेवा में संलग्न रहूं।[८] सीता पूर्वाह्न में अपनी सासुओं की सेवा करके राम की

- -

१- रामा० अयो० का० ३२। ३०-३२, ६२।८

२- वही अयो० का० ३५।८

३- वही अयो का० ६२।१४

४- वही अयो० का० ६२।१३

५- वही अयो० का० ११७।२२

६- वही अयो० का० ११७। २५, ११७।२३-२४, अयो०का० ११७।२६

७- रामा० अयो० का० १६। ६-१०, ११५।७

८- वही अयो० का० १६।२३

सेवा में उपस्थित हो जाती थी , ठीक उसी तरह जैसे - शची इन्द्र की सेवा में उपस्थित होती है।[१] पतियों की सेवा न करने वाली स्त्रियों की निन्दा करते हुए कहा गया है , उन्हें पापियों को मिलने वाली गति [नरक] की प्राप्ति होती है।[२]

महाभारत काल में भी हम पति सम्बन्धी उपर्युक्त धारणा को ही विकसित होते हुए देखते हैं। इस काल में भी पत्नी के लिये पति देवता था और उसकी आज्ञा का पालन करना उसका कर्तव्य था। इस काल में न केवल विवाह के पश्चात् वरन् चयन मात्र हो जाने पर ही कन्यायें उपर्युक्त सिद्धान्त का पालन करते हुए दिखायी पड़ती हैं।[३]

उमा स्त्रीधर्म पर प्रकाश डालते हुए कहती हैं - " जो पति की देवता के समान सेवा और परिचर्या करती है , पति के सिवा दूसरे किसी से हार्दिक प्रेम नहीं करती , उत्तम व्रत का पालन करती हैं , जिसका दर्शन पति को सुखद जान पड़ता है , जो पुत्र के मुख की भांति स्वामी के मुख की ओर सदा निहारती रहती हैं , वह स्त्रीधर्मचारिणी कही गयी है।[४]

- -

१- रामा० उ० का० ४२।२६

२- वही अयो० का० २४ । २५ $\frac{१}{२}$

३- महा० वन० प० २६४।२६-२७ , २६५।२१ , इस सम्बन्ध में सावित्री का विवाह उल्लेखनीय है। उसने सत्यवान को चयन कर लेने के बाद , उसके अल्पायु होने पर भी उसके साथ विवाह किया।

४- महा० अनु० प० १४६। ३७-३८ ।

अनुकूल तथा प्रियवादिनी स्त्री को मनुष्य लोक में सुख प्रदान करने वाली कहा गया है।[1] जो नारी अपने पति की सेवा करती है, उस पर देवता तथा पितर प्रसन्न होते हैं।[2] पत्नी को चाहिये कि वह सदैव सावधान रहे और पति के प्रति कभी भी कठोर तथा अहितकारी वचन न बोले।[3] पत्नी को कभी भी मन से भी परपुरुष का चिन्तन न करना चाहिये। जो स्त्री ऐसा करती है, वह पापकृत्य करने वाली समझी जाती है। मार्तिकावत देश के राजा को क्रीड़ा में रत देखकर रेणुका का मन विचलित हो गया, जिसका परिणाम उसे मृत्यु दण्ड के रूप में प्राप्त हुआ था।[4] श्रेष्ठ नारियों से यह आशा की जाती थी कि वे पति से परित्यक्त होने पर भी कभी क्रोध नहीं करती।[5] पति पत्नी का सत्कार करे या असत्कार, पत्नी का यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह पति को संकट ग्रस्त देखकर उसे क्षमा कर दे।[6] पतिव्रता पत्नी का यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह संकट में पड़कर भी अपने पति के प्राणों की रक्षा करे। बकवधपर्व में ब्राह्मणी अपने परिवार के रक्षार्थ अपना आत्मबलिदान करने को प्रस्तुत होते हुए कहती है - "पिता, माता और पुत्र ये सब परिमित मात्रा में ही सुख प्रदान करते हैं, परन्तु पति तो अपरिमित सुख का दाता होता है, अतः कौन स्त्री उसका सम्मान नहीं करेगी।[7]

- -

१- महा० उद्योग प० ३३।८२

२- वही अनु० प० १४१, पृ० ५६२३

३- वही अनु० प० १२३।६

४- वही वन० प० ११६। ७-६, १४

५- वही वन० प० ७०। ८-६

६- महा० वन० प० ७०।१२

७- वही आदि प० १५७।२२, २४-२५, १५७। २७ ।

इसी भावना से प्रेरित होकर अनेकों राजकन्याओं ने अपने वृद्ध तथा सभी प्रकार के लौकिक सुखों से वंचित अपने कृषि पतियों की सेवा की थी।[१] ब्राह्मणी पति सेवा से बढ़कर अन्य किसी वस्तु को महत्व न देती थी।[२]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महाकाव्य काल में पत्नियों ने अपनी उत्कृष्ट सेवा से अपने पतियों को पूर्णतया संतुष्ट किया था, और इसी पातिव्रत्य के प्रभाव से उन्होंने श्रेष्ठ व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली गति को प्राप्त किया तथा उनकी तपस्या व इन्द्रिय संयम के आगे तपःपूत महर्षि भी नतमस्तक होते थे।

संसार के मनुष्यों को पुत्र प्रिय होते हैं, परन्तु पत्नियां पुत्रों से भी अधिक प्यार पतियों को करती थी, जैसा कि सुमन्त्र कैकेयी से कहते हैं - " नारियों के लिये पति की इच्छा करोड़ों पुत्रों से भी अधिक है।[३] तारा भी कहती है कि - " अंगद जैसे सौ पुत्र एक ओर और पति का आलिंगन कर सती होना दूसरी ओर, तो इन दोनों में से पति का आलिङ्गन ही मुझे अधिक श्रेष्ठ जान पड़ता है।[४] कुछ लोगों का ऐसा

- महा०-
१- वही वनप० ६७।१२, ६७।१४, लोपामुद्रा ने अपनी सेवा से अगस्त्य मुनि को प्रसन्न कर लिया था। महा० वन० प० ११३।२२, शान्ता ने ऋष्यशृंग को। वनपर्व ११३।२३-२४, महा० वन० प० १२३।२८-२६, सुकन्या ने च्यवन की बड़े मनोयोग से सेवा किया था।

२- महा० वन० प० २०६।१०-१२, २०६।१५

३- रामा० अयो० का० ३५।८

४- वही कि० का० २१।१३ ।

विचार था कि पत्नियां पुत्रवती होने पर पति को उतना महत्व नहीं देतीं।[१] परन्तु अन्यत्र पति सेवा को ही महत्व प्रदान करते हुए प्रत्येक स्थिति में पति की सेवा करने के लिये कहा गया है।[२] साधारणतया: महाकाव्यकालीन स्त्रियों ने इसी के अनुसार आचरण किया है।[३] इस सम्बन्ध में केवल कैकेयी का उदाहरण ही अपवादरूप है, जिसने कि पति से बढ़कर पुत्र को माना था।[४]

पति की सेवा करना तथा उसकी आज्ञा के अनुकूल रहना पत्नी का प्रमुख कर्तव्य था, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि पत्नियों का अपना कोई अस्तित्व न रहा हो, वरन् महाकाव्यकालीन स्त्रियों में हमें ऐसी तेजस्विता तथा ओजस्विता के दर्शन होते हैं, जिसके बल पर उन्होंने अपने पतियों को पराभूत कर लिया था। अनेक स्त्रियों ने अपने कर्तव्य के प्रति असजग पतियों को कर्तव्य का उपदेश दिया है। वनगमन के लिये प्रस्तुत राम के द्वारा सीता को अयोध्या में भरत की आज्ञा में रहने का उपदेश दिये जाने पर[५] पहले तो वे नम्र शब्दों में आग्रह करती हैं[६] परन्तु तब भी राम के सहमत न होने पर वे राम से बड़े कड़े शब्दों में कहती हैं -

---

१- महा० आदिप० २३२।३१

२- वही अनु० प० १४६।४४

३- वही मौसल प० ८०।७

४- रामा० अयो० का० १२। ७४-७५, ८१, ८३, १०६, १४।१६-१८
अयो० का० १३।३, ३५, १४।२-१०, ४२।२१ ।

५- रामा० अयो० का० २६। २६-२७, ३५-३७

६- वही अयो० का० २७ सर्ग ।

" क्या मेरे पिता जनक ने आपको जामाता के रूप में प्राप्त कर कभी यह भी समझा था कि आप केवल शरीर से ही पुरुष है और कार्य कलाप से तो स्त्री ही हैं।[१] और उस भरत के वशवर्ती और आज्ञापालक बनकर आप ही रहिये, मैं नहीं रहूंगी।[२] इसी प्रकार दण्डकारण्य में निवास करते हुए राम के द्वारा राक्षसों का वध किये जाने पर वह उनसे अहिंसा धर्म के पालन का आग्रह करती है।[३]

पति को देवता मानने वाली कौशल्या ने राजा दशरथ को उनके द्वारा किये जाने वाले व्यवहार के प्रति आक्षेप किया था।[४] इसी प्रकार पुरुषार्थ को प्रधान मानते हुए कर्तव्य पथ का उपदेश देती हुई द्रौपदी[५], युद्ध से पलायन किये हुए पुत्र को वीरता का उपदेश देने वाली विदुला[६] अपने पुत्रों को कृष्ण के द्वारा भेजा कुन्ती का सन्देश[७], दुष्यन्त की सभा में फटकारते हुए शब्दों में दुष्यन्त के अन्याय का प्रतिरोध करती हुई शकुन्तला[८], पति के अनीतियुक्त व्यवहार का विरोध करते हुए गान्धारी[९] आदि स्त्रियों के उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि उस काल में

- -

१- रामा० अयो० का० ३०।३-४, ३०।८

२- वही अयो० का० ३०।९

३- वही अरण्यका० ९।२४-२५

४- रामा० अयो० का० ६१ सर्ग

५- महा० वनप० २७।३७-४०, २८।३१-३२, ३४-३६, ३० सर्ग

६- वही उद्योग प० १३३-१३४ सर्ग

७- वही उद्योग प० १३२ सर्ग

८- वही आदि प० ७४। २४-२६

९- वही सभा ७५। २-१०।

पत्नियां देशकाल की परिस्थितियों के अनुसार अपने उत्तरदायित्वों का पालन करने में पूर्ण सक्षम थीं ।

सहधर्मिणी का रूप -

पत्नी जहां एक और घर की गृहस्वामिनी होती थी , वहीं वह पति की सहधर्मिणी भी होती थी । वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने पति की सहयोगी होती थी ।

ऋग्वैदिक समाज में भी पत्नी को सहचरी का पद प्राप्त था । ऋग्वेद के वैवाहिक मन्त्र इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं ।[1] महाकाव्य काल में भी हम उसके इस स्वरूप को पाते हैं । जनक सीता को राम की सहधर्मिणी के रूप में प्रदान करते हैं , सीता महान पतिव्रता , सौभाग्यवती छाया की भांति राम का अनुसरण करने वाली थी ।[2] पत्नी को दासी , सखी , पत्नी , बहिन और माता की भांति सदैव पति के प्रिय करने की इच्छा से उसकी सेवा में संलग्न रहना चाहिये ।[3] इस सम्बन्ध में डा० राधाकृष्णन लिखते हैं - " मनुष्यों में सचेतनता की विचारों के आदान प्रदान की , बौद्धिक आनन्दों में हिस्सा बंटाने की और सुकुमारता की संतोष में मनुष्य को पूर्णता की लालसा होती है , हम बिल्कुल अकेले नहीं जी सकते , हमें मित्र चाहिये ।[4] यह कार्य पत्नी के द्वारा बहुत अच्छे ढंग

१- ऋ० १०। ८५।३६ , १०।८५।४२ , १०।८५।४७

२- रामा० बालका० ७३।२६-२७

३- वही अयो० का० १२। ६८-६९

४- डा० राधाकृष्णन - धर्म और समाज , पृ० १७८ ।

से किया जा सकता है इसलिये पत्नियों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे गृहिणी होने के साथ-साथ मित्र व सहचरी भी हों । पति और पत्नी एक दूसरे के सर्वोत्तम मित्र हैं , मित्रता जो सब सम्बन्धों का सार है , इसी प्रकार पति पत्नी के लिये और पत्नी पति के लिये है ।[१] महाकाव्य कालीन स्त्रियों ने इसी भावना से प्रेरित होकर घोर कष्टों में भी अपने पतियों का साथ दिया और दुख में उन्हें सान्त्वना प्रदान की । वन के कष्टों से अपरिचित तथा सुख ऐश्वर्य में पली सीता ने वन के कष्टों की परवाह न करते हुए राम का साथ दिया ।[२] पति के साहचर्य में पत्नी को कष्टों में भी सुखानुभूति होती है , इस पर प्रकाश डालते हुए सीता कहती हैं - " इस तरह सैकड़ों या हजारों वर्षों तक भी यदि आपके साथ रहने का सौभाग्य मिले तो मुझे कभी कष्ट का अनुभव नहीं होगा । यदि आप साथ न हों तो मुझे स्वर्गलोक की प्राप्ति भी अभीष्ट नहीं है ।[३] वे राम को आश्वासन देती हैं कि मैं सदैव आपके अनुकूल रहूंगी और इसी प्रकार प्रसन्नता का अनुभव करूंगी जैसे पिता के घर में करती थी ।[४] क्योंकि मेरे हृदय का सम्पूर्ण प्रेम एकमात्र आपको ही समर्पित है ।[५]

- -

१- मालती माधव ६।१८

प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा: सर्वे कामा: शेवधिर्जीवितञ्च ।
स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसामित्यन्योन्यवत्स्यो: ज्ञातमस्तु ।।

साथही दृष्टव्य - उत्तर रामचरित ६।३६

२- रामा० अयो० का० २७।७ , २७।६ , २७।१२ , २७।१६

३- वही अयो० का० २७। १६-२० , २७।२१

४- वही अयो० का० २७।१२

५- वही अयो० का० २७।२३ ।

सीता कहती हैं - " मैं आपकी भक्त हूं , पातिव्रत्य का पालन करती हूं तथा आपके सुख दुख में समान रूप से हाथ बंटाने वाली हूं । मुझे सुख मिलेगा , अथवा दुख , मैं दोनों अवस्थाओं में सम रहूंगी ।[१] राम ने फिर सीता के साथ आजीवन सहधर्माचरण का पालन किया , जो परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही थी ।[२] अनसूया सीता को सहधर्मिणी बनने का उपदेश देती हैं ।[३] पति भी पत्नियों के स्वामी होने के साथ-साथ सुहृद भी होते थे ।[४]

महाभारत के कथा भाग में ऐसी अनेक स्त्रियों के दर्शन होते हैं , जिन्होंने कि सुख वैभव में जन्म लिया , उसी में पल कर बड़ी हुई ' परन्तु विवाह के पश्चात बड़ी प्रसन्नता से उन्होंने अपने , ऋषि पतियों का अनुसरण किया और वन में रही ।[५] उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से सभी उत्तरदायित्वों का निर्वहन किया । सीता , सावित्री , दमयन्ती , सुकन्या , लोपामुद्रा आदि राजकन्याओं में हिमालय की सी दृढ़ता थी । वे वास्तव में सहधर्मिणी थी । दमयन्ती नल से कहती हैं - " वन में जिस

- -

१- रामा० अयो० का० २६।१६-२० , ३०।१८

२- वही अयो० का० ३०।२६ , ३०।३० , ३०।४०

३- वही अयो० का० ११७।२६

४- वही अयो० का० ११८।४

५- रामा० अयो० का० ४० , महा० वन० प० ११६।२-३ , १२३।२६ , ११५। २६-३० , ११३।२२ , ६७।७-१० , सभापर्व ७६।३ ।

समय आप अपने पूर्व सुख का चिन्तन करते हुए दुखी होंगे , मैं उस समय सान्त्वना द्वारा आपके संताप का निवारण करूंगी ।[१] क्योंकि ऐसा माना जाता था कि " समस्त दुखों को शान्ति के लिये पत्नी के समान दूसरी कोई औषधि नहीं है ।[२] स्त्री मनुष्य की दैवकृत सहचरी है ।[३] कुन्ती तथा माद्री ने भी वन में रहकर पाण्डु के साथ धर्माचरण किया था ।[४] आदर्श पत्नी अपनी सलज्ज सुकुमारता , मनोजयी मुस्कान और अच्छे साहचर्य द्वारा पति के लिये अनन्त तृप्ति का साधन होती है । सीता राम को प्राणों से भी प्रिय थी , क्योंकि वह उनकी सहधर्मिणी थीं ।[५] कालिदास ने रघुवंश के प्रथम सर्ग में शिव पार्वती को जो वन्दना की है उससे भी यही ध्वनित होता है कि शब्द और अर्थ की भांति ही पति पत्नी भी एक दूसरे से सम्पृक्त होते हैं ।[६]

मनु ने भी इसी प्रकार का विचार करते हुए कहा है कि - " पति पत्नी से अभिन्न है , और पत्नी पति से ।[७] इसलिये दोनों में समन्वय स्वभावत: आवश्यक समझा जाता था , यदि इन दोनों में पूर्ण एकता , अनुरूपता है तो घर स्वर्ग बन जाता है । यदि आपस में झगड़ा

- -

१- महा० वन प० ६१।७

२- वही वन० प० ६१।२८ , ६१।२६-३० , ६२।४

३- वही वन० प० ३१३।७२

४- वही आदि प० ११८। २७-३०

५- रामा० अरण्य का० १०।२१

६- रघुवंश १।१

७- मनु ६।४५ विप्रा: प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृतांगना ।

होता है तो नरक हो जाता है।[1] पत्नी पति को विश्वसनीय मित्र, सलाहकार और साथी है।[2] स्वर्ग में भी वे एक दूसरे की प्रतीक्षा करते हैं।[3] पत्नी का यह स्वरूप प्रत्येक काल में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था।

पत्नी के अधिकार -

उपर्युक्त विवरण से कुछ लोगों के द्वारा यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पत्नी के मात्र कर्तव्य ही कर्तव्य थे, अधिकार नहीं, परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। पत्नी को कर्तव्य के साथ ही साथ अनेक अधिकार तथा सुविधायें प्राप्त थीं।

१- भरण-पोषण का अधिकार

पत्नी का सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकार तथा पति का प्रथम कर्तव्य था कि वह पत्नी के भरण-पोषण की समुचित व्यवस्था करे। पति को भर्ता के नाम से भी पुकारते हैं, " भर्तृ " शब्द संस्कृत के " भृ " भरणे धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है भरण पोषण करना।

- -

१- पद्म पुराण उत्तरकाण्ड २२३।३६-३७
साथ ही द्रष्टव्य - यदा भार्या भर्ता च परस्पर वशानुगौ।
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपिसंगतम्॥
मार्कण्डेय पुराण ६७-७१।

२- रघुवंश ८।६७ गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रिय शिष्या ललित कलाविधौ

३- शतपथ ब्रा० ५।२।१।१०।

होता है तो नरक हो जाता है।[1] पत्नी पति की विश्वसनीय मित्र, सलाहकार और साथी है।[2] स्वर्ग में भी वे एक दूसरे की प्रतीक्षा करते हैं।[3] पत्नी का यह स्वरूप प्रत्येक काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण था।

पत्नी के अधिकार -

उपर्युक्त विवरण से कुछ लोगों के द्वारा यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पत्नी के मात्र कर्तव्य ही कर्तव्य थे, अधिकार नहीं, परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। पत्नी को कर्तव्य के साथ ही साथ अनेक अधिकार तथा सुविधायें प्राप्त थीं।

१- भरण-पोषण का अधिकार

पत्नी का सबसे महत्वपूर्ण अधिकार तथा पति का प्रथम कर्तव्य था कि वह पत्नी के भरण-पोषण की समुचित व्यवस्था करे। पति को भर्ता के नाम से भी पुकारते हैं, "भर्तृ" शब्द संस्कृत के "भृ" भरणे धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है भरण पोषण करना।

- -

१- पद्म पुराण उत्तरकाण्ड २२३।३६-३७
साथ ही द्रष्टव्य - यदा भार्या भर्ता च परस्पर वशानुगौ।
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपिसंगतम्॥
मार्कण्डेय पुराण ६७-७१।

२- रघुवंश ८।६७ गृहिणी सचिव: सखी मिथ: प्रिय शिष्या ललित कलाविधौ

३- शतपथ ब्रा० ५।२।१।१०।

आर्य सभ्यता के अन्तर्गत यह अकल्पनीय बात थी कि पति पत्नी की जीविका पर निर्भर हो । सीता ने भर्त्सनापूर्वक उन नटो [शैलूषों] का उल्लेख किया था , जो पत्नी के द्वारा दुराचार से अर्जित धन पर जीवन निर्वाह करते हैं ।[१] वन जाने को उद्यत सीता राम से यह अपेक्षा रखती हैं कि वे उनके जीवन निर्वाह की व्यवस्था करेंगे ।[२] श्रवण कुमार के मारे जाने पर उनके पिता शोक करते हुए कहते हैं कि - " अन्धा होने के कारण मैं तुम्हारी अन्धी , बूढ़ी , तपस्विनी मां का भरणपोषण करूंगा ।[३] पुरुष के लिये इससे बढ़कर और पाप क्या हो सकता है कि - " वह अपने पोष्यवर्ग की उपेक्षा कर अकेले ही मिष्ठान्न भोजन करें ।[४] भरणपोषण के योग्य कुटुम्बीजनों का पालन पोषण न करने पर मनुष्य को पाप का भागी होना पड़ता था ।[५]

जहां भर्ता का अर्थ " पत्नी का पालन पोषण करने वाला है ", वहां भार्या का अर्थ पति के उपलब्ध साधनों की व्यवस्था करके उसका संवर्द्धन करने वाली है ।[६]

महाभारत में भी पति के इसी अर्थ को अभिव्यक्त करते हुए कहा गया है - " पुरुष अपनी स्त्री का भरणपोषण करने से भर्ता

१- रामा० अयो० का० ३०।८

२- वही अयो० का० ३०।१५ , ३०।१७ , महा० द्रोण प० ७३।३३-३४

३- रामा० अयो० का० ६४।३५

४- वही अयो० का० ७५।३४

५- वही अयो० का० ७५।३८

६- महा० शा० प० २६६।३७ ।

और पालन करने के कारण पति कहलाता है , इन गुणों के न रहने पर वह न तो भर्ता है और न पति कहलाने योग्य है।[1] गौतम अपना यह उत्तरदायित्व पूर्ण न कर पाने के कारण दुखी होते हैं।[2] युधिष्ठिर सम्बन्धियों , अतिथियों , भृत्यों तथा शरणागतों का पालन करने वाले थे।[3] महर्षियों द्वारा प्रतिपादित यह महत्वपूर्ण धर्म है कि गृहस्थ पुरुष को अपने स्त्री पुत्रों का भरण पोषण करना चाहिये।[4] जो पोष्यवर्ग तथा अतिथियों के भोजन कर लेने के पश्चात भोजन करता था , उसे " अमृताशी " समझना चाहिये।[5] भरद्वाज ने अपने नाम की व्युत्पत्ति में कहा था कि - " मैं अपनी पत्नी तथा अन्य मनुष्यों का भरण पोषण करता हूं , इसलिये मुझे भरद्वाज कहते हैं।[6] भार्योपजीवी की निन्दा की गयी है।[7]

अकेले स्वादिष्ट अन्न खाना पाप समझा जाता था।[8] जो

- -

१- महा० आदि प० १०४।३० भार्याया भरणाद्भर्ता ।
वही शान्ति प० २६६।३७ , भरणाद्धि स्त्रियो भर्ता पात्या चैव स्त्रियः पतिः ।
गुणस्यास्य निवृत्तौ तु न भर्ता न पुनः पतिः
२- महा० शा० प० २६६।५२
३- वही शा० प० ५५।६
४- वही शा० प० ६०।८ , ६१।५ , अनु० प० ३४।११
५- वही अनु० प० ६३।१३ , ६३।१५
६- वही अनु० प० ६३।८८
७- वही अनु० प० ६३।१२१ , ६४।२२
८- महा० अनु० प० ६४। २१ , ३८ ।

पुरुष स्त्रियों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता था , उसे पापी समझा जाता था ।[2] पोष्यवर्ग का पालनपोषण करना पुरुष के ऊपर एक प्रकार का ऋण होता था ।[3] इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह प्रारम्भ से ही भरणीय कुटुम्बीजनों के पालनपोषण का प्रबन्ध करे ।[4] जिस पुरुष के द्वारा स्त्रियां खान-पान के द्वारा वशीभूत कर ली जाती हैं , उसी का जीवन सफल माना जाता था ।[5] पति पत्नी को अपरिमित सुख प्रदान करने वाला है ।[6]

इस प्रकार जहां पत्नी पति के द्वारा भरण पोषण प्राप्त करने की अधिकारिणी थी तथा पत्नी को पति गृह में रहकर अपने अधिकारों का उपभोग श्रेष्ठ माना जाता था , वहीं महाकाव्य में कुछ ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं जहां स्त्रियां विवाहोपरान्त अपने पिता के घर में रहीं तथा पुरुषों ने अपने कर्तव्यों का पालन नहीं किया । चित्रांगदा को उसके पिता ने पुत्रिका धर्मिणी बनाया था , इसलिये वह अपने पिता के घर में रही ।[7]

१- महा० अनु० प० ६४। २१ , ३८

२- वही अनु० प० ६४।२६

३- वही शा० प० २६२।६

४- वही शा० प० २६२।११

५- वही उद्योग प० ३६।८२ , द्रोणपर्व १७४।४३

६- रामा० अयो० का० ३६।३० , महा० शा० प० १४८। ६-७

७- महा० आदि प० २१५।२३ ।

भीम के साथ हिडिम्बा का विवाह भी समझौते पर आधारित था कि हिडिम्बा भीम की रक्षा करेगी ।[१] मुनि जरत्कारु ने नाग कन्या जरत्कारु से इसी शर्त पर विवाह किया था कि उसके भरण-पोषण का दायित्व उनके ऊपर न होकर उसके अभिभावकों पर होगा ।[२] प्रद्वेषी ने भी अपने पति को इसी लिये नदी में फिंकवा दिया था कि वह पति तथा पुत्रों के भरणपोषण के उत्तरदायित्व से ऊब चुकी थी । क्योंकि उसका पति भरणपोषण करने में असमर्थ था ।[३]

रक्षण का अधिकार -

पति का दूसरा महत्त्वपूर्ण कर्तव्य तथा पत्नी का अधिकार था कि वह पत्नी की " हरसम्भव उपाय से रक्षा करे । राम जब सीता को वन ले जाने के लिये प्रस्तुत नहीं होते , तो सीता उनके पुरुषत्व[४] पर आक्षेप करते हुए कहती है कि - " आप तो वन में रहकर दूसरे लोगों की रक्षा कर सकते हैं , तब मेरी रक्षा करना आपके लिये कौन बड़ी बात है ।[५] तब राम वीरोचित पुरुषत्व के साथ कहते हैं कि - " मैं वन में तुम्हारी रक्षा के लिये सर्वथा समर्थ हूँ । स्वयम्भू ब्रह्मा की भांति मुझे किसी से किंचित भय नहीं है ।[६] राम वन में सीता की रक्षा बड़ी सजगता

१- महा० आदि प० १५४। १८-२०

२- वही आदि प० ४६।१८ , ४७।१-२

३- वही आदि प० १०४।३०

४- रामा० अयो० का० ३०।३ , ३०।४ , ३०।५

५- वही अयो० का० २७।१४

६- रामा० अयो० का० ३०।२८ , ३०।२७ ।

से करते हैं।[1] राम भरत को कुशल क्षेम के बहाने राजनीति का उपदेश देते हुए कहते हैं कि - "तुम अपनी स्त्रियों को संतुष्ट रखते हो न, वे तुम्हारे द्वारा भली-भांति सुरक्षित रहती हैं न।[2] एक सम्माननीय पुरुष के लिये किसी के द्वारा पत्नी का स्पर्श कर लेना, लज्जा की बात होती थी।[3] शूर्पणखा की रक्षा में ही दण्डकारण्य में निवास करने वाले चौदह हजार राक्षस खर दूषण सहित मारे गये थे।[4] पत्नी की रक्षा न कर सकने वाले पुरुष की संसार में निन्दा होती थी। समर्थ पुरुष इसके मार्जन के लिये पूर्ण प्रयास करते थे।[5] राम कहते हैं - "अपने तिरस्कार का बदला चुकाने के लिये मनुष्य को जो कर्तव्य है, वह सब मैंने अपनी मान रक्षा की अभिलाषा से रावण का वध करके पूर्ण किया।[6] राम ने [सीताहरण रूपी] अपने सुविख्यात वंश पर लगे कलंक के परिमार्जन के लिये इतना बड़ा उद्योग किया था।[7]

पति शब्द संस्कृत के "पा" रक्षणे धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है रक्षा करना। द्रौपदी को इस बात का सदैव दुख रहता था कि वह बलशाली पांच पाण्डवों के पति होते हुए भी दुर्योधन की सभा

- -

१- रामा० अयो० का० ५२।६४-६६, अयो० का० ५३।३
२- वही अयो० का० १००।४६
३- वही अरण्यका० २।२१
४- वही अरण्यका० २२।२
५- वही युद्धका० ११५।५, ११५।६, अयो० का० २४।१६, अयो० का० ४३।४६।
६- रामा० युद्ध का० ११५।१२
७- वही युद्धका० ११५।१४-१६ ।

में इस प्रकार अपमानित की गयी ।[१] अत्यन्त प्राचीनकाल से यह मान्यता प्रचलित थी कि निर्बल पति भी अपनी पत्नी की रक्षा करता है ।[२] क्योंकि पत्नी की रक्षा करने से अपनी संतान सुरक्षित होती है, और संतान की रक्षा होने पर अपने आत्मा की रक्षा होती है ।[३] इसलिये पत्नी की रक्षा परमावश्यक है ।[४] साधु तथा धर्मज्ञ पुरुषों के लिये यह आवश्यक समझा जाता था कि वह सदैव अपनी पत्नी का भरणपोषण एवं रक्षा करे ।[५] अश्विनीकुमार सुकन्या से कहते हैं कि - " यह बूढ़ा तो तुम्हारी रक्षा और पालन-पोषण करने में भी समर्थ नहीं है, अत: तुम उसे छोड़ दो ।[६] स्पष्ट है कि अगर पति अपने उपर्युक्त कर्तव्यों का पालन नहीं करता, तो वह पति कहलाने का अधिकारी नहीं है ।[७] इसलिये मनुष्यों को यह परामर्श दिया गया है कि - " वे पहले राजा, फिर पत्नी और तब धन का संग्रह करें । क्योंकि लोक रक्षक राजा के न होने पर भार्या कैसे सुरक्षित रहेगी ।[८] राजा को भी यह परामर्श दिया गया है कि वह ईर्ष्यारहित होकर अपनी स्त्री की रक्षा करे ।[९] उस राजा

१- महा० वन० प० १२।६१, ६४, ६६, ६७, ११७

२- वही वन० प० १२।६८

३- वही वन० प० १२।६६, मनु ६।६

४- वही वन० प० १२।७०

५- वही वन० प० ६६।४१

६- महा० वन० प० १२३।१०

७- वही शा० प० २६६।३७

८- वही शा० प० ६८।१५, ५७।४१, ६८।१५, ३२

९- वही शा० प० ७०।८, अनु० प० ६१।२५ ।

की निन्दा की गयी है , जिसके राज्य में रोती बिलखती स्त्रियों का बलपूर्वक अपहरण हो जाता है , और पति पुत्र रोटते पीटते रह जाते हैं।[१] क्योंकि शत्रुओं का आक्रमण होने पर संकट पहले स्त्रियों पर ही आता है इसलिये सर्वप्राथमिकता स्त्रियों की रक्षा को देना चाहिये।[२] जो अपने इस कार्य में प्रमाद करता है , उसके स्त्री , बान्धव तथा पुत्र आदि शोक करते हैं।[३]

स्त्री के लिये पति ही सबसे बड़ा रक्षक और सुखदाता होता है ,[४] इसलिये द्रौपदी भीम से यह प्रार्थना करती है कि वह कीचक से उसकी रक्षा करे , क्योंकि स्त्री का रक्षा करना पुरुष का सनातन धर्म है।[५] नीतियुक्त वचनों में भी स्त्री रक्षा का बार-बार आग्रह किया गया है।[६] क्योंकि स्त्रियां घर की लक्ष्मी , अत्यन्त सौभाग्यशालिनी और आदर के योग्य , पवित्र तथा घर की शोभा होती है।[७]

१- महा० वही अनु० प० ६१।३१

२- महा० शा० प० ८७।३१ , उद्योग प० ३४।३८

३- वही शा० प० ६१।१०

४- महा० शा० प० १४८।७

५- वही विराट प० २१।४० , ४१ , ४२ , वन० प० १२।६६ , मनु ६।६
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः। रामा० अयो० का० १००।४६

६- महा० उद्योग प० ३८।१० , अनु० प० १०४।३७

७- वही उद्योग प० ३८।११ ।

आपत्ति के समय पतियों द्वारा उपर्युक्त कर्तव्य का पालन सम्भव नहीं हो पाता था । आपत्ति में पड़कर नल ने दमयन्ती को छोड़ दिया था ।[१] आपत्तिकाल में विश्वामित्र ने भूख से पीड़ित होकर अपनी पत्नी और पुत्रों को किसी जनसमुदाय में छोड़ दिया था ।[२] आपद्धर्म का उल्लेख करते हुए कहा गया है - " आपत्ति के लिये धन की रक्षा करे , धन के द्वारा भी स्त्री की रक्षा करे , और स्त्री एवं धन दोनों के द्वारा सदा अपनी रक्षा करें ।[३]

ब्राह्मणी ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है ।[४]

आपत्ति में इस प्रकार की छूट होने पर भी महाकाव्य के नायक आपत्तिकाल में भी पत्नी रक्षा सम्बन्धी अपने कर्तव्य को नहीं भूले , और अपनी पत्नियों की रक्षा की । भीम ने द्रौपदी की रक्षा के लिये जटासुर[५] तथा कीचक[६] का वध किया और उसकी इच्छापूर्ति के लिये यक्षों तथा राक्षसों[७] का वध किया था ।

आपत्तिग्रस्त राजा को यह परामर्श दिया गया है कि - " शत्रु का आक्रमण हो जाने पर उसे सबसे पहले अपने अन्तःपुर की रक्षा करनी

- -

१- महा० वनप० ६२ अध्याय

२- वही शा० प० १४१।२६-२७

३- वही उद्योग प० ३७।१८ आपदर्थे धनं रक्षाद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ।।

४- महा० आदि प० १५७। २६-२७ द्रष्टव्य मनु ७।२१३

५- वही वन प० १५७। ११ , ७२

६- वही विराट प० २२ एवं २३ सर्ग

७- वही वन प० १६०। २३-२६ , १६१।४७-५८ ।

चाहिये । लेकिन अगर उस पर शत्रु का अधिकार हो जाय तो उसके ऊपर से ध्यान हटाकर अपनी रक्षा करनी चाहिये ।[१] यह बहुत ही लज्जास्पद समझा जाता था कि पत्नी द्वारा पति की रक्षा का कार्य किया जाय जैसा कि द्रौपदी ने द्यूतसभा में दास बने हुए अपने पतियों को दास्य भाव से मुक्त कराया था ।[२]

यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि - पति के द्वारा चंचल स्वभाव वाली स्त्रियों की रक्षा किस प्रकार की जाय । महाभारत के उपदेशात्मक भाग में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि - दूषित चरित्रवाली स्त्रियों की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिये, क्योंकि इनकी रक्षा पति के लिये बहुत ही कठिन कार्य था ।[३] जहाँ अन्यान्य रक्षणीय वस्तुओं की रक्षा के लिये उपाय बताये गये हैं - वहाँ कहा गया है कि मैले वस्त्रों से स्त्रियों की रक्षा होती है ।[४] यमराज के दूत जिन सत्रह पुरुषों को नरक में ले जाते हैं, उसमें उस पुरुष का भी उल्लेख किया गया है " जो रक्षण के अयोग्य स्त्री की रक्षा करने का प्रयत्न करता है, तथा उसके द्वारा अपने कल्याण का अनुभव करता है ।[५] स्त्रियों की रक्षा बड़ी सावधानी से करनी चाहिये, क्योंकि क्षण मात्र की असावधानी से ये नष्ट हो जाती हैं ।[६] इसलिये कहा गया है कि - " क्रीड़ा एवं हास

- -

१- महा० शा० प० १३१।८

२- वही सभाप० ७२।१, उद्योगप० १६०।११२, १६१।३०

३- महा० उद्योगप० ३५।७२, ३३।८५, अनु०प० ४३।२२

४- वही उद्योग प० ३४।३९-४० स्त्रियो रक्ष्याः कुचैलतः ।

५- वही उद्योग प० ३७।१-६

६- वही उद्योग प० ३३।८६ शाकिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात् -
गावः सेवा कृषिर्भार्या ———— ।

परिहास की उत्सुकता पतिव्रता स्त्री का मल है और पति के बिना परदेश में रहना स्त्रीमात्र का मल है।[१] चूंकि युवावस्था में ही स्त्री के पथभ्रष्ट हो जाने की अधिक आशंका रहती थी, इसलिये महाकाव्य में ऐसी स्त्री की प्रशंसा की गयी है, जिसका यौवन निष्कलंक बीत गया हो।[२] विपुल द्वारा इन्द्र से गुरुपत्नी रुचि की रक्षा किये जाने के सम्बन्ध में कहा गया है - " लोकस्रष्टा ब्रह्मा जैसा पुरुष भी स्त्रियों की किसी प्रकार रक्षा नहीं कर सकता, फिर साधारण पुरुषों की तो बात ही क्या।[३] वाणी के द्वारा एवं वध और बन्धन के द्वारा रोककर अथवा नाना प्रकार के क्लेश देकर भी स्त्रियों की रक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि वे सदा असंयमशील होती हैं।[४] देवशर्मा स्वयं नारियों के चरित्र तथा परस्त्रीलम्पट इन्द्र को जानकर बड़े ही यत्न से अपनी पत्नी की रक्षा करते थे।[५] परन्तु यहां यह स्मरणीय है कि विपुल द्वारा गुरुपत्नी की रक्षा के पूरे प्रकरण से स्पष्ट है कि " पुरुष स्वयं अपनी मनोभावों पर अंकुश नहीं रख पाता और वह दोषारोपण स्त्रियों पर करता है, क्योंकि इन्द्र स्वयं ही बड़ा परस्त्रीलम्पट था, जैसा कि देवशर्मा ने पहले ही स्वीकार किया था।[६]

इन्द्र ने स्वयं ही गुरुपत्नी से काम सम्बन्धी याचना की थी।[७]

- -

१- महा० उद्योग प० ३६।७६

२- वही ~~अनु०~~ उद्योग प० ३५।६६

३- वही अनु० प० ४०।१३

४- वही अनु० प० ४०।१४-१५, ४१ अध्याय

५- वही अनु० प० ४०।१८-१६

६- वही अनु० प० ४०।१६

७- महा० अनु० प० ४१।७-८ ।

जिसकी परस्त्रीलम्पटता पर क्रुद्ध हुए भृगु द्वारा बहुत ही बुरा भला कहा गया था, तथा भविष्य में इस प्रकार का कार्य न करने की चेतावनी दी गयी थी।[१]

३- धार्मिक अधिकार -

पत्नी का यह महत्वपूर्ण अधिकार था कि वह समस्त धार्मिक क्रिया कलापों में पति के साथ भाग लें। उसको यह अधिकार अत्यन्त प्राचीन काल से प्राप्त था। ऋग्वेद में आया है[२] कि " अपनी पत्नियों के साथ उन्होंने पूजा के योग्य अग्नि की पूजा की।" वैदिक काल में हम पत्नियों को पारिवारिक पूजा में भाग लेते और अपने बच्चों को धार्मिक निर्देश देते हुए देखते हैं।[३] आपस्तम्ब धर्म सूत्र में कहा गया है कि - " विवाहोपरान्त पति एवं पत्नी धार्मिक कृत्य साथ-साथ करते, पुण्यफल में समान भाग पाते हैं, धन सम्पत्ति में समान भाग पाते हैं, पत्नी पति की अनुपस्थिति में अवसर पड़ने पर भेंट आदि दे सकती है।[४]

- -

१- महा० अनु० प० ४०।२०-२६

२- ऋ० १।७२।५, तै० ब्रा० ३।७।५

३- क्लेरशी बेडर - " वीमिन इन एन्शियेंट इंडिया, पृ० ४६

४- आप० ध० सू० २।६।१३।१६-१८
जायापत्योर्न विभागो विद्यते, पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु।
तथा पुण्यफलेषु द्रव्यपरिग्रहेषु च।
ऋ० १।१७३।२, ५।४३।१५, ८।१।२६, ८।१३।१३ वैदिक पत्नी अपने पति के साथ प्रातः गार्हपत्याग्नि में आहुतियां देती थीं।

मनु ने भी पत्नी को यह अधिकार दिया था कि वह सन्ध्याकाल में पके हुए भोजन की आहुतियां दे , परन्तु बिना मन्त्रों के । स्पष्ट है कि मनु के समय स्त्रियों को वैदिक मन्त्रों के उच्चारण का अधिकार न होने पर भी धार्मिक कृत्य बिना किसी अवरोध के करने का अधिकार था ।[१]

महाकाव्य काल में भी पत्नियों को यह अधिकार प्राप्त था । पत्नी का एक रूप सहधर्मचारिणी का था , जिसका अर्थ होता है कि पत्नी पति के साथ समान धर्म का आचरण करने वाली है । वैवाहिक अग्नि के समक्ष सीता को प्रदान करते हुए जनक कहते हैं कि - " रघुनन्दन । यह मेरी पुत्री सीता सहधर्मिणी के रूप में उपस्थित है , इसे स्वीकार करो ।[२] और पतियों से इस बात की आशा की जाती थी कि वे अपनी इस प्रतिज्ञा का आजीवन पालन करेंगे । पति पत्नी के सहधर्माचरण के कारण ही यह मान्यता प्रचलित थी कि - " पतिपत्नी संयुक्त रूप से कर्मों का फल भोगते हैं ।[३]

अत्यन्त प्राचीनकाल से यह मान्यता प्रचलित थी कि मनुष्य तीन ऋणों को लेकर जन्म लेता है - ऋषि ऋण , देव ऋण और पितृ ऋण ।[४]

- -

१- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास प्रथम भाग , पृ० ११६

२- रामा० बालका० ७३।२६

३- वही अयो० का० २७।५ भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।।

४- तै० सं० ६।३।१०।५ जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते । ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो , यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः ।। शत० ब्रा० १।७।२।१ , ऐत० ब्रा० ३३।१ ।

इनमें से पत्नी दो ऋणों से मुक्त करती है , यज्ञादि धार्मिक कार्यों में साथ देकर देव ऋण से तथा सन्तानोत्पादन कर पितृ ऋण से । " भार्या त्रिवर्ग [धर्म , अर्थ और काम] इन तीनों की साधिका होती है , वह पति के वशीभूत या अनुकूल रहकर अतिथि सत्कार आदि धर्म के पालन में सहायक होती है , प्रेयसी रूप में काम का साधन बनती है , और पुत्रवती होकर उत्तम लोक की प्राप्ति रूप अर्थ की साधिका होती है ।[१]

पत्नी पति की अर्द्धांगिनी होती थी[२] इसलिये पत्नी के अभाव में यज्ञ की दीक्षा लेना संभव नहीं होता था । अश्वमेध यज्ञ में पत्नियों सहित दशरथ ने यज्ञ की दीक्षा ली थी ।[३] और कौशल्या आदि पत्नियों ने उसमें सक्रिय योगदान किया था ।[४] यौवराज्याभिषेक के समय सीता ने भी राम के साथ उपवास व्रत की दीक्षा ली थी ।[५] तारा ने प्रतीकात्मक ढंग से मृत बाली पर यह आरोप लगाया था कि " उसने संग्रामरूपी यज्ञ का संपादन तो किया , पर राम के बाणरूपी जाल में मेरे बिना अकेले ही कैसे यज्ञांत का अवभृथ स्नान कर लिया ।[६]

- -

१- रामा० अयो० का० २१।५७

२- वही अयो० का० ३७।२४

३- वही बालका० ८।२३-२४ , १३।४१

४- वही बालका० १४।३३-३५

५- वही अयो० का० ४।३६ , ५।२ , ६ , ११

६- वही कि० का० २३।२७ , २४।३८ शास्त्रप्रयोगाद्विविधाच्च वेदादनन्यरूपाः पुरुषस्य दाराः ।

राज्याभिषेक में पति के साथ-साथ पत्नी का भी अभिषेक किया जाता था । राम के राज्याभिषेक के समय वशिष्ठ ने एक रत्नजटित सिंहासन पर सीता को बैठाकर अभिषेक किया था ।[१] पूर्वकाल से ही सत्पुरुषों ने अपनी पत्नियों के साथ धर्माचरण किया था ।[२] विधवा पत्नियों को अपने स्वर्गवासी पतियों के अन्त्येष्टि संस्कार में भाग लेने का अधिकार भी था । कौशल्या आदि रानियों ने दशरथ की प्रज्ज्वलित चिता की प्रदक्षिणा की थी ।[३] और राजा के लिये जलाञ्जलि दी थी ।[४] इस प्रकार वे दिवंगत पितरों के तर्पण देने की भी हकदार थीं ।[५] बाली की श्मशान यात्रा में भी उसकी पत्नियां सम्मिलित हुई थीं ।[६] शोक के ऐसे अवसरों पर स्त्रियां प्राय: आगे-आगे चलती थीं । तारा ने भी बालि को जलाञ्जलि प्रदान की थी ।[७]

स्त्रियाँ न केवल पति के साथ वरन् वे पति की अनुपस्थिति में एकाकी ही दैनिक हवन , उपासना , सन्ध्योपासन , व्रतउपवास , तपस्या कर सकती थीं ।

१- रामा० युद्ध का० १२८।५१-६१ , ४८।६
२- वही अयो० का० ३०।३० , ३०।४०
३- वही अयो० का० ७६।२०
४- वही अयो० का० ७६।२३
५- वही कि० का० २५।३५-३६
६- वही अयो० का० १०३।२१
७- वही कि० का० २५।५२ ।

कौशल्या ने एकाकी ही बड़ी प्रसन्नता के साथ निरन्तर व्रतपरायण होकर मङ्गल कृत्य पूर्ण करने के पश्चात मन्त्रोच्चारण पूर्वक अग्नि में आहुति दिया था और इष्टदेवता का तर्पण किया था ।[१] कौशल्या ध्यानमग्न होकर प्राणायाम के द्वारा परमपुरुष का ध्यान कर रही थी ।[२] राम के वनगमन के समय उन्होंने स्वयं मङ्गलकामना से स्वस्तिवाचन किया था और मन्त्रोच्चारण पूर्वक राम के हाथ में विशल्यकरणी नामक औषधि बांधी थी ।[३] तारा ने भी बालि की मङ्गलकामना से स्वस्तिवाचन किया था ।[४] धार्मिक अधिकार की ओर इंगित करते हुए तारा ने कहा था - " शास्त्रोक्त यज्ञ यागादि कर्मों में पति और पत्नी दोनोंका संयुक्त अधिकार होता है , पत्नी को साथ लिये बिना पुरुष यज्ञ नहीं कर सकता , वैदिक श्रुतियां भी ऐसा ही कहती हैं ।[५] सीता को धर्मज्ञ तथा धर्मचारिणी कहा गया है ।[६] सीता ने वनगमन के समय नाव में बैठे हुए गंगा की स्तुति की थी ।[७] सीतासन्ध्योपासना करती थी ।[८]

पत्नी के अभाव में पुरुष को यज्ञ का फल आधा ही प्राप्त होता था , यही कारण था कि राम को अश्वमेघ यज्ञ में सीता की

१- रामा० अयो० का० २०।१५-१८ , २०।१६

२- वही अयो० का० ४।३० , ३२-३३ , ४।४१

३- वही अयो० का० २५।१-४६

४- वही कि० का० १६।१२

५- वही कि० का० २४।३८

६- वही कि० का० २६।२०

७- वही अयो० का० ५२।८२-६१

८- वही सु० का० १४।४६ ।

स्वर्णमयी प्रतिमा रखनी पड़ी थी।[१] पाणिनी ने पत्नी शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए बताया है कि - "पत्नी उसी को कहा जाता है जो यज्ञ तथा यज्ञ करने के फल की भागी होती है। इससे स्पष्ट है कि जो स्त्री अपने पति के साथ यज्ञादिक कार्यों में भाग नहीं लेती थी, वह पत्नी कहलाने की अधिकारिणी नहीं है। महाभाष्य के अनुसार किसी शूद्र की स्त्री केवल सादृश्य भाव से ही उसकी पत्नी कही जाती है [क्योंकि शूद्र को यज्ञ करने का अधिकार नहीं, इसलिये पत्नी के यज्ञ करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता]।[२]

महाभारत काल में पत्नी की धार्मिक स्थिति उच्च थी। कुन्ती द्रौपदी को आशीर्वाद देती हुई कहती है कि - "तुम भोग सामग्री में सम्पन्न, पति के साथ यज्ञ में बैठने वाली तथा पतिव्रता होओ,[३] और पतियों द्वारा जीती इस पृथ्वी को अश्वमेध नामक यज्ञ में ब्राह्मणों के हवाले कर दो।[४]

द्रौपदी के केश राजसूय महायज्ञ के अवभृथ स्नान में मन्त्रपूत जल से सींचे गये थे।[५] द्रौपदी ने विपत्तिकाल में भगवान श्रीकृष्ण का

१- रामा० उ० का० ६१।२५

२- पाणिनी ४।१।३३, पत्युर्नो यज्ञसंयोगे।
स्वमपि तुभाजकस्य पत्नीति न सिध्यति।
उपमानात्सिद्धम् पत्नीवत्पत्नीति ।।
महाभाष्य जिल्द २, पृ० २१४

३- महा० आदि प० १९८।७

४- वही १९८।१०

५- महा० सभा प० ६७।३०।

स्तवन किया था।[१] युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के समय द्रौपदी का भी अभिषेक किया गया था।[२] ब्राह्मण अपनी पत्नी से कहता है - " तुम मेरी सहधर्मिणी और इन्द्रियों को संयम में रखने वाली हो।[३] सहधर्माचरण के लिये तुम्हारे माता पिता ने तुम्हें सदा के लिये गृहस्थाश्रम की अधिकारिणी बनाया है, मैंने विधिपूर्वक तुम्हारा वरण करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक तुम्हारे साथ विवाह किया है।[४] इसलिये पत्नी को " धर्मपत्नी " कहा जाता था।[५]

श्राद्ध तर्पण आदि में भी स्त्रियां पतियों के साथ भाग लेती थी। युधिष्ठिर ने द्रौपदी को साथ लेकर आचार्य द्रोण, कर्ण, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, घटोत्कच, विराट, द्रुपद तथा द्रौपदी कुमारों का श्राद्ध किया।[६] महाकाव्य में अनेक स्थानों पर पति और पत्नी के समान धार्मिक अधिकारों का वर्णन किया गया है।[७]

नल ने दमयन्ती के साथ अनेकों यज्ञों का अनुष्ठान किया था।[८] प्रतिदिन हवन और पूजन के समय हव्य और कव्य की सामग्री एकत्रित करना,

---

१- महा० सभा प० ६८।४१-४४, वन प० १२।५०-१२७, २६३।८-१६
२- वही शा० प० ४०।१४
३- वही आदि प० १५६।३१
४- वही आदि प० १५६।३२
५- वही आदि प० १५६।३४
६- वही शा० प० ४२।४-५, आश्रमवासिक १५।२
७- वही अनु० प० १४१। ४२-४३, ४०
८- महा० आदिप० १२६।२८ ।

तथा जो भी धार्मिक कृत्य हों , उनमें योग देना तथा भाग लेना पत्नी का अधिकार था ।[१] उस नारी को प्रतिव्रता कहा गया है जो पति के साथ रहकर प्रतिदिन अग्निहोत्र करती है , देवताओं को पुष्प और बलि अर्पण करती है , देवता अतिथि और पोष्यवर्ग को अन्न से तृप्त करती है ।[२]

महाभारत के बाद के भाग में स्त्रियों के इस अधिकार को कुछ कम कर दिया गया और स्त्री पुत्रों को जोंक के समान बताया गया ।[३] रजस्वला होने की स्थिति में स्त्री धार्मिक कृत्यों में भाग नहीं ले सकती थी , क्योंकि इन दिनों वह अपवित्र मानी जाती थी ।[४] कालान्तर में यह माना जाने लगा कि " स्त्री के लिये कोई यज्ञ आदि कर्म , श्राद्ध और उपवास करना आवश्यक नहीं है , उसका धर्म है अपने पति की सेवा , उसी से स्त्रियां स्वर्गलोक पर विजय पाती हैं ।[५]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्त्रियों की धार्मिक स्थिति सन्तोषजनक थी । स्त्रियों का यज्ञों में सन्निकट साहचर्य होने के कारण यदि वे पति के पूर्व मर जाती थीं तो उनका शरीर पवित्र अग्नि से यज्ञ के सारे उपकरणों एवं पात्रों के साथ जलाया जाता था ।[६]

१- महा० अनु० प० ४७।३२

२- वही अनु० प० १४६।४६ , १२३।१० , १४१।३७-४३ , कामसूत्र ४।१-३

३- वही अनु० प० ३०१।७० " पुत्रदारजलौकोयं " ।

४- वही अनु० प० २३।४ , १२७।१३ , ६२।१५

५- वही अनु० प० ४६।१३

६- मनु० ५।१६७-१६८ , याज्ञ० १।८६ ।

वैवाहिक अधिकार

पतियों का यह प्रमुख कर्तव्य तथा पत्नी का अधिकार था कि पति उसके वैवाहिक अधिकार को पूर्ण करे , ऋतुकाल में वह उससे अवश्य सहयोग करे । पति द्वारा ऐसा न करना पाप समझा जाता था । भरत ने उस पापात्मा की तीव्र आलोचना की है - " जो अपनी ऋतुस्नाता , इस गर्भधारण के अनुकूल भार्या को उसके अधिकार से वंचित रखता है ।[1] जिस प्रकार पत्नी से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने पति में ही भक्ति रखे , उसी प्रकार पति से भी यह आशा की जाती थी कि वह भी अपनी पत्नी के प्रति अनुरक्त हो । भरत ने शपथ करते हुए कहा था कि - " धर्ममर्यादा को छोड़कर जो मूढ़ अपनी धर्मपत्नी को छोड़कर परस्त्री का सेवन करे , उसको यह पाप लगे जिसकी अनुमति से राम वन गये हों ।[2]

राम सदैव अपनी पत्नी सीता में ही अनुरक्त रहने वाले थे ।[3]

आर्य मनीषियों के लिये विवाह मात्र सुखोपभोग का साधन नहीं वरन् धर्म प्राप्ति का भी एक साधन था । विवाह का प्रधान उद्देश्य पुत्रोत्पादन कर पितृ ऋण से उऋण होना था । इसलिये उस पुरुष को ब्रह्मचारी के समान माना जाता था , जो ऋतुकाल में अपनी स्त्री के पास जाता और

१- रामा० अयो० का० ७५।५२

२- वही अयो० का० ७५।५५

३- वही अरण्य का० ६।५-७ ।

परायी स्त्री पर कभी दृष्टि नहीं डालता ।[१] अन्यत्र कहा गया है - " जो व्यक्ति अपने इस कर्तव्य का धर्मानुकूल पालन करते हैं , वे दुखों से छूट जाते हैं ।[२] पंक्तिपावन ब्राह्मणों की सूची में भी ऐसे ब्राह्मणों को रखा गया है , जो अपने इस कर्तव्य का पालन करता है ।[३] बिना उचित समय के जो अपने इस अधिकार का उपयोग करता था , उसे पाप का भागी समझा जाता था ।[४] कप नामक दानवों के स्वर्गलोक में अधिकार करने के कारणों में एक कारण यह भी था कि - " वे अपनी ही स्त्रियों में अनुरक्त रहते हैं तथा परायी स्त्रियों की ओर कभी दृष्टि नहीं डालते तथा रजस्वला स्त्री का कभी सेवन नहीं करते ।[५]

महाभारत की अनेक कथाओं में इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है । राजा वसु ने अपने इस कर्तव्य की पूर्ति के लिये पत्नी से दूर वन में रहते हुए भी विशेष प्रयास किया था ।[६] धार्मिक राज्य के वर्णन में कहा गया है कि " वहाँ के नागरिक अपने इस वैवाहिक अधिकार का उपयोग समयानुसार ही करते थे , और इस प्रकार की प्रवृत्ति न केवल मनुष्यों वरन् पशुओं में भी पायी जाती थी । इस प्रकार धर्म का आचरण

- -

१- रामा० शा० प० १६३।११

२- वही शा० प० ११०।६

३- वही अनु० प० ९०।२८

४- वही अनु० प० ९३।१२० , ९४।२७

५- वही अनु० प० १५७। ११-१२

६- महा० आदि प० ६३।५१-५५ ।

करने के कारण लोगों की आयु लम्बी होती थी।[१] पत्नी के इस अधिकार का उल्लंघन करने वाला निन्दा का पात्र समझा जाता था।[२] सन्तान की महत्ता के कारण सिद्धान्ततः यह स्वीकार किया गया था कि "अगर संतान के लिये परस्त्री के साथ संगम किया जाय तो दोष नहीं होता।[३] इसी के आधार पर शर्मिष्ठा द्वारा ऋतुदान की याचना करने पर[४] ययाति उसे धर्मानुकूल समझकर उसकी याचना को सफल करते हैं।[५] ययाति के इस आचरण पर रुष्ट हुए शुक्राचार्य द्वारा फटकारने पर ययाति इसको धर्मसम्मत ठहराते हैं।[६]

इस अधिकार की महत्ता को समझने के कारण कण्व एकान्त में दुष्यन्त के साथ शकुन्तला द्वारा स्थापित किये गये सम्बन्ध को बुरा नहीं मानते।[७] गृहस्थ पुरुषों के कर्तव्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि - "गृहस्थ को चाहिये कि वह अपनी ही स्त्री में अनुराग रखते हुए सन्तुष्ट रहें और ऋतुकाल में ही पत्नी के साथ समागम करें। अपनी पत्नी के के प्रति अनुराग रखने वाले को परलोक में सुख प्राप्त होता है।[८]

- -

१- महा० आदि प० ६४।१०-११

२- वही वन प० २६३।३५, शा० प० ३४।१४

३- वही शा० प० ३४।२७

४- वही आदि प० ८२।१३, २१

५- वही आदि प० ८२।२४

६- वही आदि प० ८३। ३२-३४

७- महा० शा० प० ६१।११, अनु० प० ५६।१८, १०४।१०७

८- वही शा० प० ६१।१४ ।

सुखोपभोग का अधिकार

पति से इस बात की अपेक्षा की जाती थी कि वह यथासम्भव पत्नी को प्रसन्न रखे तथा उसे सुख प्रदान करे । वह कोई ऐसा कार्य न करे जिससे कि पत्नी को मानसिक सन्ताप प्राप्त हो । क्योंकि यदि पत्नी की रुचि पूर्ण न हो तो वह पति को आनन्द नहीं दे सकती और फिर इस असन्तोष के कारण पुरुष की सन्तान वृद्धि नहीं हो सकती ।[1] पत्नी की ही भांति[2] पति से भी इस बात की आशा की जाती थी कि वह पत्नी का अनुगत तथा अनुवश रहेगा जैसा कि विवाह के समय नल ने दमयन्ती के समक्ष यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं सदैव तुम्हारी आज्ञा के पालन में तत्पर रहूंगा ।[3]

महाकाव्य में पति पत्नी के बहुत ही सुखद सम्बन्धों का वर्णन हुआ है । महाकाव्य के नायक पति अपनी पत्नियों को बहुत सम्मान प्रदान करते थे और उनकी सुख सुविधाओं तथा इच्छाओं की पूर्ति का यथासम्भव प्रयास करते थे । कवि ने राम और सीता के मधुर वैवाहिक सम्बन्धों का बड़ा ही विशद वर्णन किया है । " राम ने सीता के साथ अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक अनेक ऋतुओं तक विहार किया था ।[4] राम को सीता अत्यन्त प्रिय थी , क्योंकि वे अपने पिता द्वारा श्रीराम के हाथों में पत्नी रूप में

१- महा० अनु० प० ४६।४

२- वही अनु० प० ६३।६६

३- वही वन प० ५७।३१ , ५७।३२

४- रामा० बाल का० ७७।२५ ।

समर्पित की गयी थी । एक दूसरे के गुणों से प्रभावित होने के कारण उनमें एक दूसरे के प्रति अत्यधिक स्नेह था ।[१] सम्बन्धों की प्रगाढ़ता का परिणाम था कि वे एक दूसरे के हार्दिक अभिप्राय को जान जाते थे ।[२] वन में सीता के सान्निध्य के कारण राम अत्यन्त प्रसन्न रहते थे ।[३] पति अपनी पत्नियों की सुख सुविधा का पूरा ध्यान रखते थे ।[४] सीता की इच्छा पूर्ति के लिये राम ने मायामृगमारीच का वध किया था ।[५] गर्भवती सीता की पवित्र तपोवनों को देखने की इच्छा को राम ने तुरन्त पूरा करने का आश्वासन दिया था ।[६] रावण द्वारा सीता के अपहृत किये जाने पर राम द्वारा किया गया विलाप[७], बाली की मृत्यु पर किया गया तारा का विलाप[८] और रावण की मृत्यु पर मन्दोदरी द्वारा किया गया विलाप[९] पति पत्नी के सुखद दाम्पत्य सम्बन्धों की प्रगाढ़ता को स्पष्ट करता है ।

महाभारत में भी अनेक स्थानों पर स्त्रियों के साथ व्यवहार के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है । पुरुषों को सदैव स्त्रियों से मीठे वचन

- -

१- रामा० बाल० का० ७७।२६-२७

२- वही बाल का० ७७।२८-२९, अरण्यका० ४०।६, ४६।३४, कि० का० १।५०, १।५२

३- वही कि० का० ६५।१२-१७

४- वही अरण्यका० १५।४, १३।४

५- वही अरण्य का० ४३।१०, ४८

६- वही उ० का० ४२।३१-३५

७- रामा० अरण्य का० ६०-६३ सर्ग

८- वही कि० का० २०, २३ सर्ग

९- वही युद्ध का० १११।३१-६३ ।

बोलना चाहिये।[१] स्त्रियों को घर की लक्ष्मी कहा गया है, वे अत्यन्त सौभाग्यशालिनी, आदर के योग्य, पवित्र तथा घर की शोभा है।[२] कपोती अपने पति की मृत्यु के पश्चात जीवनकाल में पति द्वारा किये गये अच्छे व्यवहार तथा उसके साथ बिताये गये सुखद दिनों को याद कर शोक विह्वल हो जाती है।[३] स्त्रियों पर क्रूरता प्रकट करने वाले अधोगति को प्राप्त होते हैं।[४] स्त्रियों के साथ पापपूर्ण बर्ताव अधर्म समझा जाता था।[५] मर्यादा के बाहर स्त्री की निन्दा करने वाले को नरक की प्राप्ति होती है।[६] पतियों को यह परामर्श दिया गया है कि वे अनेक पत्नियों के होने पर सबके साथ समान व्यवहार करें, जो समान व्यवहार नहीं करता, उसे पाप का भागी होना पड़ता था जैसा कि चन्द्रमा को अपनी पत्नियों से समान व्यवहार न करने के कारण दक्ष से शाप प्राप्त हुआ था।[७]

स्त्रियों के साथ व्यवहार के सम्बन्ध में कहा गया है कि -

" बहुविध कल्याण की इच्छा रखने वाले पिता, भाई, श्वसुर और देवरों को उचित है कि नववधू का पूजन वस्त्राभूषणों द्वारा सत्कार करें।[८]

- -

१- रामा० उद्योग ३८।१०

२- वही उद्योग प० ३८।११

३- वही शा० प० १४८।२-३, ४-५

४- वही उद्योग प० ३६।६१

५- वही उद्योग प० ६३।११८

६- महा० उद्योग ३७।५

७- वही शा० प० ३४२।५७

८- वही अनु० प० ४६।३ ।

* जहां स्त्रियों का सम्मान होता है , वहां देवतालोग प्रसन्नता पूर्वक निवास करते हैं तथा जहां उसका अनादर होता है , वहां सारी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं।[१] जिस घर की बहूबेटियां दुख के कारण शोकमग्न रहती हैं , उस कुल का नाश हो जाता है , वे खिन्न होकर जिन घरों को शाप देती हैं , वे कृत्या के द्वारा नष्ट हुए के समान नष्ट हो जाते हैं , वे श्रीहीन गृह न शोभा पाते हैं और न उनकी वृद्धि ही होती है।[२]

स्त्रियां ही धर्मसिद्धि का मूल कारण हैं। पुरुषों के रति-भोग , परिचर्या और नमस्कार स्त्रियों के ही अधीन है।[३] सन्तान की उत्पत्ति , उत्पन्न हुए बालक का लालन-पालन तथा लोकयात्रा का प्रसन्नता पूर्वक निर्वाह , इन सबको स्त्रियों के अधीन समझो।[४] अतः समस्त कार्यों की सफलता के लिये स्त्रियों का आदर तथा सम्मान परमावश्यक है। जिन घरों में स्त्रियां मारी पीटी जाती हैं , वह घर पाप के कारण दूषित हो जाता है। पाप से दूषित हुए उस गृह से उत्सवों के अवसर पर देवता और पितर निराश लौट जाते हैं , उस घर की पूजा स्वीकार नहीं करते।[५]

पाण्डव द्रौपदी को बहुत ही आदर तथा सम्मान देते थे तथा उसकी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करने का प्रयास करते थे। वनवासकाल में

- -

१- महा० अनु० प० ४६। ४-५

२- वही अनु० प० ४६। ६-७

३- महा० अनु० प० ४६। ८-१०

४- वही अनु० प० ४६। ११-१२

५- वही अनु० प० १२७। ६-७ , १०२। १७ ।

निरन्तर उसकी देखभाल में रत रहते थे । द्रौपदी के मूर्च्छित होकर गिर पड़ने पर नकुल सहदेव ने उसके पैर दबाने तक की सेवा की थी[१] और भीम ने द्रौपदी की इच्छापूर्ति के लिये अनेक दुस्साहिक कार्य किये थे ।[२]

महामुनि अगस्त्य अपनी पत्नी की इच्छा पूर्ति के लिये धनसंग्रह की इच्छा से राजाओं के पास गये ।[३]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पति-पत्नी के दाम्पत्य सम्बन्ध बहुत प्रगाढ़ थे , तथा उनके द्वारा स्त्रियों का आदर, सत्कार तथा सम्मान किया जाता था ।

वर्णानुसार पत्नियों की स्थिति

प्राचीनकाल में पुरुषों को बहुपत्नीत्व का अधिकार प्राप्त था । यहां पर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि उन सब स्त्रियों को एक समान अधिकार प्राप्त होते थे अथवा उनकी स्थिति में अन्तर होता था ? इस सम्बन्ध में विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न वर्णों

- -

१- महा० वन० प० १४४। १६-२०

२- वही वन० प० १४६।७ , ६ , १५४।२६ , १६०।२४-२७ , वन० प० १६१।५८ , १५७।३६-३७ , ७२ विराट प० २२ अध्याय - द्रौपदी की इच्छा पूर्ति के लिये भीम ने अनेक दानवों , राक्षसों गन्धर्वों तथा कीचक का वध किया था ।

३- महा० वन० प० ६७।१७-१८ , २५ , ६६।१८-१६ ।

की पत्नियों की स्थिति भिन्न थी। विष्णु धर्मसूत्र ने इस विषय में कहा है - " यदि सभी पत्नियां एक ही वर्ण की हों, तो उसमें सबसे पहले जिससे विवाह हुआ हो, उसी के साथ धार्मिक कृत्य किये जाते हैं, यदि कई वर्णों की पत्नियां हों तो पति के वर्णवाली पत्नी को प्रधानता दी जाती थी, भले ही उसका विवाह बाद में हुआ हो। यदि अपने वर्ण की पत्नी न हो तो अपने से बादवाली जाति की पत्नी को अधिकार प्राप्त होते हैं। किन्तु द्विजाति के शूद्रपत्नी के साथ कभी धार्मिक कृत्य नहीं करना चाहिये। अन्य सूत्रकारों ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया है।[१]

महाभारत में भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये हैं। सवर्णा पत्नी को ही अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता था तथा वही पत्नी के सभी अधिकारों का उपयोग करती थी। भीष्म कहते हैं कि - " ब्राह्मण पहले अन्य तीन वर्णों की स्त्रियों को ब्याह लाने के पश्चात भी यदि ब्राह्मण कन्या से विवाह करे तो वही अन्य स्त्रियों की अपेक्षा ज्येष्ठ, अधिक आदर सत्कार के योग्य तथा विशेष गौरव की अधिकारिणी

१- विष्णु ध० सू० २६।२४ सवर्णासु बहुभार्यासु विद्यमानासु ज्येष्ठया सह धर्मकार्यं कुर्यात्। मिश्रासु च कनिष्ठयापि समान वर्णया। समानवर्णाया अभावे त्वनन्तरयैवापदि च। न त्वेव द्विजः शूद्रया।
द्रष्टव्य - वशि० ध० सू० १८।१८, गोभिल स्मृ० १।१०३-१०४, याज्ञ० १।८८, व्यासस्मृ० २।१२।

होगी ।[१] सवर्णा स्त्री का ही पति के साथ धार्मिक अधिकारों[२] तथा अन्य अधिकारों के उपयोग[३] का अधिकार प्राप्त होता था । दूसरे वर्णवाली स्त्रियों को यह सब अधिकार नहीं प्राप्त होते थे । जो ब्राह्मण नियम के विपरीत आचरण करता है , वह चाण्डाल समझा जाता है ।[४]

जिस प्रकार वर्ण के आधार पर पत्नी को स्थिति में अन्तर आ जाता था , उसी प्रकार उन पत्नियों से उत्पन्न पुत्रों के अधिकारों में भी अन्तर आ जाता था । सवर्णा स्त्री से उत्पन्न पुत्र अधिक पैतृक धन का भागी होता था । क्रमश: वर्ण के अनुसार अन्य स्त्रियों से उत्पन्न पुत्रों को पैतृक भाग मिलता था , ब्राह्मणी के बाद क्षत्रिया के पुत्र तथा क्षत्रिया के बाद वैश्या पुत्र का महत्त्व था ।[५] यह नियम क्रमश: अन्य वर्णों पर भी लागू होता था ।[६] समान वर्ण का नियम प्रत्येक वर्ण में लागू होता है , अर्थात समान वर्ण की स्त्री से उत्पन्न सभी पुत्रों का पैतृक धन में सामान्यत: समान भाग होगा ।[७] ज्येष्ठ पुत्र को अवश्य

१- महा० अनु० प० ४७।३१
२- वही अनु० प० ४७। ३२-३३
३- वही अनु० प० ४७।३४
४- महा० अनु० प० ४७।३६
५- वही अनु०प० ४७।३७ ,४७।३८ ,४७।३९-४० अनु०प० ४७।४५ । यह अन्तर वर्णों में अन्तर होने के कारण था । क्योंकि श्रेष्ठ वर्ण की कन्या के समान उससे नीचे के वर्ण की कन्या नहीं हो सकती ।
६- महा० अनु०प० ४७।४७ ,४७।४८ ,४७।५१-५२ । क्षत्रिय के लिये दो भार्यायें विहित थीं, अत: उसकी भी सवर्णा से उत्पन्न पुत्र को अधिक भाग मिलेगा, क्षत्रिया के बाद वैश्या पुत्र का महत्त्व था । यही नियम वैश्य पर भी लागू होता है । अनु०प० ४७।५६ शूद्र को एक ही भार्या विहित थी ,इसलिये उसके सब पुत्रों को समान भाग मिलेगा ।
७- महा० अनु० प० ४७।५७ ।

उसका एक अंश और मिलेगा । पूर्वकाल में स्वयंभू ब्रह्मा ने पैतृक धन के बंटवारे की यह विधि बतायी थी[1]। परन्तु यहां पर समान वर्ण की स्त्रियों से उत्पन्न पुत्रों में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि " विवाह की विशिष्टता के कारण उन पुत्रों में भी विशिष्टता आ जाती है , अर्थात पहले विवाह की स्त्री से उत्पन्न पुत्र श्रेष्ठ और दूसरे विवाह की स्त्री से पैदा हुआ पुत्र कनिष्ठ होता है । विशेष महत्व समान वर्ण वाली पत्नी से उत्पन्न पुत्र का ही होता था , कश्यप ने भी ऐसा ही कहा है[2]।

रामायण में हम इस सम्बन्ध में कुछ अपवाद देखते हैं । यद्यपि सैद्धान्तिक स्थिति उस समय भी ऐसी ही थी । परन्तु व्यवहार में कैकेयी के प्रति दशरथ की अत्यधिक आसक्ति होने के कारण कौशल्या को वह स्थान प्राप्त न हो सका था , जो कि ज्येष्ठ रानी होने के कारण उन्हें मिलना चाहिये था । कौशल्या ने अपने इस अधिकार हनन की शिकायत कई स्थानों पर की है[3]।

१- महा० अनु० प० ४७।५८

२- वही अनु० प० ४७।६१ । नाना प्रकार के पुत्रों के विशेष वर्णन के लिये देखिये , अनु० प० ४८-४९ अध्याय ।

३- रामा० अयो० का० २०।३८-४० , ४२ । कौशल्या को अपने पति से वह सम्मान , आदर तथा गौरव कभी नहीं प्राप्त हुआ जो उन्हें ज्येष्ठ रानी होने के कारण प्राप्त होना चाहिये था । अयो० का० २०।४३ , ४७ , ४३।३ ।

कौशल्या के इस अधिकार हनन के तथ्य को दशरथ ने भी स्वीकार किया था कि " प्रिय वचन बोलने वाली कौशल्या जब-जब दासी , सखी , पत्नी , बहिन , और माता की भांति मेरा प्रिय करने की इच्छा से मेरी सेवा में उपस्थित होती थी , उस सत्कार पाने योग्य देवी का भी मैंने तेरे [कैकेयी] ही कारण कभी भी सत्कार नहीं किया ।[1] वास्तव में कैकेयी ही ज्येष्ठ रानी को प्राप्त होने वाले अधिकारों का उपयोग करती थी ।[2] और अपने इसी अधिकार का उपयोग करते हुए अपने अपने पुत्र को युवराजपद पर अभिषिक्त करने का प्रयास किया था ।[3] इक्ष्वाकु कुल में इस प्रकार का कार्य बहुत ही क्रान्तिकारी था , जिसको कार्य रूप में परिणित करने का श्रेय कैकेयी को था , यद्यपि इसके लिये उसे संसार की भर्त्सना सहनी पड़ी ।

प्रोषित पतिका -

पातिव्रत्य के उच्च आदर्श के कारण पत्नियों से इस बात की अपेक्षा की जाती थी कि वे पति के प्रवासकाल में अत्यन्त सादगी तथा संयम पूर्ण जीवन व्यतीत करें । वनगमन के लिये प्रस्तुत राम सीता को समझाते हुए कहते हैं कि - " मेरे वन चले जाने पर तुम्हें व्रत और उपवास

- -

१- रामा० अयो० का० १२।६८-६९

२- वही अयो० का० १०।२८-३१ , १२।७०-७१

३- वही अयो० का० ११। २६-२७ , १२।१९ ।

में संलग्न रहना चाहिये , प्रतिदिन सबेरे उठकर देवताओं की पूजा करनी चाहिये और दशरथ की वन्दना करनी चाहिये ।[१] मंदोदरी को सीता समझ बैठने वाले हनुमान ने जब स्वस्थ चित्त से विचार किया तो उनका भ्रम टूट गया , जब उन्हें यह याद आया कि सीता तो अपने पति से वियुक्त है , ऐसी स्थिति में वे न तो सो सकती हैं , न भोजन कर सकती हैं , न श्रृंगार एवं अलंकार धारण कर सकती हैं , फिर मदिरापान का सेवन तो कर ही नहीं सकती ।[२] इस काल में सीता मैले वस्त्र धारण किये थी , उपवास करने के कारण अत्यन्त दुर्बल और दीन दिखायी देती थीं ।[३] उनके शरीर में मैल जम गयी थी , वे दीनता की प्रतिमूर्ति बनी बैठी थी , तथा श्रृंगार और भूषण धारण करने के योग्य होने पर भी अलंकार शून्य थी ।[४]

सीता ने इस वियोगावस्था में एक वेणी धारण कर रखा था ।[५] इस काल में वह अनन्योपासना , क्षमा , भूमिशयन , धर्मसम्बन्धी नियमों के पालन में रत रहती थी ।[६]

- -

१- रामा० अयो० का० २६। २६-३०

२- वही सु० का० ११।२ , याज्ञवल्क्य ने भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया है कि पति के विदेश जाने पर पत्नी को क्रीड़ा कौतुक , साजसज्जा , उत्सवों में जाना , हंसना आदि छोड़ देना चाहिये । याज्ञ० १।८४

३- रामा० सु० का० १५। १८-२३

४- वही सु० का० १५।३३-३४ , ३७ , १६।२६ , १६।६ , ८-६ , ११-१४

५- रामा० सु० का० १६। १६-२० , महा० वन० प० २८१।१

६- वही सु० का० २८।१२ ।

द्रौपदी सत्यभामा से कहती है - " मेरे पति जब कभी कुटुम्ब के कार्य से परदेश चले जाते हैं उन दिनों में फूलों का श्रृंगार धारण नहीं करती, अङ्गराग नहीं लगाती, और निरन्तर ब्रह्मचर्य का पालन करती हूं।[1] पति की वियोगावस्था में चेदि राज्य में निवास करते हुए दमयन्ती के अङ्गमलिन हो गये थे, वह पति के शोक से व्याकुल एवं दीन थी।[2] नल के पुन: मिलने तक दमयन्ती आधा वस्त्र पहनकर उसी वेष में रही।[3] व्यास स्मृति के अनुसार " विदेश गये पति की पत्नी को अपना चेहरा पीला एवं दुखी बना लेना चाहिये, तथा उसे अपना श्रृंगार नहीं करना चाहिये, पति परायण होना चाहिये, उसे पूरा भोजन नहीं करना चाहिये। तथा अपने शरीर को सुखा देना चाहिये।[4]

इस प्रकार पति के प्रवास काल में पत्नी को समस्त भोग सामग्री का परित्याग कर सादगी से रहना चाहिये।

पातिव्रत्य की अवधारणा का विकास -

पितृसत्तात्मक परिवारों में पिता को सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है। परिवार के सभी सदस्यों पर उसकी प्रभुता होती है। पत्नी के लिये तो वह देवता, गुरु और उसका सर्वस्व होता था। कालिदास

१- महा० वन० प० २३३।३०-३१, कामसूत्र ४।१।१२, २२, शाण्डिली ने भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया है - अनु० प० १२३।१६, कामसूत्र ४।१।४२-४३, १२३।१७।

२- महा० वन० प० ६८।१३-१४, मनु० ९।७४-७५

३- वही वन० प० ६६।३८

४- व्यास स्मृति ३।५२।

ने लिखा है कि - " पति को स्त्रियों पर सर्वतोमुखी प्रभुता प्राप्त है । [१]

सामान्यत: यह समझा जाता है कि पति को अत्यन्त प्राचीनकाल से यह स्थिति प्राप्त रही है , परन्तु अगर हम भारतीय साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन करें तो हमारी यह धारणा भ्रान्त सिद्ध होगी । पति को देवता बनाने की प्रक्रिया का विकास शनै:-शनै: तथा कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण हुआ ।

वैदिक काल में पति पत्नी का देवता न होकर उसका सखा था । [२] वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर " दम्पति " [३] शब्द का प्रयोग हुआ है , जिसका अर्थ होता है - पति व पत्नी दोनों का सम्मिलित स्वामित्व होता था । मैक्डोनल और कीथ ने लिखा है - " यह शब्द ऋग्वेद के समय स्त्रियों की उच्च स्थिति का बोधक है । [४] वे दोनों एक मन होकर सोमरस निकालते , उसे शुद्ध करते , यज्ञ दान देवताओं को हवि देते थे , स्तुति तथा कामसुखोपभोग करते थे । [५] पत्नी की उच्च स्थिति

- -

१- अभिज्ञान शाकुन्तल - ५।२६ उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ।

२- ऐत० ब्रा० ७।३।१ , सखा ह जाया , मि० -महा० १।७४।४० भार्या श्रेष्ठतम: सखा ।

३- ऋ० ५।३।२ , ८।३१।५ , १०।१०।५ , १०।६८।२ , १०।८५।३२ , अथर्व० ६।१२३।३ , १२।३।१४ , १४।२।९ ।

४- वैदिक इंडेक्स [१।३४०]

५- ऋ० ८।३१।५-९ ।

को प्रमाणित करने वाले अन्य उद्धरण भी स्थान-स्थान पर आये हैं।[१]

कालान्तर में पत्नी की यह आदर्श स्थिति स्थायी न रह सकी और उसमें परिवर्तन आया, परन्तु शास्त्रकार उस वैदिक आदर्श को विस्मृत न कर सके। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के मत में पति पत्नी सत्कर्मों को मिलकर करते, उनका पुण्यफल और संपत्तिग्रहण संयुक्त होता है।[२]

मनु के अनुसार जो पति है वही पत्नी है।[३] मध्य युग में देवल और बृहस्पति ने भार्या के पति से अभेद को स्वीकार किया है और इसी आधार पर अर्द्धांगिनी होने के कारण विधवा को पति की सम्पत्ति में स्वत्व प्रदान किया गया।[४]

- -

१- ऋ० ५।६१।८, पत्नी को पति का आधा भाग बताया गया है - तै० सं० ६।१।८।५, शत० ब्रा० १४।४।२।४-५, बृहदा० उप० १।४।३ शत० ब्रा० ५।२।१।१०, वैदिक पतिपत्नी के बिना स्वर्गलोक की भी आकांक्षा नहीं करता।
रामा० कि० का० २४।३३-३८, बालि वध पर तारा राम से उसी प्रकार का कारण बताती है कि मेरे बिना बालि का मन स्वर्ग में नहीं लगता।

२- आप० ध० सू० २।१४।१६-१९, जायापत्योर्न विभागोविद्यते। पाणि-ग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु तथा पुण्यफलेषु द्रव्यपरिग्रहेषु च।

३- मनु० ९।४५। महा० आदि ७४।४०, विराट प० ४।२२।१७।

४- देवल बृहस्पति द्वारा (१४६) अपरार्क (२।१३५) में उद्धृत - यस्य नोपरता भार्या देहार्धं तस्य जीवति जीवत्यर्धशरीरेऽर्थं कथमन्यः समाप्नुयात्।

छठी शता० ई० के लगभग बालविवाह के प्रचलन ने पति की स्थिति में महत्त्वपूर्ण अन्तर उपस्थित कर दिया । अब वह सखा न रहकर गुरु और शिक्षक बन गया । क्योंकि अब बालविवाह होने से पति को पत्नियों को शिक्षित करना पड़ता था , अब पत्नी उसकी सहायक न होकर पराधीन हो गयी । गौतम ने कहा कि - " रजोदर्शन से पूर्व कन्या का विवाह कर देना चाहिये ।[1] स्त्रियों का उपनयन संस्कार बन्द हो जाने से उनके शूद्र होने की सम्भावना थी । मनु ने विवाह को उपनयन का समस्थानीय मान लिया ।[2] महात्मागांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है - " हिन्दू संसार में बचपन में विवाह होने तथा मध्यम वर्ग में पति के प्राय: साक्षर और पत्नी के निरक्षर होने के कारण पति पत्नी के जीवन में बड़ा अन्तर रहता है और पति को पत्नी का शिक्षक बनना पड़ता है ।[3]

कालान्तर में पति को गुरु तथा देवता माना जाने लगा । अब पत्नी के लिये पति ही सर्वस्व था , इस प्रकार पति की स्थितियों में अन्तर आने के साथ ही पातिव्रत्य की भावना भी प्रबल होती गयी तन , मन , धन से पति की सेवा तथा उसकी प्रत्येक आज्ञा का पालन पातिव्रत्य की कसौटी माना गया । सूत्रकारों में संभवत: शंख ने सर्वप्रथम घोषणा की कि -"पति के कोढ़ी , पतित , अंगहीन या बीमार होने

१- गौ० ध० सू० २।६।२१ , २।६।२३ प्रदानं प्रागृतो: , प्राग्वाससः प्रतिपत्तेरित्येके ।

२- मनु २।६७

३- आत्मकथा , पंचम संस्करण , पृ० २२७ ।

पर भी पत्नी पति से द्वेष न करे , क्योंकि स्त्रियों के लिये पति देवता है ।[1] मनु ने भी इसी मत को स्वीकार करते हुए पतिव्रता स्त्री को दु:शील , स्वच्छन्द आचरण वाले पति की देवता की भांति आराधना का उपदेश दिया और इसी से उसके लिये स्वर्ग की प्राप्ति बतायी ।[2]

महाकाव्यकाल में पति के देवतावाद का सिद्धान्त पूर्णरूप से प्रतिष्ठित हो चुका था , फिर भी महाकाव्यकार वैदिक परम्परा को पूर्णतया विस्मृत नहीं कर सके थे और पत्नी को श्रेष्ठतम सखा , तथा पति की अर्द्धांगिनी आदि कहा गया है ।[3] पत्नी ही एकान्त में प्रिय वचन बोलने वाली संगिनी या मित्र है ।[4]

महाकाव्य सीता , सावित्री , दमयन्ती , अनसूया , गान्धारी इत्यादि श्रेष्ठ पतिव्रताओं के गुण गान से परिपूर्ण है । कौशल्या सीता को सधन अथवा निर्धन राम की सेवा करने का उपदेश देती है , क्योंकि पति देवता के समान है ।[5] राम के पास धन प्राप्ति के लिये पति से जाने का आग्रह करने वाली त्रिजट पत्नी कहती है - " स्त्रियों के लिये पति

१- शंख [स्मृत २५१] स्यात्पतितो अंगहीनो व्याधितो वा पतिर्हि देवता स्त्रीणाम् । द्रष्टव्य - कामसूत्र ४।१।१ , मत्स्यपुराण २१०।१७ पतिर्हि दैवतं स्त्रीणां पतिरेव परायणम् ।

२- मनु ६।१५४-१५५

३- महा० आदि प० ७४।४० , रामा० अयो० का० ३७।२४ ।

४- महा० आदि प० ७४।४२

५- रामा० अयो० का० ३९। २४-२५ , ३९।३० ।

ही देवता है , इसलिये मुझे आपको आदेश देने का अधिकार नहीं है।[१] पुत्र के साथ वनगमन के लिये आग्रह करने वाली कौशल्या को राम ने जो उपदेश दिया है , वह तत्कालीन पति की देवता सम्बन्धी धारणा को स्पष्ट करता है।[२] स्त्री के लिये देवताओं की वन्दना और पूजा की भी आवश्यकता नहीं है , वह केवल पति की आराधना से उत्तम लोक प्राप्त कर लेती है।[३] ऐसा न करने वाली स्त्री को नरक की प्राप्ति होती है।[४] सीता कहती है - " मैं उत्तम व्रत का पालन करने वाली पतिव्रता हूं।[५]

पतिव्रता स्त्रियों के लिये पति का अपमान अशोचनीय बात थी , क्योंकि पति ही स्त्री का देवता माना जाता था , पति गुणवान हो या गुणहीन , धर्म का विचार करने वाली सती नारियों के लिये वह प्रत्यक्ष देवता है।[६] पातिव्रत्य के सम्बन्ध में अनसूया द्वारा सीता को दिया गया उपदेश भी पति को देवता मानने सम्बन्धी अवधारणा को स्पष्ट करता है।[७] इस अवधारणा को पुष्ट करते हुए सीता कहती है - " मेरे पतिदेव यदि अनार्य [चरित्रहीन] तथा जीविका के साधनों से रहित होते तो भी मैं बिना किसी दुविधा के उनकी सेवा में लगी रहती ,

---

१- रामा० अयो० का० २२।३० , २६।१६

२- वही अयो० का० २४।२१ , २४।१६

३- वही अयो० का० २४। २२-२३

४- वही अयो० का० २४।२५-२६ , अयो० का० ११७।२८

५- वही अयो० का० २६।१६-२० सुव्रतां हि पतिव्रताम् ।

६- रामा० अयो० का० ३६।१ , ६२।८

७- वही अयो० का० ११७।२३-२५ , ११७।२८ ।

फिर जब कि राम अपने गुणों के लिये ही सबकी प्रशंसा के पात्र हैं, तब तो उनकी सेवा के लिये कहना ही क्या है।[१] पत्नी के लिये पति गुरु के समान है, अर्थात वह उसकी आज्ञाओं का पालन उसी श्रद्धा से करती है, जैसे एक शिष्य अपनी गुरु की आज्ञाओं का पालन करता है।[२]

महाभारतकाल में भी पत्नी के लिये पति देवता, प्रभु, ईश्वर तथा गुरु था। पातिव्रत्य की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि - " जो अपनी इन्द्रियों को संयम में रखती हुई मन को वश में करके अपने पति का देवता के समान ही चिन्तन करती रहती हैं, वे स्त्रियां धन्य हैं।[३] पातिव्रत्य धर्म को बहुत ही कठोर तथा दुष्कर बताया गया है।[४] पतिव्रता स्त्री का धर्म था कि " वह अपने क्रूर स्वभाव के पति की सेवा उसके तिरस्कार का पात्र बनकर भी करे[५], नारियों के लिये किसी यज्ञकर्म, श्राद्ध और उपवास की आवश्यकता नहीं है, वह पति के सेवा द्वारा ही स्वर्गलोक प्राप्त करती हैं।[६] स्त्री के लिये सबसे बड़े देवता पति हैं " कहने वाली ब्राह्मणी नित्य पतिपरायणा थी।[७] वह बाहर से आने पर पति के पैर धोती, बैठने को आसन देती, फिर सुन्दर स्वादिष्ट भोजन पति को परोसती, पति के उच्छिष्ट भोजन को प्रसाद मानकर बड़े आदर

१- रामा० अयो० का० ११८।३-४

२- वही अयो० का० ११८।२, युद्धका० ११६।३६-३७

३- महा० वन प० २०५। ६-७

४- वही वन प० २०५। ८-९

५- वही वन प० २०५।१३

६- वही वन प० २०५। २९-३०

७- वही वन० प० २०६। २०, ३०।

व सम्मान से खाती।[1] वह मन, वचन और कर्म से पतिपरायणा थी।[2] अपने हृदय की समस्त भावनायें सम्पूर्ण प्रेम पति के चरणों में चढ़ाकर वह अनन्य भाव से उन्हीं की सेवा में लगी रहती।[3] भीष्म के अनुसार भी " स्त्रियों के लिये पति सेवा ही सबसे बड़ा धर्म, पति ही उनका देवता और वही उनकी परम गति है।[4]

पातिव्रत धर्म का पालन कर ही शाण्डिली ने स्वर्गलोक प्राप्त किया था।[5] उमा ने भी स्त्री धर्मका वर्णन करते हुए पतिव्रता स्त्रियों के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार जो स्त्री मन से भी किसी परपुरुष का ध्यान नहीं करती और प्रत्येक अवस्था में पुत्र के समान पति की सेवा करती है, वह धर्मफल की भागिनी होती है।[6] वह आपद्धर्म का उल्लेख करते हुए कहती है - " पति दरिद्र हो जाय, किसी रोग से घिर जाय, आपत्ति में फंस जाय, शत्रुओं के बीच में पड़ जाय, अथवा ब्राह्मण के शाप से कष्ट पा रहा हो, उस अवस्था में न करने योग्य कर्म, अधर्म अथवा प्राणात्याग की भी आज्ञा दे दे तो उसे निश्शङ्क भाव से तुरन्त पूरा करना चाहिये।[7] उमा ने अपने स्त्री धर्म के वर्णन में " सहधर्मिणी "[8] का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार यहां पत्नी के मित्र तथा सलाहकार आदि के रूप को पातिव्रत के साथ सम्मिलित कर लिया गया, अर्थात जो स्त्री पति के साथ सहधर्म का पालन करती है,

---

१- महा० वन प० २०६। ११-१२
२- वही वन० प० २०६।१३, शा० प० १४८।७
३- वही वन० प० २०६।१४
४- वही अनु० प० ८।२०, १४६।५५
५- महा० अनु० प० १२३।८, १२३।६-२१, पातिव्रत के अन्तर्गत समस्त गृहस्थ सम्बन्धी कर्तव्यों को सम्मिलित किया गया है।
६- महा० अनु० प० १४६। ३५-४०, १४६। ४३-४४
७- वही अनु० प० १४६। ५७-५८, ५६
८- वही अनु० प० १४६। ३६-४०।

समस्त गार्हपत्य कार्यों का सम्यक् सम्पादन करती है और पति को देवता मानती है , वही वास्तव में पतिव्रता है ।[१]

साध्वी द्रौपदी ने भी पति को वश में करने के सत्यभामा के प्रश्न पर पतिव्रता स्त्रियों के कर्तव्यों पर प्रकाश डालते हुए " पति को स्त्रियों का देवता , उनकी गति तथा एकमात्र सहारा माना है ।[२] और पति को वश में करने का मूल मंत्र पति सेवा तथा समस्त गृहस्थ सम्बन्धी कर्तव्यों का सम्यक् पालन बताया है ।[३] इस प्रकार पतिव्रता स्त्रियों के कर्तव्य बहुत ही विस्तृत थे ।

पातिव्रत्य का प्रशिक्षण -

कन्याओं के अन्दर पातिव्रत्य की भावना का विकास बाल्यावस्था से ही किया जाता था , क्योंकि अपने अस्तित्व को पति में तिरोहित कर देना कोई सरल कार्य नहीं था । इसलिये प्रारम्भ से ही परिवार के ज्येष्ठ लोगों तथा आगत ऋषियों द्वारा कन्याओं को पातिव्रत्य की शिक्षा प्रदान की जाती थी । पतिव्रता स्त्रियों की अपरिमित शक्ति से सम्बन्धित अद्भुत कथायें सुनायी जाती थीं , जिससे प्रौढ़ होते-होते उनमें पातिव्रत्य की भावना का पूर्ण विकास हो जाता था , तथा वे भी वैसा ही आचरण करने का प्रयास करती थीं । यही कारण था कि गान्धारी ने जब सुना कि उसके

१- महा० अनु० प० १४६। ४५-४६

२- महा० वन० प० २३३।३७ , २३४।२

३- वही वन० प० २३३ , २३४ अध्याय ।

पति अन्धे हैं , उसने पतिव्रता स्त्री के आदर्शों का पालन करते हुए उसी दिन से अपनी आंखों में पट्टी बांधलिया कि उसके पति जब संसार को देखने का आनन्द नहीं प्राप्त कर पाते , तो वह भी उस सुख की आकांक्षा नहीं करती ।[१] पतिव्रता स्त्री का कर्तव्य है कि वह पति के सुख में सुखी तथा दुख में अपने को दुखी माने ।[२] सीता को भी इस प्रकार की शिक्षा बाल्यावस्था से ही उनके स्वजनों तथा समागत ब्राह्मणों द्वारा प्रदान की गयी थी ।[३] सास तथा घर के अन्य बड़े लोग इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करते थे ।[४] जब कभी स्त्रियां अपने पति सम्बन्धी कर्तव्यों के पालन में शिथिलता दिखाती थीं तो उन्हें न केवल परिवार के बड़े अथवा मित्र आदि ही परामर्श देते थे , वरन् वयस्क पुत्र भी उन्हें इस विषय में शिक्षा प्रदान करते थे ।[५] द्रौपदी ने सत्यभामा को स्त्रीधर्म की शिक्षा दी थी और उसे असती स्त्रियों द्वारा अपनाये जाने वाले उपायों से होने वाली हानियों की ओर संकेत करते हुए उनको न अपनाने का आग्रह किया था ।[६] शाण्डिली कन्याओं को नारी धर्म की शिक्षा देती थीं ।[७] विवाह के समय कन्या के भाई बन्धु पहले ही उसे स्त्रीधर्म का उपदेश दे देते हैं , जब कि वह अग्नि के समक्ष अपने पति की सहधर्मिणी बनती है ।[८]

- -

१- महा० आदि प० १०६। १३-१४

२- रामा० अयो० का० २७।१०

३- वही अयो० का० २६।१७ , ३६। २७ , ११८।७-६

४- वही अयो० का० ३६।१६ , ११८।१०-१२ , महा०आदिप० ११८।७-८

५- वही अयो० का० २१।६० , २४।२० , २५, उ०का० ४७।१७-१८ , युद्धका० ११६।३७ ।

६- महा० वन० प० २३३-२३४ अध्याय , द्रष्टव्य कामसूत्र ७।४७।१७-१८

७- वही अनु० प० १२३।१५

८- वही अनु० प० १४६।३४ ।

इस प्रकार बाल्यावस्था में माता-पिता द्वारा जो पृष्ठभूमि तैयार की जाती थी , विवाहोपरान्त ससुराल में उसे सास इत्यादि के द्वारा स्थायी बना दिया जाता था ।

पतिव्रताओं की असीमित शक्ति -

महाकाव्य में पतिव्रता स्त्रियों की असीमित शक्ति का वर्णन किया गया है । पातिव्रत्य एक तप था , और जिसका निरन्तर पालन करने से स्त्रियों के अन्दर अद्भुत शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है , ऐसा माना जाता था , क्योंकि पातिव्रत्य का आचरण बहुत ही दु:सह और कठोर होता था । सीता अपने पातिव्रत्य के तेज से सुरक्षित थी , अपने अपहरण करने वाले को वह भस्म करने की शक्ति रखती है , ऐसा मारीच का मत था ।[1] मंदोदरी को इस बात का आश्चर्य था कि " सीता का हरण करते समय रावण भस्म कैसे नहीं हुआ , लेकिन सीता की कामना करने वाले सीता को तो न पा सके , वरन् पतिव्रता देवी की तपस्या से स्वयं जलकर भस्म हो गये ।[2] क्योंकि ऐसा प्रसिद्ध था कि - " पतिव्रताओं के आंसू कभी व्यर्थ नहीं गिरते ।[3] पातिव्रत्य के प्रभाव से ही अनसूया देवी ने दस वर्षों तक अनावृष्टि होने पर फलमूल उत्पन्न किये थे , मन्दाकिनी की पवित्रधारा बहायी थी , ऋषियों के समस्त विघ्नों का निवारण किया और देवताओं के लिये दस रात के समान एक रात बनायी थी ।[4]

- -

१- रामा० अरण्यका० ३७।१४

२- वही युद्ध का० १११। २२-२४

३- वही युद्ध का० १११।६५-६७ , पतिव्रतानां नाकस्मात् पतन्त्यश्रूणिभूतले ।

४- रामा० अयो० का० ११७। ६-११ ।

पातिव्रत्य के तेज के प्रभाव से ही सीता दुर्धर्ष तथा दूसरों के लिये अलभ्य थी।[१] वे स्वयं अपने तेज से सुरक्षित थी।[२]

दमयन्ती की ओर कामुक दृष्टि से बढ़ने वाला शिकारी उसकी कोप दृष्टि से मर गया था।[३] नल को इस बात का पूर्ण विश्वास था कि दमयन्ती मेरी भक्त और पतिव्रता है, इसलिये वह पातिव्रत्य के तेज से सुरक्षित है।[४] गान्धारी की शक्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि - " गान्धारी चाहने पर विश्व को भस्म कर सकती थी, सूर्य एवं चन्द्र की गति बन्द कर सकती थी।[५] गान्धारी ने कृष्ण को समस्त वृष्णिवंशियों के नाश होने का शाप प्रदान किया था, जो बाद में चरितार्थ हुआ।[६] सावित्री ने पतिव्रता होने के कारण यम के हाथ से अपने पति के प्राण छुड़ा लिये थे।[७] ब्राह्मणी पातिव्रत्य के प्रभाव से ही क्रोधी ब्राह्मण की सारी क्रियायें जान गयी थी।[८] शाण्डिली ने सुमना से पतिव्रता स्त्रियों की शक्ति पर प्रकाश डाला है।[९] इसी के प्रभाव से सीता अग्निपरीक्षा में खरी उतरी।[१०]

१- रामा० युद्ध का० ११८।१८

२- वही युद्ध का० ११८।१६, सु० का० २२।२०

३- महा० वन० प० ६३। ३८-३६

४- वही वन० प० ६२। १४-२४

५- महा० शल्यप० ६३।६४-६५ शक्ता चासि महाभागे पृथिवीं सचराचराम।
चक्षुषा क्रोधदीप्तेन निर्दग्धुं तपसो बलात्॥

६- महा० स्त्री प० २५।३६-४६

७- वही वन० प० २६७।५६-५७, २६८।४२

८- वही वनप० २०६। २३-२४, ४७, २०७।४

९- महा० अनु० प० १२३ अध्याय

सुकन्या ने पातिव्रत्य के प्रभाव से ही एकरूप रंग वाले अश्विनी कुमारों व अपने पति के बीच अपने पति को पहचान सकी ।[१] शाण्डिली ने पातिव्रत्य के प्रभाव से ही स्वर्गलोक में स्थान प्राप्त किया था ।[२] अनुशासन पर्व में पतिव्रता स्त्रियों के नाम तथा उनके गुणों का वर्णन पाया जाता है ।[३] स्कन्द पुराण[४] में कुछ पतिव्रताओं का नामोल्लेख किया गया है - यथा - अरुन्धती , अनसूया , सावित्री , शाण्डिली , सत्या , मैना । पातिव्रत्य के प्रभाव के बारे में लिखा है कि " पतिव्रतायें अपने पतियों को यमदूतों की पकड़ से उसी प्रकार खींच सकती हैं , जिस प्रकार व्यालग्राही [सपेरा] बिल में से बलपूर्वक सर्प खींच लेता है । पतिव्रतायें पति के साथ स्वर्गारोहण करती हैं और यमदूत उन्हें देखकर तुरन्त भाग जाते हैं । " द्रौपदी के अन्दर अपनी क्रोधाग्नि से शत्रुओं को जलाकर भस्म कर देने की शक्ति थी ।[५]

पातिव्रत्य के इतने महत्त्व के बावजूद कुछ स्त्रियां अपने पतियों की सेवा पातिव्रत्य की भावना से उद्वेलित होकर नहीं , बल्कि अपने पतियों के शाप देने के भय से करती थी । इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उन कन्याओं के लिये त्याग व तपस्या का जीवन व्यतीत करना बहुत कठिन था जो कि प्रारम्भ में राजकीय सुख में पली थी , परन्तु बाद में उनका

१- महा० वन० प० १२३ अध्याय

२- वही अनु० प० १२३ अध्याय , शल्य प० ५०।४३

३- वही अनु० प० १४६ अध्याय

४- स्कन्द पुराण [३ ब्रह्मखण्ड , ब्रह्मारण्य भाग अध्याय ७]

५- महा० सभाप० ७१।६ , ८१।१८ ।

विवाह ऐसे ऋषियों से हुआ जो कि विवाह को मात्र त्याग तपस्या का जीवन मानते थे और जिनके यहाँ धन का बिल्कुल अभाव था । इस सम्बन्ध में सुकन्या[१], लोपामुद्रा[२] और शान्ता[३] के विवाह उल्लेखनीय है, रेणुका अपने पति की सहायता शाप के भय के कारण ही करती थी, अपने कर्तव्य से उद्वेलित होकर नहीं[४] । यही कारण था कि वह मार्तिकावत देश के राजा की समृद्धि को देखकर विचलित हो गयी थी[५] । अत्रिपत्नी ब्रह्मवादिनी अनसूया भी किसी समय रुष्ट होकर अपने पति को त्यागकर चली गयीं, और महादेव की तपस्या के द्वारा बिना पति के सहयोग के ही पुत्र प्राप्ति का वरदान पाया[६] । एक दुष्टा ब्राह्मणी अपने पति के अनुसार त्याग तपस्यामय जीवन व्यतीत नहीं करती थी[७] ।

असती स्त्रियाँ -

पातिव्रत्य के उच्च आदर्श के बावजूद समाज में कुछ ऐसी स्त्रियाँ थीं जो कि पातिव्रत्य धर्म का पालन नहीं करती थीं । ऐसी स्त्रियों को असती या दुष्टा स्त्रियों के नाम से सम्बोधित किया जाता था । कौशल्या दुष्टा स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहती है कि - " जो स्त्रियाँ

१- महा० वन० प० १२२। २३-२८, १२३। ६-११

२- वही वन० प० ६७। ३-६

३- वही वन० प० ११३। १६, २१-२२

४- वही शा० प० २७२।६-८, अनु० प० ६५। ६-१५

५- वही वन० प० ११६।७

६- वही अनु० प० १४।६५

७- वही शा० प० १७६।३ ।

अपने प्रियतम पति के द्वारा सदा सम्मानित होकर भी संकट में पड़ने पर उसका आदर नहीं करती हैं , वे सम्पूर्ण जगत में असती दुष्टा के नाम से पुकारी जाती हैं।[१] इन स्त्रियों का यह स्वभाव होता है कि पहले तो वे पति के द्वारा यथेष्ट सुख भोगती हैं , परन्तु जब थोड़ी सी विपत्ति पड़ने पर उस पर दोषारोपण करती तथा साथ छोड़ देती है।[२] झूठ बोलने वाली , विकृत चेष्टा करने वाली , दुष्ट पुरुषों से संसर्ग रखने वाली , पति के प्रति सदा हृदयहीनता का परिचय देने वाली , कुलटा पाप के ही मंसूबे बांधने वाली और छोटी सी बात के लिये भी क्षण मात्र में पति की ओर से विरक्त हो जाने वाली है , वे इनकी सब दुष्टा तथा असती कही जाती हैं।[३] दुष्टा स्त्रियों को अच्छे कार्य द्वारा वश में नहीं किया जा सकता क्योंकि उनका चित्त अव्यवस्थित होता है।[४] सीता कहती है - " मुझे असती स्त्रियों के सामने नहीं मानना चाहिये।[५] जो अपने पति पर शासन करने वाली तथा इच्छानुसार विचरण करने वाली असाध्वी नारियों का उल्लेख अनसूया ने भी किया था।[६] ऐसी नारियां संसार में अनुचित कर्म में फंसकर अपयश की प्राप्ति करती हैं।[७] अगस्त्य जी सीता की प्रशंसा करते हुए सामान्य रूप से स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन करते हुए

१- रामा० अयो० का० ३६। २०-२१

२- वही अयो० का० ३६।२१

३- वही अयो० का० ३६।२२

४- रामा० अयो० का० ३६।२३

५- वही अयो० का० ३६। २८ , ३०।७

६- वही अयो० का० ११७।२६

७- वही अयो० का० ११७।२७ ।

कहते हैं कि - " सृष्टिकाल से लेकर अब तक प्राय: स्त्रियों का सामान्य स्वभाव यह रहता आया है कि पति यदि सम अवस्था में है तो वे पति में अनुराग रखती हैं, परन्तु अगर विषम अवस्था में हुआ तो त्याग देती हैं।[१] स्त्रियां विद्युत की चपलता, शस्त्रों की तीक्ष्णता तथा गरुड़ एवं वायु की तीव्र गति का अनुसरण करती हैं, परन्तु सीता इन सब दोषों से रहित पतिव्रता है।[२] कुटिल या झगड़ालू[३], दुष्टा[४], स्वार्थी[५] व्यभिचारिणी [अपवित्र][६] छठी और कुलटा स्त्रियों[७] ने कितनी ही बार पति को वश में करने के चक्कर में उनको अनेक प्रकार की विपत्तियों में डाल दिया, साध्वी स्त्रियों को ऐसा करना उचित नहीं।[८]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समाज में कुछ ऐसी स्त्रियां थीं, जिन्होंने पातिव्रत्य के उच्च आदर्श को नहीं स्वीकार किया, यद्यपि समाज के साधु पुरुषों द्वारा उनकी आलोचना की जाती थी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि महाकाव्यकालीन समाज में पत्नी घर की केन्द्रबिन्दु थी। गृह की सम्यक् व्यवस्था गृहपत्नी के ऊपर ही निर्भर करती थी। पत्नियां भी गृहस्थी सम्बन्धी समस्त उत्तरदायित्वों का पालन

१- रामा० अरण्यका० १४।५
२- वही अरण्य का० १४।६-७
३- महा० शा० प० १३६। ८६
४- वही शा० प० १३६। ६३-६४, रामा० अयो० का० ७५।३५
५- महा० आदि प० २३२।७
६- वही वन प० ४।२१
७- रामा० अरण्यका० १३।५-६
८- महा० वनप० २३३। १० , १७ ।

प्रसन्नता पूर्वक अपना स्वधर्म समझकर करती थी । महाकाव्य की नायिकाओं सीता , द्रौपदी , कुन्ती इत्यादि ने अपने उत्तरदायित्वों का पालन बड़ी तत्परता के साथ किया था और अपने आचरण से उन्होंने सभी को प्रभावित किया था ।

वे सच्चे अर्थों में अपने पतियों की " सहधर्मिणी " थी । यद्यपि बाद के समय में , जब कि महाकाव्य का उपदेशक भाग लिखा गया वैराग्य पूर्ण दृष्टिकोण के विकास , पातिव्रत्य की भावना तथा शिक्षा की कमी के कारण उसका यह स्वरूप स्थायी न रह सका । पत्नी अब सहधर्मिणी न रहकर दासी के समान हो गयी , उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व न रहा ।

महाकाव्य के उपदेशक भाग में अनेक स्थानों पर स्त्रियों के विरुद्ध विचार प्रकट करने पर भी[१] शास्त्रकार अभी प्राचीन परम्परा को पूर्णतया विस्मृत न कर सके थे , यही कारण है कि सर्वत्र स्त्रियों को प्रसन्न तथा संतुष्ट रखने की बात कही गयी है ।[२] शास्त्रकार इस बात से भली-भांति अवगत थे कि पति और पत्नी गृहस्थी रूपी रथ के दो पहिये के समान हैं और उनमें से अगर एक भी प्रसन्न अथवा संतुष्ट नहीं है तो गृहस्थी का रथ ठीक से नहीं चल सकता । इसलिये वे कहते हैं कि " जहां पति पत्नी से तथा पत्नी पति से संतुष्ट रहते हैं , वहां सर्वत्र कल्याण होता है ।[३]

१- महा० अनु० प० ३८-४० , ४३ अध्याय

२- वही अनु० ४६।५

पूज्या लालयितव्याश्च स्त्रियो नित्यं जनाधिप ।
स्त्रियो यत्र च पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: ।।

३- महा० अनु० प० १२२।१७ , मनु ३।६०

यो भर्ता वासिता तुष्टो भर्तुस्तुष्टा च वासिता ।
यस्मिन्नेव कुले सर्वं कल्याणं तत्र वर्तते ।।

अध्याय - ५

माता

माता

स्त्री के विकास की चरम परिणति मातृत्व में होती है। मातृत्व में उसके व्यक्तित्व के विकास की गौरवमयी प्रतिष्ठा निहित है। यही कारण है कि भारतीय साहित्य माता की प्रशंसा से भरा पड़ा है। महाकाव्य में भी माता को सर्वोच्च सम्माननीय स्थान प्रदान किया गया है। माता को देवता की श्रेणी में रखा गया है। नारी अपने अङ्गांग से हृदय के सुकुमार तन्तुओं से एक नवीन प्राणी की सृष्टि करती है[1], जो दम्पत्ति के प्रेम का प्रतीक होता है। पति की आत्मा के रूप में पुनर्जन्म लेने वाले पुत्र[2] की वह जिस तन्मयता से संवर्द्धन करती है, वह संसार में अद्वितीय होता है। यही कारण है कि वह गर्भाशय में धारण करने के कारण "धात्री", जन्म देने के कारण "जननी", शिशु का अङ्गवर्धन करने से "अम्बा" तथा वीर संतान का प्रसव करने के कारण "वीरसू" तथा शिशु की शुश्रूषा करने के कारण "शुश्रू" कहलाती है[3]। मनुष्य के पाञ्चभौतिक शरीर का मुख्यकारण माता ही होती है, जैसे अग्नि के प्रकट होने का मुख्य आधार अरणी काष्ठ है[4]।

- -

१- रामा० अयो० का० ७४।१४ अङ्गप्रत्यङ्गजः पुत्रो हृदयाच्चाभिजायते। महा० आदि प० ७४।६३। रामा० अयो० का० ३५।१७, १८, २८ कन्यायें माता के समान होती हैं।

२- महा० आदि प० ७४।३७, ४८-४९

३- वही शा० प० २६६।३२-३३ कुक्षिसंधारणाद्धात्री जननाज्जननीस्मृता।

४- वही शा० प० २६६।२५।

यद्यपि माता-पिता दोनों ही सुयोग्य संतान प्राप्ति की अभिलाषा करते हैं परन्तु यह अभिलाषा माता में अधिक होती है।[१] यही कारण है कि पितृसत्तात्मक समाजों में पिता के समान ही माता भी पुत्र की स्वामी होती थी।[२]

माता का स्थान -

समाज के द्वारा माता को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया था। गौरव में दस आचार्यों से बढ़कर उपाध्याय, दस उपाध्यायों से बढ़कर पिता और दस पिताओं से बढ़कर माता है। माता अपने गौरव से समूची पृथ्वी को तिरस्कृत कर देती है, अत: माता के समान दूसरा कोई गुरू नहीं है, माता का गौरव सबसे बढ़कर है, इसीलिये लोग उसका विशेष आदर करते हैं।[३] माता का गौरव पृथ्वी से भी बढ़कर है।[४] माता से श्रेष्ठ कोई गुरू नहीं है।[५] वास्तव में इस संसार

१- महा० शा०प० २६६।३४, दम्पत्यो: प्राणसंश्लेषे योऽभिसंधि: कृत: किल तं माता च पिता चेति भूतार्थो मातरि स्थित:
द्रष्टव्य - मेयर - "सेक्सुअल लाइफ इन एन्सियेंट इंडिया, पृ० २०५" दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित होने पर पुरुष केवल आनन्द की आकांक्षा करता है, जब कि स्त्री सदैव बच्चे की आकांक्षा करती है।

२- महा० आदि प० १०५। ३१-३२

३- वही अनु० प० १०५।१४-१६, शा०प० १०८।१७, मनु २।१४५

४- वही वनप० ३१३।६० माता गुरुतरा भूमि: ।

५- वही अनु० प० १०६।६५ नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरु: ।
वही अनु० प० ६२। ९२-९३ नास्ति भूमि समं दानं नास्ति मातृसमो गुरु:
द्रष्टव्य - आप० ध० सू० १।४।१४।६, अत्रि संहिता १५० ।

में माता के समान दूसरा कोई गुरू नहीं है।[१]

समस्त गुरुओं में माता को परम गुरू माना गया है।[२] अत्यन्त प्राचीनकाल से माता को गुरू की श्रेणी में रखा जाता रहा है।[३] माता , पिता और गुरुजन ही तीनों लोक हैं , ये तीनों ही आश्रम हैं , ये ही तीनों वेद और ये ही तीनों अग्नियां हैं।[४] माता की तुलना दाक्षिणाग्नि से की गयी है , और लौकिक अग्नियों की अपेक्षा माता-पिता आदि त्रिविध अग्नियों का गौरव अधिक माना गया है।[५] तीनों अग्नियों का परित्याग पाप समझा जाता था।[६]

- -

१- महा० शा० प० ३४२।१८ नास्ति सत्यात्परोधर्मो नास्ति मातृसमो गुरु:

२- महा० आदि प० १६५।१६ गुरुणां चैव सर्वेषां मातापरमको गुरु: ।

३- तै० उप० १।३।५ , महा०शा०प० १०८।१६ ,मनु २।१४५, वशि०ध०सू० १३।४८ , याज्ञ० स्मृ० १।३५ , गौ० ध० सू० २।५६ , विष्णु स्मृति ३१।१-२। महा० (आश्व० प०) ११०।६० माता ही सब कुछ थी ।

४- महा० शा० प० १०८।६

५- महा० शा० प० १०८।७ पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताऽग्निर्दक्षिण: स्मृत:
गुरुराह्वनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ।।
द्रष्टव्य - आप० ध० सू० २।३।७।२ , पृ० ११७ , एस०बी०ई० II
गौ० गृ० सू० १।६।३-४ , ३।३।१५ जूलियस जौली , (एस०बी०ई०वा० ७
विष्णु ध० सू० ३१।८
वासुदेवशरण अग्रवाल - " पाणिनिकालीन भारतवर्ष " पृ० ३६३ में कहते हैं - " यज्ञ के बाद दक्षिणाग्नि की रक्षा नहीं की जाती थी " परन्तु माता की सदैव सेवा की जाती है , इसलिये हम यहां इस अर्थ को नहीं ले सकते ।

६- महा० अनु० प० ६३।१२२ ।

मनुष्यों को यह परामर्श दिया गया है कि वे पिता , माता , अग्नि , आत्मा और गुरु इन पांच अग्नियों की यत्न से सेवा करें।[१] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है - " (अग्नियों के सेवन) यज्ञ से मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है।[२] माता कीअग्नि से तुलना किये जाने का कारण यह है कि भारतीय शास्त्रों में अग्नि को बहुत पवित्र तथा सत्ययुक्त माना गया है। तथा प्रारम्भ से ही अग्नि मानव जीवन के लिये अपरिहार्य आवश्यकता रही है , उसी प्रकार अग्नि के समान माता भी पवित्र , सत्ययुक्त , अपरिहार्य तथा अपने बच्चों को कर्तव्यपथ का उपदेश करने वाली होती है। स्त्री के लिये मातृत्व सुख से बढ़कर और कोई सुख नहीं था[३], इसलिये कहा गया है कि - " पुत्र का जन्म देने वाली धर्मपत्नी को माता के ही समान देखें।[४]

जहां मातृत्व को इतना गौरव प्रदान किया गया हो , वहां पर वन्ध्या स्त्री की दशा बहुत ही शोचनीय तथा दयनीय हो जाती है , पुत्र का अभाव उन्हें निरन्तर कष्ट देता रहता था। विशेषकर उस समाज में ऐसी स्त्रियों की स्थिति और दयनीय हो जाती है , जहां यह धारणा हो कि पुत्र नरक से उद्धार करता है।[५] अतः प्रत्येक पत्नी के लिये मातृपद प्राप्त करने की लालसा स्वाभाविक थी। पार्वती ने पुत्र प्राप्ति के लिये

- -

१- वही उद्योग प० ३३।७४ - पिता माताऽग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ।
२- आप० ध० सू० २।७।१६।१ , यज्ञ से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है।
३- महा० आदि प० १५७। ३३-३४
४- वही आदि प० ७४।४८ , आश्वमे० ६०।४५
५- वही आदि प० ७४। ३८-३९ ।

ही शिव से समागम किया था[१], लेकिन जब देवताओं ने उसमें विघ्न डाल दिया तो उन्होंने क्षुब्ध होकर देवताओं को भी इसी प्रकार का शाप दे दिया।[२] पृथ्वी को भी पुत्र सुख से वंचित रहने का शाप मिला।[३]

नि:संतान हो जाने का शाप प्राप्त कर देवगण व्यथित थे।[४] वन्ध्यत्व पत्नी के लिये अपार दुख का कारण होता था, उसे सदैव मन में यह संताप बना रहता है कि मुझे कोई सन्तान नहीं है।[५] पति और पुत्र से हीन युवती का अन्न आयु का नाश करने वाला माना जाता था।[६] अन्यत्र कहा गया है - "ऐसी स्त्री से क्या प्रयोजन, जो बाँझ हो।[७] गार्ग्य मुनि द्वारा धर्म के रहस्य वर्णन में - जहाँ श्राद्ध में, यज्ञ और पर्वों के दिन देवताओं के लिये तैयार हविष्य को देख लेने पर देवता हविष्य ग्रहण नहीं करते, अन्यान्य लोगों के उल्लेख के साथ वन्ध्या स्त्री का भी उल्लेख किया गया है।[८] परस्त्री में आसक्ति, वन्ध्या स्त्री का सेवन और ब्राह्मण के धन का अपहरण करने वाले समान दोष के भागी होते हैं, देवता और पितर इनके हविष्य को आदर नहीं देते। इसलिये वन्ध्या स्त्री का त्याग कर देना चाहिये।[९]

१- वाल्मी० रामा० बालका० ३६।२१

२- रामा० बालका० ३६।२२

३- वही बालका० ३६।२४, महा० अनु० प० ८४। ७३-७४

४- रामा० बालका० ३६।२५

५- वही बालका० ३६ सर्ग, अयो० का० २०।३६-३७

६- महा० शा० प० ३६।२७

७- वही शा० प० ७८।४१

८- वही अनु० प० १२७। १२-१३

९- वही अनु० प० १२६। २-४ ।

मातृ पद को प्राप्ति के लिये स्त्रियों द्वारा प्रयास -

मातृ पद का इतना महत्त्व होने के कारण पुत्राभाव में हम अनेक स्त्रियों को कठिन तपस्या में रत देखते हैं । देवी अदिति ने पुत्र प्राप्ति के लिये एक पैर से खड़ी होकर घोर तपस्या किया था । सुरभी देवी ने भी घोर तपस्या की थी ।[१]

योग्य तथा सबल संतति की प्राप्ति के लिये हम अनेक कुमारियों को ऋषियों की सेवा में उपस्थित होते देखते हैं ।[२] इहलोक और परलोक में सुख देने तथा योग्य पुत्र प्राप्ति के लिये सभी माताओं द्वारा उपवास, यज्ञ, व्रत कौतुक और मङ्गल कृत्यों का सम्पादन किया जाता था ।[३] स्पष्ट है कि हमारे महापुरुषों को कुलक्रम की अविच्छिन्नता और तेजस्विता अधिक अभीष्ट थी, चाहे इसके लिये विवाह की संकुचित परिधि का उल्लंघन क्यों न होता हो । शर्मिष्ठा ययाति से अपनी पुत्र प्राप्ति की आकांक्षा को पूर्ण करने की प्रार्थना करते हुए कहती हैं- " मुझे अधर्म से बचाइये और धर्म का पालन कराइये, आपसे संतानवती होकर मैं इस लोक में उत्तम धर्म का आचरण करूं ।[४] कुन्ती के पुत्र हो जाने पर माद्री को अपने संतानहीन होने का बहुत दुःख था ।[५]

- -

१- महा० अनु० प० ८३।२५-२८, रामा० अयो० का० २०।५२, बालका० ३८।५, बालका० २९।१०-११, ४६।२, ८ ।

२- रामा० बालका० ३३।११-१२, १६-१७, उ०का० ६।११-१२, १९-२० ।

३- महा० शा० प० ७।१४-१६

४- वही आदि प० ८२।२१

५- वही आदि प० १२३।४ ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि स्त्री के लिये मातृत्व का महत्त्व न केवल स्वयं की संतुष्टि के लिये था वरन् इसके द्वारा वे जाति को अविच्छिन्नता तथा सृष्टि क्रम को बनाये रख महत्त्वपूर्ण सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करती थी ।

माता के प्रति परिवार के लोगों का उत्तरदायित्व

मनोवाञ्छित तथा योग्य सन्तान की प्राप्ति के लिये माताओं को आचार विचार की शुद्धता पर विशेष ध्यान देना पड़ता था । कश्यप ने अपनी पत्नी दिति से कहा था - तुम नियत समय तक आचार विचार की पवित्रता भंग न करो तो तुम्हें इन्द्रजयी पुत्र की प्राप्ति हो सकती है ।[1] समय का प्रभाव भी बच्चे के व्यक्तित्व पर पड़ता था । कैकसी ने विश्रवा से सन्ध्या के अशुभ समय में पुत्र की याचना की थी , अत: उसकी संतान क्रूरकर्मा भयंकर राक्षस बनी ।[2] एक ओर जहाँ माता को इस काल में आत्यंतिक शुद्धि का ध्यान रखना आवश्यक होता था , वहीं परिवार तथा समाज के लोगों का यह दायित्व होता था कि इस काल में वह स्त्री को सुरक्षा तथा सुविधायें प्रदान करें । राजा के विशेष कर्तव्यों के वर्णन के प्रसंग में सूतिकागृह को इस नियम से मुक्त रखा गया है कि दिन में कहीं अग्नि न जलायी जाय ।[3] गर्भिणी स्त्री को प्रथम मार्ग देने की बात कही गयी है ।[4] स्त्रियां वैसे भी अवध्य

१- रामा० बाल का० ४६।६

२- वही उ० का० ६।२२-२३

३- महा० शा० प० ६६।४८-४६

४- वही अनु० प० १०४।२६ ।

मानी गयी है , परन्तु जो जान बूझकर गर्भिणी स्त्री की हत्या करता है , उसे दो ब्रह्महत्याओं का पाप लगता है ।[१] महाकाव्य काल में इससे स्त्री की स्थिति बहुत विशिष्ट हो जाती है उसे ब्राह्मण के समान ही स्थिति प्राप्त हो जाती है ।

इस काल में परिवार के लोगों द्वारा माता को विशेष सुविधा देने की आवश्यकता होती है । क्योंकि गर्भावस्था में माता की स्थिति तथा वातावरण का प्रभाव न केवल शिशु के शारीरिक विकास पर पड़ता है , वरन् उसके मानसिक तथा चारित्रिक विकास पर भी पड़ता है ।[२] पुराणों में अनेक ऐसे उपाख्यानों का वर्णन आया है , जिनमें बालकों ने अपने जन्मकाल से ही विशिष्ट बौद्धिक प्रतिमा का परिचय दिया था , जो इसी प्रभाव के सूचक हैं । महामुनि पुलस्त्य की पत्नी गर्भकाल में उनका वेद श्रवण करती थी , इस कारण उसका (पुत्र का) नाम विश्रवा हुआ और विश्रवा भी

१- रामा० शा० प० १६५।५४-५५ एवं तु समभिज्ञातामात्रेयीं वानिपातयेत् ।
द्विगुणा ब्रह्महत्या वै आत्रेयी निघ्नेभवेत् ।।
* आत्रेयीं प्राप्तगर्भा - * नीलकण्ठः ।
द्रष्टव्य - मनु ६।८८ , गौ० ध० सू० ३।४।१२ , आत्रेयी से तात्पर्य है वह स्त्री जो ऋतुकाल के पश्चात पति के पास जाती है । वशि० ध०सू० २०।३४।३६ ब्रह्महत्या का पाप केवल ब्राह्मणी आत्रेयी की हत्या पर लगेगा । जब कि बौ० ध० सू० २।१।१।१२ के अनुसार सभी आत्रेयी की हत्या पर ब्रह्महत्या का पाप लगेगा । वही वशि० ध० सू०- २०।३४-४० में कहा है प्रत्येक वर्ण की आत्रेयी को मारने वाला उस वर्ण के नीचे के पुरुष को मारने का जो पाप होगा , वही पाप लगेगा ।

२- महा० आदि प० १०६। १७ , ६ ।

छोटी आयु में ही वेदाध्ययन में रत हो गये।[१] कहोड़ मुनि के पुत्र अष्टावक्र को गर्भ में रहते हुए ही वेद का इतना ज्ञान हो गया था कि अशुद्ध उच्चारण करने वाले पिता को टोंक दिया था।[२] अम्बिका और अम्बालिका के डर का प्रभाव उनके बच्चों पर पड़ा था।[३] माता के दृष्टिकोण का प्रभाव बच्चों पर पड़ता था।[४] गर्भस्थ शिशु पर माता द्वारा किये गये भोजन का भी प्रभाव पड़ता था। सत्यवती तथा सत्यवती की माँ का चरु बदल जाने से वे विपरीत स्वभाव वाले पुत्रों की जन्मदात्री हुईं।[५] अत: पति का यह पावन कर्तव्य होता था कि वह पत्नी को हर प्रकार से प्रसन्न रखे तथा उसकी इच्छाओं को पूर्ण करे। राम[६] तथा द्रुपद[७] ने अपनी गर्भवती पत्नियों की इच्छायें पूर्ण की थी। इसी प्रकार अगस्त्य मुनि ने अपनी पत्नी लोपामुद्रा[८] तथा कहोड़ ने अपनी पत्नी सुजाता[९] की इच्छा की पूर्ति किया था। प्रसव होने पर प्रत्येक संभावित कष्ट के निवारण के लिये प्रयास किये जाते थे। सीता के दो बच्चों के उत्पन्न होने पर महर्षि वाल्मीकि ने सूतिकागृह में प्रवेश कर भूतों और

१- रामा० उ० का० ३।३१-३४

२- महा० वनप० १३२।१०

३- वही आदि प० १०६। ६ , १५

४- वही आदि प० १०६। १० , १७

५- महा० अनु० प० ४।२८-३१ , ४०-४१

६- रामा० उ० का० ४२।३१-३५

७- महा० उद्योग प० १८८।११-१२

८- वही वन० प० ६७।२५ , ६६।१६

९- वही वन प० १३२।१५ ।

राक्षसों का विनाश करने वाली रक्षा की व्यवस्था की थी और वृद्धा स्त्रियों को नियुक्त किया ।[१] उत्तरा के प्रसूतिगृह में तात्कालिक आवश्यकता की सभी वस्तुयें, गर्भों के लिये अग्नि तथा क्षुर सेविकाओं की नियुक्ति की गयी थी ।[२] इस सम्बन्ध में जरत्कारु का उदाहरण ही अपवाद स्वरूप है, जो अपनी गर्भिणी पत्नी की इच्छा का अनादर कर चले गये थे, परन्तु उस स्थिति में उसके भाई वासुकि ने उसकी हर सुविधा का ध्यान रखा तथा रक्षा किया था ।[३]

माता के प्रति पुत्र का उत्तरदायित्व

पुत्र का यह कर्तव्य होता था कि वह माता की हर प्रकार से रक्षा करे, उसकी आज्ञाओं का पालन करे और सम्मान तथा आदर प्रदान करे । कैकेयी की आज्ञा पालन करते हुए राम ने चौदह वर्ष वन में व्यतीत किये ।[४] राम कैकेयी से कहते हैं - " मैं केवल तुम्हारे कहने से अपने भाई भरत के लिये इस राज्य को, सीता को, प्यारे प्राणों को तथा सारी सम्पत्ति को भी प्रसन्नतापूर्वक स्वयं ही दे सकता हूं ।[५] पुत्र पर माता का पूर्ण अधिकार रहता था ।[६] धर्म को जानने वाले प्रत्येक मनुष्य का यह

१- रामा० उ० का० ६६।२, ५-१०

२- महा० आश्वमे० प० ६८।३-७

३- महा० आदि प० ४८।१५

४- रामा० अयो० का० १६।२३

५- वही अयो० का० १६।७

६- वही अयो० का० १६।२४ ।

कर्तव्य होता था कि वह अपनी माता की सेवा कर उत्तम धर्म का आचरण करे।[1] पुत्र के लिये जिस प्रकार पिता पूजनीय होते थे, उसी प्रकार माता भी।[2]

पुत्र यदि माता को कष्ट पहुंचाते थे तो उनको अच्छी गति नहीं प्राप्त होती थी। कौशल्या राम से कहती हैं - " यदि तुम मुझे शोक में डूबी हुई छोड़कर वन को चले जाओगे तो मैं उपवास करके प्राण त्याग दूंगी, ऐसा होने पर तुम संसार प्रसिद्ध वह नरकतुल्य कष्ट पाओगे, जो ब्रह्महत्या के समान है, और जिसे सरिताओं के स्वामी समुद्र ने अपने अधर्म के फलरूप से प्राप्त किया।[3] सदाचारी पुत्र सदैव इस बात का प्रयास करते थे कि उनके द्वारा ऐसा कोई कार्य न हो, जिससे उसकी माता को कष्ट हो।[4] भीष्म युधिष्ठिर को यह परामर्श देते हैं कि - " भली-भांति पूजित हुए माता-पिता जिस कार्य के लिये आज्ञा दें, वह धर्म के अनुकूल हो या विरुद्ध उसका पालन करना चाहिये।[5] माता पिता और गुरुजनों की सेवा से मनुष्य यश

- -

१- रामा० अयो० का० २१।२३। वैदिक काल में भी यह मान्यता थी कि बाल्यावस्था में पुत्र के पालन-पोषण का दायित्व माता-पिता पर होता था उसी प्रकार वृद्धावस्था में पुत्र पर माता-पिता के पालन का दायित्व होता था। गो० ब्रा० १।४।१७, अथर्व० १।३१।४, द्रष्टव्य - भास्करानन्द लोहनी - " वैदिक साहित्य और संस्कृति " पृ०६४

२- रामा० अयो० का० २१।२५

३- रामा० अयो० का० २१।२७-२८

४- वही अयो० का० २२।८

५- महा० शा०प० १०८।४-५, अनु०प० १०४।१४४, वैदिक काल में ईश्वर की उपासना मां देवी के रूप में की गयी, तथा अनेक स्त्रीलिङ्ग देवियों का

और श्रेष्ठ लोक प्राप्त करता है।[१] इन तीनों की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये, इनको भोजन कराने के पहले स्वयं भोजन न करे, इन पर कोई दोषारोपण न करे, और सदा इनकी सेवा में संलग्न रहे, यही सबसे उत्तम पुण्यकर्म है।[२] माता पिता अपराध करने पर भी अवध्य हैं।[३] माता को प्रसन्न करने का तात्पर्य समूची पृथ्वी की पूजा है।[४] गुरु के समान ही माता-पिता भी माननीय हैं।[५] इनका किसी भी प्रकार अपमान नहीं करना चाहिये, उनके द्वारा किये हुए किसी कार्य की निन्दा नहीं करना चाहिए, उनके सत्कार से देवताओं का सत्कार हो जाता है।[६] माता-पिता की आज्ञा के अधीन रहना पुत्र का धर्म है।[७] प्राचीनकाल में दीक्षान्त समारोह में जब आचार्य अन्तेवासी को उपदेश देता था कि माता-पिता और आचार्य को देवता के समान मानो, उसमें भी प्रथम माता को ही रखा गया है।[८] पुत्रों से यह आशा की जाती थी कि वे अपनी माताओं के प्रति उत्तम व्यवहार करें[९] तथा उसका भरण-पोषण करें, जो ऐसा नहीं करता था, उसे पापात्मा

- -

१- महा० शा० प० १०८।३

२- वही शा० प० १०८।१०-११

३- महा० शा० प० १०८। २०-२१

४- वही शा० प० १०८।२५, अनु० प० ७।२५

५- वही शा० प० १०८।२८

६- वही शा० प० १०८।२६

७- रामा० अयो० का० ३०।३२

८- तै० उप० १।११।२, " मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्य देवो भव "।

९- महा० उद्योग प० ३०।३२-३२ ।

समझा जाता था , और उसे भ्रूणहत्या से बढ़कर पाप लगता है।[१] अनेक प्रकार के शूरवीरों की गणना में मातृसेवा शूर को भी रखा गया है , जिससे मनुष्य उत्तम लोकों को प्राप्त करता है।[२] गुरुजनों की सेवा से अनुपम एवं महान धर्म की प्राप्ति होती है।[३] नारद कहते हैं - मैं उनको सम्माननीय मानता हूं जो अपने माता-पिता और कुटुम्बीजनों का भरण-पोषण करने में समर्थ हों।[४] प्रात:काल माता-पिता को प्रणाम करने से दीर्घायु प्राप्त होती है।[५] बालक माता-पिता को नित्य प्रणाम करते थे।[६]

माता के आदर का परिणाम

ऐसा विश्वास किया जाता था कि माता-पिता की आज्ञापालन तथा सेवा का महान फल प्राप्त होता है। माता-पिता की सेवा से व्यक्ति को तीनों लोकों की प्राप्ति हो जाती थी , तथा महान यश और महान फल देने वाले धर्म की प्राप्ति होती है।[७] जो माता पिता की सेवा करता है , उनके गुणों में दोषदृष्टि नहीं देखता उसे स्वर्गलोक में सर्व

- -

१- महा० शा० प० १०८।३१ , रामा० अयो० का० ३१।१४-१५
२- वही अनु० प० ७५।२६-२७
३- रामा० अयो० का० ३१।१६
४- महा० अनु० प० ३१।१२
५- वही अनु० प० १०४।४३
६- वही आदि प० १५४।३७ , रामा० युद्ध का० १२७।४२
७- महा० शा० प० १०८।३ , ८-१० , १२६। ६-१०

सम्मानित स्थान प्राप्त होता है, मन को वश में रखने वाला वह पुरुष गुरुशुश्रूषा के प्रभाव से कभी नरक का दर्शन नहीं करता।[१] दान से बढ़कर कोई दुष्कर धर्म नहीं है, माता से बड़ा कोई आश्रय नहीं है।[२] माता पिता की सेवा करने वाले स्वर्ग लोक में जाते हैं।[३] माता-पिता और गुरु प्रत्यक्ष देवता है, अतः अप्रत्यक्ष देवता की अपेक्षा इन्हीं की सेवा करनी चाहिये।[४] राम कहते हैं - " जिनकी आराधना करने पर धर्म, अर्थ और काम तीनों प्राप्त होते हैं तथा तीनों लोकों की आराधना सम्पन्न हो जाती है, उन माता पिता और गुरु के समान दूसरा कोई पवित्र देवता इस भूतल पर नहीं है, इसलिये भूतल के निवासी इन तीनों देवताओं की आराधना करते हैं।[५] माता-पिता के प्रति किये गये शुभ कर्मों का फल सौगुना तथा हजार गुना हो जाता है।[६] माता जिस उद्देश्य से पुत्र को उत्पन्न करती थी वह मृत्यु के बाद उसे पिण्ड प्रदान करेगा, उसको पूर्ण करना भी पुत्र का महत्वपूर्ण कर्तव्य होता था। युधिष्ठिर ने अपनी माता का अन्तिम संस्कार किया था।[७] माता की मन-वाणी और क्रिया द्वारा सेवा भगवान विष्णु की

- -

१- महा० अनु० प० ७५। ४०-४१

२- वही शा० प० १६१।६

३- वही अनु० प० २३।६३

४- रामा० अयो० का० ३०।३३

५- वही अयो० का० ३०।३४, ३७

६- महा० शा० प० १०८।१५

७- वही आश्रमवा० ३६।६, १३, १७-१८ ।

सेवा के समान माना जाता था।[१] माता पिता की सेवा करने वाले सभी दुखों से पार हो जाते हैं।[२] माता पिता की सेवा से सत्यवान ने स्वर्गलोक की प्राप्ति की थी।[३] और अन्धे माता-पिता की सेवा करने वाले कायव्य ने उत्तम सिद्धि प्राप्त की थी।[४] माता पिता की सेवा करने वाले व्याध को धर्म अपने आप प्रत्यक्ष हो गया था।[५] जो पुत्र अपनी माता-पिता की आज्ञा को सफल करता है, वही पुत्र धर्मज्ञ है, जिसके माता-पिता सदैव उससे संतुष्ट रहते हैं, उसे इहलोक और परलोक में भी अक्षय कीर्ति और शाश्वत धर्म की प्राप्ति होती है।[६]

माता का सम्मान

महाकाव्य में माता पिता की आज्ञा पालन तथा सेवाशुश्रुषा के सम्बन्ध में उपर्युक्त जो उद्धरण प्राप्त होते हैं, महाकाव्य के नायकों ने इसको चरितार्थ कर दिखाया है। पाण्डवों ने अपनी माता की प्रत्येक आज्ञा का पालन किया था। स्वयंवर सभा से जीतकर लायी गयी द्रौपदी के सम्बन्ध में भिक्षा समझकर दिये गये कुन्ती के आदेश को कि " सब लोग बांट लो " अनुचित होते हुए भी पाण्डवों ने पालन किया।[७] युधिष्ठिर

१- महा० शा० प० ३४५।२६-२७

२- वही शा० प० ११०।६

३- रामा० अयो० का० ६४।४७, ४८

४- महा० शा० प० १३५। ६, २४

५- वही वन० प० २०६।४४-४५, २०७।२१

६- वही वन प० २०५। २१-२२

७- वही आदि प० १९०।२ ।

युधिष्ठिर माता की आज्ञापालन के औचित्य को बताते हुए कहते हैं - " गुरुजनों की आज्ञा को धर्मसंगत बताया गया है और समस्त गुरुओं में माता परम गुरु मानी गयी है।[१] इसलिये हम माता की आज्ञा को परम धर्म मानते हैं।[२] इसी प्रकार आर्त ब्राह्मण की रक्षा के उद्देश्य से दिये गये माता के आदेश को भीमसेन ने शिरोधार्य किया था।[३] माता की आज्ञा पालन करते हुए ही भीमसेन ने हिडिम्बा राक्षसी से विवाह किया था।[४] युद्धसमाप्ति पर धृतराष्ट्र तथा गान्धारी के साथ माता कुन्ती के वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने पर पाण्डव शोक से व्याकुल थे, उनका मन राजकाज में नहीं लगता था और सदैव माता कुन्ती के बारे में ही सोचते रहते थे।[५] वन में माता कुन्ती के अग्नि में दग्ध हो जाने का समाचार सुनकर पाण्डव धैर्य खो बैठे और अपने बल को धिक्कारते हुए रुदन करने लगे।[६] सहदेव माता कुन्ती को बहुत प्रिय थे, और सहदेव भी कुन्ती को बहुत प्यार करते थे।[७]

पुत्रों के लिये पिता के समान ही माता भी आदरणीय होती थी। कौशल्या राम से कहती हैं - जैसे गौरव के कारण राजा तुम्हारे

- -

१- महा० आदि प० १६५।१६

२- वही आदि प० १६५।१७

३- महा० आदिप० १६०।२०, १६१।१, ४

४- वही आदिप० १५४।१८, पृ० ४६५

५- वही आश्रमवा० २१।१, २२।१-३, ५, ११, १५

६- वही आश्रमवा० ३८।७-२१, ३६।२७-२८, ३७।८, १८ आदिप० १५१।२१-२७

७- महा० आश्रमवा० २४।८-११ ।

पूज्य हैं , उसी प्रकार मैं भी हूं । मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा नहीं देती , अत: तुम्हें यहां से वन को नहीं जाना चाहिए ।[१] अपने घर में नियमपूर्वक रहकर माता की सेवा करने वाले काश्यप उत्तम तपस्या से संयुक्त हो स्वर्गलोक को चले गये थे ।[२] वन जाने के लिये उद्यत लक्ष्मण से राम आग्रह करते हैं कि वह माताओं की सेवा तथा देखभाल के लिये घर पर ही रहें[३] इसी प्रकार का आग्रह राम पिता से भी करते हैं ।[४] माता कौशल्या के सम्बन्ध में चिन्तित राम सुमन्त्र से भरत को यह सन्देश भिजवाते हैं कि - भरत , जिस प्रकार तुम्हारे लिये पिता आदरणीय हैं , उसी प्रकार सभी मातायें समान रूप से आदरणीया हैं और सबके साथ तुम्हें अपनी माता के समान ही बर्ताव करना चाहिये ।[५] राम को यह दुख निरन्तर दग्ध करता रहता था कि माता अपने पुत्र से जिस चीज की अपेक्षा करती है , उसका वे पालन न कर सके ।[६]

यहां एक रोचक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि माता-पिता की आज्ञा में यदि विरोध हो तो किसकी आज्ञा का पालन किया जाय । महाकाव्य का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि पुत्र के लिये प्राय: दोनों

- -

१- रामा० अयो० का० २१।२५

२- वही अयो० का० २१।२४

३- वही अयो० का० ३१।११ , ५३।१८

४- वही अयो० का० ३८।१४-१७

५- वही अयो० का० ५२।३४-३५

६- वही अयो० का० ५३।२०-२३

ही समान आदरणीय तथा सम्माननीय थे । रामायण[१] में माता के मना करने पर राम वन जाते हैं , परन्तु यहां पर हमें यह न भूलना चाहिये कि राम ने माता कैकेयी सहित दशरथ की आज्ञा का पालन किया था ।[२] यहां पर राम का चरित्र इतना महान है कि वे अपनी माता तो क्या सापत्न्य माता के आदेशों का पालन करने के लिये भी कटिबद्ध हैं । महाभारत में बाद के समय में माता को अधिक सम्मान दिया गया ।[३] सभाभवन से बहिर्गमन करने वाला दुर्योधन माता की आज्ञा से पुन: सभा भवन में आता है ।[४] कृष्णा ने शंकर से माता की प्रसन्नता का वर मांगा था ।[५] युधिष्ठिर कृष्ण से अपनी माता के लिये सन्देश भेजते हुए कहते हैं कि - " क्या वह समय कभी आयेगा , जब हम अपनी माता को सुख प्रदान कर सकेंगे ।[६] वन में पाण्डव अपनी माता को सुख सुविधा का विशेष ध्यान रखते थे ।[७]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पुत्र माता को सर्वोच्च देवता मानते थे और यथासम्भव उनकी आज्ञाओं के पालन का प्रयास करते थे ।[८]

१- रामा० अयो० का० २१।२५

२- वही अयो० का० १६।७-८ , २३-२४

३- तै० उप० १।११।२ , महा० अनु० प० १०५। १४-१६ , शा०प० १०८।१७ , मनु० २।१४५

४- महा० उद्योग प० १२६।७-८ , १७

५- वही अनु० प० १५।६

६- वही उद्योग प० ८३।४३

७- वही आदि प० १५१।२१

८- महा० वन० प० २६३।३५ ।

माता के अनादर का दुष्परिणाम -

माता की आज्ञापालन तथा सेवा से जहां पुत्रों को उत्तम लोकों की प्राप्ति होती थी, वहीं जो अपने इस कर्त्तव्य का सम्यक् पालन नहीं करते थे, उनको इहलौकिक तथा पारलौकिक सुखों को प्राप्ति नहीं होती थी। दैत्य और दानवों द्वारा माता-पिता तथा गुरुजनों का अभिनन्दन न करने के कारण श्रीदेवी उनको छोड़कर देवताओं के पास चली जाती हैं।[१] रामवनगमन के सन्दर्भ में भरत शपथ करते हुए कहते हैं - " जिसकी सम्मति से राम वन गये हों, उसे माता पिता आदि गुरुजनों की सेवा का फल न प्राप्त हो। वह सत्पुरुषों के लोक से, सत्पुरुषों की कीर्ति से तथा सत्पुरुषों द्वारा सेवित कर्म से भ्रष्ट हो जाय और माता की सेवा छोड़कर अनर्थ के पथ में लिप्त रहे।[२] जो अकारण ही माता पिता तथा गुरु का परित्याग कर देता है, वह पतित हो जाता है।[३] ऐसे व्यक्ति को केवल अन्न और वस्त्र दे तथा पैतृक सम्पत्ति से वंचित कर दे।[४] जो माता पिता का अनादर करता है, उसके सम्पूर्ण शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं और उसे न इस लोक में सुख प्राप्त होता है और न परलोक में।[५] लोक तथा परलोक

१- महा० शा० प० २२८।५६

२- रामा० अयो० का० ७५।४६-४८

३- महा० शा० प० १६५।६२, वि०ध०सू० ३७।६।७ में कहा गया है कि तपस्या और यज्ञ की अपेक्षा माता के त्याग में कम पाप है, निश्चय ही यह विचार आपस्तम्ब और महाकाव्य के बहुत बाद का है।

४- महा० शा० प० १६५।६२

५- वही शा० प० १०८। १२-१३ ।

में कहीं भी उसका यश प्रकाशित नहीं होता , परलोक में जो अन्य कल्याणमय सुख की प्राप्ति बतायी गयी है , वह भी उसे सुलभ नहीं होती ।[१] पिता और माता के प्रति जो मन , वाणी और क्रिया द्वारा द्रोह करते हैं , उन्हें भ्रूणहत्या से भी महान पाप लगता है , संसार में उससे बढ़कर दूसरा कोई पापाचारी नहीं है ।[२] इसी प्रकार माता पिता का भरण-पोषण न करने वाला औरस पुत्र भी भ्रूणहत्या के पाप का भागी होता है , और उसके समान कोई पापात्मा नहीं है ।[३] माता-पिता का अनादर करने वाला अधर्मपरायण व्यक्ति यमराज के लोकों में जाकर महान दुख भोगकर पशु पक्षियों की निम्न योनियों में जन्म लेता है ।[४] पिता और माता की हत्या करने वाला अनिच्छुक लोकों को प्राप्त करता है ।[५] माता द्वारा अप्रसन्न होकर शाप देने पर उससे छुटकारा बहुत ही कठिन होता था ।[६] भीष्म कहते हैं - " जो माता पिता तथा गुरु की आज्ञा के अधीन नहीं रहते , वे कृमि , कीट , पिपीलिका और वृक्ष आदि की योनियों में जन्म लेते हैं , मनुष्य योनि में फिर जन्म होना उनके लिये दुर्लभ हो जाता है ।[७] माता की रक्षा न करने वाला पुत्र निन्दा का पात्र समझा जाता था ।[८]

१- महा० शा० प० १०८।१४

२- वही शा० प० १०८।३०

३- वही शा० प० १०८।३१

४- वही अनु० प० १११।४० , ५८-६३ , रामा० अयो० का० १५।२१

५- वही द्रोण प० ७३।२५

६- महा० आदि प० २२।१-२ , ३७।३-४

७- वही अनु० प० १२ अध्याय , पृ० ५४६२

८- वही वन प० २९३।३५ ।

इस प्रकार महाकाव्य में माता की आज्ञा उल्लंघन के अनेक दोष दिखाये गये हैं, परन्तु समाज के सभी लोग इस आदर्श स्थिति का पालन नहीं करते थे। महाकाव्य में जहां पाण्डवों ने अपनी माता की प्रत्येक आज्ञा का पालन किया था, वहीं रावण[१] तथा दुर्योधन[२] ऐसे पुत्र थे जिन्होंने अपनी माताओं की आज्ञा का पालन नहीं किया। जिसका दुष्परिणाम उन्हें अपने जीवन काल में ही भोगना पड़ा। इस सम्बन्ध में राजा के उत्तरदायित्वों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि यदि राजा अपने कर्तव्यों का पालन न करे तो दुराचारी मनुष्य माता पिता आदि गुरुजनों को क्लेश पहुंचावें अथवा मार डालें।[३]

माता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का कर्तव्य माना जाता था, परन्तु यदि माता अपने उत्तरदायित्वों तथा कर्तव्यों का निर्वाह नहीं करती थी, तो पुत्र अपने कर्तव्य बोध से प्रेरित होकर माताओं से प्रतिवाद करते थे और उनकी अनुचित आज्ञा का पालन नहीं करते थे। भरत ने अपनी माता के द्वारा इक्ष्वाकु कुल की परम्परा को नष्ट करने के कारण अनेक कटु बातें कहीं थी और राज्य प्राप्ति की उसकी इच्छा को पूरा नहीं किया।[४] तब राम ने माता के प्रति पुत्र के कर्तव्यों को याद दिलाते

१- रामा० युद्ध का० ३४।२० , २३
२- महा० उद्योग प० १२६-१३० अध्याय
३- वही शा० प० ६८।१८ ।
४- रामा० अयो० का० ७४ अध्याय।

हुए भरत से कहा था कि - " भरत । मैं तुम्हें अपनी और सीता की शपथ दिलाकर कहता हूं कि तुम माता कैकेयी की रक्षा करना , तथा उनके प्रति क्रोध न करना ।[१] भीष्म कहते हैं - " जो माता-पिता के लिये भी कभी झूठ नहीं बोलता है , वह विमान में विराजमान परम शक्तिमान महादेव जी के पास जाता और हजार अश्वमेध यज्ञों का सर्वोत्तम फल पाता है ।[२] कुन्ती द्वारा कर्ण को यह बताने पर कि मैं तुम्हारी जननी हूं और इसलिये मेरी आज्ञा का पालन करना तुम्हारा धर्म है[३] । तुम पाण्डव पक्ष में मिल जाओ , कर्ण , कुन्ती की इस बात को स्वीकार नहीं करता[४] और कुन्ती द्वारा माता के कर्तव्यों को पूरा न करने के कारण उस पर आक्षेप करता है ।[५] परन्तु दयाकर इतना तो स्वीकार कर लेता है कि मैं अर्जुन के अतिरिक्त और किसी पाण्डव को नहीं मारूंगा ।[६] ब्राह्मण के रक्षार्थ भीम को भेजने पर कुन्ती की इस बात का युधिष्ठिर प्रतिवाद करते हैं - " दूसरों के लिये अपने पुत्र का त्याग उचित नहीं ।[७] सामान्य रूप से माना जाता था कि " जो छः लोग प्राय: सदा अपने पूर्व उपकारी का सम्मान नहीं करते हैं , उसमें यह उल्लेख किया गया है कि विवाहित बेटे माता का ।[८] इस प्रकार स्पष्ट है कि समाज में कुछ लोग ऐसे थे जो अपनी माता की आज्ञा का पालन नहीं करते थे ।

१- रामा० अयो० का० ११२।२७

२- महा० अनु० प० १०७।५०

३- वही उद्योग प० १४५।७ , १४६।२

४- महा० उद्योग प० १४६। ४ , १६

५- वही उद्योग प० १४६। ५-८

६- वही उद्योग प० १४६। २०-२१

७- वही आदि प० १६१। ५-११

परशुराम द्वारा माता का वध -

पूरे साहित्य में हमें अपवाद स्वरूप मात्र परशुराम का ही एक उदाहरण प्राप्त होता है , जिन्होंने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए माता का वध किया था ।[१] वहीं परशुराम के अन्य चार भाइयों ने माता के वध की पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया था ।[२] बाद में परशुराम ने भी प्रसन्न हुए अपने पिता से यह वर मांगा था कि मेरी माता जीवित हो जायें और उन्हें मेरे द्वारा वध का स्मरण न हो[३] , यह स्पष्ट करता है कि वास्तव में यह कथा पिता की सर्वोच्चता को सिद्ध करने के लिये हैं , क्योंकि मातृवध से होने वाले अपराध के प्रति परशुराम चिन्तित थे । जहाँ परशुराम ने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए अपनी माता का वध किया था , वहीं चिरकारी ने अपने पिता द्वारा दी गयी मातृवध की आज्ञा के औचित्य तथा अनौचित्य पर विचार करते हुए माता का वध नहीं किया था ।[४] वह पितृसत्तात्मक परिवार में पिताओं द्वारा माताओं पर किये जाने वाले अत्याचारों की भर्त्सना करता है और अन्तत: माता को सर्वोच्च मानकर पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता । वह कहता है -

" मनीषी पुरुष यह जानते हैं कि पिता एक स्थान पर स्थित सम्पूर्ण देवताओं का समूह है , परन्तु माता के भीतर उसके स्नेहवश समस्त मनुष्यों

१- महा० वन० प० ११६।१४

२- वही वन० प० ११६।११

३- महा० वन प० ११६।१७

४- वही शा० प० २६६ अध्याय ।

और देवताओं का समुदाय स्थित रहता है , अतः माता का गौरव पिता से भी बढ़कर है।[१] इस प्रकार स्पष्ट है कि बाद के काल में माता को ही सर्वोच्च माना गया ।

सापत्न्य माता के प्रति व्यवहार -

महाकाव्य में सपत्नियों में पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। लेकिन पुत्र अपनी सापत्न्य माताओं के साथ अपनी माता के समान ही व्यवहार करते थे । इस सम्बन्ध में राम का व्यवहार बहुत ही सराहनीय था । राम अपनी माताओं से बढ़कर अच्छा व्यवहार अन्य माताओं के साथ करते थे[२] और समय-समय पर माताओं के आवश्यक कार्य पूरा करते थे।[३] दशरथ कैकेयी से कहते हैं - " श्रीरामचन्द्र जी तो तेरे साथ सदा सगीमाता का सा बर्ताव करते थे , फिर तू क्यों उनका अनिष्ट करने पर उतारू है।[४] रामवनगमन के समाचार को सुनकर दुखी अन्य मातायें कहती हैं - " जो पिता के आज्ञा न देने पर भी समस्त अन्तःपुर के आवश्यक कार्यों में स्वयं संलग्न रहते थे , जो हम लोगों के रक्षक और सहारे थे , राम जन्म से ही अपनी माता कौशल्या के प्रति सदा जैसा बर्ताव करते थे , वैसा ही हमारे साथ भी करते थे।[५] राम कैकेयी के प्रति किसी प्रकार की दोष दृष्टि नहीं रखते और प्रसन्न हुए दशरथ से

- -

१- महा० शा० प० २६६।४३

२- रामा० अयो० का० ८।१८

३- वही बालका० ७७।२२

४- वही अयो० का० १२।८ , २४-२७

५- वही अयो० का० २०। २-३ , ४१। २-४ ।

यह प्रार्थना करते हैं कि " वे कैकेयी सहित माता के त्याग के वचन को वापस लें लें ।[१] घटोत्कच ने अपनी सापत्न्य माता द्रौपदी की सेवा की थी ।[२] कुछ अपवादों को छोड़कर मातायें भी सौतेले पुत्रों के साथ अच्छा व्यवहार करती थीं । कुन्ती को माद्री पुत्र सहदेव सबसे प्रिय था ।[३] सुभद्रा ने द्रौपदी के पुत्रों का उसी प्रकार पालन-पोषण किया था , जैसे अपने पुत्र का ।[४]

माता के कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व

भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के अन्तर्गत मातृशक्ति को पितृ शक्ति से भी महान माना गया है और उसे देवताओं की श्रेणी में रखा गया है । माता को यह महत्व अनायास ही नहीं वरन् अपने उन महत्वपूर्ण कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों के कारण प्राप्त हुआ है , जो कि उसके द्वारा सम्पादित होते थे ।

जनन-

माता का सर्वप्रथम कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व था नूतन प्राणी की सृष्टि द्वारा जाति के नैरन्तर्य को बनाये रखना । यह शक्ति स्त्री जाति में ही निहित होने के कारण उसका विशेष महत्व है । शकुन्तला दुष्यन्त से

- -

१- रामा० युद्ध का० ११६। २५-२६

२- महा० वन प० १४५।८ , भीष्म प० ६१।२७

३- वही आश्रमवा० २४।८-६ , ३८।१८

४- महा० आदि प० १२५। २७-२८ , वनप० २३५।१०-१२ ।

कहती है - " स्त्रियां पति के आत्मा के जन्म लेने का सनातन पुण्य क्षेत्र हैं, ऋषियों में भी क्या शक्ति है कि बिना स्त्री के सन्तान उत्पन्न कर सकें।[1] यही कारण है कि विवाह संस्कार के समय ईश्वर से यह प्रार्थना की जाती है कि " दम्पति को पुत्र और पौत्र हो।[2] मातृशक्ति के इस महान कार्य की ओर संकेत करते हुए कहा गया है कि - " स्त्रियां अपने उदर में दस महीने तक जो गर्भ धारण करती हैं और यथासमय उसको जन्म देती हैं, इससे अद्भुत कार्य और कौन होगा।[3] अपने को भारी संकट में डालकर और अतुल वेदना को सहकर नारियां बड़े कष्ट से सन्तान उत्पन्न करती हैं, फिर बड़े स्नेह से उसका पालन भी करती हैं।[4] यही कारण है कि महाकाव्य कालीन समाज में मातृशक्ति को पितृ शक्ति से श्रेष्ठ मानते हुए कहा गया है - " कुछ लोग माताओं को गौरव की दृष्टि से बड़ी मानते हैं, दूसरे लोग पिता को महत्त्व देते हैं, लेकिन माता जो अपनी सन्तानों को पालपोसकर बड़ा बनाती है वह उसका कठिन कार्य है।[5] स्पष्ट है कि माता का कार्य न केवल बच्चे को जन्म देना है वरन् उसका पालन पोषण कर योग्य नागरिक बनाना भी उसका महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व था। बालक के व्यक्तित्व के विकास में पिता की अपेक्षा माता का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इस सम्बन्ध

- -

१- महा० आदि प० ७४।५२

२- ऋ० १०।८५।४२, वैदिक पिता दस पुत्रों की कामना करता है - ऋ० १२।१६।२४, ७।४।१०, ७।२४।५, ८।१।१३, १०।८५।४४, १०।८५।४५ दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेका दशं कृधि ।।

३- महा० वन प० २०५। १०-११

४- वही वन० प० २०५।११-१२

५- वही वन० प० २०५।१७ ।

में एक कहावत है कि पुत्र अपने पिता की तरह और कन्यायें अपनी माता की तरह होती हैं।[१] यह भी कहा गया है कि - " मनुष्यों का चरित्र माता के ही अनुकरण पर निर्मित होता है , पिता के अनुकरण पर नहीं।[२] शारीरिक दृष्टि से भी प्रजनन में माता ही प्रमुख योग देती है , पिता तो जीव के जन्म में निमित्त मात्र होता है।[३] कुन्ती द्रौपदी को वीर पुत्रों की जननी होने का आशीर्वाद देती है।[४] उसके द्वारा सम्पादित किये जाने वाले महत्वपूर्ण कार्यों के कारण उसे धात्री , जननी , अम्बा , वीरसू और शुभ्रू आदि नामों से सम्बोधित किया जाता था।[५] माता अपने प्रत्येक पुत्र का चाहे वह समर्थ हो या असमर्थ , दुर्बल हो या हृष्ट पुष्ट समान रूप से उसका पालन पोषण करती थी।[६] हमारे यहां प्राचीनकाल से ही माता की तुलना पृथ्वी से की गयी है।[७] पृथ्वी में जिस प्रकार धैर्य , क्षमाशीलता तथा दुर्वह भार को वहन करने की शक्ति है , वही माता में भी है। माता भी पृथ्वी के समान कष्ट

- -

१- रामा० अयो० का० ३५।२८ , इस सम्बन्ध में सुमंत्र द्वारा दिया गया कैकेयी का दृष्टान्त उल्लेखनीय है , जिसने कि जाने अनजाने अपने दो वरों को मांगकर अपनी माता की ही प्रवृत्ति का अनुसरण किया था। रामा० अयो० का० ३५।२७-२८।

२- रामा० अयो० का० १६।३४ , एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० १७६-१७७।

३- रामा० अयो० का० १०८।११

४- महा० आदि प० १६८।७ में "जीवसू" ," वीरसू" पहले आया है जब कि आदि प० १६८।१२ में कुन्ती के आशीर्वाद में "जातपुत्रा "अन्त में आया है , स्त्री के पुत्रवती होने पर उसका सम्मान व महत्व और बढ़ जाता है। शा० प० २६६।३२ ," वीरसूत्वेन वीरसूः "। रामा० उ०का० १२८।१०६ "जातपुत्रा"

५- महा० शा०प० २६६।३२-३३ अंगानां वर्धनादम्बा वीरसूत्वेन वीरसूः
शिशोः शुश्रूषणाच्छुश्रूमाता देहमनन्तरम् ।।

सहनकर जिस धैर्य व स्नेह से अपने बच्चों का पालन पोषण करती है , वह अवर्णनीय है । जैसे माता अपने बच्चे को दूध पिलाकर पालती है , उसी प्रकार पृथ्वी सब प्रकार के रस देकर भूमिदाता पर अनुग्रह करती है । पृथ्वी की पवित्रता की उपमा माता से दी गयी है।[१] हिन्दुओं के लिये मातृ शब्द स्नेह और ममत्व का पर्याय है , यही कारण है कि हमारे यहां गाय में भी पवित्रता सुख , समृद्धि और धन का निवास स्थान माना गया है।[२] वाल्मीकि ने भी पुत्र के प्रति मातृस्नेह की तुलना गाय का अपने वत्स के प्रति होने वाले स्नेह से किया है । उनकी दृष्टि में स्नेह का यही सच्चा आदर्श है।[३] रथ में बैठकर शीघ्रता से जाते हुए राम धर्म के बन्धन में बंधे होने के कारण रस्सी से बंधे हुए बछड़े की भांति अपनी मां को न देख सके।[४]

रक्षण -

न केवल जनन व पालनपोषण ही माता का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था , वरन् आगत विपत्तियों से उसकी रक्षा करना भी माता का महान कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व था । यद्यपि पिता के द्वारा भी बच्चे को सुरक्षा प्रदान की जाती है , परन्तु जिस स्नेह व तन्मयता से मां अपने बच्चे की देखभाल करती है , वह अद्वितीय होता है । राम की वनवास की आज्ञा सुनकर मूर्च्छित कौशल्या

- -

१- महा० अनु० प० ६२।११,२६ यथा जनित्री स्वं पुत्रं क्षीरेण भरते सदा ।
अनुगृह्णाति दातारं तथा सर्वरसैर्मही ।।

" ग्रेट वीमेन आफ इण्डिया " अध्याय ३ भारतीय आत्मा के अन्तर्गत नारीत्व के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिये उसे मातृभूमि " से सम्बोधित किया गया है । माता पृथ्वी से भी गुरुतर है - महा० वन०प० ३१३।६० माता गुरुतरा भूमेः ।।

२- महा० अनु० प० ८२।२४-२५ , ७६ से ८३ अध्याय में इसका विस्तृत वर्णन है ।

३- रामा० अयो० का० २०।५४, २४।६ ,२०।५३ , पुत्र से विरहित कौशल्या की तुलना वत्सविहीन गौसे की गयी है । रामा० अयो० का० ४१।७

४- रामा० अयो० का० ४०।४० ।

की उपमा वाल्मीकि ने वन में फरसे से काटी हुई शालवृक्ष की शाखा से दी है।[१] चिरकारी कहता है " संसार के समस्त आर्तप्राणियों को सुख और सान्त्वना प्रदान करने वाली माता ही है, जब तक माता जीवित है, मनुष्य अपने को सनाथ समझता है और उसके न रहने पर वह अनाथ हो जाता है।[२] माता के समान दूसरी कोई छाया नहीं है, माता के तुल्य दूसरा कोई सहारा नहीं है, माता के सदृश अन्य कोई रक्षक नहीं है तथा बच्चे के लिये माँ के समान दूसरी कोई प्रिय वस्तु नहीं है।[३] माता के रहते मनुष्य को कभी चिन्ता नहीं होती, बुढ़ापा उसे अपनी ओर नहीं खींचता है, वह निर्धन होते हुए सधन होता है, पुत्र और पौत्रों से सम्पन्न होने पर भी मनुष्य सौ वर्ष का होने पर अपनी माता के समक्ष बच्चे के समान ही होता है।[४] पिता का अपनी सन्तान पर मात्र प्रभुत्व होता है, अर्थात वह बच्चे के संरक्षण का कार्य प्रभुत्व की भावना से करता है, जब कि माता स्नेह और प्रेम से करती है।[५] उत्तम पुत्रों की प्राप्ति के लिये मातायें यज्ञ, उपवास तथा अनेक प्रकार के मङ्गल कृत्य करती थीं।[६] माता यद्यपि अपने सभी पुत्रों के प्रति समान भाव ही रखती है, परन्तु उसका जो बालक दीनहीन या कष्ट से पीड़ित होता है, उसके प्रति वह और अधिक करुणायुक्त हो जाती है।[७]

- -

१- रामा० अयो० का० २०।३२

२- महा० शा० प० २६६।२६ मातृलाभे सनाथत्वमनाथत्वं विपर्यये।

३- महा० शा० प० २६६।३१ नास्तिमातृसमाच्छाया नास्ति मातृसमागतिः।
नास्ति मातृसमं त्राणं नास्ति मातृसमा प्रिया ।।

४- महा० शा० प० २६६। २७-२८, २६६।३०

५- वही शा० प० २६६।३५

६- वही शा० प० ७।१४

७- वही वनप० ६।१५-१६, रामा० अयो० का० ७४।२२ महा० शा० प० २६६।
२८-२६।

कुन्ती ने प्रत्येक कष्टों से अपने पुत्रों की रक्षा की थी । लाक्षागृह में जलने से बचने के बाद कुन्ती विदुर से कहती है - " जैसे कोयल के पुत्रों का पालन पोषण सदा कौये की माता करती है , उसी प्रकार अनेक प्राणान्तक कष्ट उठाकर भी मैंने आपके पुत्रों की रक्षा की है ।[१] कुन्ती सभी पुत्रों के योगक्षेम के निर्वाह तथा पालन-पोषण में समर्थ थी ।[२] उनकी इस योग्यता पर विश्वास कर माद्री ने अपने पुत्रों को कुन्ती को सौंप दिया था ।[३] बचपन में पिता के प्यार से वंचित पाण्डुपुत्रों का कुन्ती ने सदैव लालन-पालन किया था ।[४] पुत्रों से विरहित वह कृष्ण से कहती है " वैधव्य , धन का नाश तथा कुटुम्बीजनों के साथ बढ़ा हुआ वैर भाव इनसे मुझे उतना शोक नहीं होता , जितना कि पुत्रों का शोक मुझे दग्ध कर रहा है ।[५] अबला होकर भी कुन्ती ने बड़े यत्न से पाण्डवों का पालन-पोषण किया था और दुर्योधन के भय से अपने पुत्रों की उसी प्रकार रक्षा की थी , जिस प्रकार नौका समुद्र में डूबने से बचाती है ।[६] बालक्रीड़ा में रत भीमसेन के न आने पर व्यथित कुन्ती से विदुर ने कहा था - " तुम शेष पुत्रों की रक्षा करो ।[७] " छोटा पुत्र सहदेव कुन्ती को बहुत प्रिय था ।[८] ऋचीक पत्नी भी अपने छोटे पुत्र को यज्ञपशु बनने से रक्षा करती है ।[९]

- -

१- महा० आदिप० २०६।६ , पृ० ५८६

२- वही आदि प० १२४।१८ , पृ० ३७३

३- वही आदिप० १२४।३०

४- वही उद्योगप० ६०।८

५- वही उद्योगप० ६०।६६

६- वही उद्योगप० ८३।३७-४०

७- वही आदिप० १२८। १७ ,११

८- वही सभाप० ७६।२८-२६ , २१ , आश्रमवासिक १६।१०

६- रामा० बालका० ६१। १७-१६ ।

आचार्य द्रोण द्वारा शस्त्र की शिक्षा प्राप्त करने के बाद जब अर्जुन परीक्षार्थ अपना शस्त्र कौशल दिखाने के लिये रङ्गभूमि में उतरे , उस समय जनसमूह द्वारा उनके लिये अति प्रशंसित वाक्य सुनकर स्नेह के कारण कुन्ती के स्तनों से दूध और नेत्रों से स्नेह के आंसू बहने लगे , उस दुग्धमिश्रित आंसुओं से कुन्तीदेवी का वक्षस्थल भीग गया ।[१] मातायें प्राय: प्रेम का प्रदर्शन बच्चों का मस्तक सूंघकर करती थी ।[२] मस्तक का सूंघना स्नेह की पराकाष्ठा समझा जाता था ।[३] माता को पुत्र से बढ़कर संसार की अन्य कोई वस्तु प्रिय नहीं होती थी ।[४] भङ्गास्वन की कथा से भी स्पष्ट है कि स्त्रियों को अपने पुत्र पिताओं की अपेक्षा अधिक प्रिय होते हैं । इसका कारण यह है कि स्त्री का अपने पुत्रों पर अधिक स्नेह होता है , वैसा स्नेह पुरुष का नहीं होता है ।[५]

स्त्रियां न केवल अपने औरस पुत्रों के प्रति वरन् कानीन तथा त्यागे हुए पुत्रों के प्रति भी अपार स्नेह रखती थी । सत्यवती व्यास से तथा कुन्ती कर्ण से स्नेह रखती थी । कुन्ती ने लोकापवाद के डर से ही कर्ण को जल में प्रवाहित किया था ।[६] रङ्गभूमि में कर्ण और अर्जुन को एक दूसरे से द्वन्द्व युद्ध के लिये उद्यत देख , दोनों अपने ही पुत्र हैं , ऐसा समझकर कुन्ती व्यग्र हो उठी थी ।[७] दिव्य लक्षणों से लक्षित अपने पुत्र कर्ण को देखकर कुन्ती को बड़ी

- -

१- महा० आदिप० १३४।१२-१३

२- रामा० अयो०का० ७२।४ , ७५।६-१० , ६३ , २०।२१ आश्रमवासिक २४।६-१०

३- रामा० उ० का० ७१।१२

४- वही अयो० का० १७।१५

५- महा० अनु० प० १२।४५-७४

६- वही आदिप० १०५।२६-२७ , १३६।२७

७- वही आदि प० १३५। २७ ।

प्रसन्नता हुई थी।[१] गंगा अपने पुत्र भीष्म से अवर्णनीय प्रेम करती थीं। पुत्र स्नेह से प्रेरित होकर उन्होंने भीष्म को परशुराम के साथ युद्ध करने से विरत करना चाहा था।[२]

पुत्री के प्रति माता का उत्तरदायित्व -

महाकाव्य में पुत्री के प्रति माता के उत्तरदायित्वों का बहुत कम वर्णन आया है, परन्तु इस सम्बन्ध में बकवधपर्व में ब्राह्मण को कथा का वर्णन आया है, उससे इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ब्राह्मणी के द्वारा व्यक्त किये गये विचारों से यह स्पष्ट होता है कि पुत्र के समान ही पुत्री पर भी माता का स्नेह होता था और वह भी पुत्र की भांति ही पालनीय तथा रक्षणीय होती थी।[३] बालिका के भविष्य को लेकर व्यक्त की गयी ब्राह्मणी की चिन्ता इस बात को स्पष्ट करती है कि बालिका के अन्दर उत्तम गुणों का विकास तथा समयानुसार उसे उत्तम व्यक्ति को समर्पित करना माता का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था। पिता के अभाव में ये सारे कार्य माता द्वारा ही सम्पादित किये जाते थे।[४] मातृगृह से पितृगृह जाते हुए सीता, द्रौपदी आदि को माताओं की किसी प्रतिक्रिया का उल्लेख महाकाव्य में नहीं आया है, वहीं वीतरागी महर्षि कण्व का हृदय शकुन्तला को विदा करते समय द्रवित हो उठता है और वे उस समय शकुन्तला को

- -

१- महा० आदिप० १३६। २३

२- वही उद्योगप० १७८। ८६-६३, ६७-६६, आश्रमवासिक ३० अध्याय।

३- महा आदि प० १५७। ८-६

४- वही आदिप० १५७। ११, १४, १६-१८।

समयोचित कर्तव्य की शिक्षा देते हैं ।[१] गान्धारी अपने दामाद की मृत्यु पर कन्या के विधवापन से बहुत ही चिन्तित थी , परन्तु उसने पृथक से अपनी पुत्री के लिये कुछ भी नहीं किया ।[२] दमयन्ती की माता भी नल के विरह में दुखी पुत्री को देखकर अत्यन्त व्याकुल थी और उसने नल की खोज कराने के लिये राजा भीम को प्रेरित कर सेवकों को भेजा था ।[३] और बाद में बिना पिता की जानकारी के उन दोनों मां बेटो ने ब्राह्मण सुदेव को स्वयंवर का समाचार देकर भेजा था ।[४] वही गाधि पत्नी ने अपनी पुत्री से अधिक गुणवान तथा तेजस्वी पुत्र प्राप्त करने की अभिलाषा में उसके साथ स्वार्थपूर्ण व्यवहार किया था ।[५]

पुत्रों के कल्याण के लिये माता द्वारा तपस्या -

पुत्रों के रक्षार्थ मातायें तपस्या करती थीं । दैत्यकुल की कन्या पुलोमा तथा महान असुरवंश की कन्या कालका ने एक हजार दिव्य वर्षों तक अपने पुत्रों के कल्याणार्थ घोर तपस्या किया था ।[६] इसी प्रकार कौशल्या और कुन्ती ने भी अपने पुत्रों के रक्षार्थ उपवास , व्रत , यज्ञ इत्यादि रखकर तपस्या का आचरण किया था ।[७]

१- महा० आदि प० ७४।१२ , पृ० २२०

२- वही स्त्री पर्व २२।१४ , १७।२४-२५ , १८।२

३- वही वनप० ६६। २६-३४

४- वही वन प० ७०। १४-१६

५- वही अनु० प० ४।२३-३५

६- वही वनप० १७३। ७-१२

७- रामा० अयो० का० २०।४८ , २५ अध्याय , उद्योग प० ८३।३७ ।

अत: पुत्रों की मृत्यु पर माता का दुखी होना स्वाभाविक था। उदारहृदया गान्धारी अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर पागल हो उठी थी, इसके लिये उसने कृष्ण को शाप दिया था तथा युधिष्ठिर का अंगूठा उनके देखने मात्र से काला पड़ गया था।[1] यद्यपि क्षत्रिय के लिये युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त करना स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला माना जाता था। इसलिये युद्धक्षेत्र में वीरगति प्राप्त हुए पुत्र माताओं के लिये तथा पत्नियों के लिये पति शोचनीय नहीं होते थे।[2] जहां गान्धारी ने अपने पुत्रों की मृत्यु से दुखी होकर कृष्ण को शाप दिया था वहीं हमें उस साध्वी, क्षमा की प्रतिमूर्ति ब्राह्मणी के दर्शन होते हैं जिसने कि अपने पुत्र की मृत्यु का बदला लेने के लिये व्याध द्वारा प्रेरित किये जाने पर भी उसने आदर्श क्षमा का परिचय दिया।[3] अपवाद स्वरूप कुछ मातायें हैं जिन्होंने क्रोध में आकर अपने बच्चों का वध कर दिया था, उनमें भरत की पत्नियां उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने पति भरत के द्वारा अपने पुत्रों का अभिनन्दन न किये जाने पर उन्हें मार डाला।[4] यद्यपि गंगा के द्वारा भी अपने सात पुत्रों को जल में प्रवाहित कर दिया गया था, परन्तु वह उनके द्वारा वसुओं से की गयी प्रतिज्ञा के अनुसार विशेष उद्देश्य से था।[5] इसी प्रकार अप्सरायें जिनका कि कोई कुलधर्म या जाति धर्म नहीं होता था, बच्चों को जन्म देकर बिना किसी लगाव के उन्हें छोड़कर चली जाती थीं। प्रमद्वरा और शकुन्तला[6] ऐसी ही अप्सराओं द्वारा त्यागी गयी कन्यायें थीं। सन्तान के प्रति अपने

- -

१- महा० स्त्रीप० १४।४१, १५।२१, २६-३०, १५।२२-२३ द्रोणप० ७८।१, आश्वमे० ६६।५ ।

२- महा० द्रोणप० ७७-७८ अध्याय

३- वही अनु० प० १ अ०, शा० प० १५३ अ०

४- वही आदिप० ६४। २०-२१

५- वही आदिप० ६६।१६-२०

६- महा० आदिप० ८।८, ७२।६ ।

कर्तव्यों का निर्वाह न करने वाली ऐसी मातायें अपनी सन्तानों द्वारा ही आलोचना की पात्र होती थी।[१]

शिक्षक तथा उपदेशक के रूप में माता का उत्तरदायित्व -

शिशु को जन्म देने तथा पालनपोषण से ही माता के उत्तरदायित्व की इतिश्री नहीं हो जाती, वरन् उसे योग्य नागरिक बनाना भी उसका महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व होता था। यद्यपि योग्य संतान प्राप्ति की इच्छा पिता के अन्दर भी होती है परन्तु पिता की अपेक्षा माता में यह भावना प्रबल होती है।[२] योग्य संतान की प्राप्ति के लिये मातायें अनवरत प्रयास करती थीं तथा प्रत्येक कीमत पर वह अपनी संतान को प्रसन्न देखना चाहती थी। अत: समय-समय पर वह अपने पुत्रों को कर्तव्य का उपदेश देती थी तथा पथभ्रष्ट हो जाने पर उसे मार्ग में लाने का प्रयास करती थी। इस सम्बन्ध में महाकाव्य में सुमित्रा, कुन्ती। गान्धारी विदुला इत्यादि ने बहुत ही सुन्दर ढंग से अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है। रामायण में अपनी सूझबूझ के द्वारा अगर कोई स्त्री सफल हुई है तो वह है सुमित्रा। सुमित्रा ने अपने बुद्धि कौशल से अपने दोनों पुत्रों को इस प्रकार शिक्षित किया कि वे संसार में अपना नाम अमर कर सके। वह यह अच्छी प्रकार जानती थी कि उसके पुत्र राजा नहीं हो सकते, इसलिये समयानुसार अपने दोनों पुत्रों को एक-एक भाई के साथ लगा दिया, जो कि उसकी सूझबूझ का द्योतक है। वह लक्ष्मण को उपदेश देते हुए कहती हैं - " वत्स। तुम अपने सुहृद श्रीराम के परम अनुरागी हो, इसलिये मैं तुम्हें वनवास के लिये बिदा करती हूं, अपने बड़े भाई के

१- महा० आदिप० ७४।७०

२- वही शा० प० २६६।३४

वन में इधर-उधर जाने पर तुम उनकी सेवा में कभी प्रमाद मत करना , ये संकट में हों या समृद्धि में , ये ही तुम्हारी परमगति हैं ।[१] दान देना , यज्ञ में दीक्षा ग्रहण करना और युद्ध में शरीर त्यागना , यही इस कुल का उचित एवं सनातन आचार है ।[२] तुम श्रीराम को अपना पिता , सीता को ही अपनी माता तथा वन को अयोध्या जानो ।[३] कौन माता ऐसी होगी जो बिना वनवास की आज्ञा के ही सुखपूर्वक अपने बच्चे को वन भेज देगी और ऐसा कर्तव्यपरायणता का उपदेश देगी । लक्ष्मण ने आजीवन अपने माता की इस शिक्षा का पालन किया ।

पितृहीन बालकों के व्यक्तित्व का विकास बड़ा कठिन होता है , परन्तु कुन्ती ने जिस प्रकार पाण्डुपुत्रों का संवर्द्धन किया वह अवर्णनीय है । वह सही अर्थों में एक क्षत्राणी है और अपने पुत्रों को भी वैसा ही बनाना चाहती है । इस सम्बन्ध में कुन्ती द्वारा कृष्ण के माध्यम से पाण्डवों को भेजा गया सन्देश उल्लेखनीय है । वह चाहती है कि युधिष्ठिर अपने क्षत्रियोचित कर्तव्य का पालन करें ।[४] वह पाण्डवों की कायरता को धिक्कारते हुए कहती है - " अगर समय आने पर तुम लोगों ने युद्ध न किया और घृणित कर्म कर डाला तो मैं सदा के लिये तुम्हारा परित्याग कर दूंगी ।[५] वह उन्हें पराक्रम से प्राप्त हुए भोगों का भोग करने का ही परामर्श देती है ।[६] इस सम्बन्ध में

- -

१- रामा० अयो० का० ४०।५-६

२- वही अयो० का० ४०।७

३- वही अयो० का० ४०।६

४- महा० उद्योग प० ६०।७३ , ७६-७७

५- वही उद्योगप० ६०।७८

६- वही उद्योग प० १३२। १०-११ ।

वह मुचकुन्द का उदाहरण देती है , जिन्होंने अपनी बाहुबल से उपार्जित पृथ्वी का ही भोग किया था ।[१] इसलिये वह युधिष्ठिर को शान्त धर्म का परित्याग कर क्षात्रियोचित व्यवहार करने को कहती है ।[२] वह युधिष्ठिर द्वारा अपनाये गये धर्म से अप्रसन्न है और कहती है कि इसके लिये न तो कभी मैंने , न तुम्हारे पिता ने और न पितामह ने ही इस प्रकार का आशीर्वाद दिया था ।[३] तुम राजधर्म के अनुसार युद्ध करो , कायर बनकर अपने बापदादों का नाम न डुबोओ और भाइयों सहित पाप गति को न प्राप्त होओ ।[४] इस सन्दर्भ में वह विदुलोपाख्यान का वर्णन करती है । विदुला ऐसी ही एक वीर क्षात्राणी थी , जिसने युद्ध से भागकर आये हुए अपने पुत्र को जो उपदेश दिया था , वह राजनीति के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण है । विदुला के ओजस्वी भाषण से उसके पुत्र में वीरता का संचार हो जाता है और वह युद्ध के लिये प्रस्तुत हो जाता है ।[५] कुन्ती क्षात्रिय धर्म के अनुसार ब्राह्मणों की रक्षा के प्रति पूर्णतया सजग थी । युधिष्ठिर के द्वारा विरोध किये जाने पर भी वह बक राक्षस से ब्राह्मण परिवार की रक्षा के लिये भीम को आज्ञा देती है ।[६] कुन्ती चाहती है कि उसके पुत्र अपने बाहुबल से जीतकर पृथ्वी का उपभोग करें , वह राज्य अपने लिये नहीं बल्कि अपने पुत्रों के लिये चाहती है ।[७] उसके विचार से युद्ध क्षेत्र में वीरगति पाने वाला क्षात्रिय पुत्र शोक करने योग्य नहीं

- -

१- महा० उद्योगप १३२। १०-११

२- वही उद्योगप० १३२। ५-८

३- वही उद्योग प० १३२। २३-२४

४- वही उद्योगप० १३२।३४

५- वही उद्योगप० १३३-१३६ अ०

६- वही आदिप० १६१। ५-६ , आदिप० १६०।२०

७- महा० आश्रमवासिक १७।१-२१

है।[१] वह अपने प्यारे पुत्र सहदेव को वन से वापस भेज देती है, क्योंकि उसके प्रेम के कारण उसकी तपस्या में विघ्न पड़ सकता है।[२] कैकेयी द्वारा दिये गये अन्यायपूर्ण आदेश को न मानकर राम अयोध्या में ही रहें, ऐसा उपदेश देने वाली कौशल्या राम को अन्याय के विरुद्ध लड़ने का कहती है।[३] द्रौपदी का चरित्र भी वीर क्षात्राणी के गौरव से परिपूर्ण है, इसलिये वह युधिष्ठिर को दासता से मुक्त कराती है कि उसके पुत्र दासपुत्र न कहे जायें।[४] दूरदर्शिनी गान्धारी ने दुर्योधन का हाँ में हाँ मिलाने के लिये धृतराष्ट्र को दोषी ठहराया था[५], और उद्दण्ड दुर्योधन को अपने उपदेशों द्वारा सन्मार्ग में लाने का प्रयास किया था[६], क्योंकि गान्धारी ही उस उद्दण्ड बालक को वश में करने में समर्थ थी। न्याय का पक्ष लेते हुए वह धृतराष्ट्र से दुर्योधन को त्याग देने को कहती है।[७] ब्रह्मर्षि व्याघ्रपाद की पत्नी ने सब कुछ प्राप्त करने के लिये महादेव की शरण में जाने का उपदेश अपने पुत्र को दिया था।[८] अपने पुत्र की मृत्यु हो जाने पर भी ब्राह्मणी बिल्कुल विचलित नहीं होती और व्याध को महत्त्वपूर्ण उपदेश देती है।[९]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि माता का महत्त्व न केवल जन्मदात्री तथा धात्री के रूप में था, वरन् उपदेशक व शिक्षक के रूप में भी

- -

१- महा० आश्वमेधिक ६१।३४-३५

२- वही आश्रमवासिक ३६।३७-४२

३- रामा० अयो० का० २१।२१-२८

४- महा० सभाप० ७१।२८-२६

५- वही सभाप० ७१।१-१०

६- वही उद्योग प० १२६ अध्याय

७- वही सभाप० ७५।८

८- वही अनु० प० १४।१२८, १६७

९- महा० अनु० प० १ अ०।

उसका महत्व कम न था । वह पारिवारिक जीवन की केन्द्रबिन्दु थी । वह प्रारम्भ में बच्चे में जैसे संस्कार डाल देती है , जीवन पर्यन्त वह संस्कार बच्चे के हृदय में अमिट होते हैं । बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण में पिता से अधिक योगदान माता का होता है । वह जिस धैर्य , स्नेह व गम्भीरता से अपनी सन्तानों का पालन पोषण करती है , उसके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिये प्रयत्न करती है , वह परिवार के किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सम्भव नहीं है । वह समय-समय पर अपने बच्चों को उपदेश देकर उन्हें कर्तव्य बोध कराती है , और पथभ्रष्ट हुए पुत्रों को कर्तव्य बोध कराकर सन्मार्ग में लाने का प्रयास करती है । यही कारण है कि हमारे यहां शास्त्रों में सर्वत्र माता की प्रशंसा की गयी है , और उसका आदर सत्कार तथा पूजा करने के लिये कहा गया है । इसीलिये माता को सर्वश्रेष्ठ गुरु माना गया है ।[१] क्योंकि गुरु के द्वारा दिया गया उपदेश अजर अमर होता है ।[२] माता ही सबसे विश्वासपात्र और श्रेष्ठ परामर्शदात्री होती है ।[३]

महाकाव्यकाल में माताओं को सर्वोच्च आदर तथा सम्मान प्राप्त था ।

१- महा० अनु० प० १०६।६५ , शा० प० १०८।१७

२- वही अनु० प० १०५।१६ , शा० प० १०८।२०

३- वही विराट प० ४।५२ , उद्योग प० १५४।२४ ।

अध्याय - ६

विधवा की स्थिति

विधवा की स्थिति

स्त्री अपने जीवन काल में अनेकों रूप धारण करती है । प्रारम्भ में वह कन्या के रूप में हमारे सामने आती है, और उस रूप में वह परिवार की प्रीतिपात्र होती है । विवाहोपरान्त वह वधू रूप में दृष्टिगोचर होती है । उस रूप में उसका महत्व और अधिक बढ़ जाता है , क्योंकि गृह का सम्यक् संचालन तथा वंशपरम्परा उस पर ही आश्रित होती है । माता के रूप में वह सर्वोच्च आदर प्राप्त करती है, परन्तु विधवा के सम्बन्ध में समाज का दृष्टिकोण भिन्न हो जाता है । वैधव्य स्त्री जीवन का महान कष्टमय क्षण होता है । वैधव्य उसके अभाग्य का सूचक होता है ।

सामाजिक दृष्टिकोण -

ऋग्वेद[१] में विधवा शब्द का उल्लेख अनेक बार होने पर भी विधवा स्त्रियों की स्थिति पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता, ऋग्वेद में कहा गया है कि मरुतों की अति शीघ्र गतियों में पृथ्वी पतिहीन स्त्री की भांति कांपती है ।[२] इससे स्पष्ट होता है कि विधवायें दुख के मारे डर से कांपती होंगी ।

महाकाव्य में भी 'विधवा धर्म' के सम्बन्ध में विशेष वर्णन नहीं किया गया है, जैसा कि पुराणों तथा बाद की स्मृतियों में इस सम्बन्ध में विस्तृत प्रकाश डाला गया है । अत: महाकाव्य में जिन विधवा स्त्रियों का वर्णन आया है , उनके व्यवहार के आधार पर ही हम यह वर्णन करेंगे कि उस काल में विधवा स्त्रियों की क्या स्थिति थी ?

१- ऋ० ४।१८, १२, १०। १८।७, १०।४०।२

२- प्रेषा मज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ऋ० १। ८७। ३

महाकाव्य काल में विधवाओं को सम्मान तथा आदर प्राप्त होते हुए भी वह दया की पात्र समझी जाती थी , क्योंकि स्त्री के लिये पति ही उसका सबसे बड़ा आभूषण है , उसका जीवन तभी तक सौभाग्य युक्त है , जब कि उसका पति जीवित है ।[१] पति की मृत्यु के उपरान्त उसका जीवन दु:खमय हो जाता था , तथा सांसारिक सुख उसके लिये विशेष महत्त्व नहीं रखता था , यही कारण था कि समाज उससे उच्च नैतिकता की अपेक्षा रखता था । समाज द्वारा उस स्त्री की प्रशंसा की जाती थी , जो पति की मृत्यु के उपरान्त पुनर्विवाह न कर अपने मृत पति की याद में ही अपना जीवन समाप्त कर दे । बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार विधवा को साल भर तक मधु , मांस , मदिरा छोड़ देना चाहिये तथा भूमि पर शयन करना चाहिये ।[२] इसी प्रकार का मत वशिष्ठ धर्मसूत्र ने भी व्यक्त किया है ।[३] मनु ने विधवा धर्म का वर्णन करते हुए लिखा है कि - " पति की मृत्यु के उपरान्त स्त्री को व्रतोपवास में अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये , तथा जो नारी आजीवन (पति की मृत्यु के उपरान्त)ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अपने सतीत्व की रक्षा में लगी रहे तो वह पुत्रहीन होने पर भी स्वर्गारोहण करती है , जैसा कि प्राचीन नैष्ठिक ब्रह्मचारियों (यथा) सनक ने किया था ।[४] इसी प्रकार का मत अन्य स्मृतिकारों ने भी व्यक्त किया है ।[५] पराशर ने भी मनु के समान ही मत

- -

१- रामा० अयो० का० ३९।३१ , ११८।२
भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि ।। रामा० सु०का० १६।२६
महा० शल्य प० ५९।२८-३० , ४२।१६

२- बौ० ध० सू० २।२।७

३- वशिष्ठ ध० सू० १७।५५-५६

४- मनु ५।१५७-१६०

५- स्कन्द पुराण ३ , ब्रह्मारण्य ७।५०-५१ अमंगलेभ्यः सर्वेभ्यो विधवास्यादमंगला - कात्यायन (वीरमित्रोदय पृ० ६२६-६२७ में उद्धृत) ।

व्यक्त किया है।[१] वृद्धहारीत ने विधवा की आमरण दिनचर्या का विवरण दिया है, जिसमें कहा गया है कि उसे सादगी का जीवन व्यतीत करते हुए अपना समय भगवान की पूजा तथा सत्संगति में लगाना चाहिये।[२]

महाकाव्य काल में विधवाओं के प्रति समाज का दृष्टिकोण असहिष्णु नहीं था। मंगल कार्यों में उनकी उपस्थिति अशुभ नहीं मानी जाती थी, जैसा कि कालान्तर में माना जाने लगा था। कुन्ती और कृष्णा एक साथ ही रथ पर बैठकर द्रुपद के घर गयीं थीं।[३] विवाहोपरान्त कुन्ती ने द्रौपदी को आशीर्वाद दिया था।[४] राम के राज्याभिषेक के पूर्व दशरथ की पत्नियों ने सीता का श्रृंगार किया था।[५] शत्रुघ्न के राज्याभिषेक के अवसर पर तीनों माताओं तथा राजभवन की अन्य राजमहिलाओं ने मिलकर मङ्गल कार्य सम्पन्न किया था।[६]

विधवाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण उदार होते हुए भी वैधव्य स्त्रियों को महान शोक में डाल देता था[७], नारी पति से युक्त होने पर ही शोभा प्राप्त करती है, और पतिविहीन नारी श्रीहीन हो जाती है।[८] बाली

- -

१- मनु ५।१६० , पराशर ४।२६
२- वृद्धहारीत ८ अध्याय , २०५-२१० । बृहस्पति (अपरार्क पृ० १११ में उद्धृत)
३- महा० आदि प० १६३।३
४- महा० आदिप० १६८। ४-१२
५- रामा० युद्ध का० १२८।१७
६- वही उ० का० ६३।१६-१७
७- वही अयो० का० १०१।७ , ६२।१५ , २०-२३ , ६५।२३-२४ , २६ , ६६।२३
८- रामा० अयो० का० १०१।११ , ६६।२४ , २८ ।

के मारे जाने पर तारा विलाप करते हुए कहती है - " आज आपके मारे जाने से मेरा सारा आनन्द लुट गया , मैं सब प्रकार से निराश होकर शोक के समुद्र में डूब गयी हूं ।[१] वह वैधव्य जनित कष्ट का उल्लेख करते हुए कहती है - " मैंने कभी दीनतापूर्ण जीवन नहीं बिताया था , ऐसे महान दुख का सामना नहीं किया था । परन्तु आज आपके बिना मैं दीन हो गयी , अब मुझे अनाथ की भांति शोक संताप से पूर्ण वैधव्य जीवन व्यतीत करना होगा ।[२] पतिहीन नारी भले ही पुत्रवती एवं धन धान्य से सम्पन्न हो , लोग उसे " विधवा " ही कहते थे ।[३] स्त्री से पहले पति का मरना अनर्थकारी दोष समझा जाता था , और पति के सामने पत्नी की मृत्यु सौभाग्य समझा जाता था ।[४] वैधव्य का दुख बहुत ही असहनीय होता था ।[५] पतिहीन नारी की तुलना बिना तार की वीणा और बिना पहिये के रथ से की गयी है ।[६] पतिहीन नारी यह अनुभव करती थी कि उसकासर्वस्व नष्ट हो गया ।[७] वैधव्य स्त्रियों के लिये महान विपत्ति का जनक था ।[८] रावण से भयभीत कुम्भीनसी अपने पति के जीवन की भीख मांगते हुए कहती है - " राक्षसराज । आप मेरे पति का वध न कीजिये क्योंकि कुलवधुओं के लिये वैधव्य के समान दूसरा कोई भय नहीं बताया जाता है

१- रामा० कि० का० २०।६ , अयो० का० ३६।२६ नापति: सुखमेधते या स्यादपि शतात्मजा ।।

२- रामा० कि० का० २०।१६ वैधव्यं शोकसंतापं कृपणाकृपणा सती ।
अदु:खोपचिता -------- अनाथवत् ।।

३- रामा० कि० का० २३।१२-१३

४- वही युद्ध का० ३२।६

५- वही युद्ध का० १११।३८-३६

६- वही अयो० का० ३६।२६ नातंत्री वाद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथ: ।

७- रामा० युद्ध का० ११०।२०

वैधव्य ही नारी के लिये सबसे बड़ा महान भय और महान संकट है ।[१] पत्नियां पति की इस अन्तिम अवस्था को देखना अपना दुर्भाग्य समझती थीं।[२]

विधवायें अपने को " अनाथ " शब्द से संबोधित करती थीं ।[३] भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत " कर्म के सिद्धान्त " को स्वीकार करने के कारण स्त्रियां इस दुख को अपने ही कर्मों का परिणाम समझती थीं ।[४] महाकाव्य में वैधव्य शोक की तुलना पुत्रशोक तथा अन्य आठ प्रकार के शोकों से की गयी है ।[५] स्त्रियों को " अबला " के नाम से संबोधित किया जाता था , " अबला "[६] अर्थात जिसके बल न हो , इसलिये वे अपने संरक्षकों पर आश्रित होती थी । पति से बढ़कर उसका कोई रक्षक नहीं होता था , इसलिये पतिविहीन नारी शोक के समुद्र में डूब जाती थीं ।[७] इसलिये पति की मृत्यु के बाद पुत्र का यह कर्तव्य होता था कि वह अपनी माता का पालन-पोषण तथा रक्षा करें , जो पुत्र अपने इस कर्तव्य का पालन नहीं करता था , समाज उसकी भर्त्सना करता था ।[८] पुत्र के अभाव में राजा का यह कर्तव्य था कि - " वह विधवा

- -

१- रामा० उ० का० २५। ४२-४३

२- वही युद्ध का० ३२।८ , १११।३८

३- रामा० अयो० का० ६६।८ , कि० का० २०।१५ , २३।७ , २४।४० , युद्ध का० ४८।१७ , मौसलपर्व ५।५ ।

४- रामा० युद्धका० १११।३० , युद्धका० ३२।६,३० , महा० आदि प० १२०। २७-२६ , द्रोणप० ७३।२४-२५

५- महा० सभा प० ६८।८१-८३

६- वही अनु० प० ४६।८ स्त्रियः पुंसां परिददे मनुर्जिगमिषुर्दिवम् ।
अबलाः स्वल्पकौपीनाः सुहृद सत्य जिष्णवः ।।

७- महा० शा० प० १४८।७ नास्ति भर्तृसमो नाथो ।

८- वही वन प० ३६३।३५ मृते भर्तरि पुत्रश्च वाच्यो मातुररक्षिता ।

स्त्रियों के योगक्षेम एवं जीविका का सदा ही प्रबन्ध करे।[१] परन्तु वह स्वामीहीन समझी जाती थी।[२] पति के जीवित रहते स्त्री का पुत्र पर आश्रित होना निन्दनीय समझा जाता था। राम इसी आधार पर कौशल्या के वन जाने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देते हैं।[३]

विधवा की तुलना -

विधवा स्त्री के लिये महाकाव्य में जो भी उपमायें दी गयी हैं, वे सब असहाय तथा दीन स्थिति का दिग्दर्शन कराती हैं। उसकी स्थिति की तुलना कटे हुए महान वृक्ष की लिपटी हुई लता से की गयी है।[४] इसी प्रकार राम की मृत्यु का समाचार सुनकर गिरी हुई सीता की तुलना कटी हुई कदली से की गयी है।[५] कवि द्वारा प्रयुक्त ये उपमायें इतनी सजीव हैं कि उनको पढ़ने मात्र से असहाय, अनाथ तथा शोकातुर विधवा का चित्र आंखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है। अनेक स्थानों पर असहाय विधवा स्त्रियों की तुलना हथिनियों से घिरे हुए कीचड़ में फंसे हुए हाथी से की है।[६]

- -

१- महा० शा० प० ८६।२४, नारद १३।२८

१- पत्याद्यवसाने तु राजा भर्ता स्मृत: स्त्रिया: ।।

२- विगतो धवो यस्या: इति विधवा। अमरकोश पृ० २०७।११

३- रामा० अयो० का० २१।६१ कथंस्विदन्या विधवेव नारी ।

४- वही कि० का० २२।३२ महाद्रुम छिन्नमिवाश्रिता लता ।।

५- वही युद्ध का० ३२।६ जगाम जगतीं बाला छिन्ना तु कदली यथा ।
महा० स्त्रीप० १७।१ छिन्नेव कदली वने ।

६- महा० स्त्री प० २३।८ वसिता गृष्टय: पङ्के परिमग्नमिव द्विपम् ।

पतिहीन नारी कौशल्या की भांति दुर्गम मार्ग में साथियों से बिछुड़कर असहाय एवं अबला की भांति जीने का उत्साह नहीं रखती।[१] राजा दशरथ से रहित पृथ्वी की तुलना कवि विधवा स्त्री से करता है, जो कि राजा के बिना चन्द्रहीन रात्रि के समान श्रीहीन प्रतीत होती है।[२] अशोक वाटिका में कैद सीता विलाप करते हुए कहती है - " रावण के मारे जाने से यह लङ्कापुरी शीघ्र ही विधवा युवती की भांति सूख जायेगी तथा श्रीहीन हो जायेगी।[३] इसी प्रकार राजा दशरथ से रहित अयोध्या की तुलना भी कवि ने पीड़ित एवं असहाय विधवा से दी है।[४]

वैधव्य के प्रति भ्रमात्मक विश्वास -

वैधव्य को अत्यन्त भयानक कष्ट मानने के कारण इस सम्बन्ध में अनेकों मिथ्या धारणायें प्रचलित हो गयीं थी। पुनर्जन्म तथा कर्म के सिद्धान्तों में विश्वास के कारण स्त्रियों के हृदय में यह भावना दृढमूल हो गयी थी कि विधवापन का कारण स्त्री द्वारा पूर्वजन्म में किये गये दुष्कर्म हैं[५], तथा कुछ ऐसे चिन्ह निर्धारित थे जिनके प्रति ऐसा विश्वास था कि इन चिन्हों से युक्त

- -

१- रामा० अयो० का० ६६।४ विपथे सार्थहीनेव नाहं जीवितुमुत्सहे ।।

२- वही अयो० का० ७६।६ विधवा पृथिवी राजंस्त्वया हीना न राजते ।
हीनचन्द्रेव रजनी नगरी प्रतिभातिमाम् ।।

३- रामा० यु० का० २६। २७-२६

४- वही अयो० का० ११४।३। कृष्ण की मृत्यु के पश्चात द्वारका भी विधवा के समान श्रीहीन हो गयी थी। महा० मौसल प० ५।४ " ददर्श द्वारकां वीरो मृतनाथामिव स्त्रियम्। द्रोणप० १।२७, शल्यप० ३१।४५

५- महा० आदि प० १२०।२६ संयुक्ता विप्रयुक्ताश्च पूर्वदेहे कृतामया ।
तदिदं कर्मभिः पापैः पूर्वदेहेषु संचितम् ।।

कन्या विधवा नहीं हो सकती । सीता के द्वारा सधवा स्त्री के लक्षणों का विशेष वर्णन किया गया है।[१] राम और लक्ष्मण के मृत शरीर को देखकर उन्हें लाक्षणिकों द्वारा बताये गये लक्षणों के असत्य हो जाने से आश्चर्य होता है, जिन लोगों ने उनको सधवा तथा पुत्रवती बताया था।[२] वृष्णिवंश के विनाश के समय द्वारका के लोग रात में स्वप्नों में देखते थे कि एक काले रंग की स्त्री अपने सफेद दांतों को देखा-दिखा कर हंसती आयी है और घरों में प्रवेश करके स्त्रियों का सौभाग्य चिन्ह लूटती हुई सारी द्वारका में दौड़ लगा रही है।[३]

युद्धप्रिय जाति होने के कारण क्षत्रिय स्त्रियां प्राय: इस भय से अधिक भयभीत रहती थी कि कब वे विधवा बना दी जायें। जैसा कि तारा विलाप करते हुए कहती है कि - " बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह अपनी कन्या किसी शूरबीर पुरुष को न दे, क्योंकि शूरबीर की पत्नी होने के कारण मैं तत्काल विधवा बना दी गयी।[४] शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार क्षत्रिय युद्ध में वीरगति प्राप्त करने को बहुत महत्वपूर्ण समझते थे और इस प्रकार की मृत्यु शोक के योग्य नहीं होती थी।[५] शूरवीर की पत्नियां भी इस प्रकार की मृत्यु को शोक योग्य नहीं मानती थीं।[६] वालि की मृत्यु पर अत्यधिक विलाप करती हुई तारा को आश्वासन देते हुए राम उसके कर्तव्य का स्मरण दिलाते हुए कहते हैं कि - शूरवीर की पत्नियां इस प्रकार विलाप नहीं करती।[७]

- -

१- रामा० युद्ध का० ४८।६-११

२- वही युद्ध का० ४८। २-५, १२-१४, अयो० का० २६।६

३- महा० मौसल प० ३।१

४- रामा० कि० का० २३। ८-६

५- वही युद्ध का० १०६।१८, महा० शा० प० २२।२-५

६- वही युद्ध० का० १११। ७४-७५ " नहि त्वं शोचितव्यो मे प्रख्यात बल पौरुष:

७- रामा० कि० का० २४।४३ न शूरपत्न्य: परिदेवयन्ति ।

विधवायें तर्पण क्रिया में भाग लेती थीं

महाकाव्यकालीन समाज में स्त्रियां पुरुषों के समान ही अपने पतियों के अन्तिम संस्कार में भाग लेतीं थीं । वालि की तारा आदि पत्नियां उसकी शव यात्रा में सम्मिलित हुई थीं ।[१] दशरथ की रानियां भी यथायोग्य शिबिकाओं तथा रथों पर आरूढ़ होकर श्मशान भूमि में आकर दशरथ की परिक्रमा हेतु आयीं थी[२] और जलाञ्जलि प्रदान किया था ।[३] यह एक प्राचीन प्रथा थी जो वैदिक काल से चली आ रही थी । यद्यपि साधारणतय: यह कार्य पुरुष सम्बन्धियों द्वारा ही सम्पन्न किया जाता था , परन्तु फिर भी इस कठिन कार्य में स्त्रियों को भी भाग लेना पड़ता था , जिसके लिये असीम धैर्य की आवश्यकता होती थी । महाभारत युद्ध में जिन स्त्रियों के परिवार के सभी पुरुष मारे गये थे , उसमें उनकी पत्नियों और बन्धुओं ने इस कठिन कार्य को सम्पन्न किया था[४] और शव के जल जाने पर तर्पण किया था ।[५] इस प्रकार महाकाव्य काल में यह महत्वपूर्ण कार्य स्त्रियों द्वारा सम्पन्न किया जाता था ।

विधवाओं का तपस्यापूर्ण जीवन -

महाकाव्यकालीन समाज में आर्य स्त्रियों में पुनर्विवाह की प्रथा न थी और सामान्यत: सती प्रथा भी प्रचलित न थी । अत: विधवायें इच्छानुसार या तो तपस्यापूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए घर में ही रहतीं थीं , जैसा कि दशरथ की

- -

१- रामा० कि० का० २५।३४-३५ , युद्ध का० १११।११०-१११

२- वही अयो० का० ७६।१६-२० , जब कि राम पैदल ही गये थे , अयो० का० १०३।२०-२१ ।

३- रामा० अयो० का० ७६।२३

४- महा० स्त्रीप० २५।१६ स्तास्तु द्रुपदं वृद्धं स्नुषाभार्याश्च दुःखिता: ।
दग्ध्वा गच्छन्ति पाञ्चाल्यं ।।

पत्नियां और कौरवों की विधवायें घर में ही रहीं[१], जब कि कुछ स्त्रियां वन में जाकर तपस्यामय जीवन व्यतीत करती थीं। सत्यभामा और श्रीकृष्ण की अन्य पत्नियां तपस्या का निश्चय करके वन में चली गयीं थी।[२] अम्बिका, अम्बालिका और कुन्ती उस समय तक घर में रहीं, जब तक कि उनके बच्चे बड़े नहीं हो गये, और बच्चों के पालन-पोषण के लिये उनका घर में रहना आवश्यक था।[३] जब बच्चे समर्थ हो गये तो वे भी वन में चली गयीं और कठोर तपस्या का आश्रय लिया।[४] व्यास ने सत्यवती को परामर्श देते हुए कहा था कि - " अब सुख के दिन बीत गये, बड़ा भयंकर समय उपस्थित होने वाला है।[५] अत: तुम योगपरायण होकर तपोवन में निवास करो।[६] तब सत्यवती अपनी दोनों बहुओं के साथ वन में चली गयी और कठोर तपस्या का आश्रय लेकर वन में ही शरीर त्याग दिया।[७] इस प्रकार स्त्रियों को वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश का अधिकार था परन्तु सी० वी० वैद्य ने यह मत व्यक्त किया है कि स्त्रियों के लिये वानप्रस्थाश्रम की अनुमति नहीं थी।[८]

जो स्त्रियां वन में चली जाती थीं, वे तो तपस्यापूर्ण जीवन व्यतीत करती ही थीं, साथ ही घर में रहने वाली स्त्रियां भी समस्त सुख

- -

१- रामा० अयो० का० ७६।२३

२- महा० मौसल प० ७।७४ सत्यभामा तथैवान्या देव्य: कृष्णस्य सम्मता: ।
वनं प्रविविशू राजंस्तापस्यै कृतनिश्चया: ।।

३- महा० आदि प० १२८।१२, आश्रमवासिक १५-१६ अध्याय।

४- वही आश्रमवा० प० १५। १-६, ३७।१४

५- महा० आदि प० १२७।६

६- वही आदि प० १२७।८ गच्छ त्वं योगमास्थाय युक्ता वस तपोवने ।।

७- महा० आदि प० १२७। १२-१३

८- सी० वी० वैद्य - महाभारतमीमांसा, अध्याय ७, पृ० २२७ परन्तु उपर्युक्त उदाहरण यह सिद्ध करता है कि स्त्रियां एकाकी स्वतन्त्र रूप से वानप्रस्थाश्रम का आश्रय ले सकती थीं।

सुविधाओं के होते हुए भी सादा जीवन ही व्यतीत करती थीं । विधवा स्त्रियां प्राय: कोमल शय्या छोड़कर कुश के बिस्तर पर ही शयन करती थीं[१] तथा विधवा के लिये सुखोपभोग के साधन कोई महत्त्व नहीं रखते थे । रानी भद्रा राजा व्युषिताश्व की मृत्यु के अनन्तर विलाप करते हुए कहती हैं - आपके बिना आज से हृदय को सुखा देने वाले कष्ट और मानसिक चिन्तायें मुझे सताती रहेंगी[२] । अत: पति की मृत्यु के बाद स्त्रियां पति के ही मार्ग का अनुसरण करने की आकांक्षा रखती थीं[३] । क्योंकि उन्हें भोग प्रदान करने वाले की मृत्यु हो गयी होती है[४] । साथ ही यह स्मरणीय है कि जब पति के प्रवास चले जाने पर आर्य पत्नियां श्रृंगार धारण नहीं करती थीं तथा सादगी से रहती थीं[५] तब पति की मृत्यु हो जाने पर तपोमय जीवन व्यतीत करना स्वाभाविक ही था । रामायण में कवि ने लंका नगरी की उपमा विधवा स्त्री से देते हुए कहा है कि - " विधवा स्त्री की भांति सूख जायेगी और नष्ट हो जायेगी[६] ।

- -

१- महा० आदि प० १२०।३० " कुशसंस्तरशायिनी " ।

२- महा० आदि प० १२०।२६
अद्य प्रभृति मां राजन् कष्टा हृदयशोषणा: ।
महा० आदि प० १२०।३० , रामा० कि० का० २६।६

३- महा० आदि प०१२४।२२-२३ पतिं बिना मृतं श्रेयो नार्या: क्षत्रिय पुङ्गव।
त्वद्गतिं गन्तुमिच्छामि प्रसीदस्व नयस्वमाम् ।।
त्वयाहीना क्षणमपि नाहं जीवितुमुत्सहे ।
महा० शा० प० १४८।६ , १४८।३
शोच्या भवति बन्धूनां पतिहीना तपस्विनी ।
रामा० अयो० का० २६।७ पतिहीना तुया नारी न साशक्ष्यति जीवितुम् ।।

४- रामा० युद्ध का० १११।५४ अस्माकं कामभोगानां दातारं ---------- ।

५- वही यु० का० १७।१६ , २५-२६ महा० वनप० २३३।३० , अनु०प० ४६।३-४ , अनु० प० १२३।१६-१७ ।

आर्य विधवा नारियां भद्रा[१] के समान ही कुश के विस्तर पर ही शयन करती थीं। भीष्म कुन्ती को देखकर शोकपीड़ित हो जाते हैं कि जो कोमल शय्याओं में सोने योग्य हैं, वही आज पृथ्वी पर सो रही है।[२] यही कारण है कि आर्य स्त्रियां वैधव्य से मृत्यु को अधिक अच्छा समझती थी।

जहां आर्य स्त्रियां पति की मृत्यु के अनन्तर उच्चकोटि का तपस्यामय जीवन व्यतीत करती थीं, वहीं हम वानरों तथा राक्षसों की पत्नियों में इस उच्च नैतिकता के दर्शन नहीं करते। यद्यपि तारा बालि की मृत्यु पर हृदयविदारक विलाप करती है, परन्तु बाद में वह बालि के मृत्युजनित दुख को भूलकर सुग्रीव की पत्नी बन जाती है और समस्त कामोपभोगों का सेवन करती है।[३] इसी प्रकार विद्युज्जिह्व की विधवा पत्नी शूर्पणखा राम से पुन: विवाह करने के लिये अनुरोध करती है।[४]

यहां पर यह स्मरणीय है कि वनपर्व में जहां उन लोगों का वर्णन किया गया है जिन्हें कि श्राद्ध में न बुलाना चाहिये, वहां ऐसे पुरुष की भी वर्जना की गयी है, जो विधवा माता से उत्पन्न हुआ हो[५], इससे स्पष्ट है कि समाज द्वारा विधवाओं से उच्च नैतिकता की अपेक्षा किये जाने पर भी अपवादस्वरूप कुछ स्त्रियां ऐसी होती थी जो कि अपने विहित कर्तव्यों का पालन नहीं करती थीं, और समाज द्वारा ऐसी स्त्रियों की निन्दा की जाती थी।

१- महा० आदिप० १२०।३०

२- वही आदिप० १५१।२६

३- रामा० कि० का० ३१।२२, ३५।५

४- वही उ० का० २३।१८, अरण्य का० १७।२४-२६

५- महा० वनप० २००।१७ कुण्डगोलकौ ------- ।

विधवा स्त्रियों की वेशभूषा और आभूषण -

विधवाओं की वेशभूषा उनके दुख के समान ही सादगी से परिपूर्ण होती थी । पति की मृत्यु के अनन्तर विलाप करती हुई स्त्रियों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि - " उनके केश बिखरे हुए थे ।[1] कौरव की विधवा स्त्रियां श्वेत चादर ओढ़े हुए थी तथा उनकी मांगें सिन्दूर से रहित थीं ।[2] वे प्राय: एक वस्त्र धारण करती थी ।[3] माला और आभूषणों से रहित थीं ।[4] श्वेत रंग पवित्रता और शान्ति का प्रतीक माना जाता है यही कारण है कि विधवा स्त्रियां प्राय: श्वेत वस्त्र ही धारण करती थीं ।[5] विधवायें आभूषण त्याग देती थीं । भरद्वाज मुनि को प्रणाम करने को प्रस्तुत दशरथ पत्नी सुमित्रा आभूषणों से रहित थीं ।[6] यद्यपि कौरव पाण्डवों के अस्त्रकौशल प्रदर्शन में गान्धारी , कुन्ती आदि राजभवन की स्त्रियां वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर उपस्थित हुई थीं ।[7] जो स्त्रियां पति के ही मार्ग का अनुसरण करती थीं , वे

- -

१- महा० स्त्री०प० १७।२५ प्रकीर्णकेशां , १६।१८ प्रकीर्णकेशा: , १८।२ मुक्तमूर्धजा: , २३।२५ मुक्तकेशीं , वनपर्व - १७३।६२ प्रकीर्णकेश्यो ।

२- महा० आश्रमवा० २५।१६

एतास्तु सीमन्तशिरोरुहा या: ।

शुक्लोत्तरीया नरराजपत्न्य: ।

३- महा० स्त्री प० २४।७ एकवस्त्रार्धसंवीता , १६।४५ एकवाससाम् ।

४- वही १७२। २२-२४ , १७३।६४ , विप्रस्तस्त्रग्विभूषणा: ।
वनप० २०।२ , निर्भूषण वरस्त्रियम् , स्त्री प० २५।६ प्रकीर्णवस्त्राभरणा
मौसल प० , ७।१७ विमुक्ताभरणस्त्रज: ।

५- महा० आश्रमवा० २५।१६ शुक्लोत्तरीया नरराजपत्न्य: ।

६- रामा० अयो० का० ६२।२३

७- महा० आदि प० १३३।१५ ।

स्त्रियां पूर्ण रूप से वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर जातीं थी।[1] इसके पीछे यह धारणा रहती थी कि इस प्रकार पति का अनुगमन करने वाली स्त्रियां स्वर्ग में जाकर अपने पति से मिल जाती हैं। साथ ही महाकाव्य के वर्णन से ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि शिष्ट परिवारों में अच्छे वस्त्र धारण करने के सम्बन्ध में विधवा स्त्रियों के लिये कोई प्रतिबन्ध न था।[2] यद्यपि वे सामान्यत: अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हुए वस्त्रों की ओर विशेष ध्यान न देकर संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करती थीं। बाद में धर्मशास्त्रकारों द्वारा विधवा के दिनचर्या के सम्बन्ध में जो वर्णन किया गया है, उसका एकमात्र उद्देश्य यही था कि विधवायें सांसारिक वैभव की ओर आकृष्ट न होकर संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करें।[3]

समाज में विधवाओं की स्थिति -

सामान्यत: महाकाव्य काल में विधवाओं को परिवार में सम्मान तथा आदर प्राप्त होता था, तथा जिनके भाई बन्धु रक्षक थे, उनकी स्थिति तो ठीक थी परन्तु बन्धु बान्धवों से हीन एक सामान्य विधवा नारी की स्थिति समाज में बड़ी दयनीय होती थी। समाज में वह अपने को सुरक्षित अनुभव न करती थी। स्त्री चाहे कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो, परन्तु विधवा शब्द ही स्त्री के लिये अत्यन्त भयावना होता था जो कि उसको एक क्षण में ही अनाथ, अनाश्रित, अशरण और दया तथा सहानुभूति का पात्र

- -

१- महा० मौसल प० ७।२२ अनुजग्मुश्च तं वीरं देव्यस्ता वैस्वलंकृता:

२- वही स्त्री प० २३।७ एता: सुसूक्ष्मवसना

३- मनु ५।१५७-१६० ।

बना देता था ।[१] पति की मृत्यु के अनन्तर चाहे कितनी ही साहसी महिला क्यों न हो , वह अपने को असहाय समझने लगती थी और उसकी इसी भावनात्मक स्थिति का लाभ समाज के लोग उठाने का प्रयास करते थे । विधवा की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए ब्राह्मणी कहती है - " जैसे पक्षी पृथ्वी पर डाले हुए मांस के टुकड़े को लेने के लिये झपटते हैं उसी प्रकार सब लोग विधवा स्त्री को वश में करना चाहते हैं ।[२] पति से रहित अनाथ विधवा स्त्री के लिये समाज में सन्मार्ग में चलते हुए अपने बच्चों का पालनपोषण कर पाना बहुत ही कठिन होता था ।[३] क्योंकि समाज के गिद्ध लोगों की दृष्टि उस पर होती थी ।[४] ब्राह्मणी कहती है कि - " आपके न रहने पर जैसे अनधिकारी शूद्र वेद की श्रुति को प्राप्त करना चाहता है , उसी प्रकार अयोग्य पुरुष मेरी अवहेलना करके इस अनाथ बालिका को ग्रहण करना चाहेंगे ।[५] इसी प्रकार रक्षकों से रहित अन्धक तथा वृष्णिवंश की स्त्रियों को अर्जुन जैसा व्यक्ति भी लुटेरों से रक्षा न कर सका ।[६] और अर्जुन के देखते ही देखते वे म्लेच्छ डाकू सब ओर से अन्धक तथा वृष्णिवंश की स्त्रियों को लूट ले गये ।[७]

- -

१- रामा० अयो० का० १०१।११ , ६६।२४ , २८ कि० का० २०।१६ , अयो० का० ६६।८ , कि० का० २०।१५ , २३।७ , २४।४० , युद्ध का० ४८।१७ , महा० मौसल प० ५।५ ।

२- महा० आदि प० १५७।१२

उत्सृष्टमामिषं भूमौ प्रार्थयन्ति यथा खगाः ।
प्रार्थयन्ति जनाः सर्वे पतिहीनां तथा स्त्रियम् ।।

३- महा० आदिप० १५७।८ न त्वहं सुतयोः शक्ता तथा रक्षणपोषणे ।। आदिप० १५७।९

४- महा० आदि प० १५७।१०

५- वही आदिप० १५७।१६

६- वही मौसल प० ७।५९

समाज में विधवा स्त्रियों का सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर पाना बड़ा कठिन होता था।[१] भीष्म इत्यादि बड़े बूढ़ों के होते हुए भी विधवा कुन्ती को अपने बच्चों की रक्षा के लिये निरन्तर सचेष्ट रहना पड़ता था और अनेक बार अनेक प्रकार के अत्याचारों को चुपचाप सहन कर लेना पड़ता था। कौरवों तथा भीम को गंगाजल में डुबो देने पर चिन्तित कुन्ती दुर्योधन आदि से उस बारे में पूछने का भी साहस न रखती थी।[२] कुन्ती ने अनेक प्राणान्तक कष्टों को सहन करते हुए बड़ी मुश्किल से अपने पुत्रों की रक्षा की थी।[३]

विधवा स्त्रियों को अनाथ समझकर लोग उसका अवध करने में भी किसी कठिनाई का अनुभव नहीं करते थे। तलवार लेकर आते हुए रावण को देखकर सीता इस भय से भयभीत हो जाती है कि ऐसा प्रतीत होता है कि यह राक्षस मुझे सनाथा होते हुए भी अनाथा की भांति मार डालेगा।[४] बाल पुत्र वाली विधवा से लेन-देन का व्यवहार रखने की मनाही की गयी है।[५] शान्तिपर्व में आया है कि बहुत पुत्रों के रहते हुए भी विधवायें दुख में है।[६]

१- महा० आदिप० १५७।१३ साहं विचाल्यमाना वै प्रार्थ्यमाना दुरात्मभिः।
स्थातुं पथि न शक्यामि सज्जनैष्टे द्विजोत्तम ॥

२- वही आदिप० १२७ अध्याय।

३- वही उद्योग प० ६०।८, आदिप० २०६।६, के बाद दाक्षिणात्य पाठ पृ० ५८८।

४- रामा० युद्ध का० ९२।४७ वधिष्यति सनाथां मामनाथामिव दुर्मतिः ॥

५- महा० उद्योग प० ३७।३० विधवा बालपुत्रा - व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरिते।

६- महा० शा० प० १४८।२ सर्वापि विधवा नारी बहुपुत्रापिशोचते ॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि समाज में सामान्य विधवा नारी के लिये सम्मानित जीवन व्यतीत कर पाना बड़ा कठिन होता था ।

विधवाओं की रक्षा करना राजा का कर्तव्य -

राजाओं का यह महत्त्वपूर्ण कर्तव्य होता था कि वह विधवाओं की रक्षा करें तथा उनके योगक्षेम तथा वृत्ति की व्यवस्था करें ।[1] जो विधवायें बिल्कुल निराश्रित होती थी , उनकी रक्षा करने का विशेष आदेश दिया गया है ।[2] राजा को यह परामर्श दिया गया है कि वह क्लेश में पड़कर रोती हुई स्त्री का धन अपहरण न करे ।[3] राजा द्वारा सम्पत्ति ग्रहण के सम्बन्ध में सामान्य नियम यह था कि जिसके परिवार में कोई शेष नहीं बचता था , तो र राजा उसकी सम्पत्ति अधिगृहीत कर लेता था , परन्तु सम्भवत: विधवा के सम्बन्ध में यह लागू नहीं होता था । कलियुग में ऐसे लोग होंगे जो कि इसका उल्लंघन करते हुए दीनों , असहायों तथा विधवाओं का भी धन हड़प लेंगे ।[4] सामान्य विचारधारा यह थी कि " जो लोग बूढ़ी , अनाथ , तरुणी , बालिका , भयभीत और तपस्विनी स्त्रियों को धोखे में डालते हैं वे निश्चय

- -

१- महा० शा० प० ८६।२३ विधवानां च योषितामृ।योगक्षेमं च वृत्तिं च
नित्यमेव प्रकल्पयेत् ।

मिलाइये - नारदस्मृति १३।२८-२६

परिक्षीणे पतिकुले निर्मनुष्ये निराश्रये ।
तत्सपिण्डेषु चासत्सु पितृपक्ष: प्रभु: स्त्रिया: ।।
पक्षद्वयावसाने तु राजा भर्ता स्मृत: स्त्रिया: ।
स तस्या: भरणं कुर्यान्निगृह्णीयात् पथश्च्युताम् ।।

२- महा० सभा प० ५।५४ , वशिष्ठ ध० सु० १६।२०

३- महा० अनु० प० ६१।२५ न रुदन्ती धनं हरेत् ।

४- वही वन० प० १६०।३० विधवानां च वित्तानि हरिष्यन्तीह मानवा: ।।

ही नरकगामी होते हैं।[१] युधिष्ठिर ऐसे आदर्श राजा , उन स्त्रियों का जिनके पति और पुत्र मारे गये थे , उनका पालन पोषण बड़े आदर के साथ करते थे।[२]

आदर्श राजा के राज्य में विधवायें नहीं होती थीं -

आदर्श राजा द्वारा शासित राज्य में जहां सुख समृद्धि की अनेक विशेषताओं का वर्णन किया जाता है , वहीं एक विशेषता , यह भी होती थी कि आदर्श राजा के राज्य में कोई स्त्री विधवा नहीं होती थी।[३] धृतराष्ट्र , पाण्डु और विदुर के जन्म के समय भीष्म जी के धर्मपूर्ण शासन के कारण उस जनपद में कोई विधवा स्त्रियां नहीं देखी जाती थी।[४] परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि कोई स्त्री विधवा होती ही नहीं थी , इससे तात्पर्य इतना ही रहा होगा कि आदर्श राजा के राज्य में सब प्रकार की सुख समृद्धि होती थी , किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी। क्योंकि वास्तविकता तो यह है कि महाभारत युद्ध में प्राय: सभी स्त्रियों के पति मारे जा चुके थे। इस नियम के अनुसार तो हम युधिष्ठिर के राज्य को आदर्श राज्य नहीं कह सकेंगे। दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि स्त्रियां पति के पहले ही मृत्यु को प्राप्त करती थी , जैसा कि द्रौपदी अपने पतियों से पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हुई थी।[५] भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं - " उत्तम दण्डनीति द्वारा शासित

१- महा० अनु० प० २३।६४ अनाथां प्रमदां बालां वृद्धां भीतां तपस्विनीम् ।
वञ्चयन्ति नरा ये च ते वै निरयगामिन: ॥

२- महा० शा० प० ४२।१०-११ , ७७।१८ , आदि प० ४६।११ , रामा० युद्धका० १२८।६८ ।

३- महा० द्रोणपर्व ७७।२६

४- महा० आदिप० १०८।११ कश्चिन्नाभवन् विधवा: स्त्रिय: ।

५- वही महाप्रस्थानिक २।३ ।

राजा के राज्य में रोग नहीं होते , कोई भी मनुष्य अल्पायु नहीं दिखायी देता , स्त्रियां विधवा नहीं होती ।[1] परन्तु जब राजा समूची दण्डनीति का परित्याग करता है तो उस समय स्त्रियां प्राय: विधवा होती हैं , प्रजा क्रूर हो जाती है ।[2] राम के राज्य में भी कोई स्त्री अनाथ विधवा नहीं हुई थी ।[3] तथा हजार वर्षों तक जीने वाली स्त्रियां और सहस्त्रों वर्षों तक जीवित रहने वाले पुरुष थे ।[4] राम के राज्य में कभी विधवाओं का विलाप नहीं सुनायी देता था ।[5] उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आदर्श राजा के राज्य में किसी की असमय अकाल मृत्यु नहीं होती थी ।

स्त्रियां पुत्रवियोग को वैधव्य के समान ही महान कष्टकर मानती थीं -

महाकाव्य में उस स्त्री की अपेक्षा जिसका कि पति मर गया है , उसको अधिक सान्त्वना प्रदान की गयी है , जिसके कि पुत्र की मृत्यु हो गयी हो । महाभारत युद्ध में अभिमन्यु की मृत्यु पर उत्तरा जिसके कि पति की मृत्यु हुई थी की अपेक्षा सुभद्रा को श्रीकृष्ण और कुन्ती द्वारा अधिक सान्त्वना प्रदान की गयी , जिसका कि अभिमन्यु पुत्र था ।[6] उत्तरा का कष्टभी अपने उत्पन्न होने वाले पुत्र के लिये काफी बढ़ गया था , अपेक्षाकृत अपने पति के ।[7] वही तारा पुत्र से अधिक पति को महत्त्व देती थी ।[8]

१- महा० शा० प० ६६।८४ न भवन्त्यत्र विधवा--- ।
२- वही शा० प० ६६।६६ , २६।५२ , २६।५५
३- रामा० युद्ध का० १२८।६८ न पर्यदेवन्विधवा ।
४- रामा० युद्ध का० १२८। १०१
५- वही युद्ध का० १२८।६८ न पर्यदेवन् विधवा ।
६- महा० द्रोणपर्व ७७।६ , ७८ अध्याय , आश्वमेधिक ६१।४ , २४
७- वही आश्वमेधिक ६८।१२ , ६६। १ , ५
८- रामा० कि० का० २१।१३ ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि स्त्रियों के लिये वैधव्य महान कष्ट तथा दुख था । सामान्यत: विधवा स्त्रियों की स्थिति दयनीय होती थी ।

सती प्रथा -

बहुत से प्राचीन समाजों में सती प्रथा अर्थात् पति की मृत्यु के बाद उसके साथ चिता पर जल जाना महत्वपूर्ण धार्मिक कर्तव्य समझा जाता था ।[१] प्रारम्भ में सती प्रथा का विकास इस मान्यता से हुआ कि व्यक्ति की मृत्यु के अनन्तर उन सभी वस्तुओं की आवश्यकता होती है , जिनका कि वह जीवन में उपभोग करता है , यही कारण है कि योद्धाओं के साथ उनके धनुषबाण, तलवार , रथ इत्यादि तथा अन्य सभी प्रिय वस्तुयें जला या गाड़ दी जाती थी , जैसा कि महाभारत युद्ध में भी वर्णन है कि योद्धा अपने वस्त्रों , हथियारों और रथों के साथ जलाये गये थे ।[२] पत्नी चूंकि उसकी सबसे प्रिय वस्तु होती है , इसलिये उसे भी पति के साथ सती होने की प्रथा चल पड़ी ।[३] इस प्रथा से परिवार के मुख्य व्यक्ति का जीवन भी सुरक्षित हो जाता था , क्योंकि उसकी अनेकों स्त्रियां जो कि आपस में ईर्ष्या करती थीं पति को विनष्ट करने

- -

१- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाईजेशन , पृ० ११६ । काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास प्रथम भाग पृ० ३४८ । वेस्टरमार्क - ओरिजिन एण्ड डवलपमेन्ट आव मोरल आइडियाज , १६०६ जिल्द १ , पृ० ४७२-४७६ ।

२- महा० स्त्रीपर्व ३१-३३ अध्याय

३- मैकडोनल - हि० सं० लि० अध्याय ५ , पृ० १२६
मैकडोनल - वैदिक मैथोलोजी पृ० १६५ ।

का प्रयास इसलिये नहीं करती थी कि उसके मरने पर उन लोगों को भी सती होना पड़ेगा ।[१]

परन्तु भारतवर्ष में प्राचीन काल में सती प्रथा के प्रचलित होने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता । गृहसूत्रों में भी इस विषय में वर्णन नहीं प्राप्त होता , जब कि उनमें महत्त्वपूर्ण संस्कारों और अन्त्येष्टि संस्कार का वर्णन बहुत विस्तार से प्राप्त होता है । परवर्ती टीकाकारों तथा विधान निर्माताओं ने सती प्रथा के समर्थन में ऋग्वेद की एक ऋचा को उद्धृत किया है[२], उसका अर्थ इस प्रकार है - " ये स्त्रियां जो विधवा नहीं हैं , जिनके पति अच्छे हैं , अपनी आंखों में अंजन लगाये हुए प्रविष्ट हों , अश्रुहीन , रोगहीन और आभूषणों से विभूषित ये मकान में पहले : अग्रे : प्रवेश करें । इस श्लोक में : अग्रे : आगे के स्थान पर " अग्नेः " : अग्नि में : कर देने से इसका अर्थ विकृत हो गया है । वास्तव में यह श्लोक विधवाओं को संबोधित न होकर उन स्त्रियों के विषय में है जो कि " अपने जीवित पतियों के साथ आगे आकर अग्नि लगाने के पहले लाश का अभिषेक करती थीं ।

अथर्ववेद में अन्त्येष्टि संस्कार के समय का वर्णन आया है कि - " यह स्त्री अपने पति के लोक को चुनकर तेरे पास लेटी हुई है , तू सिधार चुका है , ओ मर्त्य पुराने धर्म का पालन करती हुई उसे सम्पत्ति और सन्तान दो ।[३]

- -

१- पी० थामस - वीमैन एण्ड मैरिज आफ इण्डिया , लन्दन १६३६ पृ० ६०-६१ , अर्थशास्त्र के आधार पर कहा है कि सती प्रथा का आरम्भ इसलिये हुआ कि रानियां जहर देकर अपने पतियों को मार डालती थीं । परन्तु महाकाव्य के बारे में यह कथन उचित नहीं है ।

२- ऋ० १०।१८।७ इमा नारीरविधवाः सपत्नीरांजनेन सर्पिषा संविशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे ।।

३- अथर्व० १०।३।१

यहां पर भी पत्नी के चिता के बगल में लेटने का ही उल्लेख है , सती होने का नहीं , वरन् जो कहा गया है कि " तू इसे सम्पत्ति सन्तान दे , इससे तो यह स्पष्ट होता है कि कवि चाहता है कि विधवा पुनर्विवाह कर सुख सम्पत्ति का उपभोग करे ।

महाकाव्यकाल में सती प्रथा सामान्य रूप से प्रचलित न थी । यद्यपि यत्र-तत्र इसके दर्शन हो जाते हैं । रामायण में सती प्रथा का एक ही उदाहरण प्राप्त होता है और वह भी उत्तरकाण्ड में , कि वेदवती को माता अपने पति के शव के साथ चिता की आग में प्रविष्ट हो गयी ।[१] परन्तु विद्वानों की यह धारणा है कि यह बाद में जोड़ा गया है और दूसरे यह कथा केवल पौराणिक कथा मालुम पड़ती है , ऐतिहासिक नहीं । क्योंकि रामायण में अन्य कोई भी उदाहरण इस प्रथा के समर्थन में नहीं प्राप्त होता , वरन् इसके विपरीत दशरथ की रानियां , बाली की विधवा पत्नी तारा , तथा रावण को विधवा पत्नियां सती न होकर जीवित रहीं । यद्यपि पति की मृत्यु के अनन्तर पत्नियों द्वारा व्यक्त किये गये शाकोद्गार में प्राणत्याग के उद्गार पाये जाते हैं जैसे कौशल्या विलाप करते हुए कहती है कि - " मैं आज ही मृत्यु का वरण करूंगी एक पतिव्रता को भांति पति के शरीर का आलिंगन करके चिता की आग में प्रवेश कर जाऊंगी ।[२] इसी प्रकार बाली की मृत्यु पर तारा अन्न जल छोड़कर आमरण अनशन द्वारा प्राणत्याग का विचार करती है[३]। और स्वामी का आलिंगन कर सती होने को श्रेष्ठ मानती है ।[४] राम की कथित मृत्यु पर सीता

१- रामा० उ० का० १७।१५

तती मे जननी दीना तच्छरीरं पितुर्मम ।
परिष्वज्य महाभागा प्रविष्टा हव्यवाहनम् ।।

२- रामा० अयो० का० ६६।१२

३- वही कि० का० २०।२६

४- वही कि० का० २१।१३ हतस्याप्यस्य वीरस्य मात्र संश्लेषणं वरम् ।।

रावण से यह अनुरोध करती है कि तुम मेरा भी वध कर डालो और इस प्रकार पति को पत्नी से मिला दो[1] और मैं अपने महात्मा पति को गति का ही अनुसरण करूंगी[2]। परन्तु उपर्युक्त जितने भी उदाहरण हैं, वे शोक की तीव्रता को ही व्यक्त करते हैं, सती होने की नहीं। अल्टेकर इसे बाद का जोड़ा हुआ मानते हैं[3]। हापकिन्स ने सुन्दरकाण्ड में वर्णित सीता के इन विचारों कि - मैं बड़ी ही अनार्य और असती हूं, मुझे धिक्कार है जो उनसे अलग होकर एक मुहूर्त भी इस पापी जीवन को धारण किये हुए हैं[4] के आधार पर यह मत व्यक्त किया है कि जो स्त्रियां सती नहीं होती थीं, वे खराब जीवन व्यतीत करती थीं[5]। परन्तु हापकिन्स का यह मत उचित नहीं प्रतीत होता। क्योंकि असती से तात्पर्य यहां सती होने या बुरे से नहीं है, वरन् इसका सामान्य अर्थ है कि शोक की तीव्रता में व्यक्ति अपने भाग्य को और अपने आपको ही कोसता और बुरा भला कहता है तथा सब दुखों की जड़ अपने आपको ही मानता है। इसी प्रकार सीता का यह कथन उनके शोक की तीव्रता को ही स्पष्ट करता है। अन्य स्थानों पर भी इस प्रकार का वर्णन आया है कि पत्नियां बिना पत्नियों के जीने का उत्साह नहीं रखतीं, वह सीता द्वारा व्यक्त किये गये विचारों के

- -

१- रामा० युद्धका० ३२।३१

२- वही युद्ध का० ३२।३२ रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तुर्महात्मनः।

३- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० १२१।

४- रामा० सु० का० २६।७

धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन बिना कृता।

मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका।।

५- हापकिन्स - "दि ग्रेट एपिक आफ इण्डिया" प्रकाशक - येल युनिवर्सिटी प्रेस, न्यू हैविन, १६२० अ० २, पृ० ८१, पैरा १ लाइन ७-८।

अनुसार हो है ।[1] रामायण में वर्णन आया है कि दशरथ की सभी रानियां जीवनकाल में नाना प्रकार के धर्म का अनुष्ठान करके अन्त में साकेत धाम को प्राप्त हुई और बड़ी प्रसन्नता से राजा दशरथ से मिली, उन रानियों को धर्म का पूरा-पूरा फल प्राप्त हुआ ।[2]

महाभारत में सती प्रथा का सर्वप्रसिद्ध उदाहरण माद्री का प्राप्त होता है जो कि पाण्डु की छोटी पत्नी थी ।[3] माद्री के चितारोहण के पश्चात पाण्डु और माद्री दोनों की अस्थियां हस्तिनापुर लायी गयीं थीं ।[4] और उनका दाह संस्कार किया गया था ।[5] माद्री के द्वारा कुन्ती से सती होने के लिये आज्ञा मांगे जाने पर कुन्ती कहती है कि - " मैं इनकी ज्येष्ठ धर्मपत्नी हूं, अतः धर्म के ज्येष्ठ फल पर भी मेरा ही अधिकार है[6] अतः मैं ही पति का अनुगमन करूंगी, मैं पति के साथ दग्ध होकर वीरपत्नी का पद पाना चाहती हूं ।[7] परन्तु माद्री अपने सती होने के पक्ष में तर्क देते हुए कहती है - मैं उनके साथ होने वाले काम भोग से तृप्त नहीं हो सकी हूं,[8] दूसरे पाण्डु मेरे प्रति आसक्त होकर ही मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, अतः उनकी कामना की तृप्ति मुझे

- -

१- रामा० अयो० का० ६६।१४, युद्धका० ११६।१८ नाहं जीवितुमुत्सहे । महा० द्रोणप० २४।११, सौप्तिक पर्व ४।२६, मौसलपर्व ८।२३, कथं जीवितुमुत्सहे, नहि शक्यामि जीवितुम् ।

२- रामा० उ० का० १००।१६-१७

३- महा० आदि प० १२४।३१

४- महा० आदिप० १२५।३२ इमे तयोः शरीरे ------- । क्रियाभिरनुगृह्णन्तां सह मात्रा परंतप: ।।

५- महा० आदिप० १२६। ६, २३

६- वही आदि प० १२४।२३ अहं ज्येष्ठा धर्मपत्नी ज्येष्ठं धर्मफलं मम ।

७- महा० आदि प० १२४।२४ वीरपत्नीत्वमर्थये ।।

८- वही आदि प० १२४। २५ न हि तृप्तास्मि कामानां ज्येष्ठामामनुमन्यताम् ।

करनी चाहिये ।[१] तीसरे मैं आपके पुत्रों के साथ सगे पुत्रों का सा व्यवहार नहीं कर पाऊंगी ।[२] इस प्रकार उसने कहीं भी धार्मिक कारण का उल्लेख नहीं किया और न अन्य लोगों ने ही कहा । इसके विपरीत ऋषियों ने इन दोनों को इस कार्य से विरत करते हुए कहा था कि - " तुम दोनों के पुत्र बालक हैं , अत: तुम्हें किसी प्रकार देह त्याग नहीं करना चाहिये ।[३] माद्री द्वारा दिये गये तर्कों से स्पष्ट है कि वह कुन्ती के अधिकार के प्रति सचेत है और वह उनसे आज्ञा लेकर ही सती होती है ।[४] इसी प्रकार वसुदेव की चार पत्नियां देवकी , भद्रा , रोहिणी , मदिरा उनकी चिता पर चढ़ी थीं ।[५] कृष्ण की मृत्यु का समाचार जब हस्तिनापुर पहुंचा , तब उनकी पांच पत्नियां - रुक्मिणी , गान्धारी , शैव्या , हैमवती तथा जाम्बवती ने पतिलोक की प्राप्ति के लिये श्रीकृष्ण के शरीर के साथ अग्नि में प्रवेश किया ।[६] जब कि सत्यभामा तथा अन्य स्त्रियां तपस्या करने के लिये वन में चली गयीं ।[७] विराटपर्व में सैरन्ध्री को कीचक के साथ जल जाने की अनुमति दी गयी थी ।[८]

१- महा० आदिप० १२४।२६

२- वही आदिप० १२४।२७

३- वही आदिप० १२४ , २८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ , पृ० ३७२

४- महा० आदि प० १२४। पृ० ३७३ , १२४।२९

५- वही मौसल प० ७।१८

तं देवकी च भद्रा च रोहिणी मदिरा तथा ।
अन्वारोहन्त च तदा भर्तारं योषितां वरा: ।।

६- महा० मौसल प० ७।७३

७- वही मौसल प० ७।७४

८- वही विराट प० २३।८ । क्योंकि ऐसा विश्वास था कि मृतक को जो प्रिय हो , जिससे उसकी आत्मा प्रसन्न हो , वही कार्य करना चाहिये , इसलिये वे द्रौपदी को कीचक के साथ जला रहे थे , क्योंकि वह उसी में आसक्त होकर मरा था । विराट पर्व २३।६-७ ।

इससे यह प्रतीत होता है कि जब महाभारत के अन्तिम पर्वों का प्रणयन हो रहा था , उस समय इस प्रथा को प्रोत्साहन दिया जा रहा था , और इसकी फल प्राप्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि इससे स्त्री को स्वर्ग में स्थान प्राप्त होता है।[१] यह बाद में प्रचलित विचारधारा प्रतीत होती है। इस प्रथा को न केवल स्त्रियों द्वारा अपनाना दिखाया गया वरन् पक्षियों की कहानियों के माध्यम से भी इसे रुचिकर तथा लोकप्रिय बनाया गया। शान्तिपर्व में वर्णन आया है कि एक कपोती अपने पति के साथ प्रज्ज्वलित अग्नि में समा गयी।[२] इस प्रकार उस कपोती ने स्वर्गलोक में अपने पति के सान्निध्य को प्राप्त किया।[३] यह अनुमरण का ही उदाहरण कहा जा सकता है।[४] साथ ही यह कहा गया है कि - " जो स्त्री अपने पति का अनुसरण करती है , वह कपोती के समान शीघ्र ही स्वर्गलोक में स्थित हो अपने तेज से प्रकाशित होती है।[५] इस प्रकार स्पष्ट है कि शान्तिपर्व के प्रणयन के समय इस प्रथा को प्रोत्साहन दिया जा रहा था।

इस प्रकार जहाँ सती होने के उपर्युक्त उदाहरण प्राप्त होते हैं , वहीं स्त्रीपर्व में जो कि योद्धाओं के अन्त्येष्टि संस्कारों से भरा पड़ा है ,

---

१- महा० मौसल प० ७।२४

२- महा० शा० प० १४८।१०

३- वही शा० प० १४८।१२

४- वही शा० प० १४८। १०-१२

५- वही शा० प० १४६।१५

यापि चैवंविधा नारी भर्तारमनुवर्तते ।
विराजते हि सा क्षिप्रं कपोतीवदिव स्थिता ।।

विधवाओं के सती होने का कोई उदाहरण नहीं प्राप्त होता , जब कि सैकड़ों हजारों योद्धा अपने वस्त्रों , हथियारों और रथों के साथ जलाये गये ।[१]

ब्राह्मणी सती का एक उदाहरण -

सामान्यत: योद्धाओं अर्थात क्षत्रियों की ही पत्नियां सती धर्म का पालन करती थीं , ब्राह्मण स्त्रियां नहीं । महाभारत में हमें ब्राह्मणी आंगिरसी के सती होने का एक ही प्रमाण प्राप्त होता है ।[२] आङ्गिरसी उस समय सती होती है , जब राक्षस बने कल्माषपाद द्वारा उसके पति का भक्षण कर लिया जाता है , जब कि वह पुत्रोत्पत्ति की इच्छा से अपने पति के पास गयी थी । यह घटना माद्री और पाण्डु के ही समान है । ब्राह्मणी के सती होने की यह घटना बहुत बाद की प्रतीत होती है ।[३] क्योंकि स्त्रीपर्व में द्रोणाचार्य की पत्नी कृपी रोती हुई आती है , परन्तु सती नहीं होती ।[४] सम्भवत: यह बाद का संस्करण वशिष्ठ मदयन्ती के नियोग को उचित ठहराने के लिये है । जब कि नियोग की प्रथा बन्द हो गयी थी ।[५]

- -

१- महा० स्त्रीप० ३१ से ३३ अध्याय

२- महा० आदिप० १८१।२२ सा तमाङ्गिरसी शुभा ।
तस्यैव संनिधौ दीप्तं प्रविवेश हुताशनम् ।।

३- काणे धर्मशास्त्र का इतिहास , प्रथम भाग , पृ० ३४६

४- महा० स्त्रीप० २३।२

५- कुछ लोगों का कहना है कि यह प्रथा सीथियन्स , स्लाव , नार्वे के गोथ लोगों में प्रारम्भ में प्रचलित थी - वी० ए० स्मिथ " दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया " , पृ० ६६५ । पी० थामस - आर्टिकल - " दि इन्स्टीट्यूशन आफ सती " पृ० १८-१६ में ," दि इल्यूस्ट्रेटेड वीकली आफ इण्डिया " मार्च २ , १६५८ ब्राह्मणियों ने इस प्रथा को बहुत बाद में अपनाया ।

अनुमरण और सहमरण का सिद्धान्त -

पति की मृत्यु पर विधवा के जल जाने को सहमरण या सहगमन या अन्वारोहण : जब विधवा पति की चिता पर चढ़ाकर शव के साथ जल जाती है : कहा जाता है , किन्तु अनुमरण तब होता है जब पति और कहीं मर जाता है , तथा जला दिया जाता है और उसकी भस्म या पादुका या बिना किसी चिन्ह के उसकी विधवा जलकर मर जाती है।[१] आदि पर्व में आया है कि - " पति संसार में हो अथवा मर गया हो , अथवा अकेले ही नरक में पड़ा हो पतिव्रता स्त्री सदा ही उसका अनुगमन करती है। साध्वी स्त्री यदि पहले मर गयी हो तो परलोक में जाकर वह पति की प्रतीक्षा करती है और यदि पहले पति मर गया हो तो सती स्त्री पीछे से उसका अनुसरण करती है।[२] यद्यपि सहमरण अथवा अनुमरण का स्पष्टत: उल्लेख तो नहीं किया गया परन्तु अभिप्राय सहमरण से ही है। सावित्री के द्वारा अपने पति की मृत्यु के बाद भी उसका अनुसरण किया गया था , इसे ही पत्नी का सनातन धर्म माना गया था।[३] अपने पति का अनुसरण करने वाली स्त्री स्वर्गलोक में अपने तेज से प्रकाशित होती है।[४] बाद में पुराणों तथा स्मृतियों के काल में इस सिद्धान्त का विकास हुआ।

- -

१- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास , प्रथम भाग , पृ० ३४६ , अपरार्क पृ० १११ , तथा मदनपारिजात पृ० १६८।

२- महा आदि प० ७४। ४५-४६

३- वही वनप० २९७।२१ यत्र मे नीयते भर्ता ---------- ।

मया च तत्र गन्तव्यमेष धर्म: सनातन: ।।

४- महा० शा०प० १४६।१३-१५

व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ।

तथा सा पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ।। पाराशरस्मृति ४।३१

विधवाओं द्वारा सामूहिक आत्महत्या -

महाभारत युद्ध के पश्चात यद्यपि धृतराष्ट्र को पुत्रवधुयें सती नहीं हुई थीं , परन्तु कालान्तर में व्यास के द्वारा आवाहन किये जाने पर[१] उन विधवा क्षत्राणियों ने जल में प्रवेश कर जल समाधि ले ली ।[२] यहां पर यह दृष्टव्य है कि जब विधवा क्षत्राणियां उस समय सती नहीं हुई , जब कि उनके पतियों की मृत्यु हुई तो कालान्तर में ऐसी कौन सी समस्या उपस्थित हुई जिसके कारण उन्हें जल में प्रवेश कर अपने को समाप्त करना पड़ा । इस सम्बन्ध में हम सम्भावित कारणों में कह सकते हैं कि - विधवायें अपने उस वैधव्य जीवन के दुख से बोझिल हो चुकी थीं , इस कारण उन्होंने जल समाधि ले ली , अथवा अब समाज में उनका जीवन असुरक्षित हो गया था , क्योंकि समाज में चोर डाकुओं की संख्या बढ़ रही थी , जैसा कि अर्जुन द्वारा लायी जाती हुई द्वारकावासी स्त्रियों पर मार्ग में लुटेरों ने आक्रमण कर दिया था और उनको अपने साथ ले गये थे ।[३] सम्भवत: अपने इस जीवन से ऊबकर उन लोगों ने एक साथ जल में प्रवेश कर लिया , उनके दुखों के अन्त का एकमात्र यही उपाय शेष था ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि महाकाव्य काल में सामान्यत: सती प्रथा प्रचलित न थी । यद्यपि कालान्तर में पातिव्रत्य के

- -

१- महा० आश्रम वा० ३३।१६

२- वही आश्रमवा० ३३।२०। वनप० ८५।८३ में कहा गया है कि प्रयाग में मरना पवित्र है , यद्यपि वेद में तथा लोक में भी आत्महत्या को पाप माना गया है । आदि प० १७८।२० आत्महत्या करने वाला पुरुष शुभ लोकों को प्राप्त नहीं करता ।

३- महा० मौसल प० ७।५८-६७ ।

ऊँचे आदर्श के कारण इस प्रथा को बल मिल रहा था । गाथासप्तशती[१] में अनुमरण करने वाली एक नारी का उल्लेख है । कामसूत्र[२] में भी अनुमरण का उल्लेख आया है । बराहमिहिर ने इन विधवाओं के साहस की प्रशंसा की है , जो पति के मरने पर अग्नि प्रवेश कर जाती है ।[३] बाण ने हर्षचरित :५: में अनुमरण का आलंकारिक रूप से उल्लेख किया है , यद्यपि बाण ने सती प्रथा की बड़े कड़े शब्दों में निन्दा की है ।[४] भागवत पुराण ने धृतराष्ट्र के शव के साथ गान्धारी के भस्म होने के सम्बन्ध में लिखा है ।[५] राजतरंगिणी[६] में कई स्थानों पर सती होने के उदाहरण उपलब्ध होते हैं । इस प्रकार यत्र-तत्र इस प्रथा के उदाहरणों में वृद्धि हो रही थी । महाकाव्य काल में सती प्रथा के अधिकांश उदाहरण बाद के ही प्रतीत होते हैं , यद्यपि उस समय तक यह प्रथा ऐच्छिक थी । १८ वीं शता० में इस प्रथा ने अत्यन्त उग्र रूप धारण कर लिया था , जब कि विधवाओं की अनिच्छा पर भी उन्हें जलने के लिये विवश किया जाता था ।

पुनर्विवाह -

धर्मशास्त्रों द्वारा पुरुषों को पुनर्विवाह की आज्ञा दी गयी है , परन्तु स्त्रियों के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण उदार नहीं था । वैदिक

- -

१- गाथा सप्तशती ७।३२

२- कामसूत्र ६।३।५३

३- बृहत्संहिता ७४।१६

४- कादम्बरी पूर्वार्द्ध पृ० ३०८

५- भागवत पुराण १।१३।५७

६- कल्हण - राजतरंगिणी ६।१०७ , १९५, ७।१०३ , ४७८ ।

काल में विधवा विवाह प्रचलित था[१]। अथर्ववेद में भी एक संस्कार का वर्णन आया है जिसके द्वारा स्त्री के पुनर्विवाह का आभास मिलता है। उसमें कहा गया है - " जब कोई पूर्ण परिणीता फिर दूसरे पति से विवाह करती है, तब वे यदि पंचौदन और बकरी का दान करें तो वे दोनों कभी अलग नहीं होते, और वह अपनी पूर्वविवाहिता पत्नी के साथ उसी लोक में पहुंचता है[२]। तैत्तिरीय संहिता[३] में विधवा पुत्र जिसे " दैधिशव्य " कहा गया है का उल्लेख विधवा पुनर्विवाह की ओर संकेत करता है। धर्मसूत्रों तथा कुछ स्मृतियों में भी विशेष परिस्थितियों में पुनर्विवाह की आज्ञा दी गयी है[४]।

- -

१- अल्तेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन पृ० १५०।
डा० राधाकृष्णन - " धर्म और समाज " पृ० २०६।

२- अथर्व० ६।५।२७-२८

३- तै० सं० ३।२।४

४- वशिष्ठ ध० सू० १७।६७ - एक ब्राह्मण स्त्री को जिसका पति विदेश गया हो, बच्चे जीवित हो तो पांच वर्ष की प्रतीक्षा के बाद उसे निकट के सम्बन्धी से विवाह कर लेना चाहिये। कौटिल्य ने इस सम्बन्ध में प्रतीक्षा की अवधि कम कर दी है : अधिकतम दस महीने तक : क्योंकि कौटिल्य के अनुसार सन्तानजनक ऋतुकाल का अतिक्रमण धर्मवध जैसा महापाप है, कौटिल्य ३।४, नारद १२।८८। वशिष्ठ ध० सू० १७।१६-२० पुनर्विवाह करने वाली स्त्री को ' पुनर्भू ' की संज्ञा दी गयी है। वशिष्ठ ध० सू० १७।७४। नारद ने पांच विपत्तियों में स्त्री के लिये पुनर्विवाह की आज्ञा दी है - " जब पति नष्ट हो गया हो, मर जाय, सन्यासी हो जाय, नपुंसक हो या पतित हो।" नारद स्त्रीपुंस प्रकरण ९७। पराशर ४।३०, अग्नि पुराण १५४।५-६ इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है। नारद - स्त्रीपुंस ९८-१०१, मनु ९।१७६। बौ०ध०सू० ४।१।१८, वशिष्ठ ध०सू० १७।४४, याज्ञ० १।७५ पुनर्विवाह के संस्कार के बारे में। कहा है।

बुद्धकाल में भी पुनर्विवाह के कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं। एक वृद्ध श्रेष्ठि इस बात के लिये चिन्तित रहता था कि उसकी मृत्यु के बाद उसकी नवयुवती पत्नी किसी नवयुवक से विवाह कर लेगी।[1] उच्छंग जातक में एक ऐसी स्त्री का वर्णन आया है - " जो बन्दी बनाये गये पति, पुत्र तथा भ्राता में भाई को ही मुक्त करने के लिये ही राजा से प्रार्थना करती है, कारण पूछने पर वह कहती है - " मैं दूसरा पति और पुत्र प्राप्त कर सकती हूं, परन्तु माता-पिता के मृत होने के कारण सहोदर भाई नहीं प्राप्त कर सकती।[2]

महाकाव्य काल में आर्यों में विवाह सम्बन्ध को अखण्डनीय तथा अविच्छेद्य मानने के कारण आर्य विधवाओं के पुनर्विवाह के उदाहरण नहीं प्राप्त होते, केवल कृष्ण की कुछ विधवाओं को छोड़कर जो कि लुटेरों के साथ चली गयी थीं।[3] आर्य स्त्रियों की आकांक्षा न केवल इहलोक में वरन् परलोक में भी पति सहगमन की होती थी।[4] जर्मन विद्वान् जे० जे० मेयर[5] ने अरण्यकाण्ड में सीता की इस उक्ति के आधार पर कि " लक्ष्मण तुम चाहते हो कि राम मर जायें, जिससे तुम मुझे प्राप्त कर सको।[6] यह निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है कि आर्यों में विधवायें अपने देवर का वरण कर लेती होंगी, अन्यथा राम की मृत्यु के बाद लक्ष्मण द्वारा ग्रहण किये जाने

- -

१- नन्द जातक ३९, देखिये - " बुद्धकालीन समाज और धर्म - डा० मदनमोहन सिंह, पृ० ५५।

२- उच्छंग जातक १, पृ० ३०७ उत्संगे देव मे पुत्ते पथे धावंतिया पती।

३- महा० मौसलपर्व ७।५९

४- रामा० अयो० का० २९।१७-१८

५- जे० जे० मेयर - सेक्सुअल लाइफ इन एन्शियेंट इंडिया, पृ०-१२०

६- रामा० अरण्यका० ४५।६

इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ॥

को आशंका सीता के मन में क्यों उत्पन्न होती । परन्तु मेयर द्वारा व्यक्त की गयी यह आशंका विषयवस्तु के पौर्वापर्य का अध्ययन करने पर उचित नहीं प्रतीत होती । सीता के द्वारा इस प्रकार का विचार उस समय व्यक्त किया गया है , जब कि वे पति के जीवन के नष्ट होने की आशंका से विचलित हो उठी थी , और शोक के प्रबल वेग के कारण अपना विवेक खो बैठी थीं ।[1] लक्ष्मण द्वारा भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया गया है कि - " निश्चय ही आज आपकी बुद्धिमारी गयी है , जो आप ऐसा आरोप लगा रही हैं , तथा आपका यह कथन निश्चय ही स्त्रियोचित दुर्बलता का ही परिणाम है ।[2] अत: आवेश में कही हुई बात पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त सीता ने अन्य अनेक स्थानों पर भी राम को मरा जानकर विलाप किया है , परन्तु उन्होंने कहीं पर रंचमात्र भी देवर द्वारा ग्रहण किये जाने की आशंका व्यक्त नहीं की ।[3] अत: मेयर का मत समीचीन प्रतीत नहीं होता । " एस० एन० व्यास "[4] ने भी मेयर के इस विचार का खण्डन किया है ।

वानरों में अवश्य विधवा पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित रही होगी । तभी तो बालि की मृत्यु पर तारा अपने पति के साथ प्रगाढ़ सम्बन्धों का स्मरण कर विलाप करती है[5] , परन्तु बालि की प्रेत क्रिया सम्पन्न हो जाने के बाद[6] वह बालि की मृत्यु से उत्पन्न दुख को भूलकर सुग्रीव की प्रियतमा बन जाती है ।

१- रामा० अरण्य का० ४५।२

२- रामा० अरण्यका० ४५। २६ , ३२

स्वभावस्त्वेष नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते ।
धिक् त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे ।।

३- रामा० युद्ध का० ३२। ४-३१ , ४८। २-२१
४- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० १८०
५- रामा० कि० का० २० वां सर्ग २३। १२-१३

६- वही कि० का० ३३। ५६ , ५८ , ३५।५ , ३५ वां सर्ग

७-

सम्भवत: वानरों में विधवा का देवर को पति रूप में स्वीकार करना मान्य प्रथा थी, परन्तु बड़े भाई के द्वारा छोटे भाई की पत्नी के साथ काम सम्बन्ध स्थापित करना अमान्य प्रथा थी और इसी कारण राम द्वारा भी बालि को दण्डित किया गया था।[१] यद्यपि तारा का पुत्र अंगद सुग्रीव तथा तारा के इस सम्बन्ध की कटु आलोचना करता है, और इसके लिये वह अपने चाचा सुग्रीव की ही निन्दा करता है।[२] विजित (बाली) की पत्नी का इस प्रकार विजेता (सुग्रीव) द्वारा युद्ध को लूट के रूप में मिल जाना वानरों की एक असंस्कृत रूढ़ि का परिचायक माना जा सकता है।[३]

राक्षसों में भी सम्भवत: विधवा पुनर्विवाह का प्रचलन था। रावण की बहिन शूर्पणखा विधवा थी जिसके पति विद्युज्जिह्व को स्वयं रावण ने भूलवश युद्ध में मार डाला था।[४] कामासक्त होकर राम से पुन: विवाह करने के लिये आग्रह करती है।[५] स्वयं रावण ने भी अपने विरोधियों को मारकर उनकी विधवाओं से विवाह किया था।[६]

महाभारत काल में भी स्त्रियों के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में दृष्टिकोण असम्मानजनक था, यद्यपि यह प्रथा अज्ञात नहीं थी, तथा यदा कदा इसके उदाहरण भी प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु इस प्रकार का कार्य स्वेच्छाचारिता

- -

१- रामा० कि० का० १८।१८-२०

२- वही कि० का० ५५।३

३- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज, पृ० १८१

४- रामा० उ० का० २३।१८

५- वही अरण्य का० १७। १६-२६

६- वही उ० का० २४।२ ।

समझा जाता था । इस सम्बन्ध में दमयन्ती का द्वितीय स्वयंवर उल्लेखनीय है । दमयन्ती के द्वारा द्वितीय स्वयंवर की घोषणा[1] तथा राजाओं का स्वयंवर के लिये उपस्थित होना[2] इस बात को द्योतित करता है कि उस काल में पुनर्विवाह बिल्कुल बन्द न थे , तथा अपवादस्वरूप वे यदा कदा हो जाते थे । इस सम्बन्ध में टिप्पणी करते हुए महाभारतमीमांसाकार ने मत व्यक्त किया है - " त्रैवर्ण को छोड़कर अन्य वर्णों में और खासकर शूद्रों में उसका चलन रहा ही होगा । शूद्रों के तथा औरों के अनुकरण से कुछ आर्य स्त्रियां स्वच्छन्द व्यवहार कर पुनर्विवाह के लिये तैयार हो जाती होंगी , परन्तु आर्यों में सम्पन्न होने वाले क्वचित् पुनर्विवाह लोकप्रशस्त अथवा जातिमान्य न होते होंगे ।[3] आर्य स्त्रियों के इस व्यवहार की समाज के सम्भ्रान्त व्यक्तियों द्वारा कटु आलोचना की जाती थी । तभी तो नल कहते हैं कि - " कोई भी स्त्री अपने अनुरक्त एवं भक्त पति को छोड़कर दूसरे पुरुष का वरण कैसे कर सकती है , जैसा कि तुम करने जा रही हो । दमयन्ती स्वेच्छाचारिणी है और अनुरूप पति का वरण कर सकती है , यह जानकर ऋतुपर्ण बड़ी उतावली के साथ यहां उपस्थित हुए हैं ।[4] स्पष्ट है कि इस प्रकार का कार्य स्वेच्छाचारिता पूर्ण कार्य समझा जाता था तथा दमयन्ती के द्वारा नल की इस आशंका के

- -

१- महा० वन० प० ७०। २४-२६

२- महा० वनप० ७३। १७-२०

३- सी० वी० वैद्य - महाभारत मीमांसा , पृ० २२१

४- महा० वनप० ७६। २२-२४

उत्सृज्य वरयेदन्यं यथा त्वं भीरु कर्हिचित् ।।

० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०

स्वैरवृत्ता यथाकाममनुरूपमिवात्मनः ।

श्रुत्वैवं चैवं त्वरितो भाङ्गासुरिरुपस्थितः ।।

विरोध में जो तर्क दिये गये हैं वे भी इसी तथ्य को स्पष्ट करते हैं।[१] दमयन्ती कहती है - " मैं मन से भी असदाचरण नहीं करती हूं "[२] तथा देवताओं द्वारा उसकी पवित्रता सिद्ध किये जाने पर नल अपनी आशंका का परित्याग कर देते हैं।[३] दमयन्ती के उपर्युक्त कथनों से भी स्पष्ट है कि अगर दमयन्ती द्वारा पुनर्विवाह कर लिया जाता तो वह असदाचरण होता जो असती स्त्रियों द्वारा किया जाता है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि - " अगर पति का बहुत दिनों से पता न हो तो पत्नी द्वितीय पति का वरण कर सकती है, क्योंकि दमयन्ती ने यह घोषणा करायी थी कि - " कल सूर्योदय होने के बाद वह दूसरे पति का वरण कर लेगी, क्योंकि नल जीवित है या नहीं, इसका कुछ पता नहीं लगता है।[४] साथ ही दमयन्ती उस समय दो सन्तानों की जननी थी, इससे स्पष्ट है कि उस काल के समाज में किसी-किसी अवस्था में विवाहिता पुत्रवती नारी भी इच्छा होने पर अपर पुरुष को पति रूप में ग्रहण कर सकती है।[५] यद्यपि नल को इस बात का आश्चर्य था कि अपत्यवती होते हुए भी वह दूसरा विवाह कर रही है।[६] इसी प्रकार नागराज कौरव की कन्या उलूपी का विवाह पहले नागजातीय पुरुष से हुआ था। सुपर्ण द्वारा पति के अपहृत होने पर वह वैधव्य का अवलम्बन कर पिता के घर में रह रही थी।[७] अर्जुन के तीर्थयात्रा काल में उनका विवाह उलूपी से हुआ और अर्जुन ने उसके गर्भ

१- महा० वनप० ७६।३०

२- वही वनप० ७६।३१-३४

३- वही वनप० ७६। ३६-३८

४- वही वनप० ७०।२६ सूर्योदये द्वितीयं सा भर्तारं वरयिष्यति।
न हि स ज्ञायते वीरो नलो जीवति वा न वा।।

५- महा० वनप० ६०।२३

६- महा० वनप० ७१।७

से इरावन नामक पुत्र उत्पन्न किया ।[१] लेकिन अन्यत्र यह उल्लेख है कि उलूपी विधवा नहीं थी क्योंकि वह अर्जुन से कहती है - " मैंने आपके सिवा दूसरे को अपना हृदय अर्पण नहीं किया है ।[२] द्यूतसभा में दास्य भाव को प्राप्त हुई द्रौपदी के प्रति कर्ण का यह वचन कि - " आज से धृतराष्ट्र के समस्त पुत्र तुम्हारे स्वामी हैं , कुन्ती के पुत्र नहीं , अब तुम शीघ्र ही दूसरा पति चुन लो , दासीपन में तो स्त्री की स्वेच्छाचारिता प्रसिद्ध ही है ।[३] इससे स्पष्ट है कि पुनर्विवाह की रीति निन्द्य तथा दासी स्त्रियों के योग्य मानी जाती थी । दासियों के लिये नैतिक नियमों की शिथिलता थी , तथा भद्र समाजों में भी वे अपने मान सम्मान की रक्षा करने में समर्थ न थीं तथा उन्हें अपने प्रभुओं को हर उचित अनुचित आज्ञा का पालन करना पड़ता था । गन्धर्वों की पत्नी मानी गयी द्रौपदी को कीचक पत्नी बनाना चाहता था[४] और सुदेष्णा को यह आशंका थी कि कहीं विराट ही सैरन्ध्री पर अनुरक्त न हो जाय ।[५] अम्बिका द्वारा अपने स्थान पर दासी को व्यास के शयनकक्ष में भेजना[६] तथा राजा बलि की पत्नी का दीर्घतमा मुनि के पास अलंकृत परिचारिका को भेजना[७] सिद्ध करता है कि उस काल में दासियों के लिये नैतिक नियमों का पालन करना सम्भव नहीं होता था । अतः स्पष्ट है कि दासियों के द्वारा द्वितीय पति का वरण आश्चर्य

- -

१- महा० आदिप० २१३।१३ , २१३।२७-३२ , २१३।३४-३६

२- वही आदिप० २१३।२०

३- वही सभाप० ७१।२-३

अन्यं वृणीष्व पतिमाशु भाविनी यस्माद्दास्यं न लभसि देवनेन ।

४- महा० विराट प० १४।१-३३

५- वही विराट प० ६।२५

६- वही आदि प० १०६।२४

७- वही आदिप० १०४।४६ ।

की बात नहीं समझा जाता था , जैसा कि वर्तमान काल में भी निम्न जाति की स्त्रियों द्वारा इस प्रकार का आचरण किया जाता है ।

इसी तरह अश्विनीकुमारों ने सुकन्या से अपने वृद्ध पति को छोड़कर उन दोनों में से किसी एक को वरण करने के लिये कहा था ।[१] सुकन्या भी पति की आज्ञा से च्यवन और अश्विनी कुमारों के बीच में से किसी एक का वरण करने के लिये उद्यत हो गयी थी ।[२]

पंक्तिदूषक ब्राह्मणों के वर्णन में भीष्म ने ऐसे पुरुष को भी रखा है जो माता द्वारा पति के जीते जी दूसरे पति से उत्पन्न किये हुए पुत्र के घर भोजन करने वाला[३], एक पति को छोड़कर दूसरा पति करने वाली स्त्री के पुत्र को दिया हुआ श्राद्ध में अन्न का दान राख में डाले हुए हविष्य के समान व्यर्थ हो जाता है ।[४] पाण्डु ने छः प्रकार के " बन्धु दायाद " कहे जाने वाले : जो कुटुम्बी होने से सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं : पुत्रों में - " पौनर्भव " पुत्र को भी रखा है ।[५] इसी प्रकार अनन्यपूर्वा , परपूर्वा आदि शब्दों का प्रयोग भी स्त्री के पुनर्विवाह की ओर संकेत करते हैं ।[६] शान्तिपर्व में कहा गया है - " जैसे वाग्दान के अनन्तर पति के मर जाने पर स्त्री देवर को पति बनाती है ,

---

१- महा० वन प० १२३।१०

२- वही वनप० १२३।१६

३- महा० अनु प० ६०।७

४- वही अनु० प० ६०।१५

५- वही आदिप० ११६। ३२-३३ पौनर्भवश्च कानीनः ------- ।

६- वही उद्योग प० १७५।५-८ ।

उसी प्रकार पृथ्वी ब्राह्मण के बाद ही क्षत्रिय को पति रूप में वरण करती है, इसे अनादिकाल से प्रचलित प्रथम श्रेणी का नियम बतलाया गया है।[1] इसी प्रकार अनुशासनपर्व में कहा गया है - " शुल्क देने वाले की मृत्यु हो जाने पर उसके छोटे भाई को वह कन्या पतिरूप में ग्रहण करे अथवा जन्मान्तर में उसी पति को पाने की इच्छा से उसी का अनुसरण करती हुई आजीवन कुमारी रहकर तपस्या करे।[2] कलियुग में होने वाले विपरीत आचार विचार का उल्लेख करते हुए कहा गया है - " पति के जीते हुए भी वीर पुरुषों की पत्नियां भी दूसरे पुरुषों का आश्रय लेंगी और दूसरों से व्यभिचार करेंगी।[3] शान्तिपर्व में शबरालय में रहने वाले ब्राह्मण गौतम का उल्लेख है, जिसकी स्त्री शूद्र जाति की थी, तथा उससे पहले दूसरे पुरुष की भार्या रह चुकी थी, ऐसी स्त्री को " पुनर्भू " कहा गया है।[4] परन्तु इस प्रकार के विवाहों की सर्वत्र निन्दा की गयी है। मृणालों की चोरी होने पर शपथ करते हुए जमदग्नि ने कहा था - " जिसने मृणालों की चोरी की हो, उसको वही लोक मिले जो शूद्र की पत्नी से संसर्ग रखने वाले ब्राह्मण को मिलता है।[5] इसी प्रकार

- -

१- महा अनु० प० ७२।१२

पत्यभावे यथैव स्त्री देवरं कुरुते पतिम् ।
एषा ते प्रथमः कल्प आपद्यन्यो भवेत् ततः ।।

२- महा० अनु० प० ४४।५२-५३

३- वही वनप० १८८।४५

४- वही शा० प० १७३।५

शूद्रा पुनर्भूर्भार्या मे सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।

५- महा० अनु० प० ९३।१२३, ९४।२१

उदपानप्लवे ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः ।
तस्य सालोक्यतां यातु बिसस्तैन्यं करोति यः ।।

ब्राह्मण द्वारा शूद्रापत्नी का ग्रहण प्रायश्चित्त योग्य बताया गया है।[१] शूद्रा भार्या केवल भोग के योग्य बतायी गयी है।[२]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इस काल में यत्र-तत्र पुनर्भू स्त्रियों के उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु इस प्रकार का विवाह प्रशस्य तथा लोकसम्मत नहीं माना जाता था। इसके विपरीत स्त्री का एक ही बार विवाह तथा पति की मृत्यु के उपरान्त पतिभक्ति को सामने रखकर वैधव्य धर्म का अवलम्बन कर संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करना प्रशस्य माना जाता था। कुन्ती सत्यवती आदि के पुनर्विवाह का कभी प्रश्न ही नहीं उत्पन्न हुआ। सावित्री द्वारा सत्यवान का वरण किये जाने पर तथा बाद में यह मालुम होने पर कि सत्यवान अल्पायु है, पिता द्वारा दूसरा पति चुने जाने का आग्रह करने पर[३] सावित्री अपने निश्चय पर अटल रही कि " मैंने एक बार अपना पति चुन लिया, अब मैं किसी दूसरे पुरुष का वरण नहीं करूंगी, क्योंकि कन्या एक बार ही दी जाती है।[४] अन्यत्र कहा गया है - " जो पहले एक व्यक्ति को कन्यादान करके फिर दूसरे को उसी कन्या का दान करना चाहता है, वह भी मरने के बाद कीड़े की योनि में जन्म लेता है।[५]

१- महा० अनु० प० ४७।६-१०

२- वही अनु० प० ४७।८

३- महा० वनप० २९४।२४

४- ...... सकृत कन्या प्रदीयते ......

सकृद् वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ।।

महा० वनप० २९४। २६-२७

५- महा० अनु० प० १११।८३

आर्यों में पुनर्विवाह न होने का एक कारण यह भी था कि यहां विवाह के सम्बन्ध में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि कन्या अनुपभुक्ता होनी चाहिये। मुक्तपूर्वा स्त्री को व्याहना पातक समझा जाता था, जैसा कि जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा करते समय अर्जुन ने जो सौगन्धें खायी हैं उसमें एक सौगन्ध यह भी है कि - " मुक्तपूर्वा स्त्री से विवाह करने वाले पुरुष को जो लोक मिलते हैं, वे मुझे भी प्राप्त हों।[1] स्पष्ट है कि महाभारत के समय यह धारणा आरम्भ हो चुकी थी कि भुक्त पूर्वा स्त्री विवाह के अयोग्य है और जो ऐसा करता है, वह पातकी है। दुर्योधन ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है कि - " रत्नों से हीन पृथ्वी और श्रेष्ठ क्षत्रियों के नष्ट हो जाने से विधवा स्त्री के समान मेरे हृदय में इसको उपभोग करने का उत्साह नहीं है।[2] पुनर्भू स्त्री का उल्लेख तो अवश्य किया गया है, परन्तु उसकी निन्दा की गयी है और उससे उत्पन्न पुत्र को हव्यकव्य देने का अधिकारी नहीं माना गया।[3]

पुनर्विवाह पर रोक सर्वप्रथम दीर्घतमा ऋषि ने लगायी थी[1], जब उनकी पत्नी प्रद्वेषी उन्हें छोड़कर जाने को उद्यत हो गयी। इससे भी स्त्रियों

- -

१- महा० द्रोणप० ७३।२७ मुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम्।

२- महा० शल्य प० ३१। २८-३६

३- महा० अनु० प० ९०।१५, मनु ३।१५५-१६६

भस्मनीव हुतं हव्यं तथापौनर्भवे द्विजे।

४- महा० आदिप० १०४।२६-३४ ।

के पुनर्विवाह का खण्डन होता है। कालान्तर में पातिव्रत्य की उच्च उदात्त कल्पना तथा " पति परमेश्वर है " इस भावना के विकास के कारण पुनर्विवाह प्राय: बन्द से हो गये।

कुछ आर्य स्त्रियों के पुनर्विवाह के उदाहरण प्राप्त होते हैं। श्रीकृष्ण के द्वारा नरकासुर के मारे जाने पर उसके अन्त:पुर में रहने वाली गन्धर्वों तथा असुरों की कन्याओं ने श्रीकृष्ण को पतिरूप में वरण कर लिया है।[१] यद्यपि यह स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता है कि ये कन्यायें नरकासुर से विवाहित थीं या नहीं। इस सम्बन्ध में एस० सी० सरकार ने लिखा है कि - " जब राजा मार डाला जाता था तो उसके अन्त:पुर की स्त्रियों पर विजेता द्वारा अधिकार कर लिया जाता था, जैसा कि कौरवों की स्त्रियों पर पाण्डवों द्वारा अधिकार कर लिया गया था।[२] परन्तु उनके इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि कौरवों की विधवाओं ने अत्यन्त तपस्यापूर्ण तथा सादा जीवन व्यतीत किया था और उन्हें " असीमान्तिनी (जिसके मांग में सिन्दूर न हो) तथा श्वेत उत्तरीय वस्त्र धारण किये हुए दिखाया गया है।[३] गान्धारी उनकी कातर अवस्था का वर्णन करते हुए कहती है - " युद्ध में मारे गये थे मेरे सौ पुत्रों की वधुयें हैं, जो दुख और शोक के आघात सहन करती हुई मेरे और महाराज के शोक को भी बारम्बार

- -

१- महा० उद्योग प० १५८।८, सभा ३८। पृ० ८०६-८११, मौसल प० ७।३८ ५।६, हरिवंश २०।१२।

२- एस० सी० सरकार - " समआसपेक्ट आफ दि आर्लियस्ट सोशल लाइफ इन एंस्यंट इंडिया, पृ० १६२।

३- महा० आश्रमवा० २५।१६-१७ स्तास्त्वसीमन्तशिरोरुहाया: शुक्लोत्तरीया
नरराजपत्न्य: ।
नरेन्द्रपत्न्य: सविशुद्धसत्त्वा: ।।

बढ़ा रही है। ये सब शोक के आवेग से रोती हुई मुझे ही घेरकर बैठी रहती है।[1] बाद में इन वीर पत्नियों ने जल समाधि ले ली थी।[2]

सामान्यत: स्मृतियों में भी विधवा पुनर्विवाह का निषेध किया गया है।[3] मनु[4] एवं याज्ञवल्क्य[5] ने पुनर्विवाह को गर्हित मानते हुए श्राद्ध में न बुलाये जाने वाले ब्राह्मणों में " पौनर्भव " : पुनर्भू का पुत्र : को भी गिना है।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि विधवा पुनर्विवाह को कभी भी लोकसम्मत तथा प्रशस्य नहीं माना गया, यद्यपि इस प्रकार के विवाह यदा-कदा हो जाया करते थे और शास्त्रकारों ने कुछ विशेष परिस्थितियों में पुनर्विवाह की आज्ञा प्रदान की थी।

- -

१- महा० आश्रमवा० २६।४५-४७

२- महा० आश्रमवा० ३३।२०

३- मनु ४।१६२, आप० ध० सू० २।६।१३।३-४, मनु ५।१६२, ६।४७, ८।२६ आश्व० गृ० सू० १।७।१३, आपस्तम्ब मन्त्रपाठ १।५।७ ।

४- मनु ३।१५५

५- याज्ञ० १।२२२

अध्याय - ७

नियोग

नियोग

प्राचीनकाल से ही पुत्र को अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता रहा है क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता था कि पुत्र " पुत् " नामक नरक से रक्षा करता है,[1] तथा बिना पुत्र वाले व्यक्ति के लिये स्वर्ग के द्वार बन्द रहते हैं।[2] अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिये पुत्र प्राप्ति आवश्यक समझा जाता था। वैदिक पिता अनेकों पुत्रों की प्राप्ति की कामना करता था।[3] पुत्र की ऐसी महत्ता के ही कारण प्राचीनकाल में ऐसे लोगों को जो पुत्रोत्पादन में किसी कारणवश असमर्थ थे, अथवा पति की मृत्यु निःसंतान अवस्था में हो गयी हो तो ऐसी पत्नी तथा विधवा को नियोग की अनुमति प्रदान की गयी थी। नियोग का अर्थ है - " किसी विधवा या निःसंतान पत्नी के द्वारा किसी नियुक्त पुरुष द्वारा सन्तोत्पादन करना।" यद्यपि वर्तमान समय में यह प्रथा लोगों के लिये बहुत आश्चर्यजनक है। इस प्रकार उत्पन्न पुत्र को " क्षेत्रज " कहा जाता था, जिसकी गणना बारह प्रकार के पुत्रों में दूसरे नम्बर पर होती थी।[4] यह प्रथा प्रायः सभी प्राचीन समाजों में प्रचलित थी।[5]

प्राचीन समाज में दत्तक पुत्र की अपेक्षा नियोग द्वारा उत्पन्न पुत्र को प्राथमिकता दी जाती थी।[6] सम्भवतः इसका कारण यह था कि दत्तक पुत्र तो

१- महा० आदिप० ७४। ३८-३९

२- वही आदि प० ११६।१६

३- ऋ० १०।८५। ४१-४२

४- महा० आदिप० १०५।२, पत्नी को क्षेत्र कहा गया है। अनु०प० ४६।३

५- अल्टेकर - ' दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० १४३
चि०वि० वैद्य- महाभारत मीमांसा, पृ० २१६

६- ऋ० ७।४।७ न शेषो अग्ने अन्यजातमस्ति।

बिल्कुल अजनबी होता था , जब कि नियोग द्वारा उत्पन्न पुत्र में माता का रक्त तो रहता ही है , साथ ही पुरुष भी परिवार का कोई सन्निकट सम्बन्धी होने से नियोग द्वारा उत्पन्न पुत्र अपने परिवार के अत्यन्त सन्निकट समझा जाता था । क्षेत्रज पुत्र की मान्यता औरस पुत्र के समान ही थी ।[१]

नियोग का उद्गम तथा विकास -

इस प्रथा के व्यावहारिक प्रयोग के सम्बन्ध में वेद में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है । सम्भवत: आर्यों ने इस प्रथा की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया होगा , क्योंकि आर्यों में पौरुषत्व बहुत अधिक था और सम्भवत: इसलिये भी कि उस समय विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित थी ।[२] सूत्रकारों ने इस प्रथा का उल्लेख किया है ।[३] गौतम ने इस प्रथा द्वारा उत्पन्न पुत्र को क्षेत्रज और उसकी माता को क्षेत्र की संज्ञा दी है , उस स्त्री या विधवा का पति क्षेत्री या क्षेत्रिक तथा पुत्रोत्पत्ति के लिये नियुक्त पुरुष बीजी या नियोगी कहलाता है ।[४] कौटिल्य के अनुसार " बूढ़े एवं असाध्य रोग से पीड़ित राजा को चाहिये

- -

१- महा० अनु० प० ४६।१२-१६

२- उपाध्याय - वीमैन इन ऋग्वेद , पृ० ६८-१०० शायद यह अपवादस्वरूप ही प्रचलित थी ।

३- गौतम १८।४-८ पतिविहीन नारी यदि पुत्र की अभिलाषा रखे तो देवर द्वारा प्राप्त कर सकती है - अपतिरपत्यलिप्सुर्देवरात् । बौधायन ध०सू० २।२।१७ , वशिष्ठ ध०सू० १७।५६-६५ उन्मादिनी , बूढ़ी तथा रोगी विधवा को इस कार्य के लिये नियोजित नहीं करना चाहिये । युवावस्था के ऊपर १६ वर्षों तक ही नियोग होना चाहिये । बीमार पुरुष को भी नियुक्त नहीं करना चाहिये । गौतम १८।११

४- गौतम (१८।११) एवं आपस्तम्ब ध०सू० (२।६।१३।६) ने क्षेत्र का प्रयोग पत्नी के लिये किया है । गौतम (४।३) में " बीजी " शब्द आया है । मनु ने ६।३२-३३ , एवं ५३ में " क्षेत्र " " क्षेत्रिक " और " बीजी " आदि

कि वह अपनी रानी को नियुक्त कर किसी मातृबन्धु या अपने समान गुण वाले सामन्त द्वारा पुत्र उत्पन्न कराये।[१] ब्राह्मण को भी कौटिल्य ने इसी प्रकार का परामर्श देते हुए कहा है कि वह पुत्र रिक्थ प्राप्त करेगा।[२]

महाकाव्यकाल में भी नियोग की प्रथा प्रचलित थी। महाभारत के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के शिष्टजन : धनाढ्य : विलासी हो गये थे, और यही कारण था कि उन्होंने पौरुषत्व खो दिया था, जिससे उनकी पत्नियों को नियोग का आश्रय लेना पड़ा था। यद्यपि इतिहासकारों ने राजाओं की इस अयोग्यता को स्पष्टतया स्वीकार न कर उसके साथ अप्रत्यक्ष कारण शाप को जोड़ दिया था। निरन्तर कामोपभोग में लिप्त रहने के कारण विचित्र वीर्य क्षय रोग से पीड़ित होकर निःसंतान अवस्था में असमय ही मृत्यु को प्राप्त हुए थे।[३]

नियोग के उदाहरण -

महाभारत में नियोग के अनेकों उदाहरण प्राप्त होते हैं। कुन्ती, माद्री, सुदेष्णा, मदयन्ती, अम्बिका और अम्बालिका द्वारा नियोग का व्यवहार उल्लेखनीय है। इसमें अम्बिका और अम्बालिका ने स्पष्टतः नियोग का व्यवहार किया था,[४] जब कि कुन्ती और माद्री ने इसका प्रयोग अप्रत्यक्ष रूप से किया था।

- -

१- कौटिल्य १।१७

२- कौटिल्य ३।६

३- महा० आदिप० १०२।७०-७१, ११८।३। इसी प्रकार पाण्डु की सन्तान अयोग्यता का कारण शाप बताया गया है, परन्तु वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि पाण्डु किसी रोग से पीड़ित थे, तभी तो वह स्वास्थ्य लाभ के लिये राज्य छोड़कर हिमालय के दक्षिण भाग की पहाड़ियों में निवास करते थे। महा० आदि प० ११३।७-८, ११७।११, २७। इसी प्रकार व्युषिताश्व राज्यक्ष्मा के शिकार हो गये थे। राजाओं के विलासितापूर्ण जीवन के कारण उन्हें इस सम्बन्ध में चेतावनियां दी गयी हैं।

४- महा० आदिप० १०४।६, १०५ अध्याय।

नियोग प्रथा का उद्देश्य -

इस काल में भी नियोग की प्रथा का प्रमुख उद्देश्य पुत्र प्राप्ति ही था, क्योंकि पुत्राभाव को एक महान आध्यात्मिक अनुपलब्धि समझा जाता था। यही कारण है कि पुत्रोत्पत्ति में असमर्थ होने पर पति द्वारा पत्नी को इस बात के लिये प्रेरित किया जाता था कि वह नियोग द्वारा वंशप्रवर्तक पुत्र उत्पन्न करे। इसका समर्थन करते हुए पाण्डु कहते हैं - " अपने वीर्य के बिना भी मनुष्य किसी श्रेष्ठ पुरुष के सम्बन्ध से श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त कर लेते हैं और वह धर्म का फल देने वाला होता है, यह बात स्वायम्भुव मनु ने कही है।[१]

मैं स्वयं सन्तानोत्पादन की शक्ति से रहित होने के कारण तुम्हें आज दूसरों के पास भेजूंगा। तुम मेरे अथवा मेरे से भी श्रेष्ठ पुरुष से संतान प्राप्त करो।[२] इसे वे प्राचीन धर्म बतलाते हैं।[३] इस प्रकार कुन्ती द्वारा तीन पुत्रों को उत्पन्न किया गया है[४], और माद्री ने दो पुत्र उत्पन्न किये।[५] सम्भव है बाद में यह प्रथा विधवाओं के लाभार्थ भी प्रचलित की गयी हो। विशेष रूप से राजाओं के लिये वंश को विनष्ट होने से बचाने तथा आध्यात्मिक लाभ के लिये नि:संतान होने पर इस प्रथा का पालन आवश्यक हो जाता था। यही कारण है कि यह प्रथा जनसामान्य में प्रचलित न होकर राजवंशों में ही हम इसका व्यवहार पाते हैं। विचित्रवीर्य के नि:संतान अवस्था में मर जाने पर सत्यवती कुल की संतान परम्परा को सुरक्षित रखने के लिये भीष्म को आज्ञा देती है कि वह काशिराज की दोनों

१- महा० आदिप० ११६।३६

२- महा० आदिप० ११६।३७

३- वही आदिप० १२१।३, १२१।४-८

४- वही आदिप० १२२ अध्याय

५- वही आदिप० १२३। १५-१६

पुत्रियों से पुत्र उत्पन्न करें।[१] धर्म के अनुसार विवाह कर लो, पितरों को नरक मेंनगिरने दो।[२] इस प्रकार का कार्य आपद्धर्म के अन्तर्गत आता था।[३] भीष्म किसी गुणवान ब्राह्मण से पुत्र उत्पन्न कराने का परामर्श देते हैं।[४] परन्तु बाद में व्यास के द्वारा विचित्रवीर्य के क्षेत्र में धृतराष्ट्र और पाण्डु को उत्पन्न किया गया।[५] सौदास की स्त्री मदयन्ती पति से पुत्र पैदा करने में नियुक्त होकर महर्षि वशिष्ठ के निकट गयी थी, और उनसे अश्मक नामक पुत्र प्राप्त किया था।[६] परशुराम द्वारा पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रियों से रहित किये जाने पर सब स्थानों की सम्पूर्ण क्षत्रियों की स्त्रियोंने ब्राह्मणों से सन्तान उत्पन्न करायी।[७] राजा बलि ने अपने वंश रक्षार्थ ऋषि दीर्घतमा को अपनी पत्नी सुदेष्णा से नियोग के लिये नियुक्त किया था।[८] और इस प्रकार पांच पुत्र प्राप्त किये थे।[९]

नियोग किसी कामनावश अथवा लोभवश नहीं किया जाता था, वरन् दया के भाव से किया जाता था।[१०] वशिष्ठ धर्मसूत्र में कहा गया है कि - " धन सम्पत्ति की प्राप्ति की अभिलाषा से नियोग नहीं करना चाहिये।[११] महाकाव्य में

१- महा० आदिप० १०३।८-१०

२- वही आदिप० १०३।११

३- वही आदिप० १०३। २१-२२

४- वही आदिप० १०४।२ ब्राह्मणों गुणवान् कश्चिद् -------- ।
विचित्रवीर्य क्षेत्रेषु यः समुत्पादयेत् प्रजाः ।।

५- महा० आदिप० १०५। १-३२

६- वही आदिप० १२२।२२-२३, १७६।३३-३५, ४३-४५
सौदासेन च रम्भोरु नियुक्ता पुत्रजन्मनि ।
मदयंती जगामर्षिं वशिष्ठमिति ------ ।।

७- महा० आदिप० १०४। ४-६, ६४।४-६

८- वही आदिप० १०४।४४-४५

९- वही आदिप० १०४। ४६-४७, १०४।५१-५३

१०- वही आदिप० १२०।३३ तस्यामेवोत्तमानुग्रहाज्जातः प्रणितः ।

वर्णित कहानियां भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है।[१] किन्तु महाकाव्य के विवरणात्मक अंश में अनेक प्रकार के प्रचलित व्यवहारों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि नियोग की प्रथा में आर्थिक लाभ बिल्कुल उपेक्षणीय नहीं था, यद्यपि महाकाव्य में स्पष्ट रूप से नियोग के लिये धन प्रदान करने या नियोगी द्वारा धन लेने का उल्लेख नहीं है, सम्भवत: यह दक्षिणा के रूप में प्रदान किया जाता रहा होगा, जैसा कि भीष्म कहते हैं -" किसी गुणवान ब्राह्मण को धन प्रदान कर निमन्त्रित करो, जो विचित्रवीर्य के क्षेत्र में सन्तान उत्पन्न करे।[२]

पश्चिमी विद्वानों ने नियोग की प्रथा के पीछे अनेक असंबद्ध कारणों का उल्लेख किया है, जो कि समीचीननहीं है। मैक्लेन्नान के अनुसार नियोग की प्रथा के मूल में अनेकभर्तृकता पायी जाती है। किन्तु वेस्टरमार्क ने इस मत का खण्डन किया है, जो उचित है। जॉली का यह कथन कि गौण पुत्रों के मूल में आर्थिक कारण थे, उचित नहीं कहा जा सकता।[३] क्योंकि हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं कि महाकाव्य में इस प्रथा के सम्बन्ध में कहीं भी " अर्थ " का उल्लेख नहीं आया है, अगर ऐसा ही होता तो एक व्यक्ति अनेक पुत्र प्राप्त कर सकता था। परन्तु धर्मशास्त्रकारों ने नियोग प्रथा द्वारा एक या दो पुत्र प्राप्त करने की सीमा निर्धारित कर दी थी।[४] तीन पुत्र की प्राप्ति के पश्चात और पुत्र उत्पन्न करने से इंकार करते हुए कुन्ती पाण्डु से धर्मशास्त्रोक्त मत का उल्लेख करते हुए कहती है -
" आपत्तिकाल में भी तीन से अधिक चौथी सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा शास्त्रों

१- महा० आदिप० ६४। ६, ८-६, १७६।३३-३६, ४३-४५

२- महा० आदिप० १०४।२ ब्राह्मणो गुणवान् कश्चिद् धनेनोपनिमन्त्र्यताम्।
विचित्रवीर्य क्षेत्रेषु य: समुत्पादयेत्प्रजा: ॥

३- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३४१

४- गौतम १८।४-८, मनु ६।६०-६१ ।

ने नहीं दी है , इस विधि के द्वारा तीन से अधिक चौथी संतान चाहने वाली स्त्री स्वैरिणी होती है और पांचवे पुत्र के उत्पन्न होने पर तो वह कुलटा समझी जाती है।[१] इसके अतिरिक्त जिसके औरस पुत्र होता था , वह पौत्रज अथवा दत्तक पुत्र नहीं प्राप्त कर सकता था। स्पष्ट है कि नियोग आर्थिक दृष्टिकोण से नहीं किया जाता था। इसी प्रकार विंटरनित्स ने कहा है कि दरिद्रता , स्त्रियों के अभाव तथा संयुक्त परिवार की प्रथा ही नियोग का कारण थी।[२] परन्तु उनका भी मत तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है , क्योंकि भारतवर्ष में कभी भी स्त्रियों की कमी रही हो , ऐसा प्रमाण नहीं प्राप्त होता। नियोग के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये उपर्युक्त विचार उसमें अन्तर्निहित भावना को न समझ सकने के कारण ही व्यक्त किये गये हैं।

महाकाव्य में नियोग की क्रिया ब्राह्मणों द्वारा न केवल वंशरक्षार्थ की गयी , वरन् उत्तम योग्य तथा श्रेष्ठ सन्तति प्राप्त करना भी इसका उद्देश्य था।[३] विंटरनित्स द्वारा व्यक्त किया गया विचार भी महाभारत में उपलब्ध नियोग के उदाहरणों में घटित नहीं होता , क्योंकि महाभारत में जिन लोगों ने नियोग को अपनाया वे राजवंश के थे , और अत्यन्त वैभवशाली थे। फिर स्त्रियों की कमी भी इस प्रथा के प्रचलन का कारण नहीं थी , क्योंकि उस काल में बहुपत्नीप्रथा का आधिक्य , कई हजार दासी कन्याओं को दहेज में देना तथा ब्राह्मणों को कन्याओं का दान , युधिष्ठिर के महल में दासी स्त्रियों की उपस्थिति स्त्रियों की कमी को नहीं वरन् पुरुषों की कमी को सूचित करता है। इसी प्रकार सम्मिलित परिवार की प्रथा को भी इसका कारण नहीं माना जा सकता , क्योंकि उस समय तक नैतिकता के उच्च मानदण्ड स्थापित हो चुके थे।

१- महा० आदिप० १२२।७७-७८

२- जे०आर० ए०एस० १८६७ , महाभारत पर नोट्स , पृ० ७१६-७३२ विंटरनित्स।

३- महा० आदिप० १२२।५-८ , १७६। ३३-३४ ।

इससे स्त्रियों की अध: स्थिति स्पष्ट होती है क्योंकि प्राय: देखा गया है कि स्त्रियां नियोग की इच्छा न रहने पर भी अपने वृद्धों द्वारा तथा पतियों द्वारा बाध्य की गयी थी ।[१] अम्बिका और अम्बालिका को उस समय ज्ञात हुआ था , जब कि सत्यवती द्वारा व्यास की नियुक्ति हो चुकी थी ।[२] इस सम्बन्ध में उनसे परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं समझी गयी । सम्भवत: इसका कारण यह था कि स्त्रियां सम्पत्ति समझी जाती थीं , जिनका प्रमुखकार्य वंशरक्षार्थ सन्तानोत्पादन करना था जैसा कि काणे ने लिखा है - " बहुत से प्राचीन समाजों में स्त्रियां सम्पत्ति के समान वसीयत के रूप में प्राप्त होती थी । व प्राचीनकाल में बड़े भाई की मृत्यु पर छोटा भाई उसकी सम्पत्ति एवं उसकी विधवा पर अधिकार कर लेता था ।[३] एक दृष्टिकोण से नियोग स्त्रियों के लिये लाभकारी होता था , क्योंकि इस प्रकार उत्पन्न पुत्र पर दत्तक पुत्र की अपेक्षा अधिक स्नेह[४] होता था तथा माता की हैसियत से उसका पुत्र पर पूरा नियंत्रण तथा अधिकार होता था । इस प्रकार परिवार में उसकी स्थिति सुरक्षित हो जाती थी । दत्तक पुत्र में तो अवश्य ऐसी संभावना की जा सकती है कि आर्थिक लाभ की दृष्टि से वास्तविक माता-पिता पुत्र पर नियंत्रण रखने का प्रयास करें , परन्तु नियोग की प्रथा में ऐसा सम्भव नहीं था , क्योंकि पुत्र क्षेत्रीय पिता का ही होगा , यदि वह जीवित है , और अगर स्त्री विधवा है तो भी नियोगी व्यक्ति का वह पुत्र

- -

१- महा० आदिप० १०५।५४ , १२१ व० १२२।२७ , जहां पर कि अनिच्छुक स्त्री को पति द्वारा नियोग के लिये आज्ञा प्रदान की गयी , जब कि बौधायन ध० सू० (२।२।४।७) में कहा गया है कि अनिच्छुक स्त्री से नियोग न कराया जाय , परन्तु यह तो कानूनी स्थिति है , आदर्श व व्यवहार में अन्तर पाया जाता है ।

२- महा० आदिप० १०४।५०

३- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास , प्रथम भाग - पृ० ३४१

४- दत्तक पुत्र पर अपने वास्तविक पिता का अधिक प्रभाव होता था ।

नहीं हो सकता , क्योंकि नियोग के बाद नियोगी को स्त्री के साथ ससुर का सा व्यवहार करना होता था।[१] स्मृतियों में यह स्पष्ट वर्णन आया है कि बिना गुरुजनों द्वारा नियुक्ति के या (पति के पुत्र इत्यादि होने पर) यदि देवर अपनी भाभी से संभोग करे तो वह " अगम्यागामी " कहा जायेगा[२] और इस प्रकार से उत्पन्न पुत्र जारज (कुलटोत्पन्न) कहा जायेगा तथा सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं होगा।[३] और वह उत्पन्न करने वाले का पुत्र कहा जायेगा।[४]

धर्मशास्त्रों में वर्णित नियोग तथा महाकाव्य में प्रचलित नियोग की प्रथा में अनेक साम्य होते हुए भी कुछ वैषम्य पाया जाता है। इस काल में भी धर्मसूत्रों की तरह ही बड़ों द्वारा नियोग के लिये पुरुष की नियुक्ति की जाती थी , अर्थात पति द्वारा या बड़े भाई द्वारा।[५] किन्तु महाकाव्य में अधिकांश उदाहरणों में पति द्वारा ही प्रतिनिधि की नियुक्ति की गयी और यह कार्य कहीं-कहीं अप्रत्यक्ष रूप से किया गया।[६] सारदान्दायनी का उदाहरण बहुत ही अद्भुद है , जो कि एक जनस्थान में जाती है और जिस प्रथम ब्राह्मण को देखती है , उसको नियोग के लिये पकड़ लेती है।[७] इसमें धर्मशास्त्रों द्वारा वर्णित नियम का पालन

१- मनु ६।६२

२- मनु ६।५८ , ८३, १४३-१४४ एवं नारद स्त्रीपुंस ८५-८६

३- नारद - स्त्रीपुंस ८४-८५

४- वशिष्ठ ध०सू० १७।६३

५- गौतम ध०सू० १८।४-१४ , गुरुप्रसूता । वशिष्ठ ध०सू०- १७।५६, ६१-६५ , याज्ञ० स्मृति १।६८-६६ , मनु ६।५६ सम्यङ्०नियुक्तया: ।

६- महा० आदिप० १०३।१० , मन्नियोगान्महाबाहोधर्मंकर्तुमिहार्हसि । आदिप० १०३।२३ , १०४।१-२ , १२०।३८ सा वीरपत्नीगुरुणा नियुक्ता । यहाँ पति द्वारा नियोगी की नियुक्ति की गयी । गुरुणा- मत्रां - नीलकण्ठ, आदिप० १२२।३०-३१ , १२३।५ कुन्ती और माद्री के सम्बन्ध में पति द्वारा ही नियुक्ति की गयी थी । इसी प्रकार सौदास ने वशिष्ठ को नियुक्त किया था आदि १७६। ३३-४५ , राजा बलि ने दीर्घतमा ऋषि की नियुक्ति की थी । आदिप० १०४ ।४४-४५

दृष्टिगत नहीं होता । इसके अतिरिक्त उत्तंक द्वारा गुरुपत्नी से नियोग के लिये अस्वीकार करना जब कि परिवार की स्त्रियों द्वारा उत्तंक से अनुरोध किया गया था[१] यह सिद्ध करता है कि पति के जीवित रहने पर किसी अन्य को उसकी अनुपस्थिति में किसी पुरुष को नियुक्त करने का अधिकार न था , वरन् पति ही ऐसा कर सकता था । धर्मशास्त्र के नियमानुसार ही[२] इस काल में भी नियोग ऋतुकाल में तथा युवावस्था में ही किया जाता था । इस सम्बन्ध में अम्बिका तथा अम्बालिका का उदाहरण उल्लेखनीय है , जिनका कि विवाह युवावस्था अर्थात १६ वर्ष में हुआ[३] और सात वर्षों तक वे विचित्रवीर्य के साथ रहीं[४] और विधवा होने के एक वर्ष बाद नियोग किया गया । नियोग के पूर्व संयमित जीवन तथा तपश्चर्या का आचरण आवश्यक होता था और व्यास ने भी सत्यवती से अपनी पुत्रवधुओं को एक वर्ष व्रत रखने का परामर्श दिया था ।[५] परन्तु सत्यवती अपनी पुत्रवधुओं के तपस्यामय जीवन बिताने के लिये सहमत न थी , क्योंकि उसमें समय लगता ।[६] इसी प्रकार इस काल में धर्मसूत्रों द्वारा वर्जित होने पर भी अनिच्छुक पत्नियों को पति के वंशरक्षार्थ नियोग करना पड़ा ।[७]

१- महा० आदिप० ३।८६

२- गौतमध० सू० १८।४-८ नर्तुमतीयात् । वशिष्ठ ध०सू० १७।५६-६४ । महा० आदिप० ६४।६ , १२०।३६ , १०६।१ ।

३- महा० आदिप० १०२।६७

४- वही आदिप० १०२।७०

५- वही आदिप० १०४।४२

६- वही आदिप० १०४।४३-४५

७- बौधायन ध० सू० २।२।४-१० , महा० आदिप० १२०-१२२ , कुन्ती नियोग के लिये अनिच्छुक थी और अम्बालिका को भी इसके लिये प्रेरित किया गया था । महा० आदिप० १०४।५० ।

नियोग के लिये अर्ह व्यक्ति -

पति का भाई

धर्मशास्त्र के अनुसार देवर को नियोग के लिये अर्ह माना गया है और देवर के अभाव में सपिण्ड सगोत्र, सप्रवर को नियुक्ति का विधान किया गया है।[१] परन्तु महाकाव्य में प्राप्त उदाहरणों में किसी में भी देवर को नियुक्ति नहीं की गयी, यद्यपि पाण्डु इस मत से सहमत था।[२] यहां मेयर ने यह मत व्यक्त किया है कि " उत्तम देवर से अभिप्राय किसी ब्राह्मण से है ",[३] परन्तु मेयर का यह मत उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि धर्मशास्त्रों में कहीं पर भी देवर का ऐसा अर्थ नहीं किया गया है। ऋग्वेद की एक ऋचा में यह आया है कि - " हे आश्विन्। यज्ञ करने वाला अपने घर में वैसे ही पुकार रहा है जिस प्रकार विधवा अपने देवर को पुकारती है।"[४] परन्तु यहां पर यह स्पष्ट नहीं है कि यह उक्ति विधवा और देवर के विवाह की है या नियोग की ओर संकेत करती है। निरुक्त ने ऋग्वेद की इस ऋचा में प्रयुक्त देवर शब्द का अभिप्राय " द्वितीयो वर " लगाया है।[५] शान्तिपर्व में भी इस ओर संकेत किया गया है कि - " वाग्दान के अनन्तर पति के मृत हो जाने पर विधवा देवर को पति बनाती है।[६]

१- गौतम १८।४-१४, मनु ६।५६ देवराद्वा सपिण्डाद्वा।

२- महा० आदिप० ११६।३५ उत्तमाद्देवरात्पुंस: कांक्षन्ते पुत्रमापदि।

३- मेयर - सेक्सुअल लाइफ इन एन्सियेंट इण्डिया, पृ० १६२, लाइन ६।

४- ऋ० १०।४०।२

५- निरुक्त ३।१५

६- महा० शा० प० ७२।१२ पत्यभावे यथैव स्त्री देवरं कुरुतेपतिम्।

प्राय: सभी प्राचीन समाजों में पति के भाई से विधवा का विवाह तथा पुत्रोत्पत्ति की प्रथा प्रचलित रही है।[१] महाभारत में हमें देवर और भाभी के सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाला विचित्र उदाहरण ऋषि उतथ्य की पत्नी ममता का प्राप्त होता है, जो कि आजकल की दृष्टि से अनैतिक कहा जा सकता है। अत: प्रतीत होता है कि यह प्रथा अतिप्राचीनकाल पूर्ववैदिककाल की होगी, जिसमें कि ममता द्वारा आगत बृहस्पति से उस समय इंकार किया गया जब कि वह उतथ्य से गर्भवती थी, अन्यथा बृहस्पति का उसके पास जाना गलत नहीं था। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पति के जीवित रहने पर भी छोटा भाई अपने बड़े भाई की पत्नी के साथ सम्बन्ध रख सकता था।[२] कृष्णा के साथ एकान्त में बैठे हुए युधिष्ठिर को देख लेने पर प्रायश्चित्तस्वरूप वन जाने के लिये उद्यत अर्जुन से युधिष्ठिर कहते हैं कि - "सपत्नीक बड़े भाई के घर में होने पर छोटे भाई का प्रवेश करना दोष की बात नहीं है, जब कि बड़े भाई का वहां जाना धर्म का नाश करने वाला है।[३] रामायण में जहां कि हम देवर तथा भाभी के उच्च सम्बन्धों को पाते हैं,[४] वहां पर भी इस प्रकार के विचार अनुपस्थित न थे।[५]

इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य और विचारणीय है। सत्यवती द्वारा नियोग के लिये व्यास की नियुक्ति को जो कि जेठ थे,[६] मेयर के विचार से यह अधिकार

१- वेस्टरमार्क - हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज, पृ० २०७-२२० जिल्द ३, १९२१

२- महा० आदिप० १०४। ९-१४

३- वही आदिप० २१२।३२ इसी प्रकार पुष्कर ने नल को यह सुझाव दिया था कि वह दमयन्ती को दांव पर लगा दें महा० वनप० ६१।३।

४- रामा० कि० का० ६।२२

५- वही अरण्य का० ४५। ५-८, २४-२५

६- महा० आदि प० १०४।१७, ३१-३४।

बहुत ही कमजोर और जीर्णशीर्ण है[१] जब कि वहीं पर लुडविग और होल्जमैन यह विचार रखते हैं कि " वास्तव में भीष्म ने विचित्रवीर्य की ओर से यह धर्म निभाया था।[२] उनके इन विचारों का आधार कौरवों द्वारा उन्हें " बाबा " कहकर सम्बोधित करना तथा युधिष्ठिर द्वारा अपने सन्देश में यह कहा जाना कि " दादा जी। आपने डूबते हुए वंश का उद्धार किया था, पर आधारित है।[३] परन्तु उपर्युक्त विचार उचित नहीं प्रतीत होते। मैयर के विचार को उचित तब माना जा सकता था, जब कि जेठ की नियुक्ति नियोग के लिये अवैध होती, और पाण्डु ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया था।[४] इसी प्रकार लुडविग तथा होल्जमैन का भी विचार उचित नहीं है, क्योंकि कौरवों का सम्मिलित परिवार था और भीष्म उनके बाबा की तरह थे तथा युधिष्ठिर द्वारा वंश के उद्धार से तात्पर्य यह नहीं कि उन्होंने स्वयं नियोग कर वंशोद्धार किया था, वरन् भीष्म के उस योगदान की ओर संकेत है जो उन्होंने समय-समय पर अपने सत्परामर्श द्वारा कुरुवंश की रक्षा की थी।[५] भीष्म के परामर्श से ही सत्यवती ने व्यास की नियुक्ति की थी।[६] उपर्युक्त आधार पर ही एस० सी० सरकार[७] ने भी यह मत व्यक्त किया है कि - " पौत्रज राजकुमार विचित्रवीर्य की तीन पत्नियों से पृथक-पृथक तीन व्यक्तियों भीष्म, वाह्लीक और व्यास द्वारा उत्पन्न हुए हैं।" परन्तु

- -

१- मैयर - सैक्सुवल लाइफ इन एन्सियैंट इंडिया, अध्याय ४, पृ० १६७, फुटनोट-१

२- होल्जमैन ने " दस महाभारत " में मैयर के पृ० १६७ फुटनोट १ को उद्धृत किया है।

३- महा० उद्योग प० ३१।६-१०, स्त्रीप० २३।२४

४- वही आदिप० ११६।३५

५- वही आदिप० १०३।२५

६- वही आदिप० १०४।१६-१६

७- एस० सी० सरकार - सम आस्पैक्ट्स आफ दि इर्ली सोशल हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० १७१-१७२ अ० ४।

केवल सम्बोधन के आधार पर हम सरकार के उपर्युक्त मत को समीचीन नहीं मान सकते , क्योंकि जैसे व्यास वैसे ही भीष्म भी विचित्रवीर्य के अर्द्धभ्राता थे और पुत्रों की सूची में भाई के पुत्र को भी रखा गया है[१], इसलिये स्वभावत: कौरवों द्वारा भीष्म तथा व्यास को बाबा कहा गया है , जैसा कि साधारणतय: युधिष्ठिर द्वारा गान्धारी को " ज्येष्ठ माता " कहा गया है , परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं तो नहीं कि वह पाण्डु की पत्नी हो गयी । अत: हम यह नहीं मान सकते कि धृतराष्ट्र तथा उनके अन्य भाई भीष्म और वाह्लीक के पौत्रज पुत्र थे । यद्यपि सत्यवती द्वारा भीष्म को अम्बिका तथा अम्बालिका के साथ नियोग करने की आज्ञा प्रदान की गयी थी ।[२]

१- महा० आदिप० ११६।३४ , ज्ञातिरैताश्च ।

२- महा० आदिप० १०३।१० तयोरुत्पादयापत्यं संतानाय कुलस्य न: ।
मन्नियोगान्महाबाहो धर्मं कर्तुमिहार्हसि ।।

वही आदिप० १०३।११ राज्ये चैवाभिषिच्यस्व भारताननुशाधि च ।
दारांश्च कुरु धर्मेण मा निमज्जी: पितामहान् ।।

सत्यवती द्वारा उपर्युक्त दो विकल्प भीष्म के सामने रखे गये हैं । परन्तु दूसरे श्लोक का अर्थ यह नहीं है कि छोटे भाई की विधवा से विवाह किया जाय , यह नियम कभी नहीं था , यह " धर्मदारा " नहीं हो सकती थी , यद्यपि वह भार्या हो सकती थी , महा०अनु०प० ४४।५२-५३ मेयर के अनुसार जो (सैक्सुअल लाइफ इन एन्सियेंट इंडिया , पृ० १६८ , फुटनोट) देवर के साथ विवाह का अनुमोदन करता है , किन्तु वास्तव में नियोग की अनुमति छोटे भाई के साथ दी जाती थी । " प्राविशत " आदि शब्द विवाह का समर्थन नहीं करते - बालविधवा के साथ विवाह की अनुमति देते हैं । एस० सी० सरकार - सम आस्पैक्ट्स आफ इयर्ली सोशल हिस्ट्री आफ इण्डिया , पृ० १६१ यह कहते हैं कि - " सत्यवती को अपने पुत्रवधुओं का विवाह भीष्म से करने में कोई आपत्ति नहीं थी , किन्तु यदि उसको इसका विरोधी समझा जाय तो अम्बिका व अम्बालिका के साथ विवाह से उसको कोई लाभ नहीं होता , वह भीष्म का कानूनीपुत्र होता , इसलिये विचित्रवीर्य आध्यात्मिक लाभ से वंचित रह जाता ।

अम्बिका ने भी यही प्रत्याशा की थी और भीष्म के विषय में उसने सोचा था।[१] परन्तु नियोग के लिये व्यास का आमन्त्रित किया जाना इस उद्देश्य से था कि उत्पन्न सन्तान उनकी ही तरह सच्चरित्र, विद्वान् और महान होगी। सम्भवत: इसीलिये बड़े भाई का उपयोग किया गया। यहां पर यह स्मरणीय है कि महाभारत में सभी प्रकार की रीतियों तथा व्यवहारों का वर्णन किया गया है, इसलिये धर्मशास्त्रों के नियमों से भिन्नता होना स्वाभाविक है।[२] यद्यपि यह सत्य है कि व्यास का कुरुवंश से कोई सम्बन्ध न था परन्तु व्यास मातृबन्धु थे और अर्द्धभ्राता के रूप में सबसे नजदीकी सपिण्ड थे और कुछ धर्मशास्त्रकारों द्वारा व्यक्त किये गये विचारों के अनुसार नियोग के लिये सबसे उपयुक्त व्यक्ति थे।[३] इसी प्रकार कृष्ण कर्ण को धर्मशास्त्रानुसार पाण्डु का ही पुत्र बताते हैं और उससे पाण्डवों के पक्ष में मिल जाने का अनुरोध करते हैं।[४] इससे स्पष्ट है कि जैसे कौरववंश से कर्ण का सम्बन्ध कभी न होते हुए भी उसे पाण्डु का पुत्र माना गया, उसी प्रकार यद्यपि व्यास का सम्बन्ध कभी भी कुरुवंश से न रहा, फिर भी वो मातृबन्धु होने से कौरवों के ही परिवार के थे और सबसे नजदीकी सपिण्ड थे, तथा उनमें ब्राह्मणोचित गुण भी विद्यमान थे, जिससे कि योग्य तथा बुद्धिमान सन्तान उत्पन्न हो सके।

- -

१- महा० आदिप० १०५।३

श्वश्र्वास्तद्वचनं श्रुत्वा शयाना शयने शुभे।
साचिन्तयत्तदा भीष्ममन्यांश्च कुरुपुङ्गवान्।

२- जैकोबी का यह कहना है - महाभारत भारत की राष्ट्रीय पुस्तक नहीं हो सकती थी, यदि उसमें केवल धर्मशास्त्रों के दृष्टान्त होते, प्राचीन कानून के अनुसार। ऐसा विंटरनित्स ने " जे० बी० ए० एस० १८९७, " महाभारत पर नोट्स " में उद्धृत किया है।

३- गौतम ध० सू० १८।१५६।६, महा० आदिप० १०४।१४-१६

प्राहु: पौत्रेषु कल्याणमपत्य जनयिष्यति।

४- महा० उद्योगप० १४०। ८-२९ ।

ब्राह्मण -

महाभारत में सामान्यत: ब्राह्मणों से ही नियोग कराया गया है।[१] ब्राह्मणों से नियोग कराने के पीछे यही धारणा थी कि ब्राह्मण अप्रतिम शक्ति से सम्पन्न होते हैं, इसलिये उनके द्वारा जो पुत्र उत्पन्न किया जायेगा, वह सामान्य पुरुष की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली तथा योग्य होगा।[२] योग्य तथा बलशाली पुत्र की कामना प्राय: प्रत्येक माता-पिता के हृदय में होती है। ब्राह्मणों की इस योग्यता के प्रति लोगों में इतना अधिक विश्वास था कि कभी-कभी जनस्थान से किसी ब्राह्मण को पकड़ लेते थे और नियोग के लिये नियुक्त करते थे।[३] प्राय: सभी ब्राह्मण तपस्याजनित शक्ति से सम्पन्न रहे होंगे। यद्यपि दीर्घतमा जैसे ऋषियों का भी वर्णन आया है, जिनके असंयमपूर्ण व्यवहार के कारण आश्रमवासियों ने उन्हें त्याग दिया था।[४] परन्तु बलि ने अपनी पत्नी से दीर्घतमा का नियोग कराया था।[५]

प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा उसमें ब्राह्मणों के महत्व को न समझ सकने के कारण अनेक पश्चिमी विद्वानों ने ब्राह्मणों द्वारा उपर्युक्त कर्तव्यकर्म किये जाने के कारण उन्हें असंदिग्धकामी तथा बुराइयों से परिपूरित बताया है।[६] ब्राह्मणों के प्रति पश्चिमी विद्वानों की धारणा को उचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि

१- महा० आदिप० १२१।७, १०४।२, १७६।३३-४५, १०४।४४-४५, ६४।४-९।

२- महा० आदिप० ६४।७, १०४।४४, १०४।२

३- वही आदिप० १२०।३६

४- वही आदिप० १०४।२६ यद्यपि दीर्घतमा को " धर्मात्मा च महात्मा च वेद-वेदाङ्गपारगा: " कहा गया है, आदिप० १०४।२५, आदिप० १०४।२७-२८।

५- महा आदिप० १०४। ४२-४४

६- पर्गिटर - ए० ३० हि० ट्रे० अध्याय २७, पृ० ३२८ विशेषरूप से १५ वीं लाइन। हाप्किन्स - रिलीजन्स आफ इण्डिया, अ० १४, " इयर्ली हिन्दुज्म " पृ० ३५१-३५२। मेयर - सेक्सुअल लाइफ इन एन्सियेंट इण्डिया, पृ० १७३-१७४ फुटनोट १।

अगर ब्राह्मणों में उपर्युक्त दोष होते तो समाज में उन्हें जो सम्मान तथा आदर प्राप्त था, वह उन्हें न प्राप्त होता, तथा वे क्षत्रियों के अन्तःपुर में प्रवेश न कर सकते थे। इसके साथ ही क्षत्रिय स्वतन्त्र थे कि वे किसी सपिण्ड अथवा सगोत्र को नियुक्ति करते, वरन् ऐसा न कर ब्राह्मणों की नियुक्ति यह स्पष्ट करती है कि ब्राह्मणों के प्रति उनके हृदय में अपार श्रद्धा तथा आदर के भाव थे। मदयन्ती के उदाहरण में यह विचारणीय है कि मदयन्ती द्वारा वशिष्ठ के साथ जो नियोग किया गया, वह इसलिये नहीं था कि वह वशिष्ठ के प्रभाव में थी, वरन् कल्माषपाद के जीवनरक्षा के दृष्टिकोण से उसने ऐसा किया था, क्योंकि कल्माषपाद को ब्राह्मणी आङ्गिरसी का शाप प्राप्त था।[१] साथ ही ब्राह्मणों से नियोग कराने से अन्य किसी प्रकार के दोष की सम्भावना न रहती थी, क्योंकि ब्राह्मण वैराग्य प्रधान होते थे, इसलिये नियोग के बाद उनके हृदय में उस स्त्री के प्रति किसी प्रकार का भाव नहीं रहता। वे यह कर्म निरपेक्ष दृष्टि से करते थे, क्योंकि अगर उनके कारण किसी का वंश चल जाता अथवा किसी स्त्री को मातृत्व सुख प्राप्त हो जाता, या किसी विधवा की सहायता हो जाती और ब्राह्मण की उसमें किसी प्रकार की क्षति नहीं होती थी, इसलिये वे ऐसा करने के लिये प्रस्तुत हो जाते थे। कुमारिल व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि - " व्यास अपनी तपस्या तथा वैराग्य के कारण ऐसा कर सकते थे और उनकी ही तरह अन्य लोग भी कर सकते हैं, एक हाथी पेड़ को नुकसान पहुंचाये बिना उसकी डालियों

१- महा० आदिप० १८१।१७-२६, एस० सी० सरकार - सम आस्पेक्ट्स आफ दि इयर्ली सोशल हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० १६३, अ० ४, - - - - - - -। पृ० १६८ में वह कहते हैं - " पुराण और महाभारत में मित्रसह, कल्माषपाद की कथा में बड़ा सन्देह है। तुलना कीजिये - पर्गिटर - ए० ३० हि० ट्रै० अ० १८ " दि वशिष्ठाज " पृ० २०७।२०९। रामायण में इसकी साधारणकथा उद्धृत है - रामा० उ० का० ६५।

को पती को खा सकता है , अगर दूसरा ऐसा करे तो उसको मृत्यु हो सकती है ।[१] एस० सी० सरकार[२] द्वारा व्यास के प्रति यह आरोप लगाया जाना कि उनका कौरवों तथा पाण्डवों के प्रति प्रेम इसलिये था कि वे उनके नियोगी पिता थे , उचित नहीं है । कौरवों तथा पाण्डवों के प्रति उनके विशेष प्रेम का कारण उनका माता के प्रति आदर तथा एक ब्राह्मण के नाते राजवंशों को सत्परामर्श देने के कारण था । साथ ही पाण्डवों के प्रति उनका विशेष प्रेम था , क्योंकि वे उस समय कमजोर तथा विपत्ति में पड़े थे ।[३] सरकार इस सम्बन्ध में दूसरा उदाहरण उद्दालक द्वारा अपनी पत्नी का अपने शिष्य से सम्बन्ध कराये जाने को देते हैं , जिससे श्वेतकेतु का जन्म हुआ था[४] , और जिसे बाद में नियोग की संज्ञा प्रदान की गयी , क्योंकि उद्दालक द्वारा स्वयं इस बात को स्वीकार किया गया है कि प्राचीनकाल में स्त्रियों को यौन स्वतन्त्रता प्राप्त थी ।[५] परन्तु सरकार का यह मत कि ब्राह्मणों की बस्तियों में इस प्रकार के नियोग की सामान्य अनुमति थी[६] , उचित नहीं प्रतीत होता , क्योंकि विवाह के अध्याय में हम देख चुके हैं कि विद्वानों द्वारा इस प्रकार की स्थिति का खण्डन किया गया है , तथा इस काल तक वैवाहिक संस्था विकसित

- -

१- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास , तृतीय भाग , अ० ३२ , पृ० ८४६ , सूर्य की नैतिकता के विषय में कुन्ती से कहा गया है - " सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं - बलवतां शुचि । सर्वं बलवतां धर्मः सर्वं बलवतां स्वकम् ।। महा०आश्रमवा० ३०।२४

२- एस० सी० सरकार - सम आस्पेक्ट्स आफ दि इर्ली सोशल हिस्ट्री आफ दि इंडिया , अ० ४ , पृ० १७५ ।

३- महा० वनप० अ० ६ ।

४- वही शा०प० ३४।२२

५- महा० आदिप० १२२।३-७ , १४

६- एस० सी० सरकार - सम आस्पेक्ट्स आफ दि इर्ली सोशल हिस्ट्री आफ इंडिया ," पृ० १७५ , अ० ४ ।

हो चुकी थी ।[१] उत्तंक द्वारा अपनी गुरुपत्नी से ऐसी सेवा से इंकार किया जाना यह स्पष्ट करता है कि बिना गुरु की आज्ञा के शिष्य ऐसा कार्य नहीं करते थे ।[२] साथ ही ब्राह्मणों की नियुक्ति का एक आधार यह भी था कि वैवाहिक नियमों में यह सिद्धान्त था कि स्त्री अपने से उच्च वर्ण के पुरुष से ही सम्बन्ध करे । अत: क्षत्रियों को जब उत्तम तथा योग्य सन्तति की इच्छा होती तो वे अपने से उच्च वर्ण ब्राह्मणों की नियुक्ति करते , क्योंकि क्षत्रिय ब्राह्मण की समानता नहीं कर सकता ।[३] अत: विदेशी विद्वानों द्वारा ब्राह्मणों के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये विचार समीचीन नहीं हैं ।

देवता -

केवल कुन्ती के विषय में हम नियोग के लिये देवताओं की नियुक्ति पाते हैं ।[४] सरकार के अनुसार ये लोग समकालीन राजा लोग थे , यह शंका भी व्यक्त की जाती है कि देव से तात्पर्य - मनुष्यों से है । दुर्वासा के द्वारा जो " अथर्वन् " मन्त्र कुन्ती को प्रदान किया गया था , वह सम्भवत: वशीकरण मन्त्र था , जिसके द्वारा वह अकाम या सकाम किसी को भी वश में कर सकती थी ।[५] इसी मन्त्र का

- -

१- डा० वैस्टरमार्क - विवाह और समाज , पृ० २० ।

२- महा० आदिप० ३।८६

३- वही आदिप० १६६।२ , ११-१२ । द्रुपद ने पुत्रों के होते हुए भी द्रोणाचार्य को मारने हेतु उत्तम सन्तान प्राप्त करने के लिये श्रेष्ठ ब्राह्मण से अपनी रानी का नियोग कराया , जिसे उपयाज ने पहले अस्वीकार कर दिया था । महा० आदिप० १६६।१३ । आदिप० ६४-२१-२२ । कौटिल्य ने राजा को परामर्श दिया है कि राजा स्वयं असमर्थ होने पर योग्य व्यक्ति से सन्तान उत्पन्न कराये - कौ० अर्थशास्त्र १।१७ , ३।६ ।

४- महा० आदिप० १२१ व १२२ अध्याय ।

५- वही आदिप० १२१।१३ , वनप० ३०५।११-१८ अकामो व सकामो वा स

प्रयोग कर कुन्ती ने तीन तथा माद्री ने जुड़वा सन्तानें प्राप्त की थीं।[१] माद्री के लिये कुन्ती ने ही मन्त्र का प्रयोग किया था, क्योंकि वह ही उसकी ज्ञाता थी।

नियोग के अप्रत्यक्ष उदाहरण -

महाकाव्य में प्राय: राजाओं को सन्तान की प्राप्ति यज्ञ अथवा ब्राह्मणों व ऋषियों के आशीर्वाद[२] यज्ञ की खीर खाने तथा ऋषियों द्वारा फल प्रदान से हुई है।[३] दमयन्ती और उसके भाई[४], सगर[५], दुर्योधन और उसके भाई[६], संजय का पुत्र[७] ये सब इसी प्रकार उत्पन्न हुए थे। सरकार ने इन सबको नियोग से सम्बन्धित बताया है[८] तथा मेयर ने इसके साथ किसी सम्भावित जादू की भी कल्पना की है।[९] अनसूया

- -

१- महा० आदिप० १२३।१५-१६

२- कृष्णद्वैपायनच्चैव प्रसूतिर्वरदानजा।
धृतराष्ट्रस्य पाण्डोश्च पाण्डवानां च संभव:॥ महा० आदिप० २।१०१
पी०सी० राय ने उसका अनुवाद किया है : अंग्रेजी अनु० पृ० १६ : व्यास ऐसा करने में समर्थ थे। यह आशीर्वाद ब्राह्मणों तथा ब्राह्मणपतियों द्वारा दिये गये हैं, इसी प्रकार का वरदान कश्यप ने अपनी दोनों पत्नियों को दिया था, महा० आदिप० १६।६-१०। शर्मिष्ठा ने देवयानी से इसी प्रकार कहा था - वरदायक ऋषि द्वारा मुझे सन्तान प्राप्त हुई है, यद्यपि यह बात उसने झूठ बोली थी। आदिप० ८३।३-१५।

३- रामा० बालका० १५-१७ सर्ग, महा० अनु०प० ४।२७ सभाप० १७।१८-३७

४- महा० वन० प० ५३।७-६

५- रामा० अयो०का० ११०।१८-२२

६- महा० आदिप० ११४।८, ११०। ७-६

७- वही द्रोणप० ६५।२१, शा०प० ३१।१४-१६

८- एस० सी० सरकार - सम आस्पैक्ट्स आफ दि अर्ली सोशल हिस्ट्री आफ इंडिया, अ० ४ नियोग।

६- मेयर - सेक्सुअल लाइफ इन एन्शियेंट इंडिया, पृ० १५६ ।

को भी भगवान शंकर से इसी प्रकार का वरदान प्राप्त हुआ था कि - " मेरी कृपा से केवल यज्ञ सम्बन्धी चरु का द्रव पीने मात्र से बिना पति के सहयोग के तुम्हें एक वंशप्रवर्तक पुत्र प्राप्त होगा ।[1] इसी प्रकार भरद्वाज के द्वारा भरत को भी भुमन्यु नाम का पुत्र था ।[2] सरकार के अनुसार शान्तनु की उत्पत्ति महाभिषा द्वारा नियोग से हुई है ।[3] परन्तु यह मानना असंभव है , क्योंकि अगर हम इन सब उदाहरणों को नियोग का परिणाम मान ले तो हमें महाकाव्य के सभी महान चरित्रों जिनकी उत्पत्ति देवी देवताओं के आशीर्वाद तथा अवतार रूप में हुई है , नियोग द्वारा ही उत्पन्न मानना पड़ेगा जो कि उचित नहीं है । फिर प्रताप के तो शान्तनु के अतिरिक्त देवापि और वाह्लीक भी पुत्र थे , इसलिये नियोग की कोई आवश्यकता ही नहीं थी । इस सम्बन्ध में पर्गिटर का कहना है कि - " यह कहानी मूल से

- -

१- बिना भर्त्रा च रुद्रेण भविष्यति न संशयः ।
वंशे तथैव नाम्ना तु ख्यातिं यास्यति चेप्सिताम् ।।

महा० अनु० प० १४।६८

नीलकण्ठ ने इसकी व्याख्या की है - चरुद्रः चरोर्द्रवः - पानमात्रेण तव पुत्रो भविष्यतीऽत्यर्थः । उन्होंने वास्तविकता को पलट दिया । वक्ता ने बड़ी चतुराई से इस अशिष्ट रीति को ढक दिया, जब कि नियोग की प्रथा समाप्त हो गयी थी । इस प्रकार से वह पातिव्रत अनसूया के यश की भी रक्षा कर सका , जो कि सच्चरित्रता की मूर्ति थी और रुद्र की भी रक्षा किया । यह आलोचक की बुद्धिमत्ता कोई नयी बात नहीं है , क्योंकि प्राचीन साहित्य में समय के अनुसार कथानक बदल दिये जाते थे ।

२- महा० आदिप० ६४।२२ , तस्मै पुत्रं भरद्वाजाद्भुमन्युं भारत ।

३- वही आदिप० ९६।५-८ , १७-१८ यहां पर सरकार के इस मत का कोई संकेत नहीं है , वरन् प्रतीप के यहां महाभिषा ही पुत्ररूप में उत्पन्न हुए , जो शान्तनु कहलाये ।

उद्धृत कर दी गया है[१]। शान्तनु के नियोग से होने का दूसरा कारण यह दिया जाता है कि शान्तनु के जन्म के समय प्रतीप काफी वृद्ध हो गये थे , परन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता कि शान्तनु नियोग से उत्पन्न हुए थे । ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत में इसमें कुछ परिवर्तन कर दिया गया है , क्योंकि ऋग्वेद[२] में आया है कि देवापि और शान्तनु चचेरे भाई थे , जो उलान और ऋष्टिषेण के पुत्र थे , ये दोनों प्रतीप के पुत्र थे । साथ ही इस प्रकार[३] से यह क्रिया साधारण व्यवहार की क्रिया हो जायेगी , जब कि यह आपद्धर्म है , और विशेष परिस्थितियों में ही इसकी स्वीकृति है । जहां पातिव्रत्य का इतना ऊंचा आदर्श रहा हो वहां नियोग को सामान्य क्रिया मान लेना इस आदर्श की हंसी उड़ाना होगा । इस सम्बन्ध में हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि उस समय यज्ञ में दीक्षित होने से पूर्व भोगासक्त राजाओं को संयमित जीवन व्यतीत करना पड़ता था , इसका उनके भौतिक जीवन , तथा स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता था तथा यज्ञ में प्रदान की जाने वाली खीर या चरु इत्यादि विशेष मन्त्रों तथा औषधियों से तैयार की जाने वाली पुष्टिकर वस्तुयें रहीं होगी , जिससे कि बलिष्ठ तथा योग्य संतान की प्राप्ति सम्भव हो सके ।

इन आरोपों का खण्डन करने के बावजूद उपयाज द्वारा श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति के लिये द्रुपद द्वारा यज्ञ कराये जाने के निमन्त्रण को अस्वीकार कर देना[४] तथा अपने भाई याज के लिये परामर्श देना जो कि उसकी दृष्टि में फल का लोभी

- -

१- पर्गिटर - ए० ३० हि० ट्रे० , अ० १३, पृ० १६५-१६६

२- ऋ० ५।१०।६८

३- महा० आदिप० ११६।३५ पुंस: काड़्०क्षान्ते पुत्रमापदि ।

४- वही आदिप० १६६।११-१३ ।

था[१]। रहस्यात्मक लगता है। क्योंकि यज्ञ कराना तो श्रेष्ठ ब्राह्मणों का कार्य था और ब्राह्मण प्राय: उसके लिये तत्पर रहते थे दशरथ द्वारा ऋष्यश्रृंग को यज्ञ के सम्पादन के लिये ही निमन्त्रित किया गया था[२]। इस सम्बन्ध में अगर हम वस्तुस्थिति का अध्ययन करें तो स्पष्ट होता है कि उपयाज द्वारा द्रुपद का यज्ञ कराये जाने से इंकार करना इसलिये नहीं था कि वह यज्ञ नहीं कराना चाहते थे अथवा वह कोई अनैतिक कार्य रहा होगा, वरन् इसलिये कि द्रुपद जिस संकल्प को लेकर यज्ञ करना चाहते थे, वह उपयाज की दृष्टि में उचित नहीं था[३]। परन्तु उस समय भी कुछ लोग ऐसे थे जो इस बात का विचार न कर यज्ञ सम्पादित करा देते थे, जैसा कि राजा त्रिशंकु के उस यज्ञ को कराने से वशिष्ठ तथा उनके पुत्रों ने इंकार कर दिया था, जिससे कि वह सशरीर स्वर्ग जा जा सके और विश्वामित्र ने ऐसा यज्ञ कराने का प्रयत्न किया था।

रामायण में नियोग का उदाहरण नहीं -

जहां महाभारत में नियोग के अनेकानेक उदाहरण प्राप्त होते हैं, वहीं रामायण में हमें नियोग का कोई उदाहरण नहीं प्राप्त होता। इससे स्पष्ट होता है कि महाभारतकाल में नैतिकता के नियमों में कुछ शिथिलता आयी थी।

नियोग प्रथा का पतन -

यद्यपि नियोग प्रथा की स्वीकृति आपद्धर्म के रूप में ही दी गयी थी, लेकिन प्रारम्भ से ही कुछ शास्त्रकारों ने इसका विरोध किया था। जहां गौतम[४] ऐसे शास्त्रकारों ने इसका समर्थन किया था, वहीं पर आपस्तम्बधर्मसूत्र[५] और

१- महा० आदिप० १६६। १८-२१

२- रामा० बालका० १२ सर्ग

३- महा० आदिप० १६६। ३-११

४- गौतम ध० सू० १८।८

५- आपस्तम्ब ध० सू० २।१०। २७।५-७

बौधायन धर्मसूत्र[१] आदि ने इसकी निन्दा की थी । यद्यपि मनु ने भी इस प्रथा का उल्लेख किया है[२], परन्तु बाद में उन्होंने भी उसकी भर्त्सना की है और उसे विवाह के नियमों के विरुद्ध तथा अनैतिक ठहराया है । उन्होंने राजा वेन को इसका प्रथम जनक मानकर वर्णसंकरता फैलाने के कारण उसकी निन्दा की है और लिखा है कि " भद्र एवं विज्ञ लोग नियोग की निन्दा करते है , किन्तु कुछ लोग अज्ञानवश उसे अपनाते हैं[३] । वृहस्पति ने लिखा है " मनु ने प्रथम नियोग का वर्णन करके उसे निषिद्ध किया है , इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में लोगों में तप , बल एवं ज्ञान था , अतएव वे नियमों का तथैव पालन कर सकते थे किन्तु द्वापर एवं कलियुग में लोगों में शक्ति एवं बलका ह्रास हो गया है , अत: वे नियोग के पालन में असमर्थ है[४] । महाकाव्य में भी हम देखते हैं कि धीरे-धीरे इस प्रथा के विरुद्ध मत होता जा रहा था । महाभारत के उपदेशात्मक भाग १ में लोगों की सम्मति इस प्रथा के विरुद्ध थी[५] । विदुर के द्वारा ऐसे पुत्र की निन्दा की गयी है , जो परस्त्री में अपने वीर्य का आधान करता है[६] । जयद्रथ , दु:शासन व दुर्योधन पाण्डवों को प्राय: पाण्डु के क्षेत्रज पुत्र कहकर सम्बोधित करते थे , जिससे कि वे उत्तेजित हों[७] । आपस्तम्ब और बौधायन ने जनमत को जागृत करने के लिये लिखा कि - " विधवा के पति को

१- बौधायन ध० सू० २।२।३८

२- मनु ६।६०-६३

३- मनु ६। ६४-६८

४- वृहस्पति (याज्ञ० १।६८-६६ की टीका में अपरार्क द्वारा तथा मनु ६।६८ की टीका में कुल्लूक द्वारा उद्धृत ।

५- महा० अनु० प० ४४।५२-५३ , आदिप० ६५।३१

६- वही उद्योगप० ३७। ५-६

७- वही द्रोणप० ३८।२५ पाण्डो: क्षेत्रोद्भवा: सुता: ।
द्रोणप० ७२।४ , आदिप० १३६।१६ ।

नियोग से उत्पन्न पुत्रों द्वारा कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं होता।[१] आदिपर्व में भी इसी प्रकार का उल्लेख किया गया है, सम्भवत: ये बाद में जोड़े गये हैं।[२] भीष्म ने भी इस प्रथा के विरोध में अपना मत व्यक्त किया है।[३] ईसा के ३०० वर्ष पूर्व तक तो यह प्रथा प्रचलित रही, परन्तु कालान्तर में इसका विरोध होने लगा। इसको समाप्ति के अनेक कारणों का उल्लेख करते हुए अल्टेकर लिखते हैं - वैराग्य की ओर झुकाव, विवाह तथा दाम्पत्य सम्बन्ध के विषय में उत्तम विचार, आदि ने नियोग प्रथा को निरुत्साहित किया था, इसे आदिकाल को पशुवत प्रथा माना गया, अब दत्तक पुत्र को अधिक महत्ता दी जाने लगी।[४] जब इस प्रथा को स्वीकृति थी उस समय भी रानियां नियोग करने के लिये स्वेच्छा से प्रस्तुत न होती थी।[५] पातिव्रत्य के ऊंचे आदर्श ने भी इस प्रथा के पतन में योगदान दिया और पौराणिक काल में नियोग तथा पुनर्विवाह दोनों की मनाही हो गयी। विवाह की पवित्रता तथा उच्च नैतिकता के कारण ही रामायण में इसका एक भी उदाहरण नहीं प्राप्त होता। यद्यपि इस प्रथा से विधवाओं को अवश्य कुछ लाभ हुआ था, वे स्वयं सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी न होकर भी अपने नाबालिग पुत्र के संरक्षिका के रूप में उत्तराधिकारिणी होती थी, जिसे इस प्रथा को समाप्त कर उनसे छीन लिया गया, यद्यपि पुरुषों को पुनर्विवाह की अनुमति थी। इस प्रकार कालान्तर में यह प्रथा काल के गर्त में समा गयी।

१- आपस्तम्ब ध० सू० २।६।१३।८ रेतोधा पुत्रं नयतिपरेत्य यमसादने। एस० राव शास्त्री - वीमेन इन सैक्रेड लाज, पृ० २० में लिखा है कि यह बाद का क्षेपक है।

२- महा० आदिप० ६५।३०

३- वही अनु०प० ४४।५२

४- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० १४८।

५- महा० आदिप० १०४।४६, १०६।५, १५, आदिप० १२०अ०।

अध्याय - ८

स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति

स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति

राज्य सम्बन्धी प्राचीन अवधारणा -

भारतवर्ष की राजनीतिक परम्परा में मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिये राज्य को अपरिहार्य माना गया है तथा ऐतिहासिक युग के आरम्भ से ही इस देश में राज्य का अस्तित्व रहा है।[१] प्राचीनकाल में सरकार का सामान्य स्वरूप वंशपरम्परागत राजतन्त्र था।[२] राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही उत्तराधिकारी होता था, यदि उसमें किसी प्रकार की शारीरिक अथवा चारित्रिक दुर्बलता होती थी, तो आयुक्रम से उसके अनुजों और अनुज के अभाव में पितृव्य सिंहासन का अधिकारी होता था।[३] स्पष्ट है कि राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में सामान्य रूप से जब पुरुषों को ही किसी प्रकार के राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे, तब स्त्रियों को पृथक से कोई राजनीतिक अधिकार कैसे प्राप्त हो सकते थे।[४] परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि प्रशासन के क्षेत्र में उनका कोई महत्त्व नहीं था, वरन् महाकाव्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि राजकुल की महिलाओं ने राजनीति के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

- -

१- डा० प्रेमकुमारी दीक्षित - रामायण में राज्य व्यवस्था, पृ० १

२- आर० सी० मजूमदार - एन्सियेंट इंडिया, पृ० ४४। शतपथ ब्रा० ७।५।३, दशपुरुषाराज्यम्। राजा के निर्वाचित होने के भी कुछ प्रमाण प्राप्त होते हैं - ऋ० १०।१७३, अथर्व० ६।८७-८८। आर०सी० मजूमदार - एन्सियेंट इंडिया, पृ० ४४। जी०सी० पाण्डे - फाउन्डेशन आफ इंडियन कल्चर, पृ० २६। देवीदत्त शुक्ल - प्राचीन भारत में जनतंत्र, पृ० ७ जनतंत्र का विकृत रूप राजतंत्र था।

३- शुक्रनीति १।३४०-४३

४- प्रो० इन्द्र - दि स्टेटस आफ वीमेन इन एन्सियेंट इंडिया, पृ० १४५।

स्त्री और प्रशासन -

स्त्रियां राज्य की शासन बनें , इस सम्बन्ध में राजनीति के विचारक एकमत नहीं थे । कुछ विचारक ऐसे थे जो स्त्रियों के राजसिंहासन पर बैठने का विरोध नहीं करते , जैसा कि राम के वन जाने पर वशिष्ठ दृणाता पूर्वक कहते हैं कि - " सम्पूर्ण गृहस्थों की पत्नियां उनका आधा अंग हैं , अत: राम के स्थान पर सीता राजसिंहासन पर बैठेंगी और राज्य का पालन करेंगी ।[१] यजुर्वेद में उनका राज्य संचालन की प्रमुख सभाओं में चुनकर जाने का उल्लेख है ।[२] भीष्म ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है कि - जिन राजाओं के पुत्र न हो उनको कन्याओं को ही राज्य पर अभिषिक्त कर दिया जाय ।[३] जब कि हापकिन्स ने लिखा है कि - " एक दुष्ट सलाहकार राजा को यह परामर्श देता है कि हे राजन् , यदि आपने युद्धों के द्वारा अपने प्रजा को उनके पुत्रों से रहित कर दिया है , तो लड़कियों को विवाह करने दो और यह लड़कियां आपके प्रजा के दुख को दूर कर देंगी ।[४] महाभारत के श्रवण व पठन का एक फल " पुत्रं वीरं जनयति कन्यां च राज्य भागिनीम " यह भी एक पाठ मिलता है । अत: कन्या का राज्यशासन सम्भव था ।[५] वामदेव इक्ष्वाकु

- -

१- रामा० अयो० का० ३७। २३-२४

आत्मा हि दारा सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम् ।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम् ।।

मिलाइये - अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ०१८५

२- यजुर्वेद २०।१-१० । विशेषत: नवम मन्त्र में स्त्री के अंगों का परिगणन किया गया है , शेष मन्त्रों में पुरुष के अंगों का उल्लेख है । इस मन्त्र में स्त्री के अंग का वर्णन करके यह स्पष्ट संकेत दे दिया है कि स्त्री भी राजा चुनी जा सकती है ।

३- महा० शा० प० ३३।४५

कुमारी नास्ति येषां च कन्यास्तत्राभिषेचय ।

४- हापकिन्स - सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया , पृ० ३०७ ।

५- महा० स्वर्गारोहण ५।४० , पृ० ८८ , फुटनोट ३८ ,पृ० ५ ,आदिप० ६३।२२ ।

रानी को स्वजनों तथा इक्ष्वाकु राज्यका शासन करने का वरदान देते हैं।[१] जातक में एक ऐसा दृष्टान्त है जिसमें बनारस के राजा के सन्यास ले लेने पर प्रजा की प्रार्थना पर उसकी रानी ने राज्य का शासन अपने हाथ में ले लिया।[२] हिन्दू राजकुमारियों को स्वयं के अधिकार से राजसिंहासन पर बैठने का अधिकार था, पर प्राय: उन्होंने अपने पतियों के स्थान पर स्वयं शासक होने की इच्छा नहीं प्रकट की।[३] मनु ने राजा को निर्देश दिया है कि वह राज्य शासन में योग्यता, गुण और कर्म के अनुसार अच्छे श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषों को बलि (वेतन) देकर सभी पदों पर नियुक्त करे।[४] कश्मीर की रानी सुगन्धा और दिद्दा ने पूरे शासक की तरह राज्य किया।[५]

जहाँ उपर्युक्त विचारकों ने स्त्रियों के शासन बनने के अधिकार को स्वीकार किया, वहीं पर कुछ विचारकों ने स्त्रियों के राजगद्दी पर बैठने के अधिकार का विरोध किया, जो समाज के साधारण विचार के अनुकूल था, उनका विचार था कि स्त्रियां अपने प्राकृतिक बन्धनों के कारण योग्य शासक नहीं हो सकती।[६] प्रमुख राजनीतिक विचारक शुक्र ने लड़कियों के सिंहासन के उत्तराधिकारी होने के विषय में कुछ नहीं लिखा। उन्होंने राजा के सब लड़कों को राजनीतिक तथा सैनिक शिक्षा दिये जाने का उल्लेख किया है, परन्तु लड़कियों को दी जाने वाली ऐसी शिक्षा का उल्लेख नहीं है, क्योंकि वे सिंहासन पर बैठने के अधिकार से वंचित थी।[७] महाभारत

१- महा० वनप० १६२।७०

२- जातक ४, पृ० ४८७। अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० १८५।

३- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० १८६

४- मनु ७।१२५

५- कल्हण - राजतरंगिणी, ६

६- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० १८६

७- शुक्र २।२३ ।

में भी सामान्यतया स्त्री द्वारा अनुशासित राज्य को अच्छा नहीं समझा जाता था।[१] स्त्रियों को इस योग्य नहीं समझा जाता था कि उन्हें राज्यशासन की गुप्त बातें बतायीं जायें[२] तथा उनसे गुप्त परामर्श किया जाय।[३]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि स्त्रियों के राजनीति में भाग लेने के विषय में दो मत थे।

स्त्रीराज्य -

कुछ राज्य स्त्री प्रधान रहे होंगे तभी तो भीष्म राजा के कर्तव्यों के वर्णन में कहते हैं - " जिन राज्यों में स्त्री की प्रधानता होती है, जिन्हें विद्वानों ने छोड़ रक्खा हो वे राज्य मूर्ख मंत्रियों से संतप्त होकर पानी की बूंद के समान सूख जाते हैं।[४] कलिङ्ग देश के राजा की कन्या के स्वयंवर में समागत राजाओं में स्त्री राज्य के स्वामी महाराज श्रृंगाल[५] का भी वर्णन आया है परन्तु यह स्त्री राज्य कैसा था, उसकी क्या विशेषतायें थी, स्त्री राज्य होते हुए भी उसका शासक पुरुष कैसे था, इस विषय पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में समागत राजाओं में स्त्रीराज्य तङ्गण[६] का उल्लेख करते हैं।

- -

१- महा० उद्योगप० ३८।४०

यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता।
मज्जन्ति ते वशाराजन्नद्यामश्मप्लवा इव ॥

देखिये - डा० नत्थूलाल गुप्त - महाभारत एक समाजशास्त्रीय अनुशीलन, पृ० १००

२- महा० शा० प० ७३।५५

३- महा० वनप० १५०।४४

स्त्रिया मूढेन बालेन लुब्धेन लघुनापि वा।
न मन्त्रयात् गुह्यानि येषु चोन्मादलक्षणम् ॥

४- महा० शा०प० ६६। ७३, पृ० ४६०६

स्त्रीप्रधानानि राज्यानि विद्वद्भिर्वर्जितानि च।

५- महा० शा० प० ४।७

महिषी -

प्राचीनकाल से ही शासन के क्षेत्र में महिषी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वैदिक काल में राजा की सहायता के लिये जो पदाधिकारी होते थे, वे "वीर" या "रत्न" कहलाते थे। "रत्नियों" में "महिषी" का महत्वपूर्ण स्थान था। राज्याभिषेक के अवसर पर राजा इष्टि के द्वारा रत्नियों को अपने अनुकूल बनाता था।[१] स्पष्ट है कि राजरानी को राजकार्य में प्रमुख स्थान प्राप्त था। उत्तरकालीन साहित्य में भी महिषी का स्थान स्पष्टत: व्यक्त होता है। राजा के साथ उसका भी अभिषेक होता था और अश्वमेध यज्ञों के अवसर पर उसकी उपस्थिति अनिवार्य थी। राम को ऐसे अवसर पर सीता की स्वर्णप्रतिमा रखनी पड़ी थी।[२]

महिषी का केवल धार्मिक महत्व ही नहीं था, वरन् वह राजनीति में भी सक्रिय भाग लेती थी। नारियों ने तत्कालीन युग की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों को अत्यधिक प्रभावित किया था। सीता और कैकेयी जैसी रानियों ने राष्ट्रों का भाग्य परिवर्तन कर दिया है।[३] भारत में स्त्रियों के शासन के तीन प्रकार के उदाहरण प्राप्त होते हैं - प्रथम वे स्त्रियां हैं जिन्होंने अपने विवाह के कारण राज्य पर अधिकार किया व स्वतन्त्र रूप से शासन किया।

द्वितीय श्रेणी में वे स्त्रियां हैं जो जन्म के आधार से राज्य पर बैठी

- -

१- यजुर्वेद २०।१-१० , स्त्री अंगों का परिगणन कर यह स्पष्ट संकेत दे दिया है कि स्त्री भी राजा चुनी जा सकती है। शतपथ ब्रा० ५।३।१।६ , पंचविंश ब्राह्मण १६।१।४ ।

२- रामा० उ० का० ६१।२५

३- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० १७०-७१ ।

और तीसरी श्रेणी उन स्त्रियों की है , जिन्होंने अपने पतियों के साथ शासन किया ।[१] युवराज पत्नी होने के नाते सीता राजधर्मनिष्ठिता थी ।[२] सीता समय-समय पर राम को विभिन्न विषयों पर परामर्श देती थी ।[३] राम के वन जाने पर वशिष्ठ का कथन कि " राम के लिये प्रस्तुत सिंहासन पर सीता बैठेंगी व शासन करेंगी ।[४] स्त्रियों को शासन योग्यता पर प्रकाश डालता है ।

इस काल में सीता के अतिरिक्त कौशल्या, कैकेयी , मन्थरा , तारा आदि महान विदुषी व राजनीतिज्ञ महिलायें थीं , जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से शासन कार्य में भाग लिया । उनमें समय व परिस्थितियों को समझने की अद्भुद क्षमता थी । कैकेयी के द्वारा इक्ष्वाकु कुल के इतिहास में जो भूमिका निभाई गयी , उसके लिये हम लौकिक दृष्टि से उसकी आलोचना करें , परन्तु राजनीतिक दृष्टिकोण से वह अपनी योजना में पूर्णतः सफल रही । रामायण के अन्तर्गत दशरथ का वर्णन कामी तथा विषय भोगों में लिप्त राजा के रूप में हुआ है ।[५] यही कारण है कि प्राचीन भारत में राजनैतिक जीवन शक्तिहीन हो गया था ।[६] इससे प्रतीत होता है कि वास्तविक शासन कैकेयी के हाथों में था । राजनीतिक क्रान्तियों के पीछे भी रानी की शक्ति का प्रभाव निहित था ।[७] जनमत ले लेने पर भी दशरथ के राम को युवराज बनाने के प्रस्ताव को विफल करने में कैकेयी स्वयं समर्थ थी । कैकेयी के

१- शकुन्तला राव शास्त्री - वीमेन इन दि सैक्रेड लाज , पृ० ६६ , देखिये - प्रो० इन्द्र - दि स्टेटस आफ वीमेन इन एन्सियेंट इंडिया , पृ० १४६

२- रामा० अयो० का० २६।४ अभिज्ञा राजधर्माणां ।

३- रामा० अरण्यका० ९।९

४- वही अयो० का० ३७। २३-२४

५- वही अयो० का० १०।२६-२७

६- आर० सी० मजूमदार - एन्सियेंट इंडिया ,पृ० २०८

७- प्रेमकुमारी दीक्षित - रामायण में राज्य व्यवस्था ,पृ० ४२ । एस०एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० १७१ ।

अत्यधिक शक्ति सम्पन्न होने का अनुमान दशरथ के इन बचनों से प्रतीत होता है - " मैं और मेरे सेवक सभी तुम्हारी आज्ञा के अधीन हैं , तुम्हारे किसी भी मनोरथ को मैं भंग नहीं कर सकता , चाहे उसके लिये मुझे अपने प्राण ही क्यों न देने पड़े।[१] वे उसकी प्रत्येक उचित व अनुचित इच्छा की पूर्ति के लिये तत्पर रहते थे।[२] राज्य पर दशरथ के साथ-साथ कैकेयी का भी समान आधिपत्य था।[३] दशरथ कहते हैं - " अपने बल को जानते हुए भी तू मुझ पर सन्देह क्यों कर रही है।[४] इन कथनों से स्पष्ट होता है कि कैकेयी कितनी अधिकार सम्पन्न थी।

कैकेयी तत्कालीन परिस्थितियों को समझने में पूर्ण सक्षम थी। वह दशरथ के साथ युद्धों में जाती थी[५] तथा राक्षसों के द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों से पूर्ण परिचित थी।[६] कैकेयी को मन्त्रज्ञा कहा गया है।[७] वशिष्ठ विश्वामित्र आदि राष्ट्र के निर्माताओं ने[८] राक्षसों के अत्याचार को समाप्त करने के लिये एक योजना बनायी थी[९], जिसका नेतृत्व राम को करना था , तथा जिसमें कैकेयी ने मुख्य भूमिका निर्वाह की। वह अभीष्ट धर्म की सिद्धि के लिये ही दशरथ से राम को बनवास भेजने के लिये आग्रह करती है[१०], क्योंकि अगर राम का राज्याभिषेक हो जाता तो यह निश्चित था कि वे अयोध्या तक ही सीमित रह जाते और राक्षसों से पीड़ित पृथ्वी का कष्ट दूर न हो पाता जो उनके जन्म का उद्देश्य था।[११]

१- रामा० अयो० का० १०।३४ सर्वे तव वशानुगाः ।

२- वही अयो० का० १०।३१-३३

३- वही अयो० का० १०।३६-३८

४- वही अयो० का० १०।३५ बलमात्मनि जानन्ती ---------- ।

५- वही अयो० का० ६।११

६- वही अयो० का० ६।१४ , बालका० १५।६

७- वही अयो० का० २२।१७

८- सन्त पाराशर - रामायण - पृ० १३

९- रामा० बालका० १६।१४-१५

इस प्रकार कैकेयी ने राम को तपस्वी वेष में वन भेजकर राम के लिये वन में रहने वाले वनवासियों तथा महर्षियों आदि से मिलने वाले समर्थन के कार्य को सरल बना दिया और रावण वध के लिये पृष्ठभूमि तैयार की क्योंकि यह सर्वविदित तथ्य है कि कैकेयी राम को बहुत चाहती थी तथा भरत व राम में किसी प्रकार का अन्तर न समझती थी।[1] राम राज्याभिषेक की बात सुनकर कैकेयी ने मन्थरा को पुरस्कार स्वरूप अपना कीमती हार दे दिया था।[2] राम स्वयं सर्वत्र इसका विरोध करते हैं कि कैकेयी के कारण मेरा राज्याभिषेक रुक गया।[3] प्रत्युत राम राज्याभिषेक से अधिक वनवास को अभ्युदयकारी मानते हैं।[4] इससे यह सिद्ध होता है कि योजना पूर्ववत् थी, योजना के पूर्ववत् होने का संकेत इससे भी मिलता है, जब भरत माता की भर्त्सना करते हैं तब भरद्वाज मुनि कहते हैं - " भरत तुम कैकेयी के प्रति दोषदृष्टि न रखो, श्रीराम का यह वनवास भविष्य में बड़ा ही सुखद होगा।[5] भरत द्वारा श्रीराम से अयोध्या चलने के लिये आग्रह करने पर समस्त मुनि भरत से कहते हैं कि " तुम्हें इस प्रकार का दुराग्रह नहीं करना चाहिये, हम लोग राम को सदा पिता के ऋण से उऋण देखना चाहते हैं।[6] इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इक्ष्वाकु वंश में कैकेयी ने जो कार्य कर दिखाया, वह औरों के लिये दुष्कर था।

राजपरिवारों की स्त्रियों से ऐसी आशा की जाती थी कि वे राजधर्म से परिचित हों, क्योंकि राजरानी होने के कारण उन्हें महत्वपूर्ण भूमिका निभानी

१- रामा० अयो० का० ८।३५

२- वही अयो० का० ८।३२, ८।३६

३- वही अयो० का० २२।१७-१९

४- वही अयो० का० २२।१९

५- रामा० अयो० का० ९२।३०, ९२।३१

६- वही अयो० का० ११२।५-६ ग्राह्यं रामस्यवाक्यं तेपितरं यद्यवेक्षसे।

पड़ती थी । मन्थरा कैकेयी से कहती है - " राजपरिवार में उत्पन्न होकर व एक राजा की महारानी होकर भी तुम राजधर्म की उग्रता को कैसे नहीं समझ रही हो ।[१] इक्ष्वाकु राजवंश में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली दूसरी स्त्री मन्थरा थी । कैकेयी की प्रेरणास्रोत मन्थरा ही थी । वह इतनी कूटनीतिज्ञ तथा परिस्थितियों को समझने में चतुर थी कि उड़ती चिड़िया पहचानने वाली थी । उसने अयोध्या को इस प्रकार साफ सुथरी तथा[२] माता कौशल्या को धन बांटते देख उसने तुरन्त पूछताछ प्रारम्भ कर दी[३] और सारा समाचार जाना[४] तथा एक स्वामिभक्त सेविका की भांति अपनी स्वामिनी को आने वाली परिस्थिति को समझाया तथा कैकेयनरेश ने उसे जिस कार्य हेतु नियुक्त किया था उसको पूर्णतः सफल बनाया ।[५] मन्थरा को वाक्यविशारद[६] कहा गया है । उसने कैकेयी को जिन-जिन वचनों द्वारा उत्तेजित किया उससे यही प्रतीत होता है कि वह कूटनीतिक चालों को समझने में पूर्णतः कुशल व सक्षम थी ।[६] कैकेयी के यह कहने पर कि राम के राज्य प्राप्ति के सौ वर्ष बाद भरत को भी निश्चय ही अपने पिता पितामहों का राज्य मिलेगा[७] मन्थरा उसे सचेत करते हुए तत्सम्बन्धित नियम को बताते हुए कहती है कि राजा के ज्येष्ठ पुत्र को ही राजा के बाद राज्य प्राप्त होता है, ज्येष्ठ पुत्र के गुणवान न होने पर दूसरे गुणवान पुत्रों को भी राज्य सौंप देते हैं[८], अतः राम के राजा हो जाने पर भरत राज्यपरम्परा से अलग हो जायेंगे ।[९] कैकेयी मन्थरा की बुद्धि से बहुत प्रभावित थी ।[१०]

- -

१- रामा० अयो० का० ७।२३ नराधिप कुले जाता महिषीत्वं महीपतेः ।
उग्रत्वं राजधर्माणां कथं देवि न बुध्यसे ।।

२- रामा० अयो० का० ७।२

३- वही अयो० का० ७।८

४- वही अयो० का० ७।१०-११

५- रामा० अयो०का० ८।३३-३४ ,श्रीशालग्राम शास्त्री- रामायण में राजनीति

६- रामा० अयो० का० ७।१८ , ८।२८

७- वही अयो० का० ८।१६

८- वही अयो०का० ८।२४ तस्माज्ज्येष्ठे हि कैकेयि राज्यतन्त्राणिपार्थिवाः ।

९- वही अयो० का० ८।२२ , ८।२३

उसकी दूरदर्शिता की ओर संकेत करती हुई कैकेयी कहती है कि - " यदि तू न होती तो राजा जो षड्यन्त्र रचना चाहते हैं , वह कदापि मेरी समझ में नहीं आता ।[१] मन्थरा मति , स्मृति और बुद्धि , क्षात्रविद्या : राजनीति : तथा नाना प्रकार की मायाओं के ज्ञान से सम्पन्न थी ।[२] राम को इस आशंका से कि " कहीं भरत राज्य पाकर कैकेयी के अधीन रहने के कारण कौशल्या व सुमित्रा का भरण-पोषण न करें[३] , प्रतीत होता है कि प्रशासन में कैकेयी हस्तक्षेप करती थी । राम के चौदह वर्ष बाद जब भरत ने राज्य वापस किया तो राज्य की स्थिति इतनी अच्छी थी कि " राज्य का खजाना , कोठार , घर और सेना सब दस गुनी बढ़ गयी थी[४] ।

ताटका और शूर्पणखा[५] प्रदेशों की शासिका थी । रावण ने शूर्पणखा को संतुष्ट करने के लिये[६] दण्डकारण्य में खर दूषण के सेनापतित्व में चौदह हजार राक्षसों को रख दिया था जो उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे । शूर्पणखा राम से अपनी शक्ति तथा प्रभाव के बारे में कहती है - " मैं बल और पराक्रम में बल में जगत प्रसिद्ध (भाइयों रावण , कुम्भकर्ण और खर-दूषण) आदि से बढ़कर हूँ[७] । वह प्रभाव में उत्कृष्ट तथा असीम शक्ति सम्पन्न थी ।[८] इसीलिये वह राम के समक्ष ऐसा प्रस्ताव रखती है कि वह उसके साथ विवाह कर दण्डकारण्य में विचरण करे ।

१- रामा० अयो०का० ९।४० नहि समवबुध्येयं कुब्जे राज्ञश्चिकीर्षितम् ।

२- वही अयो० का० ९।४५-४७
मतय: क्षात्रविधाश्चमायाश्चात्र वसन्ति ते ।।

३- रामा० अयो० का० ३१।१४

४- वही युद्ध का० १२७।५७ सर्वं कृतं दशगुणं --------- ।

५- वही उ० का० २७। ३७-३९ भविष्यति तवादेशं सदा कुर्वन् निशाचर: ।
तव ते वचनं शूर: करिष्यति सदा खर: ।

६- रामा० उ० का० २४।३२

७- वही अरण्य का० १७। २२-२४ , तानहं समतिक्रान्ता अरण्यका० १४।२४

८- वही अरण्यका० १७।२५ अहं प्रभाव सम्पन्ना स्वच्छन्द बलगामिनी ।

वह अपनी तथा शत्रु (राम) की शक्ति का अनुमान लगाकर खर से कहती है कि तुम महासमर में राम से नहीं जीत पाओगे ।[१] खरदूषण के मारे जाने पर शूर्पणखा द्वारा रावण को जो उपालम्भ दिया जाता है , वह उसके राजनीति सम्बन्धी ज्ञान को प्रदर्शित करता है ।[२] वह रावण के अपूर्ण गुप्तचर व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हुए कहती है - जनस्थान में इतना बड़ा काण्ड हो गया और तुम्हें ज्ञात नहीं ।[३] ठीक समय पर काम न करने वाला राजा राज्यसहित नष्ट हो जाता है ।[४] जिन लोगों के गुप्तचर , कोष , और नीति अपने अधीन नहीं है , वे साधारण लोगों के ही समान है ।[५] ताटका भी बहुत ही शक्तिशालिनी थी , उसने मलद करूष राज्य को तहस नहस कर डाला था ।[६]

वानरराज बाली की पत्नी तारा महान बुद्धिमती और राजनीतिज्ञ थी । एस० एन० व्यास लिखते हैं - " तारा ही पहले बाली और फिर सुग्रीव के द्वारा किष्किन्धा का राज्यसंचालन करती थी , उन दोनों की नीतियां और कार्य तारा के निर्देशानुसार निर्धारित होते थे ।[७] सुग्रीव के एक बार हार जाने पर पुन: उसके द्वारा ललकारने पर तारा की बुद्धि तुरन्त झंकृत हो उठती है[८] तथा सुग्रीव और राम की मित्रता के समाचार से वह बाली को अवगत करती है ।[९] वह समय के

१- रामा० अरण्यका० २१। १६-१७

२- रामा० अरण्यका० ३३ वां सर्ग

३- वही अरण्यका० ३३।११

४- वही अरण्यका० ३३।४

५- वही अरण्यका० ३३।६

६- वही बालका० २४। २८-२९ इमौ जनपदौ नित्यंविनाशयतिराघव ।

७- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० ६९-७०

८- रामा० कि० का० १५।११

९- वही कि० का० १५। १७-१९ ।

अनुकूल तथा अपने व शत्रु के बलाबल को जानकर राजनीति के महत्वपूर्ण सिद्धान्त कि अगर शत्रु अपने से शक्तिशाली हो तो मित्रता कर लेनी चाहिये वह बालि से सुग्रीव को युवराज बनाने तथा राम के साथ मित्रता कर लेने का परामर्श देती है।[१] बाली को तारा समय-समय पर बौद्धिक परामर्श देता थी।[२] तारा को मन्त्रविद[३] तथा पण्डिता[४] कहा गया है। हनुमान तारा को ही पूरे वानरराज्य की स्वामिनी कहते हैं।[५] राज्य का कुशलतापूर्वक संचालन करने में तारा सक्षम थी। बाली के मारे जाने पर हनुमान तारा से कहते हैं कि तुम ही इन्हें : सुग्रीव तथा अंगद : भावी कार्य के लिये प्रेरित करो, तुम्हारे अधीन रहकर अंगद इस पृथ्वी[६] का पालन करें तथा शूरवीरों के द्वारा तुम इस नगरी को रक्षा करो।[७]

तारा सदैव हर प्रकार से बाली तथा राज्य को रक्षा में तत्पर रहती थी। वह सूक्ष्म विषयों के निर्णय करने तथा नाना प्रकार के उत्पातों के चिन्हों को समझने में बहुत निपुण थी।[८] इसलिये बाली सुग्रीव को यह परामर्श देते हैं कि "तारा जिस कार्य को अच्छा बतावे उसे संदेहरहित होकर करना, तारा की किसी भी सम्मति का परिणाम उल्टा नहीं होता।[९] बाली के मारे जाने पर तारा विलाप करती है कि - " राजरानी होने का मेरा जो अभिमान था, वह समाप्त हो गया।[१०]

१- रामा० कि० का० १५। २३-२४, कि० का० १५।७

२- रामा० कि० का० १६।६, २०।१२

३- वही कि० का० १६।१२ " मन्त्रविद् "

४- वही कि० का० २१।५

५- वही कि० का० २१।८

६- वही कि० का० २१।६

७- वही कि० का० २०।१४

८- वही कि० का० २२।१३ सुषेण दुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये।
औत्पातिके च विविधे सर्वत: परिनिष्ठिता ।।

६- वही कि० का० २२।१४ नहि तारामतं किंचिदन्यथापरिवर्तते ।।

१०- वही कि० का० २३।६ अभग्नश्च मे मानो ------------ ।

साथ ही आपके मारे जाने से लक्ष्मी आपके साथ ही मुझे भी छोड़कर चली गयी है[1], स्पष्ट है कि राजरानी का राज्य में महत्वपूर्ण स्थान होता था ।

सुग्रीव के द्वारा प्रमादवश राम के कार्य में विलम्ब करने पर लक्ष्मण के रोष को तारा ही युक्तियुक्त वचनों द्वारा शान्त करती है[2]। लक्ष्मण भी तारा की बुद्धि से प्रभावित होकर भावी कार्य की सफलता के बारे में परामर्श मांगते हैं[3]। वह लक्ष्मण से मानव स्वभाव के सम्बन्ध में बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण विवेचन प्रस्तुत करती है। वह लक्ष्मण से रावण के बल का परिचय देती है[4], जैसा कि उसे बाली से ज्ञात हुआ था[5]।

रामायण के समान ही महाभारतकाल में भी महिषी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था और उन्होंने अपने पद के अनुरूप उत्तरदायित्वों का निर्वाह किया। राजकुमारों के समान ही राजकुमारियों की भी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता था। राजकुमारी उत्तरा के शिक्षक रूप में बृहन्नलारूपधारी अर्जुन को नियुक्त किया गया था[6]। द्रौपदी अत्यन्त शिक्षित थी और अपने साधुपति युधिष्ठिर से बहुत बुद्धिमत्तापूर्वक शास्त्रों पर विचार करती है[7]। द्रौपदी को विदुषी व महाप्राज्ञा कहा गया है[8]। द्रौपदी के अद्वितीय मस्तिष्क का प्रभाव पाण्डवों पर तथा उनकी नीति पर

- -

१- रामा० कि० का० २३।३०

२- रामा० कि० का० ३५ सर्ग

३- वही कि० का० ३३।४६

४- वही कि० का० ३५।१५

५- वही कि० का० ३५।१८

६- महा० विराट प० ११।१०

७- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इंडिया, पृ० २८३।

८- महा० वनप० २७।२, २६।१ ।

पड़ा यह बात प्रसिद्ध है।[१] द्रौपदी अपने गहन राजनीतिक ज्ञान का परिचय देते हुए युधिष्ठिर को राजदण्डधारण पूर्वक पृथ्वी का शासन करने के लिये प्रेरित करती है।[२] वह समयानुसार क्रोध और क्षमा के प्रयोग पर बल देती है।[३] युधिष्ठिर के मन में वैराग्य उत्पन्न होने पर वह उन्हें वन, द्वीप और पर्वतों से युक्त पृथ्वी का शासन करने का परामर्श देती है।[४] वनपर्व में युधिष्ठिर के शत्रुविषयक क्रोध को उभाड़ने के लिये उसके द्वारा जिन संतापपूर्ण वचनों का प्रयोग किया गया है वह उसके असीम ज्ञान को प्रदर्शित करते हैं।[५] इसी सन्दर्भ में प्रह्लाद और बलि के संवाद का उद्धरण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें तेज और क्षमा के समुचित अवसर बताये गये हैं।[६] हापकिन्स के अनुसार " ब्राह्मण काल की चालाक, बुद्धिमान, और विद्वान् स्त्रियों की भांति कृष्णा भी शिक्षित, बुद्धिमान व किसी से दबने वाली न थी।[७] द्रौपदी युधिष्ठिर की बुद्धि, धर्म एवं ईश्वर के न्याय पर आक्षेप करती है।[८] द्रौपदी ने एक वृहद् शास्त्रार्थ के बाद प्रारब्ध के कठिन विषय की ओर संकेत किया है। दैवी और मानुषिक शक्तियों के सूक्ष्म विषय की वह अच्छी जानकार थी।[९] द्रौपदी पुरुषार्थ को प्रधान मानकर देशकाल के अनुसार साम, दान आदि उपायों के प्रयोग का परामर्श देती है।[१०] कार्य की समस्त युक्तियों में पराक्रम को श्रेष्ठ

१- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० १८६ ।

२- महा० शा० प० १४।१४

३- वही शा० प० १४।१७

४- वही शा० प० १४।१३, १४।१८

५- वही वनप० २७। ३७-४०

६- वही वनप० २८ सर्ग

७- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया, पृ० २८८ ।

८- महा० वनप० ३० सर्ग

९- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया, पृ० २८३ ।

१०- महा० वनप० ३२।५३, ३२।५५ ।

माना है[१]। वह राजनीति के महत्वपूर्ण सिद्धान्त कि जब शत्रु संकट में हो , तब उस पर आक्रमण करना चाहिये का प्रतिपादन करती है[२]। द्रौपदी ने राजनीति विषयक ज्ञान अपने भाइयों के साथ ही अपने घर में प्राप्त किया था[३]। द्रौपदी ने अपनी बुद्धिमत्ता से दास बने हुए अपने पतियों को " दास्यभाव " से मुक्त कराया था[४]।

राजा के साथ रानी का भी अभिषेक होता था । कुन्ती द्रौपदी को आशीर्वाद देती है कि - " पतियों के साथ रानी के पद पर तुम्हारा अभिषेक हो[५]। राजसूययज्ञ में द्रौपदी के केश अवभृथ स्नान में मन्त्रपूत जल से पवित्र किये गये थे[६]। राज्याभिषेक के समय युधिष्ठिर के साथ द्रौपदी का भी अभिषेक किया गया था[७]। जयद्रथ द्रौपदी से यह प्रस्ताव करता है कि " तुम मेरी महारानी बनकर सम्पूर्ण सिन्धु और सौवीर राज्य का उपभोग करो[८]। कीचक भी इसी प्रकार का प्रस्ताव द्रौपदी के समक्ष रखता है[९]। कुन्ती ने भी अपने स्वामी के राज्य का उपभोग किया था , बड़े-बड़े दान किये और यज्ञों में विधिपूर्वक सोमपान किया था[१०]। पतिनिर्जित पृथ्वी का अश्वमेघ में दान करो[११] इस कुन्ती के आशीर्वाद तथा " सारी पृथ्वी मेरे वश में थी[१२] इस द्रौपदी की उक्ति से यह सूचित होता है कि रानी पति के साथ राज्य की

१- महा० वनप० ३२।५४
२- वही वनप० ३२।५६ , ३२।५७
३- वही वनप० ३२।६१-६२
४- वही सभा ७१।२८
५- वही आदिप० १९८।९
६- वही सभाप० ६७।३०
७- वही शा०प० ४०।१३-१४
८- वही वनप० २६७।१७
९- वही विराटप० १४।१४
१०- वही आश्रमवा० २३।१७
११- महा० आदिप० १९१।१७
१२- वही विराटप० २०।२१ यस्याः सागरपर्यन्ता पृथ्वी वशवर्तिनी ।।

अधिकारिणी होती थी।[१] अतः अश्वमेघ यज्ञ में ब्राह्मणों को पृथ्वी का दान करने के युधिष्ठिर के विचार का उसके भाइयों एवं द्रौपदी द्वारा अनुमोदन आवश्यक था।[२] कुन्ती ने उत्साहपूर्ण और वाक्पटुता से अपने पुत्रों को आदेश दिया कि वे लोगद्रौपदी की सलाह को मानें, इससे यह स्पष्ट होता है कि उसके सम्बन्धियों को द्रौपदी के निर्णय पर कितना विश्वास था।[३] रावण भी सीता के समक्ष ऐसा प्रस्ताव रखता है कि - " लंका के इस विशाल राज्य पर अभिषेक कराकर तुम इस विशाल राज्य का पालन करो। मुझ जैसे राक्षस, देवता तथा सम्पूर्ण चराचर जगत तुम्हारे सेवक बनकर रहेंगे।[४] इससे यह सिद्ध होता है कि राक्षसों के राज्य में भी स्त्रियां शासिका हो सकती थीं।

राजरानियां राजाओं के असावधान होने पर स्वयं सावधान रहती थीं।[५] दमयन्ती देशकाल को जानने वाली थी।[६] कौटिल्य ने भी राजा को राजमहिषी से सदा सतर्क रहने को कहा है[७] तथा राज्य के अन्य महत्वपूर्ण अधिकारियों के समान राजमाता व राजमहिषी के लिये वृत्ति की व्यवस्था की बात कही है।[८] कश्मीर के राज्य में रानी सूर्यमती तथा श्रीलेखा ने स्वतन्त्र रूप से शासन कार्य किया था।[९]

१- महा० वनप० २३५।४, २३५।६ सत्यभामा भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त करती है कि द्रौपदी तुम अपने पतियों द्वारा जीती हुई पृथ्वी की स्वामिनी होगी। आदिप० ७३।३ दुष्यन्त भी इसी प्रकार का मत व्यक्त करते हैं।

२- महा० आश्रमवा० ६१।१४

३- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० १८६

४- रामा० अरण्यका० ५५।२६-२७ लङ्कायाः सुमहद्राज्यमिदं त्वमनुपालय। अभिषेकक्लिन्ना ——— ।

५- महा० वनप० ६०। १-२

६- वही वनप० ६०।१२

७- कौ० अर्थ० १।२०।१७

८- कौ० अर्थ० ५।३।६

९- कल्हण - राजतरंगिणी - ७।१८३-१८४, ७।१६७-१६६, ७।२६५, ७।३३०, ७।३८३, ७।४६० ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि शासनकार्य में महिषी का महत्वपूर्ण हाथ होता था और इस कारण उसका राजधर्म से परिचित होना आवश्यक समझा जाता था ।

राजमाता -

महिषी के समान ही राजमातायें भी प्रशासन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी । पत्नी के रूप में सम्मान तथा राजमाता के रूप में वे श्रद्धा तथा आदर की पात्र थी । राजमाता तथा राजरानी राजनीति में सक्रिय भाग लेती थी और अनेक विषम परिस्थितियों में राजा भी उनसे परामर्श लिया करते थे ।[१] वे उस समय जब कि उनके पति मर जाते थे , कैदकर लिये जाते थे , या लड़के नाबालिग रहते थे , राज्यकार्य अपने हाथ में लेने में नहीं हिचकती थी ।[२]

शासनकार्य में राजमाता का महत्वपूर्ण हाथ होता था तभी तो कैकेयी कहती है कि - " यदि एक दिन भी मैं राजमाता कौशल्या को राजमाता होने के नाते दूसरे लोगों से हाथ जोड़वाते देख लूंगी तो उस समय मैं अपने लिये मर जाना ही अच्छा समझूंगी ।[३] कौशल्या को भी यही आशा थी कि सम्भवत: राजमाता बनकर मैं वह सब देख लूंगी , जो महिषी होने पर भी मुझे न प्राप्त हुवा था ।[४] राम की इस आशंका से कि भरत राज्य पाकर कैकेयी के आधीन रहने के कारण कौशल्या व सुमित्रा का भरण-पोषण न करें । स्पष्ट होता है कि शासनकार्य में कैकेयी हस्तक्षेप करती थी ।[५] कैकेयी के निर्देशन में चौदह वर्षों में भरत द्वारा शासित राज्य की स्थिति बहुत

१- प्रेमकुमारी दीक्षित - महाभारत में राज्य व्यवस्था , पृ० ८५

२- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन , पृ० १८७ , कौशाम्बी के राजा उदयन के बन्दी हो जाने पर उसकी माता ने बड़ी कुशलतापूर्वक राज्य का संचालन किया था ।

३- रामा० अयो० का० १२।४८

४- वही अयो० का० २०।४५ , २०।३८

५- वही अयो० का० ३१।१४ भरतो राज्यमासाद्य कैकेय्यां पर्यवस्थित: ।

अच्छी हो गयी थी , सभी वस्तुओं में दस गुने की वृद्धि हो गयी थी ।[१] रघुवंश सर्ग १६ में कालिदास ने अयोध्या नरेश अग्निवर्ण की विधवा राजमहिषी का वर्णन किया है , जिसने अग्निवर्ण की मृत्यु हो जाने पर राजकाज अपने हाथ में लेकर शासन किया ।

महाभारत में भी हम देखते हैं कि अधिकार पद पर न रहते हुए भी राजमातायें " बालक राजा " के राज्य की शासन विधि का उत्तरदायित्व उठाती थीं जैसा कि निम्नांकित दृष्टान्तों से स्पष्ट है । शान्तनु के स्वर्गवासी हो जाने पर भीष्म सत्यवती के परामर्श से ही शासन कार्य चलाते थे ।[२] राजमातायें निरन्तर राज्य के कल्याण में रत रहती थीं और विषम परिस्थितियों के उपस्थित होने पर विवेकपूर्ण परामर्श के द्वारा समस्याओं के समाधान में सहयोग देती थी । विचित्रवीर्य के निःसंतान मर जाने पर शान्तनु की कुलपरम्परा के विलुप्त हो जाने के भय से सत्यवती व्याकुल हो उठी , उसने तत्काल इसके समाधान का प्रयास किया और भीष्म से आग्रह किया कि तुम दोनों भाइयों की पुत्रवधुओं से सन्तान उत्पन्न करो , मेरी आज्ञा से यह धर्मकार्य अवश्य करो ।[३] भीष्म के सहमत न होने पर सत्यवती ने अराजकता के दोषों का वर्णन करते हुए[४] व्यास को नियोग के लिये नियुक्त किया[५] और नष्ट होती हुई कुल की परम्परा को सुरक्षित रखा ।

अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण गान्धारी का है । पतिपरायणा गान्धारी परिस्थितियों की सूक्ष्मता को समझने में कुशल थी । वह अपनी बुद्धि द्वारा यह जान चुकी थी कि इस क्रूर दुर्योधन के द्वारा इस कुल का विनाश अवश्यम्भावी है । इसीलिये

१- रामा० युद्धका० १२७।५७ सर्वं कृतं दशगुणं मया ।।

२- महा० आदिप० १०१।५ सत्यवती के परामर्श से ही चित्राङ्गद को राज्य पर बिठाया , आदिप० १०२।१ " सत्यवत्या मते स्थित: " ।। १०२।७३ ।

३- महा० आदि प० १०३। ६-१०

४- वही आदि प० ९८। ४०-४१

५- वही आदि प० ९९। ४६-४९ , १००।१-२९

उसने धृतराष्ट्र को चेतावनी दी थी कि वह इन उदंड बालकों की हां में हां न मिलायें[१] तथा इस वंश के नाश का कारण मत बनिये, बंधे हुए पुल को मत तोड़िये, पांडव शान्त हैं, वैर विरोध से इस समय विमुख हैं, यद्यपि आप यह जानते हैं, फिर भी मैं आपको याद दिलाती हूं[२]।

गान्धारी जहां एक ओर पतिव्रता थी वहीं दूसरी ओर निर्भीक और न्यायप्रिय भी थी। उन्होंने सदैव सत्य नीति और धर्म का ही पक्ष लिया, तथा अन्याय का विरोध किया। भरी सभा में द्रौपदी पर उनके पुत्रों द्वारा जो अत्याचार किये गये, उससे वे अप्रसन्न थी। दुर्योधन की दुष्टताओं से परेशान होकर वे उसे त्याग देने का परामर्श देती है[३]। समय-समय पर वह धृतराष्ट्र के अनीतियुक्त आचरण के लिये उन्हें सचेत करती रहती है[४]। पुन: जुयें में प्रवृत्त हुए युधिष्ठिर को उन्होंने रोका था[५]। धृतराष्ट्र के द्वारा संजय से एकान्त में दोनों पक्षों के बलाबल को जानने की अभिलाषा प्रकट करने पर संजय कहते हैं कि मैं गान्धारी की उपस्थिति में ही आपसे कुछ बताऊंगा एकान्त में नहीं, क्योंकि वे धर्म की ज्ञाता, विचारकुशल तथा सिद्धान्तों की ज्ञाता है[६]। वे दुर्योधन को उसकी अनुचित कार्वाइयों पर बराबर टोकती रहती थी, और उसकी अनीति के भावी कुपरिणाम का भयंकर चित्र उसके सामने खींचा करती थी[७]।

१- महा० सभाप० ७५।४

२- वही सभाप० ७५। ५-६

३- महा० सभा ७५।८ त्यज्यतां कुलपांसन:।

४- वही सभा ७५।१०

५- वही सभा ७६।२० , पृ० ६२४

६- वही उद्योग ६७। ६-७ ।

७- वही उद्योग ६६। ६-१० ।

गान्धारी की सम्मति तथा बुद्धि पर सबको बहुत ही भरोसा था । दुर्योधन को जब युद्ध के विचार से विरत करने में श्रीकृष्ण तथा कुरुवंश के लोग सफल न हुए तब पुत्र को सुमार्ग पर लाने के अंतिम उपाय के रूप में गान्धारी का स्मरण किया जाता है और गान्धारी दुर्योधन को तो निन्दा करती ही है , साथ ही साथ वह धृतराष्ट्र को भी भर्त्सना करती है ।[1] अल्टेकर ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि - " रानियां उस समय शासन में अपना दखल करती रहीं , वे लोगप्राय: पेचीदे मामलों में दूत कर्म में नियुक्त की जाती[2] थी और उनके परामर्श का आसरा देखा जाता था । वह धृतराष्ट्र से कहती है कि - " मूढ़ व अज्ञानी पुत्र को राज्य देकर आप उसका दुष्परिणाम आज भोगे , साम तथा भेद नीति के द्वारा जिस पर विजय प्राप्त किया जा सकता है , वहां कौन मूर्ख दण्ड का प्रयोग करेगा ।[3] दुर्योधन को सुमार्ग पर लाने के सन्दर्भ में उन्होंने जो तथ्य प्रस्तुत किये हैं , वे उनके राजनीतिक विषयक ज्ञान तथा दूरदर्शिता के परिचायक हैं ।[4] वे दुर्योधन से पाण्डवों का न्यायोचित भाग आधा राज्य देने को कहती है ।[5]

राजनीतिक ज्ञान के क्षेत्र में स्त्रीरत्न विदुला का नाम उल्लेखनीय है । विदुला को यशस्विनी , मानिनी , तेजस्विनी , जितेन्द्रिया , क्षात्रिय धर्मपरायणा और दूरदर्शिनी कहा गया है ।[6] राजाओं की मण्डली में उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी । वह अनेक शास्त्रों की जानकार थी । सिन्धुराज से पराजित होकर घर में बैठे हुए अपने

- -

१- महा० उद्योग १२९।११-१२

२- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन , पृ० १८६

३- महा० उद्योग १२९। १३-१५

४- वही उद्योग प० १२९। २०-४० , १२९। २८

५- वही उद्योग १२९।४३

६- वही उद्योग १३३। २-५

यशस्विनी मन्युमती कुले जाता विभावरी ।
क्षत्रधर्मरता दान्ता विदुला दीर्घदर्शिनी ।
विश्रुता राजसंसत्सु श्रुतवाक्या बहुश्रुता ।।

हतोत्साहित पुत्र को उन्होंने क्षात्रधर्म को ऐसी स्फूर्तिदायिनी शिक्षा दी कि उसकी प्रसुप्त आत्मा अपने कायरपन को छोड़कर जागृत हो उठी और अन्तत: उसने शत्रु पर विजय प्राप्त किया।[१] वह क्षत्रिय धर्म पर प्रकाश डालते हुए कहती है कि - " युद्ध करना क्षत्रियों का धर्म है , ऐसा समझकर उसी में मन लगा।[२] विदुला अपने पति के शासनकाल में राज्य की स्वामिनी तथा समस्त कल्याणमय साधनों से सम्पन्न थी।[३] महिषी के रूप में उन्होंने बड़े-बड़े दान किये थे।[४] विदुला के द्वारा शत्रु को वश में करने के जो उपाय बताये गये हैं वे उनके व्यावहारिक राजनीति विषयक ज्ञान को अभिव्यक्त करते हैं।[५] उसका यह उत्साहपूर्ण वाक्य उठो , जागो , दृढ़ विश्वास[६] के साथ ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले कर्मों में लग जाओ , सफलता अवश्य मिलेगी एक कायर के हृदय में भी उत्साह उत्पन्न कर देता है। राजमाताओं के पास अपना गुप्त खजाना भी रहता था।[७] विदुला का यह उपदेश विचित्र अर्थ , पद और अक्षरों से युक्त था।[८]

राजनीति के क्षेत्र में कुन्ती का ज्ञान कम नहीं था। उन्होंने कृष्ण के द्वारा अपने पुत्रों को जो संदेश दिया था , वह उनके राजनीतिविषयक ज्ञान को प्रदर्शित करता है। उन्होंने राजनीति के महत्वपूर्ण सिद्धान्त " यथा राजा तथा प्रजा " के

१- महा० उद्योग १३३।१४

२- महा० उद्योग प० १३४।११

३- वही उद्योग प० १३४।१४ ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रापरमपूजिता।

४- वही उद्योग प० १३४।१६

५- वही उद्योग प० १३५। २५-४० , १३४।३६

६- वही उद्योग १३५। २६-३०

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।

७- महा० उद्योग प० १३६।६ अस्ति न: कोशनिचयो महान हाविदितस्तव।

तमहं वेद - - - - - - - - - - - - - -॥

८- वही उद्योग १३६।१२।

सिद्धान्त का विवेचन किया । उनके ये विचार राजनीति के प्रकांड पंडित भीष्म पितामह के विचारों से सादृश्य रखते हैं । वह दण्ड के प्रयोग के विषय में महत्वपूर्ण विचार अभिव्यक्त करती है।[१] वे राजा को ही काल का कारण बताती हैं।[२] कुन्ती इस बात का प्रतिपादन करती है कि शासनप्रणाली चाहे जो भी हो , उसकी उत्तमता अथवा निम्नता शासन सूत्र के संचालकों के सत्कर्मों पर निर्भर है।[३] वे साम , दाम , दण्ड , भेद के द्वारा पाण्डवों को पुन: राज्य प्राप्त करने का उपदेश देती हैं।[४] उन्होंने विदुला और संजय के दृष्टान्त देकर बड़े ही मार्मिक शब्दों में कहला भेजा " क्षात्राणी जिसके लिये पुत्र को जन्म देती है , उसका उपयुक्त अवसर आ गया है , श्रेष्ठ मनुष्य किसी से वैर ठन जाने पर उत्साहहीन नहीं होते।[५]

राजनीतिज्ञ होने के साथ ही साथ कुन्ती कूटनीतिज्ञ भी थी । विदुर के द्वारा युद्ध के भावी दुष्परिणाम तथा कर्ण के पराक्रम के सम्बन्ध में जानकर वह कर्ण तथा पाण्डवों में सन्धि कराने का प्रयास करती है और इस सम्बन्ध में उन्हें आंशिक सफलता भी प्राप्त होती है।[६] वे अर्जुन को क्षात्रिय धर्म में सदा तत्पर रहने वाली द्रौपदी के इच्छित पथ पर चलने का आदेश देती है।[७] युधिष्ठिर के द्वारा कर्ण के लिये शोक करने पर वे युक्तियुक्त वचनों द्वारा उन्हें समझाती है।[८] धृतराष्ट्र व गान्धारी के साथ वनगमन के लिये प्रस्तुत कुन्ती को भीमसेन के द्वारा रोके जाने पर वह क्षात्र धर्म में रत क्षात्राणी के योग्य उत्तर देते हुए कहती है कि " तुम लोग कायर

- -

१- महा० उद्योग १३२।१४

२- महा० उद्योग १३२।१६ राजा कालस्य कारणम् ।।

३- वही उद्योग १३२।१३-१४

४- वही उद्योग १३२।३० , १३२।३२

५- वही उद्योग १३७।१०

६- वही उद्योग१४५।२-३ , १४५।६-१२ , १४६।२०-२१

७- वही उद्योग १३७।२० द्रौपद्या: पदवीं चर ।

बनकर हाथ पर हाथ रखकर बैठे न रहो , न्यायोचित अधिकार से सदा के लिये हाथ न धो बैठो , इसलिये मैंने तुम लोगों को युद्ध के लिये उकसाया था , अपने सुख की इच्छा से नहीं , स्वामी के राज्य का सुख भोग चुकी , बड़े-बड़े दान किये और यज्ञों में विधिपूर्वक सोमपान किया ।[१]

कुन्ती के उपर्युक्त उद्गार उनकी पुत्रवत्सलता के साथ ही उनकी राजनीतिक परिपक्वता को भी अभिव्यक्त करते हैं । राज्य का परित्याग कर सन्यास ग्रहण करने को प्रस्तुत विदेहराज जनक को उनकी रानी ने राजधर्म के उपदेश द्वारा उन्हें इस कार्य से विरत किया ।[२] दशार्णनरेश हिरण्यवर्मा के आक्रमण करने पर द्रुपद ने अपनी रानी से एकान्त में उस विपत्ति से उद्धार के लिये परामर्श किया था ।[३] और उसके परामर्शानुसार राजा ने आवश्यक व्यवस्था की थी ।[४] राजमातायें युद्ध , सन्धि आदि में मध्यस्थता का कार्य भी करती थीं जैसा कि गान्धार राजमाता ने किया था ।[५] महाप्रस्थान पर जाने के पूर्व युधिष्ठिर ने परीक्षित को हस्तिनापुर में और वज्र को इन्द्रप्रस्थ पर राज्याधिष्ठित कर उनकी रक्षा का दायित्व सुभद्रा को सौंपा था ।[६] रानियां जिस प्रकार अपने पति के राज्य को अपना समझती थीं , उसी प्रकार मातायें पुत्र के राज्य को " स्वराज्य " अपना ही राज्य समझती थी । कुन्ती " स्वराज्य " और राज्यफल त्यागकर वन को चली गयी थी ।[७] पुत्र के राज्याभिषेक के समय राजमाता भी उपस्थित रहती थी और अलग सिंहासन पर बैठती थी ।[८] युधिष्ठिर अपना सारा राज्य धृतराष्ट्र तथा गान्धारी की सेवा में समर्पित कर स्वस्थ एवं सुखी हो गये ।[९]

१- महा० आश्रमवासिक १७

२- वही शा० प० १८

३- वही उद्योग प० १९०।१९

४- वही उद्योग १९१।१६ , १९१।१५

५- वही आश्वमेधिक ८५।१९-२१

६- वही महाप्रस्थानिक १।७-९

राजमातायें इसकी भी जानकारी रखती थी कि नगर में कौन प्रवेश कर रहा है , तथा उसके सम्बन्ध में आवश्यक विवरण जानकर वह प्रबन्ध करती थी । दमयन्ती के द्वारा चैदि नरेश की राजधानी में प्रवेश करने पर राजमाता उन्हें बुलाती है तथा उसका समस्त विवरण जानकर उसके पति की खोज करने का आश्वासन देती है ।[१] दमयन्ती के द्वारा यह शर्त रखने पर कि " यदि कोई पुरुष मुझे प्राप्त करना चाहे तो आपके द्वारा दण्डनीय हो , और अपराध के बार-बार करने पर प्राणदण्ड दे ।[२] राजमाता सदैव उसकी रक्षा करती रही ।[३] स्पष्ट है कि राजमातायें अपराधियों को दण्ड देने की शक्ति रखती थी । नारद के द्वारा युधिष्ठिर से कुशल प्रश्न पूछते समय यह कहना कि -" स्त्री बल द्वारा राष्ट्र को पीड़ा तो नहीं पहुंचती[४] यह सिद्ध करता है कि स्त्री बल जहां राष्ट्र के लिये कल्याणकारी हो सकता है , वहीं वह अकल्याणकारी भी हो सकता था । धृतराष्ट्र ने वनप्रस्थान करते समय युधिष्ठिर को यह आश्वासन दिया था कि -" कुन्ती , द्रौपदी , [illegible] , सुभद्रा , उलूपी आदि राजस्त्रियां प्रजा के कल्याण में रत रहेंगी ।[५] द्यूत में हार जाने पर सभा में द्रौपदी को लाये जाने पर गान्धारी तथा अन्य अन्तःपुर की स्त्रियां आक्रोश व्यक्त करती है[६] और गान्धारी के आग्रह करने पर धृतराष्ट्र ने द्रौपदी को वर दिये , जिससे पाण्डव दासता से मुक्त हुए ।[७]

- -

१- महा० वनप० ६५।४६-६५

२- वही वनप० ६५।६६

३- वही वन प० ६५। ७२-७४ , ६६। २२-२३

४- [illegible]

४- वही सभा ५।६६

५- वही आश्रमवासिक १६।२०

६- महा० सभा ७१।२४

७- वही सभा ७१।२८ , ३२ ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि यद्यपि राजमाताओं को प्रत्यक्ष रूप से प्रशासनिक अधिकार प्राप्त नहीं थे , परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वे प्रशासन कार्य को प्रभावित करती थी । विषम परिस्थितियों में - समस्याओं के समाधान के लिये उनसे परामर्श किया जाता था और उनके द्वारा दी गयी सम्मति का राजा आदर करते थे । पुत्र के नाबालिग होने पर वे संरक्षक का कार्य करती थी । वे सदैव राजकल्याण में रत रहती थीं । राजमातायें पुत्रों के राज्य को अपना ही राज्य समझती थी जैसा कि कुन्ती , गान्धारी और विदुला के उदाहरणों से स्पष्ट है । कुन्ती , गान्धारी , विदुला आदि राजमाताओं ने प्रशासन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी ।

सभाओं में स्त्रियों की उपस्थिति -

वैदिक साहित्य में अनेक ऐसे वर्णन प्राप्त होते हैं , जिनसे यह सिद्ध होता है कि उस काल में स्त्रियों को सभाओं में जाने तथा वहां पर अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का पूरा अधिकार था । ऋग्वेद की एक उपमा से यह स्पष्ट होता है कि नारियां सभाओं में भाग लेने में स्वतंत्र हैं ।[१] इस बात का समर्थन प्रो० इन्द्र के इस कथन से होता है कि - " वैदिक काल में स्त्रियां सभाओं या सम्मेलनों में वंचित नहीं रखी जाती थी "।[२] मनु का कथन है कि नारियां बिना किसी रोक टोक के सभी प्रकार के उत्सवों में भाग ले सकती हैं और उनमें पुरुष उनका सम्मान करते हैं ।[३] प्राचीन काल

१- ऋ० १।२४।८ , प्रशान्तकुमार वेदालंकार - वैदिक साहित्य में नारी , पृ० १५० अथर्व० ७।३८।४ , १२।३।५२ नारी को राज्य सभा में जाकर अपने विचारों को व्यक्त करने का अधिकार प्राप्त है । ऋ० १।१६७।३ , अथर्व० १४।१।२१ " विदथमावदासि " ।

२- प्रो० इन्द्र - दि स्टेटस आफ वीमैन इन एन्शियेंट इंडिया ,पृ० १४८ अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० १६ - में मत व्यक्त किया है कि उस काल में प्रजातान्त्रिक सभायें थीं , स्त्रियां इन सभाओं में अपना विचार व्यक्त करती थीं ।

३- मनु ३।५६ ।

की नारी अपने अधिकारों के प्रति पूर्णतया जागरूक थी । तैत्तिरीय संहिता में एक स्त्री संस्था के अस्तित्व का पता चलता है , जहां वे नारी विषयक समस्याओं , अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों पर विचार विमर्श करती थीं ।[१]

महाकाव्य काल में सामान्यत: स्त्रियां समाओं में उपस्थित नहीं होती थी, यद्यपि इस प्रकार का उन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था , और आवश्यकता पड़ने पर वे समाओं में उपस्थित होती थी । महाकाव्य में अनेक ऐसे दृष्टान्त प्राप्त होते हैं जहां हम राजमाताओं को समाओं में उपस्थित होते हुए देखते हैं । जब राम को वापस लाने के लिये भरत चित्रकूट जाते हैं तब कैकेयी , सुमित्रा और कौशल्या भी उनके साथ गयी थीं ।[२] वहां आयोजित सभा में समस्त (सुहृद) लोग उपस्थित थे[३], जिनमें मातायें भी सम्मिलित थीं[४] । भरत की चित्रकूट यात्रा में सैनिकों के साथ उनकी स्त्रियां भी गयी थीं ।[५] श्रीराम के द्वारा खर दूषण सहित चौदह हजार राक्षसों के वध कर दिये जाने पर शूर्पणखा लंका में पहुंचकर मन्त्रियों के बीच में बैठे हुए रावण को फटकारती है ।[६] उसे वहां उपस्थित होने में किसी संकोच का अनुभव नहीं होता । राम के द्वारा लंका विजय के पश्चात सीता वानरों व राक्षसों से भरी सभा में उपस्थित होती है ।[७] क्योंकि राम इस मत का समर्थन करते हैं कि - " विपत्तिकाल

१- कल्चरल फोरम , १९६४ , पृ० १२३ । ऐतरेय ब्रा० ५।१-४ , कौशीतकि ब्रा० २।६ , गन्धर्वगृहीता एक अच्छी वक्त्री थी , जिसे सभा में भाषण देने को कहा गया है । देखिये - पी० एन० प्रभु - " हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन पृ० १३७ ।

२- रामा० अयो० का० ८३।६

३- वही अयो० का० १०४।३२

४- रामा० अयो० का० १०६।१७

५- वही अयो० का० ८२।२५-२६

६- वही अरण्यका० ३३।१-२४

७- वही युद्ध का० ११५।१२ ।

में शारीरिक या मानसिक पीड़ा के अवसरों पर युद्ध में , स्वयंवर में , यज्ञ में अथवा विवाह में स्त्री का दीखना दोष की बात नहीं है[1]। राम ने सीता को भरी सभा में त्यागा था[2]। सीता के अग्नि परीक्षण के समय वहां बालकों और वृद्धों सहित महान जनसमुदाय उपस्थित था[3]। वहां अन्यान्य स्त्रियों की उपस्थिति[4] इस बात को प्रकट करती है कि स्त्रियों के सभाओं में जाने में कोई निर्बन्ध नहीं था ।

महाभारत काल में भी स्त्रियों के सभाओं में उपस्थित होने में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था । राजमातायें अनेक अवसरों पर सभा में उपस्थित होती थी तथा सभा में होने वाले विचार विमर्श में भाग लेती थी । द्यूतसभा में गान्धारी उपस्थित थी , गान्धारी की प्रेरणा से ही धृतराष्ट्र द्रौपदी को वर देने के लिये उद्यत हुए थे[5]। युधिष्ठिर के द्वारा पुन: द्यूत में प्रवृत्त होने पर सभा में कुरुवंश के प्रमुख लोगों के साथ ही गान्धारी , कुन्ती , द्रौपदी इत्यादि भी उपस्थित थी और सभी ने युधिष्ठिर को इससे विरत करना चाहा , परन्तु भावी के वशीभूत युधिष्ठिर जुयें से विरत न हुए[6]। गान्धारी ने राजसभा में उपस्थित होकर धर्मानुकूल वचनों द्वारा दुर्योधन को पाण्डवों से सन्धि करने के लिये प्रेरित किया था[7]। सभा समिति आदि

१- रामा० युद्धका० ११४।२८ व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे ।
न क्रतौ न विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रिया: ।।

२- वही युद्धका० ११६।१६

३- वही युद्धका० ११६।३०

४- वही युद्धका० ११६।३४ ,। उ० का० ६६।१-१० सीता पुन: एक बार राजसभा में अपनी शुद्धता प्रमाणित करने के लिये उपस्थित होती है ।

५- महा० सभाप० ७१। २२-२४

६- वही सभा प० ७६।२० , पृ० ६२४

७- वही उद्योगप० १२६। २ , ५ , ६ , १८ ।

में नारियों के बैठने की अलग व्यवस्था की जाती थी।[१] गान्धारी ने भरी सभा में पापी दुर्योधन के अपराधों का वर्णन किया था।[२] विदुरा जैसी राजमाताओं का राजाओं की मण्डली में अत्यन्त सम्मानित स्थान था।[३] सभा में गान्धारी की उपस्थिति में ही संजय पाण्डव पक्ष की बातें बताने के लिये सहमत होते हैं।[४] युधिष्ठिर के अभिषेक के समय कुन्ती भी स्वर्णसिंहासन पर विराजमान थी।[५] युयुत्सु और संजय के साथ गान्धारी भी उस समय उपस्थित थी।[६] दुष्यन्त के द्वारा स्वीकार न किये जाने पर शकुन्तला ने राजसभा में उपस्थित होकर उसकी भर्त्सना की थी।[७] पाण्डवों और कौरवों का अस्त्र संचालन देखने के लिये रंगभूमि में राजा और राजघराने की स्त्रियों के लिये भवन तथा शिविकायें बनायी गयीं थी।[८] रंगभूमि में गान्धारी, कुन्ती तथा राजभवन की सभी स्त्रियां मंचों पर शोभायमान थी।[९] रंगभूमि में कर्ण और अर्जुन को लेकर स्त्रियों और पुरुषों में भी दो दल हो गये थे।[१०] विराट सभा में न्याय न मिलने पर राजा विराट की भर्त्सना करती हुई सैरन्ध्री को राजसभा के सभासदों द्वारा साधुवाद प्राप्त हुआ था।[११] राजा जनक की सभा में हम सुलभा को योग तथा मोक्ष के विषय में शास्त्रार्थ करते हुए देखते हैं।[१२]

१- सुखमय भट्टाचार्य - महाभारतकालीन समाज, पृ० ७८
२- महा० उद्योगप० १४८। २८-२९
३- वही उद्योगप० १३३।३
४- वही उद्योगप० ६७।८
५- वही शा० प० ४०।४
६- वही शा०प० ४०।६
७- महा० आदिप० ७४।१५, १९-३५
८- वही आदिप० १३३। ११-१२
९- वही आदिप० १३३।१५-१६
१०- वही आदिप० १३५।२७

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि वैदिक काल में स्त्रियां सभाओं में भाग लेती थी , परन्तु कालान्तर में स्त्रियों के सभाओं में भाग लेने के बहुत कम ही उदाहरण प्राप्त होते हैं । सम्भवत: इसका कारण यह था कि अब स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार कम होता गया । स्मृतियों के काल में विवाह को ही उपनयन का समस्थानीय मान लिया गया ।[१] इन सबका प्रभाव स्त्रियों के सभाओं में भाग लेने पर भी पड़ा , उत्तरवैदिक काल में स्थिति में परिवर्तन आ गया , जहां एक मन्त्र में कहा गया है कि स्त्रियां सभाओं में भाग लेने नहीं जाती ।[२] स्त्रियों के सभाओं में भाग न लेने के कारण पर प्रकाश डालते हुए डा० दास लिखते हैं - " सभा के सदस्य जुयें और शराब में मशगूल हो जाते थे (ऋ० ७।४६-६) जिससे सभा में बहुत शोरगुल और उपद्रव होता था (ऋ० ८।२-१२) , इसलिये सभा स्त्रियों के जाने योग्य स्थान नहीं समझा जाता था ।[३] स्पष्ट है कि सामान्यत: स्त्रियां सभाओं में भाग नहीं लेती थी , यद्यपि ऐसा किसी प्रकार का कठोर प्रतिबन्ध नहीं था । स्त्रियां आवश्यकता पड़ने पर बिना किसी संकोच के राजसभाओं में उपस्थित होती थीं और अपने विचार व्यक्त करती थीं जैसा कि महाभारत में गान्धारी के उदाहरण से स्पष्ट है ।

सैनिक शिक्षा -

जहां तक स्त्रियों की सैनिक शिक्षा का प्रश्न है इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि यद्यपि इस प्रकार के प्रमाण तो उपलब्ध नहीं होते कि स्त्रियों को पृथक से

१- मनु २।६७

२- तस्मात्पुमांस: सभां याति न स्त्रिय: । स्म०स्स० ४, ७।४। देखिये- अल्टेकर - " दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० १६०

३- प्रो० इन्द्र - दि स्टेटस आफ वीमेन इन एन्सियेंट इंडिया , पृ० १४६ । ऋ० १।१६७-३ , ऋ० में इसका सन्देहात्मक वर्णन है , जिससे स्पष्ट होता है कि मुख्य-मुख्य अवसरों पर स्त्रियां कभी-कभी बैठकों में भाग लेती थी , जब सभा की कार्यवाही शोभनीय होती थी ।

विद्यालय आदि में सैनिक शिक्षा प्रदान की जाती रही हो , परन्तु हमें जो दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं , उनसे यह सिद्ध होता है कि कुछ स्त्रियों ने अवश्य सैनिक शिक्षा प्राप्त की होगी । ब्राह्मण कन्याओं को वेदों की शिक्षा तथा क्षत्रियवर्ण की कन्याओं को धनुषबाण का प्रयोग सिखाया जाता था ।[१] अल्टेकर ने भी यह मत व्यक्त किया है कि - " शासक परिवार की लड़कियां कुछ सैनिक और शासन सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करती थीं ।[२]

ऋग्वेद में प्राप्त वर्णनों से स्पष्ट होता है कि कुछ स्त्रियां सैनिक शिक्षा प्राप्त करती थीं ।[३] ऋग्वेद में स्त्री योद्धाओं का भी उल्लेख आता है , जिससे स्पष्ट है कि वे सेना में भरती होती थीं ।[४] तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि " इन्द्राणी सेना की देवता है ।[५] प्रो० इन्द्र[६] ने लिखा है कि - " आर्य सभ्यता के विकास में कोई ऐसा समय जरूर था , जब कि स्त्रियों को अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा में आक्रमणकारियों से युद्ध करना पड़ा । इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि इस काल में स्त्रियों ने न केवल राजनीति में कोई साधारण भाग लिया , अपितु उन्हें ऐसी शारीरिक व सैनिक शिक्षा भी दी गयी , जिससे वे वीरता , बुद्धि तथा चालाकी में पुरुषों को भी पीछे छोड़ देती थीं ।[७]

- -

१- ऋ० १।११२। १० , १०।१०२।२ , देखिये - डा० राधाकृष्णन - धर्म और समाज, पृ० १६४ ।

२-अल्टेकर- दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० २१ ।

३- ऋ० १।११२।१०, १।११६।१५, १।११७।११, १।११८।८, १०।३९।८ राजा खेल की रानी विश्पला ने युद्ध में अपना पैर खो दिया था । ऋ० १०।१०२।२ , ऋ० १।३२।९ पुत्र की रक्षा करती हुई अनार्य स्त्री का चित्रण है । ऋ० १।११६।१ ,अथर्व० १।२७।४ , १।२७।३, ऋ० १।४८।६, ऋ० १०।१५९।५, ऋ० ५।६१।७, ऋ० १०।८६।१० १०।१५९।६, ऋ० ५।३०।९, ऋ० १०।१६८।२, १०।८६।९ ।

४- ऋ० ५।३०।९ " स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेना: ।"

५- तै० सं० २।२।८।१ , " इन्द्राणी वै सेनायै देवता ।"

६- प्रो० इन्द्र - ", दि स्टेटस आफ वीमेन इन एन्शियेंट इंडिया ,पृ० १५३

७- वही , पृ० १५४ ।

कालान्तर में स्त्रियों की इस स्थिति में परिवर्तन आता गया । स्त्रियां अब घर के कार्यों में इतनी व्यस्त रहने लगीं कि उन्हें बाहर की दुनिया से विशेष लगाव न रहा । साथ ही स्त्रियों की बनावट तथा कोमलता आदि युद्धों के उपयुक्त नहीं पायी गयी जिससे कि हम बाद के समय में बहुत अल्प ही स्त्री योद्धाओं के उदाहरण पाते हैं । यद्यपि उनका सर्वथा अभाव भी नहीं था । महाकाव्यों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि कुछ स्त्रियों को अवश्य सैनिक शिक्षा प्राप्त हुई होगी । देवासुर संग्राम में इन्द्र की सहायता के लिये गये हुए राजा दशरथ के साथ कैकेयी भी युद्ध में गयी थी ।[1] उस युद्ध में दशरथ का शरीर क्षतविक्षत हो गया और उनकी चेतना लुप्त हो गयी[2] उस समय कैकेयी ने सारथी का काम कर पति को रणभूमि से अलग ले जाकर उनकी रक्षा की थी ।[3] स्पष्ट है कि कैकेयी अवश्य ही युद्धविद्या तथा प्राथमिक चिकित्सा में पारंगत रही होगी , तभी उसने इस प्रकार के साहस का परिचय दिया । द्वाररक्षा के कार्य में भी स्त्रियां नियुक्त की जाती थी । माता के अन्त:पुर में जाते हुए राम को द्वाररक्षा के कार्य में लगी बहुत सी नववयस्का एवं वृद्ध अवस्था वाली स्त्रियां दिखायी दी थीं ।[4] अश्वमेध में रानी कौशल्या ने अश्व का प्रोक्षण आदि के द्वारा संस्कार करके बड़ी प्रसन्नता के साथ तीन तलवारों से उसका स्पर्श किया था ।[5] सीता के धनुष उठाने की क्षमता देखकर ही जनक ने यह प्रण किया था कि शिव धनुष को चढ़ा देने वाले से ही सीता का विवाह होगा । इससे स्त्रियों की बलशीलता

- -

१- रामा० अयो० का० ९।११ पुरा देवासुरे युद्धे सह राजर्षिभि: पति: ।
अगच्छत् त्वमुपादाय देवराजस्य साह्यकृत् ।।

२- रामा० अयो० का० ९।१५ , ११।१८

३- वही अयो० का० ९।१६ , ११।१९
अपवाह्य त्वया देवि संग्रामान्नष्टचेतन: ।
तत्रापि विक्षत: शस्त्रै: पतिस्ते रक्षितस्त्वया ।।

४- रामा० अयो० का० २०।१२ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च द्वाररक्षणतत्परा: ।।

५- वही बालका० १४।३३ कृपाणैर्विससारैनं त्रिभि: परमया मुदा ।।

सूचित होती है।[१] सीता एक वीर नारी है, राजवैभव में पली होने पर भी आवश्यकता पड़ने पर असीमित धैर्य का परिचय देती है और एक वीर क्षत्राणी की तरह राम से कहती है - " कांटों को हटाते हुए मैं तुम्हारे आगे-आगे चलूंगी।[२]

राक्षस जातीय स्त्रियों में हम अत्यधिक बल व शक्ति देखते हैं। वे सामान्य स्त्रियों से अधिक शक्ति का परिचय देती हैं। इस सम्बन्ध में ताटका व शूर्पणखा के नाम उल्लेखनीय हैं। ताटका बहुत ही शक्तिशालिनी थी और मरुद करूष राज्य को उसने तहस नहस कर डाला था।[३] वह हजार हाथियों का बल धारण करती थी।[४] इसी प्रकार शूर्पणखा भी अत्यधिक बल से सम्पन्न थी। वह अपनी शक्ति तथा प्रभाव के बारे में प्रकाश डालते हुए कहती है कि - " मैं बल और पराक्रम में अपने कुल में जगत प्रसिद्ध भाइयों आदि से बढ़कर हूं।[५] मैं समस्त प्राणियों के मन में भय उत्पन्न करती हुई इस वन में विचरण करती हूं।[६] मैं प्रभाव (उत्कृष्ट भाव अनुराग अथवा महान बल पराक्रम) से सम्पन्न हूं और अपनी इच्छा तथा शक्ति से समस्त लोकों में विचरण कर सकती हूं।[७] उसके बल की ओर संकेत करते हुए खर कहता है - " तुम तो स्वयं ही दूसरे प्राणियों के लिये यमराज के समान बल और पराक्रम से सम्पन्न हो तथा इच्छानुसार सर्वत्र विचरते और अपनी रुचि के अनुसार रूप धारण करने में समर्थ हो, तब तुम्हारी यह दशा किसने कर दी।[८] बालि के मारे जाने पर भागते हुए सैनिकों के प्रति तारा द्वारा दिया गया वीरोचित वक्तव्य उसके वीरता तथा साहस को अभिव्यक्त करता है।[९]

१- डा० गजानन शर्मा - प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ०८०

२- रामा० अयो० का० २७।७ अग्रतस्ते गमिष्यामि मृदन्ती कुशकण्टकान्।

३- वही बालका० २४।२८-२९ इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव।
मलदांश्च करूषांश्च ताटका दुराचारिणी ।।

४- रामा० बालका० २५।२६ बलं नागसहस्रस्य धारयन्ती तदा ——— ।

५- वही अरण्य का० १७।२४ तानहं समतिक्रान्ता ——— ।

६- वही अरण्य का० १७। २१-२३

७- वही अरण्यका० १७।२५ अहं प्रभावसम्पन्ना स्वच्छन्द बलगामिनी ।

८- वही अरण्यका० १९।५ बलविक्रमसम्पन्ना कामगा कामरूपिणी ।

९- वही कि० का० १९। ८-९ ।

लंका में अनेक शस्त्रधारिणी स्त्रियों का दृष्टान्त इस बात को सिद्ध करता है कि उन्हें सैन्य शिक्षा का समुचित प्रशिक्षण मिला था। स्त्री वन्दियों की पहरेदारी में स्त्रियां ही नियुक्त की जाती थी।[१] सीमा की सुरक्षा में भी स्त्रियां नियुक्त की जाती थी।[२] सीमा पर नियुक्त सिंहिका इतनी सूक्ष्म दृष्टि वाली थी कि वह किसी को छाया मात्र देखकर पकड़ लेती थी।[३] लंका में प्रवेश करते समय लंका के मुख्य द्वार पर हनुमान की भेंट एक शक्तिशालिनी नारी लंका से होती है, जो अहर्निश सचेत रहकर उसकी रक्षा करती है।[४] वह हनुमान से लंका में आने का कारण पूछती है,[५] और कहती है मेरी अवहेलना करके इस पुरी में प्रवेश करना किसी के लिये भी सम्भव नहीं है।[६] वह हनुमान पर भरपूर एक थप्पड़ जमा देती है।[७] परास्त होने पर वह एक वीर की भांति हनुमान की प्रशंसा करती है।[८] इसके अतिरिक्त हनुमान ने रावण के भवन में उसके निकट उसके पलंग की रक्षा करने वाली राक्षसियों को देखा।[९] साथ ही शूल, मुद्गर, शक्ति और तोमर लिये हुए बहुत से राक्षसियों के समुदाय देखे थे।[१०] सीता की रक्षा में तत्पर सरमा नाम की राक्षसी भी अत्यन्त शक्तिशालिनी थी वह वायु की सी तीव्र गति से चलने में समर्थ थी।[११]

१- रामा० सु० का० १७।१६, युद्धका० ११८।८

२- वही सु० का० १।१८४-१८५

३- वही सु० का० १।१८६-१८७ मनसाच्छायामस्य समाक्षिपत् ॥ वि.रा. पृ० ६४६ ।

४- रामा० सु० का० ३।२८ दुर्धर्षा रक्षामि नगरीमिमाम् ॥

५- वही सु० का० ३।२३

६- वही सु० का० ३।२६

७- वही सु० का० ३।२८ ततः कृत्वा महानादं सा वै लङ्का भयंकरम् ।
तलेन वानरश्रेष्ठं ताडयामास वेगिता ॥

८- वही सु० का० ३।४५

९- वही सु० का० ६।२६

१०- वही सु० का० ६।३० शूलमुद्गरहस्तांश्चशक्तितोमरधारिणः ।
ददर्श विविधान्गुल्मांस्तस्य रक्षापतेर्गृहे ॥

११- वही युद्धका० ३४। ३-४ ।

सीता एक साहसी नारी थी । आश्रमों के प्राकृतिक वातावरण में निवास करने से सीता के प्रबल स्त्री पक्ष का विकास हुआ , बारह वर्षों के वनवास के बाद वह एक वीर और साहसी रमणी बन चुकी थी ।[१] वन में रहने से सीता में पर्याप्त साहसिकता के साथ शारीरिक बल का भी आविर्भाव हो गया था , तभी तो दुर्वर्ष रावण को उन्हें हरकर ले जाने में पर्याप्त शारीरिक बल का आश्रय लेना पड़ा था ।[२]

महाभारत में स्त्री योद्धाओं का नाम कहीं नहीं आता जैसा कि स्वतन्त्र रानियों का (नाम कहीं नहीं आता) ।[३] परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि स्त्रियां इस विषय से बिल्कुल अनभिज्ञ थीं । प्रत्यक्षतः युद्ध में भाग न लेते हुए भी वे अपने उत्साहपूर्ण वचनों के द्वारा योद्धाओं को प्रेरित करती थीं , जिससे वे प्रेरित होकर वे युद्ध में प्राणों की बाजी लगाकर युद्ध करते थे । युद्ध से विमुख हुए पुत्र को विदुला के द्वारा कहे हुए वचन उसको पुनः युद्ध के लिये प्रेरित करते हैं ।[४] इसी प्रकार कुन्ती के द्वारा पाण्डवों को क्षात्रधर्म के अनुरूप दिया गया सन्देश उनमें पुनः उत्साह को भर देता है ।[५]

शस्त्रकला की शिक्षा प्रायः कुमारों को ही दी जाती थीं ।[६] फिर भी शर्मिष्ठा जैसी राजकुमारियों को अवश्य शस्त्रकला का ज्ञान रहा होगा , तभी तो वे अपनी सुरक्षा के लिये हथियार अपने पास रखती थीं , जैसा कि देवयानी के साथ कलह में वह अपने को हथियार युक्त होने के सम्बन्ध में उसको चेतावनी देती है ।[७]

१- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० १६०

२- रामा० अरण्यका० ५३।२६ , ५२।७ , ४६।२२

३- हापकिन्स - दि सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया , पृ० ३१६ ।

४- महा० उद्योग प० १३३-१३६ सर्ग

५- वही उद्योग प० १३२।७-८

राजकुमार उत्तर ने बृहन्नला से अपने रथ का सारथ्य करने का अनुरोध किया था ।[१] और बृहन्नला ने उत्तर के रथ का सारथ्य कार्य कुशलता से किया था ।[२] भीष्म और परशुराम के युद्ध में भीष्म के घायल हो जाने पर माता गंगा ने सारथ्य कार्य संभाला था और रथ , घोड़ों तथा अन्यान्य उपकरणों की रक्षा की थी ।[३] युधिष्ठिर की सेना की संख्या , उनकी आवश्यकताओं इत्यादि के सम्बन्ध में द्रौपदी ही सम्पूर्ण जानकारी रखतीथी ।[४]

स्त्रियां अनावश्यक युद्ध को रोकने का प्रयास करती थीं । भीष्म व परशुराम के मध्य में गंगा ने भीष्म को युद्ध से विरत करने का प्रयास किया था ।[५] और बाद में युद्ध छिड़ने पर शम का प्रयत्न किया और सफलता भी प्राप्त की ।[६] गान्धारी ने भी दुर्योधन से यह कहकर कि " आधा राज्य दे दो "[७] शम का प्रयास किया था ,परन्तु उन्हें इसमें सफलता प्राप्त न हो सकी थी ।

महाभारत में शिखण्डी का ही एकमात्र उदाहरण है , जिसे हम स्त्री योद्धा के रूप में ले सकते हैं , यद्यपि बाद में उसने पुरुषत्व प्राप्त कर लिया था ।[८] लेखन और शिल्प शिक्षा के साथ ही धनुर्वेद की शिक्षा शिखण्डी ने द्रोणाचार्य से प्राप्त किया था ।[९] इसीलिये भीष्म शिखण्डी को स्त्री मानकर उसके साथ युद्ध के लिये तैयार

१- महा० विराट प० ३७। १८-१९

२- वही विराट प० ३७। ३३-३४

३- महा० उद्योग प० १८२। १५-१७ ररक्ष सा मां सरथं हयांश्चोपस्कराणि ।

४- वही वनप० २३३। ५०-५१

५- वही उद्योग प० १७८। ८६-९४

६- वही उद्योग प० १८५। २७-३१

७- वही उद्योगप० १२९। १८ , १२९।४३

विगर्हमाणा गान्धारी शमार्थं वाक्यमब्रवीत् ।

प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोक्तमरिंदम ।।

८- महा० उद्योग प० १८८। १३-१४ , १९२।८-१० , १९२।४७

नहीं होते ।[१] उन्होंने मृत्यु को स्वीकार किया लेकिन शिखण्डी को स्त्री मानकर अन्त तक उस पर बाण नहीं चलाया ।[२] द्रौपदी ने अपने सन्तापपूर्ण बचनों द्वारा पाण्डवों को युद्ध के लिये प्रेरित किया था ।[३] वह अपने अपमान का बदला लेने के लिये पाण्डवों, कृष्ण और अपने भाइयों तथा पिता को उत्साहपूर्ण बचनों द्वारा प्रेरित करती है ।[४] क्षत्राणियां स्वजनों के युद्ध के मार्ग में कभी बाधा उपस्थित नहीं करती थी वरन् उन्हें सहर्ष युद्ध के लिये भेजती थीं, क्योंकि वे यह जानती थी कि मृत्यु के लिये ही वह पुत्रों का प्रसव करती हैं ।[५] द्रौपदी और उत्तरा ने बड़े उत्साह के साथ उत्तर को कौरवों से लड़ने के लिये भेजा था, जिन्होंने उनके गोधन का अपहरण किया था ।[६] युद्ध में पीठ दिखाकर भागने वालों को स्त्रियों के उपहास का पात्र बनना पड़ता था । विदुला ने संजय को युद्ध के लिये प्रेरणा प्रदान करते हुए कहा था - " संजय । इस लोक में युद्ध एवं विजय के लिये ही विधाता ने क्षत्रिय की सृष्टि की है, वह विजय प्राप्त करे या युद्ध में मारा जाये, सभी दशाओं में उसे इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है ।[७]

इसी प्रकार कौटिल्य ने महिला धनुर्धरों का उल्लेख किया है ।[८] पतंजलि ने भाला चलाने वाली महिलाओं " शक्ति की : " का उल्लेख किया है । इस सम्बन्ध में पी० एन० प्रभु ने लिखा है कि - " स्त्रियां सभी विषयों का अध्ययन करती थी,

- -

१- महा० उद्योग प० ६४-६६

२- वही भीष्म प० १०८। ४२-४६, ११०।१८, ११७।४-६, २२-२४, ११६।३३, ४६-५० ।

३- वही वनप० २७।३६, २७।१०-३५, २७।३७, १२।६७, ८२।१३, ८२।१६, उद्योगप० ८२।३०-३१ ।

४- महा० उद्योग प० ८२। ३७-३८

५- वही स्त्रीप० २६।५ " बधार्थीय त्वदृविधा राजपुत्री "

६- वही विराट प० ३।२५-१६, ३७। ८-१३, ३४

और कुछ स्त्रियां युद्ध की कला भी सीखती थीं।[१] कौटिल्य ने विभिन्न प्रकार के गुप्तचरों के वर्णन में " परिव्राजिका " गुप्तचरी का उल्लेख किया है[२]। भारहुत की मूर्तियों में कुशल अश्वारोही सेना का चित्रण है।[३] मेगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त की अंगरक्षक अमेजन महिलाओं का वर्णन किया है। स्त्रियों की सैनिक शिक्षा के विषय में अल्टेकर ने लिखा है कि - " साधारण क्षत्रियों के परिवार में स्त्रियों को अच्छी प्रकार से सैनिक शिक्षा दी जाती थी। नाटकों में राजाओं की अंगरक्षक स्त्रियों का वर्णन आया है, ये प्राय: धनुषबाण और तलवार चलाने में निपुण थीं।[४] "कुलशेखरवर्मचरित" सुभद्रा धनंजय " नाटक में सुभद्रा को रथ का सारथ्य करते हुए दिखाया गया है।[५]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत में स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति कम महत्वपूर्ण न थी। यद्यपि यह सत्य है कि महाकाव्य में स्वतंत्र रूप से राज्यशासन करने वाली किसी रानी का वर्णन नहीं आया है, परन्तु[६] व्यवहारत: एक राजा की तथा पति की आत्मा व उसका आधा भाग होने के कारण राज्यशासन पर उसका भी उतना ही अधिकार होता था, जितना कि राजा का। इसी प्रकार पुत्र के अभाव में कन्या को भी राज्य शासन का अधिकार प्रदान किया जा सकता था।[७]

राजरानी व राजमाता के रूप में प्रशासन के क्षेत्र में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका

१- पी० एन० प्रभु - हिन्दू सोशल आर्गेनाइजेशन पृ० १३८-३६ कल्हण - राजतरंगिणी ७।४६१, ७।३१८-२६, ३०, ७।३७२-७४, ७।३८० आदि में रानी सूर्यमती ने सैनिक अभियानों में भाग लिया था।

२- कौ० अर्थ० १२।८

३- डा० राधाकृष्णन - धर्म और समाज, पृ० १६४

४- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० २१

५- श्रीश्रीकुलशेखरवर्मभूपाल - सुभद्रा धनंजय, चतुर्थ अंक पृ० १४५ " अप्रतक्योऽयं तव सारथ्यशिक्षातिशय: । "

६- रामा० अयो० का० ३७।२४

७- महा० शा० प० ३३।४५ ।

होती थी । महत्वपूर्ण विषयों पर राजा भी उनसे परामर्श करते थे । राज्य शासन सम्बन्धी महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने के लिये यह आवश्यक समझा जाता था कि उन्हें राजधर्म का सम्यक् परिज्ञान हो । इस सम्बन्ध में महाकाव्य में जो वर्णन प्राप्त होता है उससे यह सिद्ध होता है कि महाकाव्य की नायिकायें सीता , कैकेयी , सत्यवती , द्रौपदी , गान्धारी , कुन्ती , विदुला आदि स्त्रियां " राजधर्मनिष्ठिता " थीं । इन्होंने बड़ी ही कुशलतापूर्वक अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह किया ।

o ——————— o

अध्याय - ६

कानूनी स्थिति

कानूनी स्थिति

इस अध्याय में हम इस विषय पर विचार करेंगे कि हिन्दू कानून के अन्तर्गत स्त्रियों की क्या स्थिति थी। स्त्री व पुरुषों में कानून के समक्ष समानता थी अथवा असमानता।[1] किसी भी वर्ग के अधिकार तथा कर्तव्य उसकी सामाजिक स्थिति पर निर्भर करते हैं। यह तथ्य स्त्रियों के सम्बन्ध में भी लागू होता है। भारत में पितृसत्तात्मक प्रथा का प्रचलन होने से पिता का अधिक महत्व होना स्वाभाविक था, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि स्त्रियों के महत्व का कम आकलन किया गया हो। प्राचीन भारत में उनकी स्थिति महत्वपूर्ण थी तथापि विश्व की प्राय: सभी सभ्यताओं में कानून के समक्ष स्त्री व पुरुषों में समानता न रख स्त्रियों की स्थिति पुरुषों से निम्न रखी गयी। इस बात की आवश्यकता ही नहीं समझी गयी कि अलग से स्त्रियों को अधिकार प्रदान किये जायें। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि भारतवर्ष में भी बहुत पुराने समय में स्त्रियां माल असबाब : चल सम्पत्ति : समझी जाती थीं और वे भेंट के रूप में दी जाती थीं।[2] परन्तु हम विद्वानों के इस मत से सहमत नहीं हैं। कुछ उदाहरण[3] अवश्य ऐसे प्राप्त होते हैं, जहां पर कि स्त्रियों को भेंट अथवा अन्य

१- विद्वानों में इस सम्बन्ध में मतभेद हैं कि क्या हिन्दू कानून नाम की कोई चीज संसार में कभी वर्तमान रही है। जब कि वास्तविकता यह है कि हिन्दू लोग अनादिकाल से कानून द्वारा शासित होते थे, यद्यपि उस अर्थ में नहीं थेजिस अर्थ में अंग्रेज स्मृतज्ञों (कानून में प्रवीण) ने इस शब्द (कानून) का प्रयोग किया है। देखिये - एस० जी० बनर्जी - दि हिन्दू ला आफ मैरेज एन्ड स्त्रीधन, पृ० १ एम० हैरेट - रिलीजन, ला एन्ड दि स्टेट इन इंडिया, पृ० ३८ - भारतवर्ष व्यक्तिगत कानूनों का देश है।

२- प्रो० इन्द्र - दि स्टेटस आफ वीमैन इन एन्सियेंट इंडिया, पृ० १५८ ; अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० २१३।

३- ऋ० १०।३४।२, ४, ऋग्वेद में एक जुआड़ी का उदाहरण आता है जो अपनी पत्नी को दांव पर लगा देता है और हार जाता है। महा० सभाप० ६५।३३, युधिष्ठिर द्रौपदी को दांव पर लगा देते हैं। बनारस घाट पर हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी को

कारणों से प्रदान किया गया । परन्तु ये उदाहरण उपर्युक्त बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त नहीं हैं और अगर उनकी वस्तुस्थिति पर विचार किया जाये , तब यह स्पष्ट होता है कि पुरुषों द्वारा ये कार्य असाधारण परिस्थितियों में किये गये हैं । युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी को ही नहीं वरन् अपने भाइयों अथवा स्वयं को भी जुयें में हार जाना[1] यह प्रमाणित करता है कि केवल स्त्रियां ही चल सम्पत्ति नहीं थीं , वरन् आवश्यकता पड़ने पर पुरुष वर्ग को भी दांव पर लगाया जा सकता था । दूसरे यह व्यवहार समाज का मान्य व्यवहार नहीं था , तथा समाज के गणमान्य व्यक्तियों द्वारा इसकी निन्दा की गयी थी ।[2] इन अपवादों को छोड़कर जो भी इससे सम्बन्धित उदाहरण हैं , वे आर्य स्त्रियों के विषय में नहीं वरन् स्त्री दासियों के विषय में हैं ।[3] स्पष्ट है कि स्त्री चल सम्पत्ति नहीं वरन् विवाह के बाद वह भी पुरुष के साथ एक कानूनी पक्ष हो जाती थी , जैसा कि वेस्टरमार्क ने लिखा है - " विवाह एक आर्थिक संस्था है , जो कि कई प्रकार से दोनों पक्षों के स्वामित्व व अधिकार को प्रभावित करते हैं ।[4] इस अध्याय में हम स्त्रियों के साम्पत्तिक स्वत्व , न्याय प्राप्त करने के अधिकार तथा दण्ड व उससे सम्बन्धित अन्य पहलुओं पर विचार करेंगे ।

स्त्रियों के साम्पत्तिक स्वत्व -

किसी भी वर्ग का सामाजिक महत्त्व उसके साम्पत्तिक स्वत्व पर निर्भर करता है । जहां तक स्त्रियों के साम्पत्तिक स्वत्व का प्रश्न है , उन्हें इस सम्बन्ध में कुछ विशेष

- -

१- महा० सभाप० ६५। १२-२८

२- वही सभाप० ६८। २१-२५ , ७१। १४-१६ , सभा ६५।४०

एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन धीमता ।

धिग्धिगित्येव वृद्धानां सभ्यानां निःसृता गिरः ।। सभा ६५।४०

३- भगवतशरण उपाध्याय - वीमेन इन ऋग्वेद , पृ० १५४

४- वेस्टरमार्क - हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज , पृ० २६ ।

पी० एन० प्रभु - हिन्दू सोशल आर्गेनाइजेशन , पृ० १४६ ।

अधिकार प्राप्त न थे , क्योंकि स्त्रियां इस सम्बन्ध में जागरूक न थीं और वे सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में अपने को देखती थीं , पृथक व्यक्तित्व के रूप में नहीं । इस सम्बन्ध में जो कथन प्राप्त होते हैं उनमें भी पर्याप्त अन्तर्विरोध पाया जाता है , लेकिन अगर हम सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को छोड़कर व्यावहारिक स्थिति का अध्ययन करें तो हम देखते हैं कि स्त्रियों को किसी प्रकार की आर्थिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता था और उन्हें कभी ऐसी आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ कि वे पृथक से अपने साम्पत्तिक अधिकारों की मांग करें । वह अपने गृह की सम्राज्ञी होती थी और इच्छानुसार व्यय करने के लिये स्वतन्त्र थी । हम तीन रूपों में उसके साम्पत्तिक स्वत्व पर विचार करेंगे - पुत्री के रूप में , पत्नी के रूप में , विधवा तथा माता के रूप में ।

पुत्री के साम्पत्तिक स्वत्व -

वैदिक साहित्य में पुत्री के दायाधिकार के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी वचन मिलते हैं । सामान्य रूप से स्त्रियों को दायाद नहीं माना गया । वेद में कहा गया है कि " स्त्रियों को बुद्धि नहीं होती और इसलिये उत्तराधिकारी बनने के अयोग्य हैं"[1]। पुत्री उसका अपवाद नहीं थी । इस सम्बन्ध में अल्टेकर ने लिखा है कि " बहुत पुराने समय में सम्पत्ति स्त्री उत्तराधिकारियों के पास जाये , इस विषय में साधारण विरोध था , तथा पुत्री से यह आशा की जाती थी कि वह अपने पिता के परिवार की सम्पत्ति को दुल्हन की कीमत अथवा शुल्क लाकर बढ़ायेगी ।[2]

उपर्युक्त वचनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कि पुत्री की स्थिति पुत्र से हीन है , उचित नहीं प्रतीत होता , क्योंकि पितृकुल में रहकर विवाह के पूर्व

१- तै० सं० ६।५।८।२ तस्माद् स्त्रियो निरिन्द्रिया अदायदीः ।
शतपथ ब्रा० ४।४।२।१३ ता (स्त्रियः) नात्मनश्चनैशते न दायस्य च नैशत ।
निरुक्त ३।६ , ऋ० ३।३१।२ ।

२- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन , पृ० २३५ ।

तक उसकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति का उत्तरदायित्व उसके पिता तथा भाइयों पर होता था , इसलिये उसे पृथक से दायाद की आवश्यकता ही नहीं थी । वैदिक साहित्य में जीवनपर्यन्त पितृगृह में रहने वाली " अमूजा " कन्याओं का वर्णन प्राप्त होता है , जो प्राय: मांग करती थी और इन्हें उत्तराधिकारी के रूप में पैतृक सम्पत्ति का एक हिस्सा प्राप्त होता था ।[१] अल्टेकर ने लिखा है कि - " स्त्री उत्तराधिकारियों में बिना भाई वाली पुत्री प्रथम थी , जो अपने उत्तराधिकार के अधिकार को स्वीकृत कराने में सफल हुई ।[२] इन सब तथ्यों के आधार पर भगवतशरण उपाध्याय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि - " कन्या का जीवनपर्यन्त पितृगृह में रहकर वहां के सुखों का उपभोग करना मात्र पैतृक अनुग्रह नहीं था , वरन् उसके अपने अधिकार से था और उसका पालनपोषण स्वयं का निजी कानूनी अधिकार था ।[३]

कालांतर में उसकी यह स्थिति स्थायी न रह सकी व शास्त्रकारों ने इसके विरुद्ध मत व्यक्त किया । वशिष्ठ और गौतम उत्तराधिकारियों की सूची में पुत्री को नहीं रखते ।[४] आपस्तम्ब ने कहा है - पुत्र के अभाव में सपिण्ड को सपिण्ड के अभाव में गुरु को , गुरु के अभाव में शिष्य को और अन्त में पुत्री को प्राप्त हो ।[५] मनु के

१- ऋ० २।१७।७ , १।११७।७ , १०।३६।३ , ८।२१।५ , अथर्व० १।१४।३ । ऋ० १।१२४।७ निरुक्त ३।१ में एक श्लोक आया है जिसमें कहा गया है कि दोनों ही मेरे शरीर के अंग से प्रकट हुए हैं, सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जीवित रहें - अंगादंगात् सम्भवसि हृदयादधि जायसे ।
आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरद: शतम् ।। निरुक्त ३।१ पूर्वार्द्ध निम्नोक्त स्थलों पर प्राप्त होता है - आश्व० गृ०सू० १।१५।६ , मानव गृ०सू० १।१८।६ , गो०गृ०सू० २।८।२१ , पा०गृ०सू० १।१८।२ , आप० मं०सू० ६।१५।१ , साम ब्रा० १।५।१६।१७ , शत० ब्रा० १४।६।४।८ , बृहदा० उप० ६।४।८ ।
२- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाइजेशन , पृ० २३५
३- भगवतशरण उपाध्याय - वीमैन इन ऋग्वेद - पृ० ४६
४- वशिष्ठ १५।७ , गौ० ध० सू० ३।१०।१६
५- आपस्तम्ब २।१४।२-४ ।

अनुसार भी औरस पुत्र के अभाव में दौत्रज आदि पुत्र ही धन पाने का अधिकारी होता है, पुत्र से हीन पुरुष के धन का भागी पिता या भाई होते हैं।[1] यद्यपि मनु ने कहा है कि " यदि बहन अविवाहित हो तो भाई अपने-अपने भाग का चतुर्थांश दें।[2] साथ ही मनु यह भी कहते हैं कि - " पुत्र पिता की आत्मा है, और जैसा पुत्र है वैसी ही पुत्री भी है, अतएव आत्मस्वरूप इस पुत्रीके रहते दूसरा सम्पत्ति को कैसे ले सकता है।[3] निरुक्त में एक श्लोक आया है जिसके आधार पर कहा जाता है कि स्त्री पुरुष दोनों प्रकार की सन्तानों को बिना किसी भेद के धर्मानुसार दायाद प्राप्त है।[4] कौटिल्य ने भी पुत्री को उत्तराधिकारी स्वीकार किया है, यद्यपि छोटा हिस्सा देने को कहा है।[5] शुक्राचार्य ही एक ऐसे लेखक हैं जिन्होंने पैतृक सम्पत्ति में उस स्थिति में भी पुत्री के उत्तराधिकार को स्वीकार किया है, जब कि उसके भाई विद्यमान हो।[6] सामान्य रूप से धर्मशास्त्र परम्परा भाई रहित पुत्री को ही उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में थी।

रामायण में पुत्र की उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता है, तथापि कन्याओं के लिये " कन्याधन " होता था, जो कि उनके विवाह के अवसर पर उन्हें प्रदान किया जाता था। राजा जनक ने अपनी कन्याओं के विवाह में " उत्तमोत्तम कन्याधन " धन प्रदान किया था जिसमें सोना, चांदी, मोती, मूंगे,

- -

१- मनु ९।१८५

२- मनु ९।११८ स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं ---------। याज्ञवल्क्य ने भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया है - याज्ञ० २।१२४।

३- मनु ९।१३० यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्॥
बृहस्पति २५।५५, नारद १३।५० पुत्राभाव तु दुहिता तुल्यसंतानकारणात्। याज्ञ० २।१३५।

४- निरुक्त ३।१ अल्टेकर ने इस श्लोक को प्रक्षिप्त माना है, किन्तु दुर्गाचार्य आदि निरुक्त के टीकाकारों ने इसकी व्याख्या की है। अतः इसे प्रक्षिप्त मानना

हाथी , घोड़े , रथ , सैनिक इत्यादि सम्मिलित थे।[1] पितृकुल में कन्यायें वस्त्रालंकारों से सुशोभित हो सानन्द विचरण करती थीं।[2] उन्हें कभी भी आर्थिक कष्ट का अनुभव नहीं होता था। अगर पुत्री तथा बहन इत्यादि पर किसी प्रकार की आपत्ति आ पड़ती थी तो पितृकुल के लोग उसकी सहायता करते थे। विधवा शूर्पणखा को रावण ने दान , मान और अनुग्रह के द्वारा संतुष्ट किया था।[3] रावण ने आजीवन शूर्पणखा की सब प्रकार से रक्षा किया और उसी के अपमान का बदला लेने में अपना सब कुछ समर्पित कर दिया। लड़कियाँ सम्पत्ति के संरक्षण का काम करती थीं। मेरुसावर्णि की कन्या स्वयंप्रभा हेमा की समस्त सम्पत्ति की रक्षा करती थीं।[4]

महाभारतकाल में एक पक्ष ऐसा था जो पुत्र के समान पुत्री को भी उत्तराधिकारी समझता था। युधिष्ठिर के यह पूछने पर कि " पिता के लिये पुत्री भी तो पुत्र के समान होती है , फिर केवल पुरुष ही धन के कैसे अधिकारी हो सकते हैं।[5] भीष्म कहते हैं कि - " पुत्र अपनी आत्मा के समान हैं और कन्या भी पुत्र के ही तुल्य है , अत: आत्मरूप पुत्र के रहते हुए दूसरा कैसे धन ले सकता है।[6] माता के धन पर कन्या का ही अधिकार होता है , अत: जिसके कोई पुत्र नहीं है , उसके धन को पाने का अधिकारी उसका दौहित्र ही है , वही उस धन को ले सकता है।[7] यद्यपि कन्या शुल्क की निन्दा की गयी है , परन्तु यदि कन्या के निमित्त आभूषण इत्यादि लेकर कन्या का दान किया जाता है तो वह सनातन धर्म है , कन्या के लिये कोई वस्तु

१- रामा० बालका० ७३।३-४ , ७४।५ , ७४।६ कन्याधनमनुत्तमम् ।

२- वही बाल का० ३२।१२-१३

३- वही उ० का० २४।३२-$\frac{१}{२}$ दानमानप्रसादैस्त्वां तोषयिष्यामि यत्नत: ।।
रावण ने दण्डकारण्य का क्षेत्र शूर्पणखा को प्रदान किया था -उ०का० २४।३७-३८

४- रामा० कि० का० ५१।१६ $\frac{१}{२}$

५- महा० अनु० प० ४५।१०

६- वही अनु० प० ४५।११ , मनु ९।१३०

७- वही अनु० प० ४५।१२ मातुश्च यौतुकं यत् स्यात् कुमारी भाग एवस० ।
दौहित्र एव तद् रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत् ।।

स्वीकार करना गर्हित नहीं है ।[१] दौहित्र अपने पिता व नाना दोनों को पिण्ड देता है, इसलिये पुत्र व दौहित्र में कोई अन्तर नहीं माना गया है ।[२] इस काल में लोग दत्तक पुत्र की अपेक्षा पुत्री को दायाद बनाना अधिक पसन्द करते थे, और यदि पहले कन्या उत्पन्न हुई और वह पुत्ररूप में स्वीकार कर ली गयी तथा उसके बाद पुत्र पैदा हो गया तो कन्या के साथ ही वह पुत्र भी पैतृक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होगा ।[३] स्त्री को पिता की ओर से जो धन प्राप्त होता है, उस धन को उसकी पुत्री ही ले सकती है, पुत्र नहीं, क्योंकि जैसा पुत्र है वैसी ही पुत्री है, ऐसा शास्त्र का विधान है ।[४] राजकन्याओं का अपना धन होगा, जिसका प्रयोग करने में वे स्वतंत्र रही होंगी दमयन्ती नल से कहती है - मेरा जो कुछ धन है, वह सब आपका है ।[५] महाभारत में कहा गया है कि गृहस्थ धर्म में स्थित लक्ष्मीवान को अपने घर में अन्यान्य लोगों के साथ बिना सन्तान वाली बहन को अवश्य रखना चाहिये ।[६] इस काल में पितृगृह में पुत्रियों की समृद्धि दर्शनीय है । लोपामुद्रा[७] और सुकन्या[८] आदि राजपुत्रियां समृद्धिशाली वातावरण में रहती थीं । चित्रवाहन कुमारी चित्रांगदा कन्या होते हुए भी अपने पिता के राज्य की उत्तराधिकारिणी थी, क्योंकि राजा ने उसे 'हेतुविधि' से पुत्र की संज्ञा दे रक्खी थी । कन्या होते हुए भी उसे वे पुत्र के ही समान मानते थे ।[९]

- -

१- महा० अनु० प० ४४।३२-३३

२- वही अनु० प० ४५।१३

३- वही अनु० प० ४५।१४

४- वही अनु० प० ४७।२५-२६ स्त्रियास्तु यद् भवेद वित्तं पित्रादत्तं युधिष्ठिर ।
ब्राह्मण्यास्तद्धरेत् कन्या यथा पुत्रस्तथा हि सा ।।
सा हि पुत्र समा राजन् विहिता कुरुनन्दन ।

५- महा० वनप० ५६।२ अन्यमस्ति वसु किंचन, तत सर्वं तव ---------- ।।

६- वही उद्योग प० ३३।७० भगिनी चानपत्या ।

७- वही वनप० ६६।२६

८- वही वनप० १२२।७

९- महा० आदिप० २१४।२३-२४ एका च मम कन्येयं कुलस्योत्पादिनी ---- ।
पुत्रो ममायमिति मे भावना ----------- ।।
पुत्रिका हेतुविधिना संज्ञिता भरतर्षभ ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक दृष्टिकोण से कन्या उपेक्षणीय नहीं थी। यद्यपि सिद्धान्ततः पैतृक सम्पत्ति में उत्तराधिकार का अधिकार पुत्र का ही स्वीकार किया गया था, किन्तु साथ ही साथ पुत्री के अधिकार के सम्बन्ध में भी तर्क रखा गया कि दोनों ही (पुत्र व पुत्री) अपने पिता के शरीर से उत्पन्न हुए हैं, इसलिये पुत्री के रहते दूसरा कौन उत्तराधिकारी हो सकता है।[१] परिणाम स्वरूप पुत्रियों को चाहे वे विवाहित हों अथवा अविवाहित अथवा पुत्रिका के रूप में हों, उसे कुछ न कुछ अधिकार अवश्य प्राप्त थे।

पत्नी के साम्पत्तिक स्वत्व -

पुत्री के समान ही पत्नियों को भी पृथक से साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त न थे। यद्यपि वैदिक साहित्य में स्त्री व पुरुष के लिये "दाम्पत्ति"[२] शब्द का प्रयोग किया है, जो कि स्त्री व पुरुष दोनों के "संयुक्त स्वामित्व" को द्योतित करता है। स्त्री व पुरुष दोनों को बराबरी का अधिकार होना चाहिए था, परन्तु हिन्दू शास्त्रकार पत्नी के इस प्रकार के समान अधिकार को स्वीकार करने के लिये तत्पर न थे, मात्र इसके कि वह जीवनपर्यन्त अपने भरणपोषण के अधिकार को प्राप्त करें। वह जीवन पर्यन्त सम्पत्ति का पति के साथ उपभोग तो कर सकती थी, परन्तु बिना पति की अनुमति के उसका विक्रय नहीं कर सकती थी। मनु कहते हैं कि - स्त्री, पुत्र तथा दास इन तीनों की अपनी कोई सम्पत्ति नहीं होती है, यह जो कुछ उपार्जन करते हैं,

- -

१- महा० अनु० प० ४७।२६, अनु०प० ४५।११, मनु ६।१३०, याज्ञ० २।१३५-१३६

२- ऋ० ७।३२।५, सप्तपदी के मन्त्र भी इस तथ्य की ओर इंगित करते हैं - आश्व० गृ० सू० १।७।१६। विवाह के बाद पत्नी कानूनी पक्ष हो जाती है। देखिये वेस्टरमार्क - हिस्ट्री आफ ह्यूमेन मैरेज, पृ० २६।

वह उसी का होता है , जिसके ये आश्रित होते हैं ।[1] शुक्र ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है ।[2] जब कि अन्यत्र मनु ने " स्त्रीधन " का उल्लेख किया है ।[3] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि - " पति और पत्नी के बीच धन का किसी प्रकार का विभाजन नहीं हो सकता ।[4] यह कथन स्वामित्व को अभिव्यक्त करता है ।

महाकाव्य में अनेक स्थलों पर स्त्रियों के साम्पत्तिक स्वत्व के विरोध में कथन आये हैं ।[5] परन्तु यदि हम स्त्रियों द्वारा अन्यत्र व्यक्त किये गये कथनों का विश्लेषण करें तो हम देखते हैं कि स्त्रियों की आर्थिक स्थिति शोचनीय नहीं थी । द्रौपदी का यह कथन कि " समुद्र के पास तक की सारी पृथ्वी जिसके आधीन थी , वही आज मैं सुदेष्णा के वश में होकर पड़ी हूँ ,[6] स्पष्ट करता है कि उनको महत्वपूर्ण आर्थिक अधिकार प्राप्त थे । इसी प्रकार कुन्ती द्वारा द्रौपदी को यह आशीर्वाद कि - वह पतियों द्वारा जीती गयी सम्पूर्ण पृथ्वी को ब्राह्मणों को दान कर दो , जितने गुणवान रत्न हैं , वह सब तुम्हें प्राप्त हो ।[7] द्रौपदी जैसी हो महाराज युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डवों की जो आय व्यय और बचत होती थी , उन सबका वह हिसाब रखती और जानती थी ।[8]

१- मनु ८।४१६

२- शुक्र ४।५।२९५

३- मनु ३।५२ , ९।१९४

४- आप० ध० सू० २।६।१४।१६-२० जायापत्योर्नविभागो विद्यते । ६।२।२९।३
आपस्तम्ब कहते हैं सामान्य सम्पत्ति पर दोनों अधिकार रखते हैं । साधारणतया इसी प्रकार कथन महाभारत में भी है - महा० अनु० प० १४१।४३ - दम्पत्योः समशीलत्वं धर्मः स्यात्कुलयोषितः । परन्तु यह साम्पत्तिक अधिकार की ओर इंगित नहीं करता ।

५- महा० उद्योग प० ३३।४१

त्रय एवाधना राजन् भार्या दासस्तथा सुतः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥

अन्यत्र भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये हैं - आदिप० ८२।२२, सभाप० ७१।१ , मनु ८।४१६ ।

६- महा० विराट प० २०।२१ यस्याः सागरपर्यन्ता पृथिवी वशवर्तिनी ।

७- वही आदिप० १९८।६-७०

८- महा० वन० २३३।५३ सर्वं राज्ञः समुदयमायं च व्ययमेव च ।

पाण्डवों के अदाय तथा अगम्य खजाने का ठोक-ठोक जानकारो द्रौपदी हो रखती थी ।[१] स्पष्ट है कि आय व्यय पर स्त्रियों का पूर्ण नियन्त्रण रहता था । परन्तु यहां पर यह उल्लेखनोय है कि यद्यपि द्रौपदी पूरे आय व्यय का प्रबन्ध करतो थो, परन्तु उसने कहीं पर भी " मेरा " तथा " अपने " का उल्लेख नहीं किया वरन् सदैव " राजा का " अथवा " युधिष्ठिर "[२] का प्रयोग किया है । ये तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि स्त्रियां आर्थिक कार्यों का सम्पादन बड़ी कुशलतापूर्वक करती थीं, उनके स्वामी इस सम्बन्ध में उनके ऊपर पूर्ण विश्वास रखते थे, परन्तु इससे उनका संयुक्त स्वामित्व द्योतित नहीं होता । दमयन्ती और द्रौपदी को यह अधिकार नहीं था कि वे जुयें के खेल में आसक्त अपने पतियों को राज्य को दांव पर लगाने से रोक सकें, और न ही इस सम्बन्ध में राजाओं ने उनसे कोई परामर्श किया[३] ।

महाकाव्य के उपदेशक भाग में स्पष्ट रूप से यह वर्णन आया है कि स्त्रियां अपने पतियों द्वारा दी गयी सम्पत्ति का इच्छानुसार उपभोग कर सकती थी, लेकिन उस सम्पत्ति को किसी दूसरे को देने का अधिकार नहीं था ।[४] स्त्री को धन प्रदान करने के सम्बन्ध में व्यवस्था देते हुए कहा गया है कि - " स्त्री को तीन हजार से अधिक

- -

१- महा० वन०प० २३३।५६ निधिपूर्वमिवोदधिम्०, एकाहंवेद्मि कोशं ---- ।

२- वही वनप० २३३।४२ युधिष्ठिरनिवेशने, २३३।४६ शतदासीसहस्त्राणि० । महा० वनप० २३३।५६ पतीनां० ।

३- महा० सभा प० ६०-६५, ७४, वन प० ६०।१७ ।
भारतीय नारियों के इस प्रकार के स्वामित्व की तुलना १६ वीं शता० के इंग्लैंड में पत्नी की स्थिति से किया जा सकता है । जहां पति और पत्नी कानून की दृष्टि से एक होते हैं, जो कुछ पत्नी का है वह पति का है, परन्तु यही बात पत्नी के लिये नहीं कही गयी कि जो कुछ पति का है वह पत्नी का है - जे० एस० मिल-दि सब्जेक्शन आफ वीमेन, पृ० ५६ ।

४- महा० अनु० प० ४७।२४ स्त्रीणां तु पतिदायाद्यमुपभोगफलं स्मृतम् ।
नापहारं स्त्रियः कुर्युः पतिवित्तात् कथंचन ।।

लागत का धन नहीं देना चाहिये पति के देने पर ही वह उस धन को उपभोग में ला सकती है।[१] कौटिल्य और व्यास के वर्णन से यह एक हजार अधिक है।[२] यदि यह श्लोक किसी ब्राह्मण की पत्नी के अधिकारों की ओर संकेत करता है तो धन की यह सीमा सम्भवत: तीन साल में एक बार देने की है, क्योंकि एक ब्राह्मण को तीन वर्षों तक निर्वाह होने से अधिक सम्पत्ति एकत्रित करने की अनुमति नहीं दी गयी।[३] निश्चय रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि यह कानून केवल ब्राह्मणों के लिये थे, क्योंकि " द्विज " शब्द के अन्तर्गत तीन वर्ण आते हैं। यह धर्मशास्त्र लेखकों की उस प्रवृत्ति की ओर भी संकेत करता है जिसमें कि उनके द्वारा व्यावहारिक नियमों को ब्राह्मणों के प्रति संबोधित किया गया है, क्योंकि ब्राह्मण लोग व्यावहारिक नियमों के संरक्षक थे, तथा जिसका पालन करना उनसे अपेक्षित था। समाज के कुछ आन्तरिक परिवर्तनों तथा विदेशी और अनार्य लोगों के सम्पर्क के कारण अन्य वर्ण के लोग इन नियमों के प्रति सचेत न थे।

स्त्रीधन -

स्त्रियों को अपनी एक पृथक निजी सम्पत्ति होती थी, जिस पर कि उसका पूर्ण स्वामित्व होता था,[४] उसको शास्त्रकारों द्वारा स्त्रीधन के नाम से सम्बोधित किया गया है। अल्टेकर ने लिखा है - मूल में स्त्रीधन का सम्बन्ध दुल्हन

१- महा० अनु० प० ४७।२३ त्रिसहस्त्रपरो दाय: स्त्रियै देयो धनस्य वै।
भर्त्रा तच्च धनं दत्तं यथार्हं भोक्तुमर्हति ।।

२- कौटिल्य - अर्थशास्त्र, अंग्रेजी अनुवाद पुस्तक तीन, अध्याय २ सूत्र १५२ परन्तु आभूषणों की कोई सीमा नहीं थी। व्यास ने स्मृतिचन्द्रिका से उद्धृत किया है, पृ० २८।

३- महा० अनु० प० ४७।२२ त्रैवार्षिकाद्यदा भक्तादधिकं स्याद् द्विजस्य तु।

४- जी० डी० बनर्जी - दि हिन्दू ला आफ मैरेज एन्ड स्त्रीधन, पृ० ३४।

को कोमत अर्थात शुल्क के रिवाज से सम्बन्धित था ।[१] स्त्रीधन की व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है । स्त्रीधन के अन्तर्गत वे समस्त वस्तुयें आ जाती थीं जो कि स्त्री को समय-समय पर माता-पिता, पति तथा अन्य सम्बन्धियों द्वारा उपहार रूप में प्राप्त होती थी । हापकिन्स ने लिखा है - " पिता कन्या को भेंट देता है अथवा वर को , दोनों में अन्तर है , विवाह के समय जो भेंट मिलती है , वह पत्नी की सम्पत्ति होतीहै ।[२] राधाकृष्णन लिखते हैं कि - " पैतृक सम्पत्ति का कुछ अंश उनको दहेज के रूप में दिया जाता था , जो उनकी सम्पत्ति बन जाता था ,जिसे बाद के लेखकों ने स्त्रीधन का नाम दिया ।[३] रामायण में इसे " कन्याधन " तथा महाभारत में " वैवाहिकम् " " परिच्छदम् " आदि नामों से वर्णन किया गया है । इसे " हरणं " वह भाग जिसे कन्या ले जाती थी और " ज्ञातिदेयं " जो सम्बन्धियों द्वारा दिया जाता था[४] जाना जाता था । जिसका हरण कर लिया जाता हो अथवा शीघ्रता से विवाह किया गया हो , ऐसी कन्या को जो धन प्रदान किया जाता था सम्भवत: उसे ही " हरणं " कहा जाता रहा हो । यह धन बाद में भेजा जाता था जैसा कि सुभद्रा के मामले में किया गया । बाद में " कन्याधन " ही " स्त्रीधन " के रूप में परिवर्तित हो गया ।

स्त्रीधन के प्रकार -

मनु ने स्त्रीधन के छ: प्रकारों का वर्णन किया है , जिसमें विवाह काल में पिता आदि के द्वारा दिया गया , पिता के घर से पति घर लायी जाती हुई कन्या

- -

१- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाईजेशन , पृ० २१७
२- हापकिन्स - दि सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया , पृ० २६१ ।
३- राधाकृष्णन - धर्म और समाज , पृ० १६७ ।
४- रामा० बालका० ७४।६ , महा० आदिप० २२१।४१ हरणं , २२१।४४- ज्ञातिदेयं, वनप० २६५।१ , १६ ।

को दिया गया , प्रेम सम्बन्धी किसी शुभअवसर पर पति द्वारा दिया गया , भाई , पिता , माता आदि के द्वारा विभिन्न अवसरों पर दिया गया धन , इसमें सम्मिलित है।[१] कात्यायन ने भी इसका विस्तृत वर्णन किया है।[२] विवाह के समय उसके पिता , भाई और पति द्वारा जो उपहार प्रदान किये जाते थे , उसे " सौदायिका " कहा गया है।[३] महाकाव्य में प्राय: उपर्युक्त सभी प्रकार के उपहार प्रदान किये गये हैं। यद्यपि उनके नामों की कोई अलग सूची नहीं प्राप्त होती है , सम्भवत: इसका कारण यह था कि उस समय यह विचारधारा शनै:-शनै: विकसित हो रही थी।

द्रौपदी को दिये गये दहेज को " अध्याग्नि "[४] तथा सीता और उत्तरा को दिये गये दहेज को " अध्यावाहनिक "[५] के अन्तर्गत रख सकते हैं। प्रेमवश जो उपहार प्रदान किये जाते थे उन्हें रामायण में " प्रीतिदान " के नाम से संबोधित किया गया है।[६] इसके अन्तर्गत न केवल श्वसुर द्वारा दिये गये उपहार को रखा गया है वरन् सम्भवत: यह शब्द प्रथम उन उपहारों के लिये प्रयोग किया जाता था जो कि बड़े लोगों के द्वारा छोटों को प्रेमवश प्रदान किया जाता था , जैसा कि अनसूया द्वारा सीता को प्रदान किया गया था।[७] वनप्रस्थान के लिये उद्यत सीता ने अपने आभूषण सुयज्ञ की पत्नी को प्रदान किया था।[८] कौशल्या के पास मेखलाधारी ब्रह्मचारी छात्रों के समूह के समूह

१- मनु ९।१९४ अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि।
 भ्रातृमातृपितृ प्राप्तं षडविधं स्त्रीधनं स्मृतम् ।।

२- दौहाभरणाकर्मणाम् , दायभाग में इसका दूसरी प्रकार से वर्णन किया गया है। काणे - हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र , वा० ३ , अ० ३० , पृ० ७७५।

३- काणे - हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र वा० ३ , अ० ३० , पृ० ७७३ , मनु ९।१९४-१९५ विष्णु स्मृति १७।१८।

४- महा० आदिप० १९८।१७ तदा धनं सोमकिरग्निसाक्षिकम्।

५- रामा० बाल का० ७४।६ , महा० विराट प० ७२।३६-३७।

६- वही अयो० का० ११८।२१ प्रीतिदानमनुत्तमम् , अयो०का० ११९।१२ प्रीतिदानेन०।

७- रामा० अयो० का० ११८। १८-१९

८- वही अयो० का० ३२। ७-८ , ३२।९ ।

सहायता की याचना करने आते थे।[१] सीता ने सभी प्रकार की वस्तुओं का दान किया था।[२] वन जाते समय दशरथ के द्वारा सीता को पहनने योग्य बहुमूल्य वस्त्र और महान आभूषण जो कि चौदह वर्षों तक पहनने के लिये पर्याप्त थे, प्रदान किये गये।[३] इससे स्पष्ट है कि समय-समय पर स्त्रियों को उनके सम्बन्धियों द्वारा बहुमूल्य वस्तुयें प्रदान की जाती थी, जो कि उनका स्त्रीधन बन जाता था। राजाओं के यहां रानियों के भवन पृथक्-पृथक् होते थे और ये सभी प्रकार के धनधान्य से परिपूर्ण होते थे। कैकेयी के भवन का जैसा दिव्य वर्णन आया है, उससे यह प्रतीत होता है कि रानियों के भवन बहुत समृद्ध होते थे।[४]

रामायण में जैसा वर्णन आया है उसको देखते हुए कहा जा सकता है कि राजकुल की स्त्रियों को किसी प्रकार के आर्थिक कष्ट का सामना नहीं करना पड़ता था, क्योंकि सर्वत्र संतुष्ट तथा वस्त्राभूषणों से सुसज्जित स्त्रियों का ही वर्णन आया है।[५] रानियों के पास स्वयं बहुत अधिक लागत के आभूषण होते थे जो कि उनका अपना स्त्रीधन होता था। कैकेयी ने कोपभवन जाते समय लाखों की लागत के मोतियों के हार तथा अन्य बहुमूल्य आभूषणों को उतार फेंका था।[६] इसी प्रकार रावण के अन्तःपुर की सभी स्त्रियां उत्तम वस्त्राभूषणों से सुसज्जित थीं।[७] राजागण समय-समय पर अपनी रानियों को उपहार दिया करते थे जिन पर बाद में उन रानियों का ही स्वत्व स्थापित हो जाता था।[८] राम ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर सीता को

- -

१- रामा० अयो० का० ३२।२१ मेखलीनां महासङ्घः कौसल्यां समुपस्थितः।

२- वही अयो० का० ३०। ४६-४७

३- वही अयो० का० ३९। १५-१६

४- वही अयो० का० १०। १२-१६

५- रामा० अयो० का० ९७।३७

६- वही अयो० का० ९।५६

७- वही यु० का० ९।७१

८- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज, पृ० १६८-१६९

मणियों से युक्त उत्तम हार तथा दिव्य वस्त्र और बहुत से सुन्दर आभूषण दिये थे।[१] महाभारत में बहुविध कल्याण की इच्छा रखने वाले पिता, भाई, श्वसुर और देवरों को यह परामर्श दिया गया है कि वे वस्त्राभूषणों द्वारा नववधू का सत्कार करें।[२] नागराज वासुकि के द्वारा अपनी बहन का सान्त्वना, सम्मान तथा धन आदि देकर उसका सम्मान किया गया।[३] राजा दुष्यन्त ने इसी प्रकार शकुन्तला का अन्नपान और वस्त्र के द्वारा आदर सत्कार किया था।[४] पाण्डु जब पराक्रम से धन जीतकर लाये तब उन्होंने सत्यवती और माता कौशल्या को उपहार में धन रत्नादि अर्पण किया था।[५] व्यास ने यज्ञ में युधिष्ठिर द्वारा अर्पित धन कुन्ती को पादाभिवंदन कर अर्पित कर दिया था।[६] कुन्ती ने व्यास से प्राप्त उस धन को पृथक् करके ब्राह्मणों को दान किया था।[७] राजकुमारियों का विवाह के पश्चात् भी पितृकुल में यथेष्ट सम्मान होता था और दान इत्यादि देने में वे समर्थ होती थी। राजकुमारी दमयन्ती ने नल का समाचार बताने वाले वर्णादि को बहुत अधिक धन दिया।[८] विवाह के अवसर पर कन्याओं को यथेष्ट दहेज प्रदान किया जाता था। शकुनि ने अपनी बहन गान्धारी[९] और कुन्तीभोज ने कुन्ती को[१०] पर्याप्त " परिच्छेद " (दहेज) प्रदान किया था।

महारानियों के पास अपना कोश होता था अथवा वे पति की सम्पत्ति में से बचाकर गुप्त रूप से रखती जाती थीं, जिसका कि वे आपत्तिकाल में उपयोग कर

१- रामा० युद्ध का० १२८। ७७-७८

२- महा० अनु० प० ४६। ३ ,१५

३- वही आदिप० ४८। १५

४- वही आदि प० ७४। १२५

५- वही आदिप० १०६। १ , आदिप० ११३। १ , ११३। ३

६- वही आश्वमेधिक ६१। २७

७- वही आश्वमेधिक ६१। २८

८- महा० वन प० ७०। १६

९- वही आदि प० १०६। १७

१०- वही आदिप० ११२। ११ ।

सकती थी । विदुला के पास ऐसा ही कोश था ।[१] इसी प्रकार रानी कौशल्या के पास प्रचुर मात्रा में स्त्रीधन था ।[२] अर्जुन ने द्रौपदी को दिव्य आभूषण प्रदान किया था ।[३] वन में पाण्डु पुत्रों के जन्म होने पर वसुदेव ने सभी कुमारों तथा कुन्ती और माद्री के लिये भी वस्त्राभूषण तथा गायें आदि भेजवाया था ।[४] विदुर ने द्रौपदी के विवाह के पश्चात कुन्ती व द्रौपदी को नाना प्रकार के रत्न और धन भेंट रूप में प्रदान किया था ।[५] कर का भाग रानियों को भी प्राप्त होता था । कुलिन्द के द्वारा वार्षिक करके रूप में कुन्तलपुर के राजा के अतिरिक्त उनकी महारानी को भी ढाई हजार मुद्रायें प्रदान की जाती थीं ।[६]

स्त्रीधन का प्रभुत्व -

महाकाव्य के उपदेशक भाग में कुछ संकेतों को छोड़कर अन्यत्र इस सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं प्राप्त होता । स्मृतिकार स्त्रीधन पर स्त्रियों के पूर्ण स्वामित्व को मानने के पक्ष में न थे । पति की स्वीकृति के बिना वे निजी सम्पत्ति को किसी दूसरे को नहीं दे सकती थी ।[७] कालान्तर में इसमें थोड़ी उदारता का प्रदर्शन किया गया । दायभाग में कात्यायन ने स्त्रीधन को दो भागों में विभाजित किया है - सौदायिका तथा असौदायिका । माता पिता पति आदि तथा अन्य सम्बन्धियों द्वारा दिये जाने वाली भेंट को पहले प्रकार में रखा गया है[८], और उस पर स्त्रियों के पूर्ण अधिकार

१- महा० उद्योग प० १३६।६

२- रामा० अयो० का० ३१।२२-२३

३- महा० वनप० १६५।१० - १

४- वही आदिप० १२३।२१ - २ दासीदासपरिच्छदम् । गाश्च रौप्यं हिरण्यं च ।

५- वही आदिप० २०५।१३-१४

६- वही जैमिनीयाश्वमेधप० ५२।४८-४६ तदर्धमप्यर्धमुष्यपत्न्यै: ।

७- मनु ६।२६६

८- दायभाग में कात्यायन ।

की घोषणा की गयी[१], शेष बचा हुआ धन स्त्रीधन के अन्तर्गत रखा गया किन्तु स्त्रियां न तो उसे विक्री कर सकती थीं और न किसी को दे सकती है, वरन् उसका आजीवन उपभोग कर सकती हैं। बौधायन ने स्त्रीधन पर स्त्री के स्वामित्व को स्वीकार किया है[२]। महाकाव्य काल में भी स्त्रियों को कात्यायन द्वारा वर्णित सौदायिका के अन्तर्गत आने वाले स्त्रीधन पर पूर्ण प्रभुत्व था। आभूषणों पर उसका अपना स्वामित्व होता था। राम के राज्याभिषेक के समाचार को सुनाने वाली मन्थरा को कैकेयी ने अपने गले का हार प्रदान किया था[३]। इसी प्रकार कौशल्या ने भी इस अवसर पर अनेक लोगों को तरह-तरह के रत्न, सुवर्ण और गायें पुरस्कार रूप में दिया था[४]। सीता द्वारा हनुमान को अपने गले का हार देने में इसलिये संकोच का अनुभव हो रहा था क्योंकि उसको राम ने एक विशेष अवसर पर उन्हें प्रदान किया था[५]।

कौशल्या का एकमात्र ऐसा उदाहरण प्राप्त होता है जिनके पास अपने आश्रितों का पालन करने के लिये एक सहस्त्र गांव प्राप्त थे[६], जिसकी आय को वे स्वेच्छानुसार व्यय करने के लिये स्वतन्त्र थीं। स्त्रीधन के अन्तर्गत अचल सम्पत्ति की धारणा का विकास बहुत बाद में हुआ। यह बहुत संभव है कि कौशल्या " भाईरहित पुत्री " रही हो और मुख्य जागीरदार कौशल की " पुत्रिका " रही हो। उनके पिता कौशल के राजा भानुमन्त[७] हो सकते हैं, सम्भवतः इसीलिये उन्हें कौसलेन्द्रदुहिता[८] की उपाधि दी गयी थी।

- -

१- सौदायिकं धनं प्राप्य स्त्रीणां स्वातंत्र्यमिष्यते।
: दायभाग में कात्यायन :

२- बौधा० ध० सू० २।२।४३

३- रामा० अयो० का० ७।३२

४- वही अयो० का० ३। ४७ $\frac{१}{२}$

५- वही युद्धका० १२८।७८, १२८।८१, रामा० अयो०का० ३०।४१ सीता ने राम की अनुमति से सब वस्तुयें प्रदान की थीं।

६- रामा० अयो०का० ३१।२२-२३ यस्याः सहस्त्रं ग्रामाणां सम्प्राप्तमुपजीविनाम्॥

७- रामा० बालका० १३।२६ तथा कौशलराजानं भानुमन्तं।

यहां पर यह स्मरणीय है कि कुछ अवसरों पर कन्या के विवाह में दिये जाने वाले धन को " कन्याधन "[१] कहा गया है , कहीं-कहीं पर यह कहा गया है कि वह धन वरपक्ष अर्थात् पाण्डवों और सौभद्रेय को प्रदान किया गया न कि उस कुमारी को जिसका कि विवाह सम्पन्न हुआ है[२]। प्रथम वचन कन्या के साम्पत्तिक अधिकारों की ओर संकेत करता है तथा कन्या के अधिकारों की रक्षा के उद्देश्य से कहा गया है । इसी प्रकार राम ने जनक को विदा करते समय जो रत्न आदि प्रदान किये थे जनक इसी भावना से प्रेरित होकर उन्हें अपनी सीता आदि पुत्रियों को प्रदान कर देते हैं[३]। वन में मुनि पत्नियों को वस्त्राभूषण , रत्न , धन आदि सीता ने प्रदान किया था[४]।

स्त्रीधन का निक्षेपण व प्रदान : -

महाकाव्य में स्त्रीधन पर अविवाहित पुत्रियों के अधिकार को स्वीकार किया गया है । यहां पर " यौतक " शब्द थोड़ी कठिनाई उपस्थित करता है क्योंकि महाकाव्यकार ने दहेज को " यौतक " के रूप में वर्णन नहीं किया है । सम्भवत: मूल रूप में महाकाव्य में इसका अर्थ माता की पृथक् सम्पत्ति से है[५]। अन्यत्र " यौतक " से अर्थ किसी की भी पृथक् सम्पत्ति से लिया गया है[६]। कहीं-कहीं पर यौतक से तात्पर्य

- -

१- रामा० बालका० ७४।६ कन्याधनं , ७४।४ , इसी प्रकार महाभारत में कहा गया ज्ञातिदेयं , हरणं , महा० आदिप० २२१।३३-४४ ।

२- महा० आदिप० १९८।१५-१७ , विराटप० ७२।३६

३- रामा० उ० का० ३८।७ , सीता के दहेज को " कन्याधन " कहा गया है - रामा० बालका० ७४।४८ ।

४- रामा० उ० का० ४६।१०-१२

५- महा० अनु०प० ४५।१२ मातुश्च यौतकं यस्यात्कुमारी भाग एव स: । मिलाइये - मनु ९।१३१ , काणे - हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र वा० ३ , पृ० ७७९ मदनरत्न और व्यवहारमयूख के अनुसार " यौतु " का अर्थ संयुक्त है , और देवस्वामी के अनुसार " यौतु " का अर्थ पृथक् से है ।

६- महा० अनु०प० १०५।१० ज्येष्ठ: कुर्वीत यौतकम् । मनु ९।२१४ ।

माता की उस सम्पत्ति से रहा होगा जो कि उसे अपने पिता से मिलती थी , जैसा कि महाकाव्य में कहा गया है - " ब्राह्मणी को पिता की ओर से जो धन मिला हो , उस धन को उसकी पुत्री ले सकती है , क्योंकि जैसा पुत्र है , वैसी ही पुत्री भी है ।[1] स्पष्ट है कि माता के धन पर कन्या का अधिकार होता था । वहीं मनु ने माता के मरने पर उसके धन को सब सहोदर भाइयों व अविवाहित बहनों में बांटने को कहा है ।[2] स्त्रीधन को पाने का अधिकार उसके पति के जीवित रहने पर भी पुत्रों या पुत्रियों का ही होता है ।[3] इस प्रकार धर्मशास्त्रकारों ने माता के धन पर कन्या के अधिकार को स्वीकार कर स्त्रियों के आर्थिक अधिकारों के प्रति किये गये अन्याय को कम करने का एक प्रयास किया ।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सैद्धान्तिक रूप से स्त्रियों को पृथक से आर्थिक अधिकार प्राप्त न होते हुए भी उनकी आर्थिक स्थिति शोचनीय नहीं थी । स्त्रीधन पर उसका प्रभुत्व था , जिसको वह आवश्यकता पड़ने पर खर्च कर सकती थी । वह दान तथा पुरस्कार इत्यादि देने में स्वतंत्र थी । पति के धन पर उसका अधिकार था । पति के धन को वह अपना ही धन समझती थी , इसीलिये उसे पृथक से सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं होती थी ।

विधवा तथा माता के साम्पत्तिक स्वत्व -

प्रारम्भ में विधवा के साम्पत्तिक स्वत्व के सम्बन्ध में सामान्यत: विरोध था,

- -

१- महा० अनु० प० ४७।२५ स्त्रियास्तु यद्‌भवेद्‌वित्तं पित्रा दत्तं युधिष्ठिर ।
ब्राह्मण्यास्तद्धरेत्कन्या यथा पुत्रस्तथा हि सा ।।
मिलाइये मनु ६।१६८ , कुछ इसी प्रकार का है । यहां पर यह केवल ब्राह्मणी के लिये कहा गया है परन्तु यह सम्भवत: सभी वर्णों की स्त्रियों के लिये रहा होगा अर्थात् सभी वर्णों की कन्यायें अपनी माता की सम्पत्ति को प्राप्त करती होंगी ।

२- मनु ६।१६२

३- मनु ६।१६५ ।

लेकिन उनकी स्थिति दयनीय नहीं थी , क्योंकि माता के रूप में वह सर्वोच्च आदर की पात्र थी और उसके भरण-पोषण का दायित्व उसके पुत्रों पर था । दशरथ की रानियां बाद में भी वैभवशालिनी थी , क्योंकि वानरपत्नियां दशरथ की रानियों का वैभव देखने के लिये उत्सुक थी[१] । उन विधवाओं के जिनके पुत्र नाबालिग होते थे उन्हें प्रत्यक्षत: तो नहीं परन्तु अप्रत्यक्षरूपसे पति की सम्पत्ति में उत्तराधिकार का अधिकार संरक्षक के रूप में प्राप्त हो जाता था । पाण्डु के मरने के पश्चात कुन्ती ने ही अपने पुत्रों के संरक्षकत्व का कार्य किया तथा सभी प्रकार की आपत्तियों से उनकी रक्षा किया, उनकी नीतिनिर्धारण में उनका महत्वपूर्ण हाथ था[२] । मातायें पुत्र के राज्य को प्राय: अपना ही राज्य समझती थी । अपनी इच्छानुसार दान इत्यादि देने में वे स्वतन्त्र होती थीं[३] । राजमाता विदुला के पास अपना एक कोश था जिसे उसने आपत्ति के समय अपने पुत्र को प्रदान किया था[४] , इससे यह स्पष्ट होता है कि पति के जीवन काल में उन्हें जो धन प्राप्त होता था , उस पर बाद में उनका ही अधिकार रहता था । चेदिराजमाता का यह कथन कि - " यह ऐश्वर्य जैसा मेरा वैसा ही तुम्हारा " स्पष्ट करता है उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती थी[५] । मनु ने माता को भी उत्तराधिकारी स्वीकार करते हुए कहा है कि " सन्तानहीन पुत्र के धन को माता लेवे तथा माता मर गयी हो तो पिता की माता : दादी : लेवे[६] । इस सम्बन्ध में अल्टेकर ने लिखा है कि

१- रामा० युद्ध का० १२३।३५ विभूतिं चैव सर्वासां स्त्रीणां दशरथस्य च ।

२- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन , पृ० ३३० । नारद ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया है कि नाबालिग बच्चों की अभिभावक उसकी माता हो , किसी अन्य पुरुष सम्बन्धी की अपेक्षा नारद १।३७ ।

३- महा० उद्योग प० १३४।१६ , आश्वमेधिक ६१।२८

४- वही उद्योगप० १३६।६

५- वही वनप० ६६।१६ यथैव च ममैश्वर्यं दमयन्ति तथा तव । वनप० ६५।६५ माताओं के अपने पृथक पृथक सेवक भी होते थे ।

६- मनु ६।२१७

मनु कानूनी रूप से भी लड़कों को बंटवारे का अधिकार प्रदान नहीं करते , जब तक कि माता जीवित है । व्यावहारिक दृष्टि से मां ही संरक्षक का काम करती थी ।[१] माता पुत्री को भी जायदाद को प्राप्त करती थी , यदि उसका विवाह आसुर रीति से हुआ हो ।[२] माता के दावे का दायभाग प्रथा में बलपूर्वक समर्थन किया गया है कि यदि पिता जीवित न हो तो उत्तराधिकार माता को प्राप्त होता है ।[३]

जहां माता को कुछ अधिकार प्रदान किये गये वहीं पर विधवा के आर्थिक अधिकारों का अनेक शास्त्रकारों द्वारा विरोध किया गया ।[४] इस सम्बन्ध में अल्टेकर ने यह मत व्यक्त किया है कि - " वैदिक मन्त्रों में जो कि स्त्रियों के साम्पत्तिक स्वत्व के विरोध में है , वे विशेष रूप से विधवाओं के प्रति हैं ।[५] परन्तु उनका यह मत समीचीन नहीं प्रतीत होता , क्योंकि इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता उनके द्वारा दिये गये उदाहरण मात्र विधवाओं के लिये न होकर सामान्य रूप से स्त्रियों के लिये हैं । महाकाव्य के उपदेशक भाग में स्पष्ट रूप से यह वर्णन आया है कि स्त्रियां अपने पतियों द्वारा दी गयी सम्पत्ति का उपभोग तो कर सकती हैं , परन्तु उसको वे किसी को दे नहीं सकती हैं । पी० सी० राय का कहना है कि इसका तात्पर्य

१- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाईजेशन , पृ० ३३०

२- मनु २।१६७

३- प्रो० इन्द्र - दि स्टेटस आफ वीमैन इन एन्सियेंट इंडिया , पृ० १७२

४- आप० ध० सू० २।१४ २-४ , मनु १०।१८५-१८७

५- तै० सं० ६।५।८।२ , शतपथ ब्रा० ४।४।२।१३ , मैत्रायणी संहिता ४।६।४ मिलाइये - अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाईजेशन , पृ० २५० ।

सन्तानरहित विधवाओं से है[१], किन्तु मूल पाठ से ऐसा नहीं मालुम पड़ता । यास्क से लेकर कालिदास[२] के समय तक जहां तक विधवाओं का सम्बन्ध है, उन्हें किसी प्रकार स्वामित्व का अधिकार नहीं दिया गया । बाद में याज्ञवल्क्य सरीखे स्मृतिकारों ने विधवा के अधिकारों का समर्थन किया । उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि जब स्त्री को पति का अर्द्धांग बताया जाता है तब उसके जीवित रहते उसकी सम्पत्ति को दूसरा कैसे ले सकता है[३] । महाकाव्य सन्तानहीन विधवा के लिये नियोग को स्वीकृति देता है, अन्यथा पति के उत्तराधिकारी लोग उसके पालन पोषण का प्रबन्ध करें । भारतीय शास्त्रकारों की दृष्टि यह थी कि अगर स्त्री चरित्रवान है तो उसके पालनपोषण का प्रबन्ध अवश्य किया जाना चाहिये, परन्तु यदि वह चरित्रहीन है तो उत्तराधिकार से वंचित हो जायेगी, चाहे वह पुत्री, पत्नी, विधवा अथवा माता हो क्यों न हो[४] ।

- -

१- महा० अनु०प० ४७।२४ स्त्रीणां तु पतिदायाद्युपभोगफलं स्मृतम् ।
नापहारं स्त्रियः कुर्युः पतिवित्तात्कथंचन ।।

यहां पत्नी को मात्र प्रजन्यिका का ही माना गया है, आप०ध० सू० २।६।१४।२० का तर्क यहां लागू नहीं होता । मिलाइये मनु ६।१६६ भी इसी अर्थ का प्रतिपादन करता है । पी०सी० राय - अंग्रेजी अनुवाद, अनु०प०, पृ० २८, लाइन ७ ।

२- यास्क- निरुक्त ३।५ निर्दिष्ट करता है कि दक्षिण भारत में विधवाओं को कुछ परिस्थितियों में धन मिलता है । कालिदास - " अभिज्ञान शाकुन्तलं " अंक ४ में उत्तराधिकारी के अभाव में विधवा की सम्पत्ति को राजा द्वारा हड़प लेने का वर्णन आया है । यास्क महाकाव्य के पूर्व के हैं और कालिदास उत्तरकाल की परिस्थितियों का संकेत करते हैं, मिलाइये - काणे - हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, वा० २, भाग १ पृ० ५८२ ।

३- मनु ६।१८५, इस पर कुल्लूक की व्याख्या - अविद्यमान मुख्य पुत्रस्य पत्नी दुहितृ रहितस्य च पिताधनं गृह्णीयात् । बृहस्पति २।१३५-१३६, याज्ञ० २।१३५-१३६, विष्णु - मिताक्षरा में । कु० ६।१०२।११, विष्णु १७।४-५ ।

४- प्रो० इन्द्र - दि स्टेटस आफ वीमैन इन एन्शियेंट इंडिया, पृ० १७० ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विधवा स्त्री स्वयं उत्तराधिकारी नहीं बनती थी[१], परन्तु उसके वर्ण का प्रभाव उसके लड़कों के उत्तराधिकारित्व पर पड़ता था और व्यवहार में विधवा पूरे जायदाद की व्यवस्थापक समझी जाती थी, यद्यपि पुत्र लोग इस जायदाद के कानूनी उत्तराधिकारी व स्वामी होते थे।[२]

न्याय प्राप्त करने का अधिकार -

धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि राजा का प्रधान कर्तव्य सभी प्रजाओं को अपने-अपने वर्णाश्रमोचित कर्तव्यों में लगाना तथा पालन न करने वाले को दण्ड देना है।[३] स्त्रियां न्यायालय में उपस्थित होकर अपने कष्ट को सुना सकती थी। राम लक्ष्मण से उन समस्त स्त्री पुरुषों को उपस्थित करने के लिये कहते हैं, जिन्हें किसी प्रकार का कोई काम हो।[४] सीता ने भरी सभा के बीच में शपथ ग्रहण किया था।[५] कीचक द्वारा सैरन्ध्री रूप में द्रौपदी को लात मारने पर वह सभा में उपस्थित होकर मत्स्य नरेश से न्याय की याचना करती है।[६] उचित न्याय न मिलने पर वह मत्स्यराज को फटकारती है।[७] इसी प्रकार दु:शासन के द्वारा भरी सभा में अपमानित किये जाने पर द्रौपदी ने सभा में उपस्थित लोगों से न्याय की याचना की थी, यद्यपि यहां भी उसे उचित न्याय नहीं प्राप्त हुआ था।[८] उस राजा को लोक तथा परलोक दोनों में सुख प्राप्त होता है जो कि चारों वर्णों (और वर्णाश्रम धर्म) की रक्षा में संलग्न रहता है।[९] इस धारणा के होते हुए भी द्रौपदी को उचित न्याय न प्राप्त होना न्याय व्यवस्था की

१- महा० अनु० प० ४७ अ०।

२- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० २७०।

३- महा० वनप० २०७।२६-३०, मनु ७।३५, कौ० अर्थ० १।३।१-२।

४- रामा० उ० का० ५३।५ कार्यार्थिनश्च पुरुषा: स्त्रियो वा।

५- रामा० उ० का० ६६।२-६, ६७।७-८, १२

६- महा० विराट प० १६।२१

७- वही विराट प० १६।३०-३३, १६।२१

८- वही सभाप० ६७।४०-४१

९- वही सभाप० ५।१२६ ।

कमजोरी को सिद्ध करता है । कौटिल्य ने तो न्यायाधीशों को यह परामर्श दिया है कि " जो स्त्री , बालक , वृद्ध आदि किसी कारण से न्यायालय में उपस्थित न हो सकें , ऐसे लोगों का कार्य धर्मस्थ (न्यायाधीश) गण सम्पन्न करें ।[१] प्राचीनकाल के शास्त्रकार इस बात से सहमत नहीं थे कि स्त्रियां अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिये न्यायालय जायें लेकिन विज्ञानेश्वर ने कहा है कि यदि कोई पति किसी साध्वी स्त्री को त्यागता है , या जानबूझकर उसकी सम्पत्ति हड़प करता है , वह न्यायालय जा सकती है ।[२] राजा को असहायों , वृद्धों , विधवाओं , अनाथों , रोगियों , गर्भवती स्त्रियों की सहायता (दवा , वस्त्र , निवास स्थान) देकर करनी पड़ती थी ।[३] विष्णुधर्मोत्तर को उद्धृत करते हुए राजनीतिप्रकाश (पृ० १३०-१३१) ने लिखा है कि राजा को चाहिये कि वह पतिव्रता स्त्रियों का सम्मान एवं रक्षा करें ।[४] बुद्धकाल में स्त्रियां न्यायाधीश का काम कर सकती थीं ।[५]

दण्ड

अवध्यता -

स्त्रियों को भीरु , अबला तथा एक कमजोर प्राणी मानने के कारण[६] हिन्दू धर्मशास्त्रों के द्वारा उन्हें अनेक प्रकार की सुविधायें प्रदान की गयी हैं । उनमें

१- कौटिल्य - अर्थशास्त्र २० अध्याय

२- याज्ञवल्क्य पर मिताक्षरा २।३२

३- महा० आदिप० ४६।११ , विराटप० १८।२४ , शान्तिप० ७७।१८ , ८६।२४ , द्रष्टव्य - मत्स्यपुराण २१५।६२ , अग्निपुराण ८८।२५ , सभा ५।१२५ , शंख लिखित : राजनीतिप्रकाश द्वारा उद्धृत , पृ० १३८ : धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० ६०२-६०३ ।

४- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास , पृ० ६०३ ।

५- प्रो० इन्द्र - दि स्टेटस आफ वीमेन इन एन्सियेंट इंडिया , पृ० २४६ ।

६- महा० अनु०प० ४६।८ , आदिप० ७३।४ " भीरू " , ८३।५ , उसे न केवल कमजोर बताया गया वरन् उसमें बल का निवास अनुचित बताया गया । महा० वनप०

से एक यह है कि हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार स्त्री को अवध्य माना गया है। अपवाद स्वरूप अवश्य कुछ उदाहरण ऐसे प्राप्त होते हैं, जहां कि स्त्रियों का वध किया गया, लेकिन उसमें भी मारने वाले में किसी प्रकार का उत्साह नहीं देखा गया, जब कि वे समाज के लिये अभिशाप सिद्ध हो रही थीं। शतपथ ब्राह्मण में स्त्रीवध को वर्जित किया गया है।[१] रामायण तथा महाभारत में भी स्त्री को अवध्य माना गया है। तारा राम से अपने वध की प्रार्थना करते हुए कहती है कि इससे आपको स्त्री वध का पाप नहीं लगेगा।[२] स्मृतिकारों ने स्त्री को अवध्य मानते हुए स्त्रीघाती के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था की है।[३] शत्रुघ्न द्वारा मन्थरा को पीटे जाने पर भरत कहते हैं कि - "इसे छोड़ दो क्योंकि सभी प्राणियों के लिये स्त्रियां अवध्य है।[४] शूर्पणखा द्वारा सीता पर आक्रमण कर देने पर भी राम लक्ष्मण को केवल उसे कुरूप कर देने की ही आज्ञा देते हैं।[५] स्त्री वध अधर्म समझा जाता था।[६] लंका शास्त्र की दुहाई देकर हनुमान से प्राणदान की याचना करती है।[७] महाभारत में भी अनेक स्थानों पर ब्राह्मणों और गायों के समान ही स्त्रियों को अवध्य माना गया है।[८] बक राक्षस की कथा में ब्राह्मणी राक्षस के पास इस विश्वास से जाने के लिये उद्यत होती है कि वह (राक्षस) उसे स्त्री समझकर न मारेगा।[९] हापकिन्स यह लिखते हैं कि -[१०]

१- शतपथ ब्रा० ११।४।३।२

२- रामा० कि० का० २४।३७

३- मनु ६।२३२, ११।६०, कौटिल्य - अर्थशास्त्र ४।११, अत्रि स्मृति १६८।

४- रामा० अयो० का० ७८।२१-२२ अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः।

५- वही अरण्य का० १८। २०-२१

६- वही युद्ध का० ६२। ६३-६४, महा० आदिप० १५४।२

७- वही यु० का० ३।४४

८- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० ३३४। अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमैन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ० ३३७।

९- महा० आदिप० १५७।३१ अवध्यां स्त्रियमित्याहुर्धर्मज्ञा०।
महा० वनप० २०६।४६, महाप्रस्थानिक ३।१६, उद्योगप० ३३।६६, शा०प० १३५।१३, १३५।१४ ।

यह नियम कड़ाई से पालन होता था कि फांसी की सजा अर्थात वध अथवा सिर का काट देना या सिर पर किसी तेज अस्त्र से प्रहार स्त्रियों के विषय में न पालन किया जाये , अन्य अपराधों में पुरुषों को यह सजा दी जाये , स्त्रियों को नहीं । शिशुपाल भीष्म से पुरातन काल से चले आ रहे धर्म की ओर इंगित करते हुए कहता है कि - " स्त्री पर, गौ , ब्राह्मण तथा जिसका अन्न खाय उन पर हथियार न उठावे"[1]। गोघाती व स्त्रीहन्ता स्तुति का अधिकारी नहीं हो सकता[2]। स्त्री हत्यारों को कुत्सित लोकों की प्राप्ति होती है[3]। हनुमान लंका को स्त्री समझ कर उस पर अधिक क्रोध नहीं करते , यद्यपि वह उनके ऊपर आक्रमण करती है[4]। स्त्रीहत्या ऐसा अपराध है , जिसका प्रायश्चित्त सम्भव नहीं है[5]। स्त्री हत्या को महापातक " कहा गया है[6]। स्त्री हत्यारों के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था करते हुए कहा गया है कि - " जो खोटी बुद्धि वाला पुरुष स्त्री की हत्या कर डालता है , वह यमराज के लोक में जाकर नाना प्रकार के क्लेश भोगने के पश्चात बीस बार दुखद योनियों में जन्म लेता है[7]। हापकिन्स टिप्पणी में लिखते हैं कि - ऐसा विश्वास किया जाता है कि ऐसा पुरुष किसी निन्दनीय परिवार में जन्म लेगा[8]। क्षत्रिय राजा को यह विशेष रूप से आदेश दिया गया है कि वह स्त्री व ब्राह्मण के हत्यारे को व्यक्तिगत रूप से दण्ड

१- महा० सभा प० ४१।१३

२- महा० सभा प० ४१।१६

३- रामा० " युद्ध का० ८१।२२ , ये च स्त्रीघातिनां लोका लोकवध्यैश्च कुत्सिताः ।

४- रामा० युद्ध का० ८१।२८ , सु० का० ३।४१ , ३।४२

५- महा० शा० प० १०८।३२ । मिलाइये - हापकिन्स - सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया , पृ० २८१ ।

६- महा० अनु० प० १२६।२८

७- महा० अनु० प० १११।११७-११८

८- हापकिन्स - सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया , टिप्पणी पृ० २८० । हरिदत्त वेदालंकार - हिन्दू परिवार मीमांसा , पृ० १०१ ।

दे[१] । भीष्म अपने मारने वाले शिखण्डी पर शस्त्र प्रहार के लिये तैयार नहीं होते जो कि स्त्री रूप में, पैदा हुवा, परन्तु बाद में पुरुष रूप में परिवर्तित हो गया[२] । शुक्र यह कहते हैं कि - " राजा यह आज्ञा दे दें कि दास, भृत्य, भार्या, पुत्र और शिष्य के साथ मेरे देश के निवासीजन कभी वाणी के दण्ड के सिवा कोई दण्ड प्रदान न करें[३] ।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि सामान्य रूप से स्त्रियां अवध्य मानी जाती थी और उनको मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था परन्तु कुछ अपराध ऐसे थे जिनमें उसे यह सुविधा न प्राप्त थी । प्रथमत: ऐसी स्त्रियों के वध के उदाहरण प्राप्त होते हैं जो जनजीवन के लिये अभिशाप सिद्ध रही हो, इस सम्बन्ध में राम द्वारा ताटका का वध उल्लेखनीय है । राजा के ऊपर चारों वर्णों की रक्षा का दायित्व होने के कारण यह आवश्यक था कि अगर जनजीवन की रक्षा के उद्देश्य से उसे स्त्री हत्या करनी पड़े तो वह उससे मुख न मोड़े[४] । विश्वामित्र कहते हैं - ताटका महापापिनी है, इसलिये उसे मार डालने में कोई पाप नहीं है, क्योंकि जिनके ऊपर राज्यपालन का भार है, उनका यह सनातन धर्म है[५] । इस सन्दर्भ में वे स्त्रीवध के अनेक उदाहरण देते हैं । प्राचीन काल में विरोचन की पुत्री मन्थरा सारी पृथ्वी का नाश कर डालना चाहती थी, उसके इस विचार को जानकर इन्द्र ने उसका वध कर डाला[६] शुक्राचार्य की माता तथा भृगु की पत्नी को विष्णु ने मार डाला था । इसी प्रकार अन्य बहुत से महामनस्वी राजकुमारों ने पापचारिणी स्त्रियों का वध किया है[७] । शिशुपाल कृष्ण पर पूतना के

१- महा० शा० प० ७३।१६

२- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वोमैन इन हिन्दू सिविलाईजेशन पृ० ३१६

३- शुक्रनीति १।२६३

४- रामा० बालका० २५।१७ चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं० ।

५- रामा० बालका० २५।१८ राज्यभार नियुक्तानामेष धर्म: सनातन: ।

६- वही बाल का० २५।२०

७- वही बालका० २५।२१-२२, उ० का० ५१।१३-१४ ।

वध का आरोप लगाता है[१]। राजा जनमेजय द्विज स्त्रियों का वध करके इन्द्र के चरण का आश्रय ले स्वर्गलोक को प्रस्थित हुए[२]। यद्यपि अपने कर्तव्य निर्वाह के लिये राम को ताटका को मारना पड़ा लेकिन उनमें उसको मारने का किसी प्रकार का उत्साह नहीं था, वे कहते हैं कि यह अपने स्त्री स्वभाव के कारण रक्षित है[३]। हनुमान ने सिंहिका नाम की राक्षसी का वध किया था[४]। हापकिन्स लिखते हैं कि वाल्मीकि द्वारा ऐसे श्लोक गाये गये हैं कि स्त्रियों का वध नहीं करना चाहिये[५]। इस प्रकार अपवादस्वरूप स्त्री हत्या के उपर्युक्त उदाहरण प्राप्त होते हैं।

दण्ड के क्षेत्र में विभिन्न आधारों पर भिन्नता देखने को मिलती है। एक ही अपराध के लिये सबको समान दण्ड नहीं मिलता था। झगड़े में यदि अस्पृश्य, धूर्त, दास, म्लेच्छ, पापकारी एवं वर्णसंकर होतो सामान्य नागरिक की अपेक्षा उसके अपराध अधिक गम्भीर माने जाते हैं[६]। वर्ण एवं स्त्री के आधार को भी स्वीकार किया गया। ब्राह्मण एवं स्त्री के साथ हुए अपराध अक्षाम्य माने जाते थे[७]। यदि दोनों पक्ष समान रूप से प्रवृत्त हों तथा दोनों पक्ष आयु, लिङ्ग, और वर्ण में समान हों तो अपराध का निर्णय सामान्य रूप से किया जाता[८]। हापकिन्स लिखते हैं कि -

- -

१- महा० सभा प० ४१।१३-१७

२- वही अनु०प० ६।३६, आदिप० १७८।१६ यद्यपि गर्भवती ब्राह्मणी को मारना पाप था।

३- रामा० बालका० २६।१२ न ह्येनामुत्सहे हन्तुं स्त्री स्वभावेन रक्षिताम्।

४- रामा० बालका० २६।१२ न ह्येनामुत्सहे हन्तुं स्त्री स्वभावेन रक्षिताम्।
देखिये - अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ०३२६

४- रामा० सु० का० १।१६८

५- हापकिन्स - दि सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इंडिया, पृ० २८०।

६- विवाद रत्नाकर, पृ० २२७ कात्यायन अपरार्क द्वारा उद्धृत, पृ० ८१३।

७- हरिहरनाथ त्रिपाठी - प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, पृ० १६६।

" स्त्रियों की अवध्यता का नियम कोई कानूनी नियम नहीं था , कुछ मामलों में स्त्रियों को दारुण वेदना देकर मार डालने की व्यवस्था थी , यदि वह व्यभिचारिणी होती थी।[1] इस अपराध के परिणामस्वरूप मिलने वाले दण्ड के विषय में विभिन्न कालों में पर्याप्त भिन्नता दिखायी पड़ती है। इस सम्बन्ध में कुछ सूत्रकारों तथा स्मृतिकारों ने अधिक उदार विचार व्यक्त किये हैं[2], वहीं कुछ स्मृतिकारों ने कठोर दण्ड की व्यवस्था दी है।[3] इस सम्बन्ध में काणे महोदय ने कुछ निष्कर्ष निकाले हैं कि " व्यभिचार के आधार पर पति पत्नी का पूर्ण रूप से त्याग नहीं कर सकता ,

- -

१- हापकिन्स - सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया , पृ० २८० ।

२- याज्ञ० स्मृति १।७० , १।७२ , गौतम २२।३५ , व्यास २।४९-५० , नारद - स्त्रीपुंस ९१ , अत्रि १९७-१९८ , अत्रि १९५-१९६ , देवल ५०-५१, पाराशर स्मृति १०।२३-२४ , ब्रह्मवैवर्त पुराण (प्रकृति खण्ड ६१।७९) इन स्मृतिकारों ने सामान्य रूप से यह विचार व्यक्त किया है कि स्त्री के द्वारा व्यभिचार करने पर उनका पूर्ण रूप से परित्याग न किया जाये , वरन् उनकी सुविधाओं में कमी कर दी जाय , क्योंकि उनकी यह धारणा थी कि स्त्रियां मासिक धर्म के पश्चात शुद्ध हो जाती हैं। केवल प्रायश्चित्त काल तक उनके अधिकारों में कमी कर दी जाती थी। अत्रि १९५-१९६ और देवल ५०-५१ के अनुसार तो यदि व्यभिचार से बच्चा भी उत्पन्न हो जाय तो भी पत्नी त्याज्य नहीं है। मासिक धर्म के पश्चात उससे पुनः सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। प्रायश्चित्त के बाद उन्हें पुनः पत्नी के अधिकार मिल जाते थे।

३- मनु ८।३७१ , व्यभिचारिणी स्त्री को राजा बहुत से लोगों से युक्त स्थान में कुत्तों से कटवाये। मनु ८।३७२। जब कि याज्ञवल्क्य ने नाक कान काट लेने का विधान बतलाया है। याज्ञ० २।२८६,वृद्ध हारीत ७।१९२ , काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास , पृ० ३३४। वशिष्ठ २१। २२ एवं १०।

और प्रायश्चित करने पर वह उससे मुक्त हो जाती है, क्योंकि यह साधारण उपपातक है।[१] इसके विपरीत रामायणकालीन समाज में इस अपराध के लिये दण्ड कठोर प्रतीत होता है। उस समय के लोगों का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में अत्यन्त कठोर था। गौतम मुनि की पत्नी अहल्या द्वारा गौतम वेशधारी इन्द्र के द्वारा समागम करने पर[२] वे इन्द्र को अण्डकोषों से रहित होने का शाप देते हैं[३] और अहल्या को भी कठोर दण्ड प्रदान करते हुए कहते हैं - " दुराचारिणी तू भी यहाँ कई हजार वर्षों तक केवल हवा पीकर कष्ट उठाती हुई राख में पड़ी रहेगी, तथा समस्त प्राणियों से अदृश्य होकर इस आश्रम में रहेगी।[४]

रामायण में दुष्ट नारियों के परित्याग की अनुमति दी गयी है।[५] आर्य जाति में हम मात्र दुश्चरित्रता की आशंका से पत्नी का परित्याग करते हुए देखते हैं, इस सम्बन्ध में राम द्वारा सीता का त्याग उल्लेखनीय है। राम ने लंका विजय के बाद यह सोचकर कि सीता बहुत दिनों तक रावण के अन्तःपुर में रही हैं[६] उनको स्वीकार करने से इंकार कर देते हैं।[७] राम कहते हैं - मैंने जो यह रण का परिश्रम किया है, वह तुम्हें पाने के लिये नहीं बल्कि अपने सदाचार की रक्षा तथा अपने कुल पर लगे कलंक के परिमार्जन के लिये किया है। रावण द्वारा तुम्हें उठाकर ले जाने तथा दूषित दृष्टि डालने के पश्चात भी मैं अपने कुल को महान बताता हुआ तुम्हें कैसे ग्रहण कर सकता हूँ।[८] अपनी पवित्रता को सिद्ध करने के लिये सीता अग्नि परीक्षा

- -

१- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० ३३३

२- रामा० बालका० ४८। १८-१९

३- वही बालका० ४८। २७

४- वही बाल का० ४८। २९-३०

५- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज, पृ० १५८

६- रामा० युद्धका० ११५। २४

७- वही युद्धका० ११५। १७-१८

८- वही युद्ध का० ११५। १७, १८, २० ।

देती है[१]। सीता की अग्नि परीक्षा से स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में पवित्रता सिद्ध करने के लिये दिव्य साक्षी देनी पड़ती थी। नारद ने स्त्री की पवित्रता के प्रश्न में साहस, विवादों, धन या धरोहर से इंकार करने के मामलों में दिव्य की बात चलायी है, नारद के इस नियम से सीता का अग्नि परीक्षण स्मरण हो आता है[२]। इस सम्बन्ध में अल्टेकर ने लिखा है कि - " राम द्वारा सीता का इस प्रकार का त्याग एक अध्ययनशील विद्यार्थी की समझ के बाहर है, क्योंकि सीता के सम्बन्ध में इससे पहले प्रकट किये गये विचारों से यह विचार मेल नहीं खाता, उन्होंने इन श्लोकों को क्षेपक माना है[३]। सीता के मामले में मृत्यु का दण्ड अग्नि प्रवेश के माध्यम से पता चलता है, व्यभिचार का सन्देह अग्नि प्रवेश के द्वारा अवश्य दूर करना चाहिये[४]। अग्नि परीक्षा में सफल होने पर राम सीता को स्वीकार करते हैं[५]। पुन: उत्तरकाण्ड में भद्र के मुख से सीता के सम्बन्ध में जनापवाद सुनकर[६] राम न केवल सीता का परित्याग करते हैं वरन् देशनिर्वासन का कठोर दण्ड देते हैं[७]। बाद में सीता को पुन: जनसमुदाय के बीच में अपनी शुद्धता प्रमाणित करनी पड़ती है[८] महर्षि बाल्मीकि द्वारा सीता की शुद्धता समर्थन किये जाने पर भी[९] राम उन्हें जनसमुदाय के बीच में शुद्धता प्रमाणित करने का आग्रह करते हैं[१०]। परीक्षा देते-देते सीता अन्तत: रसातल में प्रवेश कर जाती

१- रामा० युद्ध का० ११६।१८-१६, ११६।२६-३४
२- नारद ४।२४२, काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास : द्वितीय भाग, पृ० ७४६।
हापकिन्स - दि सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया - पृ० ३१० - भयानक कानून यह आज्ञा देता है कि व्यभिचारिणी स्त्रियों का वध किया जाये।
३- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, पृ०३०६-३०७
४- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया, पृ० ३११।
५- रामा० युद्ध का० ११८।२०-२२, ११८।५,६,१० अग्नि सीता की पवित्रता की साक्षी देते हैं, साक्षी रूप में अग्नि को ही हिन्दू धर्म में रखा गया है, क्योंकि उसमें सत्य का निवास माना जाता है।
६- रामा० उ० का० ४३।१७-१६
७- वही उ० का० ४५।१६-१६
८- वही उ० का० ६५।४
९- वही उ० का० ६६।१५-२४

हैं , और इस प्रकार उनकी मृत्यु हो जाती है।[1] राजा दण्ड के द्वारा भार्गव कन्या अरजा के साथ बलात्कार करने पर[2] दण्ड स्वरूप शुक्राचार्य राजा दण्ड को परिवार तथा राज्य सहित नष्ट होने का दण्ड देते हैं[3] तथा पुत्री को वहीं पर तपस्या का आदेश देकर उसे छोड़कर दूसरे राज्य में चले जाते हैं।[4] इस सम्बन्ध में यद्यपि कन्या विवश थी , परन्तु उसे इतना कठोर दण्ड प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट है कि इस प्रकार का अपराध हो जाने पर स्त्रियों के सम्बन्धी उनसे अपना सम्बन्ध विच्छेद का प्रायश्चित काल तक के लिये उनका परित्याग कर देते थे। कैकेयी के आचरण से दुखी होकर दशरथ उसका परित्याग कर देते हैं।[5] राक्षसी अयोमुखी द्वारा लक्ष्मण को अपना पति बनाये जाने पर लक्ष्मण ने उसके नाक-कान तथा स्तन काट डाले थे।[6]

आर्य सभ्यता के अन्तर्गत बड़े भाई के द्वारा छोटे भाई की स्त्री के साथ सम्बन्ध अक्षम्य अपराध समझा जाता था। बालि के द्वारा अपने छोटे भाई की पत्नी का अपहरण कर[7] उसके साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया था , इसलिये राम ने दण्ड स्वरूप उसका वध किया था।[8] लेकिन बाद में सुग्रीव को रुमा को स्वीकार करने में कोई आपत्ति न हुई , सुग्रीव ने न रुमा की किसी प्रकार की परीक्षा करायी और न ही जनमत इसके विरुद्ध था। बल्कि बहुत ही प्रेमपूर्वक सुग्रीव ने रुमा को स्वीकार किया।[9] इससे स्पष्ट है कि आर्येतर जातियों में धर्षिता नारियों के प्रति दृष्टिकोण उदार था।

१- रामा० उ० का० ६७। १४-१६, ६७।२०-२२

२- वही उ० का० ८०।१६

३- रामा० उ० का० ८१।७

४- वही उ० का० ८१।१३-१४ , ८१।१७

५- वही अयो० का० ४२।७-८

६- वही अरण्य का० ६६। १५-१७

७- वही कि० का० १०।२७

८- वही कि० का० १८।२२ १/२ , १८।१८-२०

९- वही कि० का० २६।४२ , ३३।६६ ।

यहां यह उल्लेखनीय है कि जहां बाली को छोटे भाई की पत्नी के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के कारण मृत्यु का मुख देखना पड़ा वहीं छोटे भाई द्वारा बड़े भाई की पत्नी को पत्नी रूप में रखने पर कोई आपत्ति नहीं की गयी और न ही उसे दण्ड दिया गया । इससे स्पष्ट है कि ऐसा करना अपराध नहीं समझा जाता था । सुग्रीव ने न केवल रुमा को वरन् तारा को भी प्राप्त किया । रामायण में सुग्रीव व तारा का जो वर्णन आया है उससे यह स्पष्ट है कि तारा भी उसकी पत्नी के समानथी ।[1] इस पर व्यास लिखते हैं कि - " मृत शत्रु की विधवा को युद्ध की लूट के रूप में ले लेने का यह रिवाज वानर जाति में अवशिष्ट बर्बर प्रथा का सूचक है ।[2] एस० एन० व्यास ने अपनी पुस्तक " रामायणकालीन समाजमें यह दिखाने का प्रयास किया है कि बाल्मीकि ने वानरों के यौन सम्बन्धों में अनियमितता दिखायी है ,और उदाहरण रूप में उन्होंने हनुमान जन्म की परिस्थितियों को रखा है[3], जब कि हम देखते हैं कि बाल्मीकि ने हनुमान की मां अंजना को " सुव्रता " नारी के रूप में निरूपित किया है और वायु देवता के द्वारा पातिव्रत्य के भङ्ग करने के प्रयास में वह दृढ़ता पूर्वक कहती है कि - " कौन मेरे इस पातिव्रत्य का नाश करना चाहता है ।[4]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आर्येतर जातियों में अवश्य कुछ यौन सम्बन्धों में शिथिलता पायी जाती है , जब कि आर्य जाति में यौन सम्बन्धों की पवित्रता पर बहुत बल दिया गया है तथा व्यभिचारिणी स्त्रियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण कठोर था । इसके लिये उन्हें देशनिर्वासन का दण्ड दिया जा सकता था तथा अपनी शुद्धता प्रमाणित करने के लिये दिव्य साक्षियों से गुजरना पड़ता था ,

---

१- रामा० कि०का० ४६।६ ,कि० का० ३१।२२, ३३।५६, कि०का० ३५।५

२- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० ६३

३- वही पृ० ६२

४- रामा० कि० का० ६६।१६

५- [illegible] ।

जिसमें उनकी मृत्यु की सम्भावना रहती थी । प्रायश्चित्त काल में उनके सम्बन्धी उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर लेते थे , प्रायश्चित्त स्वरूप दण्ड भी बड़ा कठोर होता था । यह अवश्य है कि प्रायश्चित्त करने के पश्चात पवित्र होने पर उनको स्वीकार कर लिया जाता है जैसा कि गौतम द्वारा अहल्या को[१] दशरथ द्वारा कैकेयी[२] तथा अग्नि परीक्षा के बाद राम ने सीता को[३] स्वीकार कर लिया था ।

महाभारत काल में इस सम्बन्ध में समाज का दृष्टिकोण कुछ उदार था । इस अपराध के लिये स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक उत्तरदायी ठहराया गया । हापकिन्स लिखते हैं कि - " किसी स्त्री के वध का जो कानूनी दण्ड है वह बहुत कठिन दण्ड नहीं है और यदि वह छोटी जाति की है तो दण्ड बिल्कुल नहीं के बराबर है । अगर कोई व्यक्ति विवाहित स्त्री को मारता है : गुरु की स्त्री को छोड़कर , क्योंकि गुरु और उसकी सारी चीजें पवित्र मानी गयी हैं । तो दो साल की कड़ी सजा देना चाहिये और गुरु की पत्नी हो तो तीन साल[४] । हापकिन्स ने जो उपर्युक्त दण्ड वध के लिये उल्लिखित किया है , वध के लिये न होकर व्यभिचार करने पर दण्ड का उल्लेख है[५] । महाकाव्य के कथा भाग के रचयिता मानव स्वभाव की दुर्बलताओं से परिचित थे , अतः इन्होंने इस सम्बन्ध में उदार दृष्टिकोण अपनाया[६] । गुरुपत्नी गमन को महापातकों में गिना गया है[७] । जानबूझकर जो गर्भिणी स्त्री की हत्या

१- रामा० बाल का० ४६।२०-२१

२- रामा० युद्ध का० ११६। २६-२७

३- वही युद्ध का० ११८।२०-२२

४- हापकिन्स - दि सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया , पृ० ३८० ।

५- महा० शा० प० १६५।६०-६१ श्रोत्रियाश्रोत्रिय भार्यायां परदारे च द्वे स्मृते ।

६- वही आदिप० १०५।७ , ६३।८० , सत्यवती- पाराशर सम्बन्ध , महा० आदिप० १११।६ - कुन्ती - सूर्य सम्बन्ध ।

७- महा० शा० प० १६५।३५ ।

करता है उसे दो ब्रह्महत्याओं का पाप लगता है[१]। गुरुपत्नीगामी लोहे की गरम की हुई नारी प्रतिमा का आलिङ्गन करके प्राण दे देने पर शुद्ध होता है[२]। व्यभिचारिणी स्त्रियों को प्राणदण्ड दिया जाय, इस सम्बन्ध में सूत्रों की अपेक्षा महाकाव्य ज्यादा उदार है। महाकाव्य के साधारण नियम के अनुसार स्त्री का सतीत्व नष्ट करने वाले को अधिक सजा है[३]। व्यभिचार के सम्बन्ध में सामान्य रूप से स्त्री व पुरुष दोनों के लिये एक ही प्रकार के दण्ड की व्यवस्था की गयी है[४]। वहीं आगे कहा गया है कि -
* जो अपने श्रेष्ठ पति को छोड़कर व्यभिचार करती है, उस कुलटा को अत्यन्त विस्तृत मैदान में खड़ा करके राजा कुत्तों से नुचवा डाले[५]। इस प्रकार व्यभिचारी पुरुष व स्त्री दोनों को ही राजा मृत्यु दण्ड दे, ऐसा उल्लेख किया गया है[६]। कुमारी कन्या यदि अपनी इच्छा से चरित्रभ्रष्ट हो जाये तो उसे ब्रह्महत्या का तीन चौथाई और कलंकित करने वाले पुरुष को शेष चौथाई पाप का भागी होना पड़ता है[७]। महाकाव्य जाति व्यवस्था पर विशेष बल देता है और अन्य प्रकार के दण्ड का विधान करता है जैसे गधे पर चढ़ाकर घुमाना अथवा जिस गड्ढे में गोबर भरा हो, उसमें एक वर्ष तक सोने की आज्ञा देना[८]। परस्त्री से संसर्ग रखना ये शरीर के पाप हैं[९]। दूसरों की स्त्री चुराने वाले, परायी स्त्री का सतीत्व नष्ट करने वाले तथा दूत बनकर परस्त्री को

१- महा० शा० प० १६५।५४ $\frac{१}{२}$ द्विगुणा ब्रह्महत्या वै आत्रेयी निधने भवेत्।

२- वही शा० प० १६५।४६

३- हापकिन्स - दि सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया, पृ० ३१०।

४- महा० शा० प० १६५।६३

५- वही शा० प० १६५।६४ श्वभिस्तामर्दयेद् राजा संस्थाने बहुविस्तरे।

६- वही शा० प० १६५। ६५-६६

७- वही शा० प० १६५। ४२ $\frac{१}{२}$

८- हापकिन्स - दि सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेंट इंडिया, पृ० ३१०।

९- महा० अनु० प० १३।३ ।

दूसरे से मिलाने वाले निश्चय ही नरकगामी होते हैं।[१] तपस्या द्वारा ही मनुष्य महापातकों से छुटकारा पा सकता है।[२] परस्त्रीगमन की सर्वत्र निन्दा की गयी है।[३] स्त्रियों के शरीर में जितने रोमकूप होते हैं, उतने ही हजार वर्षों तक व्यभिचारी पुरुष को नरक में रहना पड़ता है।[४] गुरुपत्नीगामी के लिये मृत्यु के अतिरिक्त दूसरा दण्ड नहीं है।[५] स्त्रियां भी एक वर्ष तक मिताहार एवं संयम पूर्वक रहने पर उक्त पापकर्मों से मुक्त हो जाती हैं।[६] परायी स्त्री तथा पराये धन का अपहरण करने वाले पुरुष एक वर्ष तक कठोर व्रत का पालन करने पर उस पाप से मुक्त होता है।[७] बाद में इस सम्बन्ध में स्त्रियों के लिये नियम और सरल बना दिया गया कि पापाचार की आशंका होने पर रजस्वला होने तक उसके साथ समागम न करे, रजस्वला होने पर वे उसी प्रकार शुद्ध हो जाती है, जिस प्रकार राख से मंजा हुआ बर्तन।[८] धर्मज्ञ पुरुषों द्वारा यह भी व्यवस्था की गयी है कि एक दिन का अन्तर देकर भोजन करने से भी स्त्रियां शुद्ध हो जाती हैं।[९] अगम्यागामी पुरुष के लिये कठोर प्रायश्चित की व्यवस्था की गयी है।[१०] पिता की जीवित अवस्था में ही माता के व्यभिचार से जन्म लेने वाले तथा विधवा माता के पेट से पैदा होने वाले को श्राद्ध में न बुलाने का विधान किया गया है।[११] दूसरे के धन का हरण, परस्त्री संसर्ग, सुहृद मित्र का परित्याग - ये

- -

१- महा० अनु०प० २३।६१, २३।६४ धोखा देने वाले नरक में जाते हैं।

२- वही अनु० प० १२२।६

३- वही अनु० प० १०४।२०-२१

४- महा० अनु० प० १०४।२२

५- महा० शा० प० ३५।२० - १, २

६- वही शा० प० ३५।२१ कर्मभ्यो विप्रमुच्यन्ते यथा: संवत्सरे स्त्रिय: ।

७- वही शा० प० ३५।२५

८- वही शा० प० ३५।३० रजसा तु विशुध्यन्ते भस्मनं भाजनं यथा ।

९- वही शा० प० ३५।२६

१०- वही शा० प० ३५।३५

११- वही वन प० २००। १७-१८ ।

तीनों ही दोष मनुष्य के आयु, धर्म तथा कीर्ति का क्षय करने वाले होते हैं।[१] वह व्यक्ति सुखी रहता है जो परस्त्री गमन नहीं करता।[२]

राजा चित्ररथ की समृद्धि को देखकर रेणुका द्वारा उसकी इच्छा किये जाने पर[३] जमदग्नि परशुराम को माता के वध की आज्ञा देते हैं[४] और परशुराम अपनी माता का वध कर देते हैं।[५] यद्यपि बाद में परशुराम के द्वारा अपने पिता से वरदान माँगकर उन्हें जीवित किया गया।[६] यह कथा सम्भवत: पिता के महत्व को दर्शाने के लिये बाद में जोड़ दी गयी हो। इसी प्रकार गौतम ने अपनी स्त्री के द्वारा किये गये व्यभिचार पर कुपित हो अपने पुत्र चिरकारी को माता के वध की आज्ञा दी थी।[७] यद्यपि चिरकारी ने अपने स्वभावानुसार चिरकाल तक सोचविचार कर माता का वध नहीं किया।[८] व्यभिचार के अपराध में चिरकारी पुरुष को ही उत्तरदायी मानता है। इसलिये वह स्त्री को अपराधी न मानकर पुरुष को ही अपराधी मानता है।[९] स्त्रियां चूंकि पराधीन तथा अबला होती हैं, इसलिये इस अपराध में पुरुष ही अपराधी होता है।[१०] वह नारी जाति की अवध्यता का प्रतिपादन करता है, विशेष रूप से तो माता और भी आदरणीय होती है।[११] गौतम भी स्त्री वध की आज्ञा देने के पश्चात् स्त्रीवध के पाप की आशंका से उद्वेलित हो जाते हैं, और इसमें स्त्री को निरपराध मानते हैं।[१२]

१- महा० उद्योग प० ३३।६५, शा० प० ३४२।२३

२- वही उद्योग प० ३३।१०८

३- वही वन प० ११६।७

४- वही वन प० ११६।११

५- महा० वनप० ११६।१४

६- वही वनप० ११६।१७

७- वही शा० प० २६६।७

८- वही शा० प० २६६।६३

९- वही शा० प० २६६।३८

१०- वही शा० प० २६६।४० नापराधोऽस्ति नारीणां नर एवापराध्यति।

११- वही शा०प० २६६।४२

यवक्रीत द्वारा रैभ्य मुनि की पुत्रवधू के साथ व्यभिचार करने पर रैभ्य उसे प्राणदण्ड देते हैं।[१] महर्षि गौतम ने इन्द्र को अहल्या पर बलात्कार करने के कारण शाप दिया था।[२] जटासुर के द्वारा द्रौपदी का हरण किये जाने पर[३] भीमसेन द्वारा उसका वध किया गया था।[४] इसी प्रकार जयद्रथ के द्वारा द्रौपदी का हरण किये जाने पर पाण्डवों ने उसको भी दण्ड दिया था।[५] द्रौपदी को इतनी धर्षणा होने पर भी कभी उसके साध्वीपन पर आंच नहीं आयी। उसके पति उसे अपने प्राणों से अधिक प्यार करते थे व अत्यधिक सम्मान देते थे। क्योंकि कहा गया है कि - " स्त्रियां, रत्न और जल स्वभावत: पवित्र होते हैं।[६] वहीं स्वाहा के द्वारा सप्तर्षियों की पत्नी का वेश धारण कर अग्निदेव के साथ समागम करने[७] के रहस्य को जानकर तथा विश्वामित्र द्वारा यह कहे जाने पर भी कि " आपकी स्त्रियों का कोई अपराध नहीं है," ऋषियों ने अपनी पत्नियों को स्वीकार नहीं किया।[८] राजा को यह अधिकार दिया गया है कि यदि माता पिता, भाई स्त्री तथा पुरुष कोई भी अपने धर्म में स्थिर न रहें तो राजा दण्ड दे।[९]

व्यभिचार एवं बलात्कार के मामलों में तत्सम्बन्धी नारी पर ध्यान दिया जाता था, जैसे गुरु की स्त्री के साथ व्यभिचार करने पर दण्ड अधिक कठोर था, वहीं नीच जाति की स्त्री के साथ व्यभिचार करने पर दण्ड उतना कठोर न था।[१०]

- -

१- महा० वनप० १३६

२- वही अनु० प० १५३।६, शा० प० ३४२।२३

३- वही वन प० १५७।३

४- वही वनप० १५७।७०

५- महा० वन० प० २६८।२५

६- वही वनप० १६५।३२ अदुष्या हि स्त्रियो रत्नमाप इत्येव धर्मत:।

७- वही वनप० २२६।१-३, १३-१४

८- वही वनप० २२६। १६-१७

९- वही शा०प० १२१।६०

१०- वही शा० प० १६५।३४-३८, याज्ञ० २।२८६।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि महाकाव्य के कथाभाग में इस सम्बन्ध में दृष्टिकोण बहुत उदार था । कुन्ती तथा सत्यवती विवाह से पूर्व पुत्रवती हो चुकी थीं परन्तु इस कारण उनके सतीत्व पर किसी प्रकार की आशंका नहीं की गयी , न हो उनके विवाह में किसी प्रकार की कठिनाई हुई , इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय का समाज आज की अपेक्षा बहुत स्वतन्त्र था । यद्यपि बाद के भाग में इस अपराध के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था की गया है । साथ ही स्त्रियों को पराधीन तथा अबला मानने के कारण इस अपराध के लिये स्त्री की अपेक्षा पुरुष को अधिक उत्तरदायी ठहराया गया । रामायण में जहां मात्र आशंका पर सीता का परित्याग किया गया वहीं द्रौपदी को अनेक बार घर्षणा होने पर भी पाण्डव उसे एक शब्द भी नहीं कहते और उसे अत्यधिक सम्मान तथा आदर देते थे । स्पष्ट है कि इस काल में घर्षिता नारियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण उदार था ।

युद्ध में जीती गयी कन्या को लौटाने के सम्बन्ध में नियम -

यदि किसी कन्या को अपने पराक्रम से हर कर ले आवे तो एक साल तक उससे कोई प्रश्न न करे , एक साल के बाद यदि वह कन्या किसी दूसरे का वरण करना चाहे तो उसे लौटा देना चाहिये ।[१] हापकिन्स लिखते हैं कि - " स्त्रियों को बन्दी रूप में ले जाने का अधिकार था , लेकिन पकड़ने वाले के अधिकार पर स्त्रियों के पक्ष में रोक थी कि एक वर्ष बाद उन्हें छोड़ दिया जाय ।[२]

कानून द्वारा प्रदत्त अन्य सुविधायें -

पुरुषों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे स्त्रियों से सदैव शिष्ट आचरण

१- महा० शा० प० ६६।५

२- हापकिन्स - दि सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इंडिया , पृ० २६२ ।

करें । लक्ष्मण के क्रोध से भयभीत सुग्रीव तारा को लक्ष्मण के पास भेजते हैं , क्योंकि उनका विचार था कि महात्मा पुरुष स्त्रियों के प्रति कभी कठोर बर्ताव नहीं करते हैं , बाद की घटनायें उनके इस विचार को सत्य सिद्ध करती है ।[1] इसी कारण हनुमान ने लंकाकेप्रति दया का व्यवहार किया था ।[2] स्त्रियों से बातचीत करते समय सदैव मृदु वाणी का प्रयोग करना चाहिये ।[3] एक शपथ ग्रहण में स्त्रियों के प्रति कठोर व्यवहार की निन्दा की गयी है ।[4] अपनी स्त्रियों के प्रति असत्य भाषण की भी अनुमति प्रदान की गयी है ।[5]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि स्त्रियों को अनेक क्षेत्रों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक सुविधायें प्राप्त थीं । एक ही प्रकार की त्रुटि के लिये पुरुष की अपेक्षा नारी को आधा ही प्रायश्चित करना पड़ता था ।[6] इसी प्रकार स्त्रियों की हत्या नहीं की जा सकती थी , न वे व्यभिचार करने पर त्यागी ही जा सकती थीं । मार्ग में उन्हें पहले आगे जाने अग्रगमन का अधिकार प्राप्त था ।[7] राम के वनप्रस्थान करते समय सर्वप्रथम सीता द्वारा आसन ग्रहण करने के उपरान्त दोनों भाई सवार हुए थे ।[8] गंगापार करते समय भी लक्ष्मण ने राम के आदेश से पहले सीता को नाव पर चढ़ाया

- -

१- रामा० कि० का० ३३।३६

२- वही सु० का० ३।४१

३- महा० द्रोण प० १००।१२ , उद्योगप० ३८।१० श्लक्ष्णो मधुरवाक स्त्रीणां ० ।

४- वही अनु० प० ६३।१२२ , ६४।२६ , आदिप० ११०।१२ कुन्ती सूर्य से कहती है - स्त्रियों से अपराध हो जाय तो भी श्रेष्ठ पुरुषों को सदैव उनकी रक्षा ही करनी चाहिये । महा० अनु० प० १२७।६

५- महा० आदिप० ८२।१६ , कर्णपर्व ६६।३३ , ६२ , शा० प० ३४।३५ , शा०प० ३२०।७२ , उद्योग प० १२२।६ , ३४।६४ ।

६- विष्णु ध० सू० ५४।३३ , देवल ३० आदि ।

७- वशिष्ठ ध० सू० १३।५१-५३ , आप० ध० सू० २।६।१३।४
देखिये - काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास , पृ० ३३५ ।

८- रामा० अयो० का० ४०।१३ ।

था और फिर स्वयं चढ़े थे[१]। यदि गर्भिणी स्त्री सामने आ जाये तो स्वयं हटकर रास्ता दे देना चाहिये[२]। पतित की कन्या पतित नहीं मानी जाती थी[३]। दो मास से अधिक गर्भवाली स्त्री, सन्यासी, ब्राह्मण और ब्रह्मचारी नदी पार जाने के लिये कर मुक्त थे[४]। स्पष्ट है कि नारी को कोमल, अबला तथा कमजोर मानने के कारण उसको कानून द्वारा अनेक प्रकार की सुविधायें प्रदान की गयी थीं तथा उसके द्वारा किये जाने वाले अपराधों के सम्बन्ध में पुरुषों को अधिक उत्तरदायी ठहराया गया क्योंकि स्त्रियों को पराधीन माना गया है।

००----------००

१- रामा० अयो० का० ५२।७५

२- महा० अनु० प० १०४।२५-२६

३- याज्ञ० स्मृति ३।२६१

४- मनुस्मृति ८।४०७, विष्णु ५।१३२। सभी वर्णों की स्त्रियां कर मुक्त थीं।
(केवल प्रतिलोम जाति की स्त्रियों को छोड़कर) आप० ध० सू० २।१०।२६।१०-११

अध्याय - १०

स्त्री और स्वतंत्रता

स्त्री और स्वतंत्रता

प्राय: प्रत्येक समाज में वर्ण, कुलीनता, वैभव तथा अन्य आधारों पर उसमें रहने वाले मनुष्यों की स्थिति में अन्तर पाया जाता है, यह बात स्त्रियों के सम्बन्ध में भी लागू होती है। समाज में कुछ स्त्रियां ऐसी होती हैं जिनको अपने वर्ण, कुलीनता तथा वैभव इत्यादि के कारण समाज में विशेष आदर तथा सम्मान प्राप्त होता है, वहीं कुछ स्त्रियां ऐसी होती हैं, जिनको कि समाज में निम्न स्थिति प्राप्त होती है। इस दृष्टि से स्त्रियों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं -- (क) उच्च वर्ण की स्त्रियां, (ख) निम्न वर्ण की स्त्रियां।

पहले हम उच्च वर्ण की स्त्रियों की स्थिति तथा उनको प्राप्त स्वतंत्रता के विषय में वर्णन करेंगे।

उच्च वर्ण की स्त्रियों को प्राप्त स्वतंत्रताएं -

उच्च वर्ण के अन्तर्गत हम 'द्विजाति'[१] की स्त्रियों को रख सकते हैं, यद्यपि महाकाव्य में विशेष वर्णन शासक जाति अर्थात् क्षत्रिय स्त्रियों का ही आया है। वर्णों में प्रमुख होने के कारण ब्राह्मण स्त्रियों को सर्वाधिक महत्व तथा आदर प्राप्त था। प्राचीन काल में स्त्रियों पर इतने कड़े निर्बन्ध नहीं थे, जितने कि कालान्तर में उन पर लगाये गये। वैदिक काल में स्त्रियों को घूमने-फिरने, सभाओं में जाने और मनोरंजनार्थ उत्सवों में भाग लेने की स्वतंत्रता प्राप्त थी। वे घर की चहारदिवारी में बन्द न होकर समय-समय पर सामाजिक कार्यकलापों में सक्रिय भाग लेती थीं।[२]

१- ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये प्राय: 'द्विजाति' शब्द का प्रयोग किया गया है।

२- ऋ० १०।८५।३३, अथर्व० १४।२।२६, १४।२।७४, १४।१।२१, ऋ० १।१६७।३ ऋ० ४।५८।८। मिलाइये - अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन, पृ० १९६। प्रो० इन्द्र - दि स्टेटस आफ वीमेन इन एन्सियेंट इंडिया, पृ० ६८-६९।

महाकाव्यकाल में यद्यपि स्त्रियां प्राय: जनसमूह के मध्य में नहीं आती थी , परन्तु उन्हें घूमने फिरने तथा उत्सवों में भाग लेने की पर्याप्त स्वतन्त्रता थी । भरत की चित्रकूट यात्रा में तीनों मातायें भी रथों पर आरूढ़ होकर उनके साथ गयीं थीं ।[१] सैनिकों के साथ उन सबकी स्त्रियां भी उस यात्रा में सम्मिलित हुई थीं ।[२] वन में भरद्वाज मुनि द्वारा आतिथ्य सत्कार किये जाने पर सैनिकों के साथ उनकी स्त्रियां भी परमानन्द प्राप्त कर परम प्रसन्न हो रहीं थीं ।[३] स्पष्ट है कि पुरुषों के समान ही स्त्रियां भी स्वतन्त्र होकर आनन्द का उपभोग कर रहीं थीं । भरद्वाज मुनि के चरण स्पर्श के लिये प्रस्तुत दशरथ की रानियों ने किसी प्रकार का पर्दा नहीं कर रखा था और मुनि के पूछने पर भरत ने उन सबका अलग-अलग विशेष परिचय दिया था ।[४] इसके अतिरिक्त सीता राम के साथ मुनियों के विभिन्न आश्रमों में गयीं , परन्तु कहीं भी सीता को किसी प्रकार की झिझक अथवा संकोच का अनुभव नहीं हुआ ।[५] और न ही उनके द्वारा किसी प्रकार के पर्दा किये जाने का कोई संकेत प्राप्त होता है । पंचवटी के आश्रम में सन्यासी वेषधारी रावण के प्रवेश करने पर राम की अनुपस्थिति में ही उन्होंने उसका आतिथ्य सत्कार किया था[६] और उसके द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर बिना किसी संकोच तथा भय के दिया था[७] और स्वयं भी उसका परिचय पूछा था ।[८] इससे स्पष्ट है कि स्त्रियां आश्रमों में मुनियों के समक्ष किसी प्रकार का पर्दा नहीं करती थीं ।

१- रामा० अयो० का० ८६।६

२- वही अयो० का० ८२।२५-२६

३- वही अयो० का० ६१।६४

४- वही अयो० का० ६२।१४-२७

५- वही अयो० का० ११७।५-८, अरण्यका० १ सर्ग , ५।२६ , ७ सर्ग , १२-१३ सर्ग ।

६- रामा० अरण्यका० ४६।३३-३४ , ३६

७- वही अरण्यका० ४७।२

घर में नवयुवतियां अपने ज्येष्ठ सम्बन्धियों के समक्ष पर्दा करती हों, अथवा उनके समक्ष पुत्र अपनी पत्नी से सम्भाषण न कर सकता हो तथा श्वसुर अपनी पुत्रवधू का मुख न देख सकता हो, इस प्रकार के संकेत रामायण में नहीं प्राप्त होते। माता के अन्तःपुर में सबके समक्ष राम द्वारा अपने राज्याभिषेक के सन्देश को सुनाना तथा व्रतपालन के लिये वहां उपस्थित सीता को अपने साथ ले आना[1], वन जाने से पहले सपत्नीक पिता से विदा लेना[2] यह सब तथ्य स्पष्ट करते हैं कि इक्ष्वाकु परिवार में संभाषण की जैसी स्वतन्त्रता तथा सम्बन्धों की सरलता प्राप्त होती है, वह किसी पर्दा ग्रस्त परिवार में संभव नहीं है।

स्त्रियां यज्ञोत्सवों में भी भाग लेती थीं। दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ में नाना देशों से स्त्री और पुरुष यज्ञोत्सव का आनन्द उठाने के लिये आये थे।[3] राम के राज्याभिषेक की घोषणा किये जाने पर अयोध्या नगरी उत्साहित तथा प्रसन्न नरनारियों से भर गयी थी।[4] वन से लौटे राम का स्वागत करने के लिये दशरथ की सभी रानियां नन्दिग्राम गयीं थीं[5] और वह नगरी उस समय उत्सुक स्त्रियों तथा अन्य लोगों से भर गयी थी।[6] राम के राज्याभिषेक की शोभा यात्रा में सुग्रीव की सभी पत्नियों सहित सीता जी सम्मिलित हुई थीं।[7] स्पष्ट है कि स्त्रियां इस काल में स्वतन्त्रतापूर्वक इन उत्सवों में भाग लेती थीं।

- -

१- रामा० अयो० का० ४।३१, ३५-३७, ४५।

२- वही अयो० का० ४०।१

३- वही बालका० १४।१३-१६, बालका० ११।३०-३१ ऋष्यश्रृंग के साथ शान्ता भी आयी थी।

४- रामा० अयो० का० ५।१४, १६, १९-२०, ६।२५-२६, ७।६

५- वही युद्धका० १२७। १५-१६

६- वही युद्धका० १२७।४ राजदारास्तथामात्याः, युद्धका० १२७।३४ स्त्रीबाल युववृद्धानां०।

७- रामा० युद्धका० १२८।२२, ३८।

वानरों में भी पर्दे के प्रचलन का कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता[१]। क्रोधित लक्ष्मण के अन्त:पुर में प्रवेश करने पर तारा ने बिना किसी संकोच के उनके समक्ष जाकर अपने पति के पक्ष का समर्थन किया था[२]। धर्ममर्यादा के भय से लक्ष्मण के अन्त:पुर में प्रवेश न करने पर वह कहती है कि - मित्र भाव से स्त्रियों की ओर देखना सत्पुरुषों के लिये अधर्म नहीं है[३]। यद्यपि पर्दे का प्रचलन न था , फिर भी स्त्रियां प्राय: सबके सामने न आती थीं।

राक्षसों में अवगुण्ठन की प्रथा प्रचलित थी। इसकी पुष्टि मंदोदरी के इस कथन से होती है कि - " आज मेरे मुंह पर घूंघट नहीं है , मैं नगरद्वार से पैदल चलकर यहां आयी हूं , इस दशा में आप मुझे देखकर क्रोध क्यों नहीं करते। आज आपकी सभी स्त्रियां लाज छोड़कर परदा हटाकर बाहर निकल आयी हैं , इन्हें देखकर आपको क्रोध क्यों नहीं होता[४]। स्पष्ट है कि राक्षसों में पर्दे की प्रथा प्रचलित थी और पर्दा न करने पर उनके स्वामी उन पर क्रुद्ध होते थे तथा उच्च वर्ग की स्त्रियां प्राय: रनवास से पैदल चलकर नहीं जाती थी वरन् सवारियों से जाती थीं। अपनी इस प्रथा के अनुरूप ही विभीषण युद्ध के बाद सीता को शिविका में बैठाकर राम के समक्ष लाते हैं[५], परन्तु अपने समाज में प्रचलित प्रथा के अनुसार राम को विभीषण का यह कार्य रुचिकर न लगा[६]। वे विभीषण को इस कार्य से विरत करते हुए इस बात का प्रतिपादन करते हैं कि - स्त्रियों के लिये घर , वस्त्र और चहारदिवारी आदि वस्तुयें परदा नहीं हुआ करती हैं। पति से प्राप्त होने वाले सत्कार तथा नारी के अपने सदाचार ये ही उसके लिये आवरण

- -

१- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० १८३

२- रामा० कि० का० ३३।३८-४० ।

३- वही कि० का० ३३।४१

४- वही युद्ध का० १११। ६१-६३

५- वही युद्ध का० ११४।१५ आरोप्य शिबिकां० ।

६- वही युद्ध का० ११४।१८ ।

है। विपत्तिकाल में , युद्ध में , स्वयंवर में , यज्ञ में , अथवा विवाह में स्त्री का दीखना दोष की बात नहीं है।[1] राम द्वारा व्यक्त किये गये उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि राम इस प्रथा के समर्थक न थे और बाह्य वस्तुओं को स्त्रियों का रक्षक न मानकर उसके चरित्रबल को ही उसका सबसे बड़ा रक्षक मानते हैं अर्थात जिस स्त्री के अन्दर अपना चरित्र बल नहीं है , उसकी पर्दे या अन्य आवरण के द्वारा भी रक्षा नहीं की जा सकती है। इस प्रकार अपने इन कथनों के द्वारा राम ने पर्दाप्रथा की निःसारता तथा अनावश्यकता को सिद्ध किया है और इस प्रथा के समर्थक लोगों को आड़े हाथों लिया है। इसके अन्य प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं। अयोध्या के नागरिक अपनी पत्नियों की ओर से सर्वथा निश्चिन्त होकर राम के साथ वन जाने के लिये प्रस्तुत थे , क्योंकि उन्हें इस बात का पूर्ण विश्वास था कि उनकी स्त्रियां अपने चरित्र बल से पूर्णतया सुरक्षित हैं।[2] सीता स्वयं भी अपने पातिव्रत्य के तेज से सुरक्षित थीं।[3]

राम के विशाल अश्वमेध यज्ञ में देशदेशांतर से तपोधन ऋषियों तथा ब्रह्मर्षियों को सपत्नीक आमंत्रित किया गया था।[4] साथ ही यौवनशाली नारियां राजमातायें कुमारों के अन्तःपुरों की स्त्रियां इत्यादि सभी इस अविस्मरणीय यज्ञ में सम्मिलित हुई थीं।[5] विभीषण ने वहां पर स्वयं बहुत सी स्त्रियों तथा

१- रामा० युद्धका० ११४। २६-३०

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारस्तिरस्क्रिया ।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियाः ।।
व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे ।
न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दुष्यते स्त्रियाः ।।

२- रामा० अयो० का० ४५।२५ वत्स्यन्त्यपि गृहेष्वेव दाराश्चारित्र रक्षिताः ।।

३- वही अरण्यका० ३७।१४ रक्षिता स्वेन तेजसा ।

४- वही उ० का० ९१।१४ सर्वे सदाराश्च द्विजातयः ।

५- वही उ० का० ९१। २२ , २४ ।

दासों के साथ तपस्वी महात्मा मुनियों का आदर सत्कार किया था ।[१] इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि उच्च वर्ग विशेषकर क्षत्रिय वर्ण की स्त्रियों को इतनी स्वतंत्रता मिली हुई थी , जितनी पश्चिम के समुन्नत सामन्ती युग की नारियों को भी शायद प्राप्त न थी ।[२]

रामायणकालीन समाज में नारियों को उपर्युक्त स्वतंत्रतायें प्राप्त थीं , पर साथ ही कुछ ऐसे उद्धरण प्राप्त होते हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि राजकुल की महिलायें प्राय: जनसमूहों में नहीं आती थीं । वन के लिये पैदल जाते हुए सीता को देखकर नागरिक कहते हैं - " पहले जिसे आकाश में विचरने वाले प्राणी भी नहीं देख पाते थे , उसी सीता को इस समय सड़कों पर खड़े हुए लोग देख रहे थे ।[३] इसका तात्पर्य यह नहीं कि स्त्रियां बिल्कुल बन्द रहती थीं , वरन् इसका अभिप्राय मात्र इतना ही है कि राजकुल की महिलायें इस प्रकार पैदल यात्रा नहीं करती थीं वरन् वे सवारियों से यात्रा करती थीं और विशेष अवसरों पर ही वे जनसमूह के मध्य आती थी ।

महाभारतकाल में भी स्त्रियां उपर्युक्त स्वतन्त्रताओं का उपभोग करती थीं जीवन एकाकी तथा नीरस न हो जाय , इसलिये वे समय-समय पर विभिन्न उत्सवों में भाग लेती थीं । राजकुमारों के अस्त्रकौशल प्रदर्शन में राजभवन की सभी स्त्रियां दास दासियों सहित गयी थीं ।[४] रंगभूमि में कर्ण और अर्जुन को लेकर स्त्रियों में भी दो दल हो गये थे ।[५] विजय यात्रा से लौटे हुए योद्धाओं के स्वागत में

- -

१- रामा० उ०का० ६१।२६ विभीषणाश्च रक्षोभि: स्त्रीभिश्च बहुभिर्वृत: ।.

२- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज , पृ० १६० ।

३- रामा० अयो० का० ३३।८ या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि ।

४- महा० आदिप० १३३। ११-१२ , १३३। १५-१६

५- वही आदिप० १३५।२७ द्विधा: रङ्गग: समभवत् स्त्रीणां द्वैधमजायत ।

राजकुमारियां तथा सौभाग्यवती तरुणी स्त्रियां जाती थीं।[१] दौत्यकर्म के लिये आये हुए श्रीकृष्ण के अगवानी के लिये पर्दा न रखने वाली कन्यायें गयी थीं और स्त्री पुरुषों सहित सारा नगर उनके दर्शन के लिये उमड़ पड़ा था।[२]

स्त्रियां मांगलिक अवसरों पर श्रेष्ठ पुरुषों के ऊपर पुष्पवृष्टि करती थीं।[३] विराट के नगर में राजमार्ग पर दौड़ती हुई सैरन्ध्री का स्त्री पुरुष कुतूहलवश पीछा कर रहे थे।[४] रानी सुदेष्णा ने उसे प्रासाद की छत से देखा था।[५] रैवतक पर्वत पर होने वाले उत्सव में अन्धक और वृष्णिवंश की स्त्रियां सम्मिलित हुई थीं।[६] अपनी सखियों के साथ घूमते हुए सुभद्रा को इसी उत्सव में अर्जुन ने देखा था।[७] इससे स्पष्ट है कि स्त्रियां तथा कन्यायें बिना किसी पर्दे के उत्सव का आनन्द ले रहीं थीं। इसी प्रकार जरासंघ और भीम के मल्लयुद्ध को देखने के लिये स्त्रियां एकत्रित हो गयी थीं।[८]

स्त्रियां अपने पतियों के साथ वनों में तथा आश्रमों में जाती थीं।[९] कभी-कभी वे एकाकी भी तपस्या के लिये वन में जाती थीं।[१०] शिकार के समय भी स्त्रियां साथ में जाती थीं।[११] वे सभाओं में भी भाग लेती थी। सभा से उठकर जाते हुए दुर्योधन को समझाने के लिये गान्धारी को सभा में बुलाया गया था।[१२] राज्याभिषेक में भी स्त्रियां सम्मिलित होती थीं।[१३]

- -

१- महा० विराट प० ६८। २६-२७ , विराट प० ६८।५१
२- वही उद्योग प० ८६। १६-१७ , उद्योगप० ८६।७ , शा०प० ३८।३-४
३- महा० आदिप० ६६।११-१२
४- वही विराट प० ६।३-४
५- वही विराटप० ६।६-७ , वनप० ६५।४८-४६ चेदिराजमाता ने सैरन्ध्री वेश में बालकों से घिरी हुई दमयन्ती को देखा था।
६- महा० आदिप० २१८।६-७
७- वही आदिप० २१८।१४
८- वही सभाप० २३।२२
६- वही आदिप० ११३।६-७ कुन्ती और माद्री पाण्डु के साथ वन में गयी थीं। आदिप० ११६। २-१४।

स्त्रियां समय-समय पर मनोरंजनार्थ क्रीड़ा करने के लिये जाती थीं और आमोद-प्रमोद करती थीं। यमुनातट पर बिहार के लिये श्रीकृष्ण व अर्जुन के साथ उनको अन्त:पुर की स्त्रियां भी गयीं थीं। उन स्त्रियों ने वन में, जल में और घरों में यथोचित रीति से क्रीड़ा किया। नाचते गाते और हंसते हुए उन्होंने आनन्दोत्सव मनाया।[१] माद्री की मृत यात्रा[२], शर्याति की वन यात्रा[३] सावित्री[४] और माधवी[५] की स्वयंवर यात्रा पाण्डवों से मिलने कृष्ण के साथ सत्यभामा की वन यात्रा[६] पाण्डवों की स्त्रियों का सहयानों से कुरुक्षेत्र तपोवन यात्रा[७] अरुन्धती[८] द्रौपदी[९] की पतियों के साथ तीर्थयात्रा आदि सब प्रकार की यात्राओं में राजकुल की नारियां तथा यथासम्भव नगर की स्त्रियां अपने कुटुम्बीजनों के साथ रथ, छकड़े शिबिकाओं आदि यानों से अथवा पैदल भी गयीं थीं। दुर्योधन की घोष यात्रा में अन्त:पुर की सभी स्त्रियां तथा समस्त पुरवासियों की स्त्रियां भी सम्मिलित हुई थीं।[१०] गहनों और कपड़ों से सजी हुई गोपकन्याओं ने उन सबका स्वागत किया था।[११]

रानियों द्वारा घर में समागत ऋषि मुनियों का आतिथ्य सत्कार बड़े प्रेम से किया जाता था। राजकुमारी ओघवती ने अपने पति की अनुपस्थिति में

- -

१- महा० आदिप० २२१। १८-२६, मौसलप० ३।७

२- वही आदिप० १२६। ८-६, २४, २८

३- वही वनप० १२२। ५-६

४- वही वनप० २६३। ३८-४१

५- वही उद्योग प० १२०। २-४

६- वही वनप० २३३। १-२, २३५। २-१८

७- वही आश्रमवासिक २२।२४-२५, २३।१२

८- वही अनु० प० ६३।२१

६- वही वनप० ११८।१६

१०- वही वनप० २३६।२४, २३६।२५

११- वही वनप० २४०। ८-६ ।

ब्राह्मण अतिथि का उसकी इच्छा के अनुरूप अपना शरीर दान देकर भी स्वागत किया था जो कि किसी पर्दाग्रस्त परिवार में सम्भव नहीं है[१], जिसको हम आज के आधुनिक समाज में भी अनैतिक मानते हैं। दुख के समय स्त्रियां सारे बन्धनों को तोड़ देती थीं[२]। शर शय्या पर पड़े भीष्म पितामह के ऊपर कन्याओं ने चन्दन, चूर्ण और लाजा आदि सब प्रकार की शुभ सामग्री बिखेरी थी[३]। युद्धभूमि में उनका दर्शन करने के लिये स्त्रियां भी गयीं थीं[४]। तीर्थयात्रा में पुरुषों के साथ स्त्रियां भी जाती थीं[५]। नगर में विचरण करती हुई, अविवाहित कुमारी को देखकर अर्जुन के मन में उसको प्राप्त करने की इच्छा जागृत हुई थी[६]। वन में विचरण करती हुई ही हिडिम्बा पाण्डुपुत्रों के पास आयी थीं और भीम के प्रति आसक्त हो जाने के कारण कुन्ती से भीम के साथ विवाह का आग्रह किया था[७]। जयद्रथ तथा उसके साथियों ने वन में अपने आश्रम पर खड़ी हुई द्रौपदी को दूर से ही देखा था[८]। जयद्रथ और कौटिकास्य से द्रौपदी का वार्तालाप यह सिद्ध करता है कि वह वन में किसी प्रकार का पर्दा नहीं करती थी[९]। इसी प्रकार द्यूत के समय दूत प्रातिकामी का द्रौपदी के पास जाना[१०] तथा द्रौपदी को भरी सभा में लाया

१- महा० अनु०प० २।४९-६६। अनु० ५२।२२-३९, ५३ अ० राजा कुशिक और उनकी रानी ने च्यवन मुनि की सेवा की थी। अनु०प० १५९।२७-३५ कृष्ण ने रुक्मिणी सहित दुर्वासा मुनि की सेवा किया था, रुक्मिणी ने दुर्वासा के रथ को सड़कों पर खींचा था।

२- महा० कर्णप० ४।३-५, मौसलप० ४।११, शल्यप० २९।६५, स्त्रीप० १६।१०-१२

३- महा० भीष्म प० १२१।३

४- महा० भीष्मप० १२१।४

५- वही मौसलप० ३।७-१० अन्धक और वृष्णि वंश की स्त्रियां अपने पतियों के साथ गयी थीं।

६- महा० आदिप० २१४। १६-२०

७- वही आदिप० १५३।५, १५४।७

८- वही वनप० २६४।८, २६४।१०

९- वही वनप० २६५-२६६, २६७।१-१३। पी०सी० राय ने यहां यह अनुवाद किया है कि - उसने यथोचित पर्दा कर रखा था, परन्तु वास्तव में यहां तात्पर्य यह है कि द्रौपदी ने उत्तरीय वस्त्रधारण कर रखा था, जो कि उस समय अस्तव्यस्त पड़ा था। कौटिकास्य के पूछने पर द्रौपदी ने अपनी अस्त-व्यस्त पड़ी रेशमी साड़ी को ठीककर उसके प्रश्नों का उत्तर दिया था। वनप० २६६।१

जाना जब कि वह रजस्वला थी[1] तथा पाण्डवों के साथ द्रौपदी का वन में निवास यह सिद्धकरता है कि इस काल में क्षत्रिय स्त्रियों के लिये पर्दे का निर्बन्ध न था ।

मृग यात्रा में प्राय: पुरुष ही जाया करते थे , किन्तु किरात वेशधारी शंकर स्त्रीगणों से घिरे हुए मृगया खेल रहे थे । अत: किरातादि वन्य जातियों में स्त्रियां मृगया इत्यादि सहयोग देती रही होंगी ।[2] स्त्रियां न केवल पुरुषों के साथ वरन् एकाकी भी विहार करती थीं । देवयानी और शर्मिष्ठा एकाकी ही अपनी सखियों के साथ वनविहार[3] और जल विहार[4] के लिये जाया करती थी । वहां उनका किसी पुरुष से परिचय होना तथा वार्तालाप पर कोई प्रतिबन्ध न था ।[5]

रणभूमि में यद्यपि स्त्रियां नहीं जाती थीं[6] , फिर भी नरकासुर के वध के समय श्रीकृष्ण " सत्यभामा सहायवान् " थे । युद्धभूमि में उपस्थित होकर स्त्रियों ने वीरों को प्रोत्साहन देने तथा शम स्थापन के लिये प्रयास किया था ।[7] स्वयंवर सभा में द्रौपदी को जीतने के पश्चात् कुन्ती के द्वारा द्रौपदी के साथ जो व्यवहार किया गया था , वह किसी पर्दाग्रस्त परिवार में सम्भव नहीं है ।[8] कुण्डल लेने के लिये उत्तंक का पौष्य के अन्त:पुर में जाना तथा रानी द्वारा उन्हें

- -

१- महा० सभापर्व० ६७। ३४-३६

२- महा० वनप० ३९।४-५ , १७-१८

३- महा० आदिप० ८१।१

४- वही आदिप० ७८।४

५- वही आदिप० ७८। १६-१६ , ८१।६-२२ , आदिप० ८।१७

६- वही सभाप० ३८। पृ० ८०८

७- वही उद्योग प० १८०। १६-१७ , उद्योगप० १७८।८६-८६ , ६२ , १८५।२७-२८ महा० आश्वमेधिक ७६।८-१३ अम्बा , गंगा , उलूपी ने इस कार्य का सम्पादन किया था । दु:शला और शकुनि पत्नी ने युद्धभूमि में जाकर शम का प्रयत्न किया था - आश्वमेधिक ७८। २२-२४ , आश्वमेधिक- ८४।१६-२० ।

८- महा० आदिप० १६१। ४-१० द्रौपदी के लिये अलग कोई व्यवस्था नहीं थी ।

कुण्डल का समर्पण यह सिद्ध करता है कि श्रेष्ठ लोग अन्त:पुर में आ जा सकते थे।[१]

तपोवन और आश्रमों में सावित्री[२] और द्रौपदी[३] आदि स्त्रियां ऋषियों के बीच में बैठती थीं। ऋषि समाजों में एकाकी भी नारियों का आदर सत्कार होता था।[४] यज्ञों में यजमान की पत्नी का सहयोग अनिवार्य होता था।[५] इन यज्ञों में पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी आमन्त्रित किया जाता था। परिवार की स्त्रियां इन यज्ञों में सक्रिय भाग लेती थीं। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में स्त्री अतिथियों का स्वागत करने के लिये कुन्ती अपनी स्नुषाओं के साथ नियुक्त थीं।[६] अश्वमेघ यज्ञ में निमन्त्रित स्त्रियों के लिये विशेष प्रबन्ध किया जाता था।[७] उलूपी और चित्रांगदा अर्जुन के निमन्त्रण पर अश्वमेघ यज्ञोत्सव[८] में भाग लेने हस्तिनापुर आयीं थीं, वहां उनका विशेष सत्कार हुआ था।[९] विवाह में वरपक्ष की नारियां भी वरयात्रा में सम्मिलित होती थीं और वधू पक्ष की नारियों द्वारा उनका सत्कार किया जाता था।[१०] स्वयंवर के समय कन्यायें सबकी दृष्टि का पात्र बनती थीं।[११]

१- महा० आदिप० ३।१०४-१११

२- वही वनप० २९८।२१, २६, ३३-३४.

३- वही वनप० ४६।१०

४- महा० आश्रमवासिक २५।१-३, महा० उद्योगप० १७५।३६-४५, वनप० ६४। ६८-६९, अम्बा और दमयन्ती अकेले आश्रमों पर पहुंची थीं।

५- महा० अनु० ५२।१६

६- महा० सभाप० ६६।४ द्रौपदी स्वयं बिना खाये पिये अतिथियों के स्वागत में तत्पर रहती थीं।

७- महा० आश्वमेधिक ८७।२६-२८

८- वही आश्वमेधिक ८१।२३-२४

९- वही आश्वमेधिक ८८।३-५

१०- वही आदिप० १९३।३,९, विराट प० ७२।२२, ३०-३२ द्रौपदी के विवाह में कुन्ती का और उत्तरा के विवाह में द्रौपदी व सुभद्रा का स्वागत हुआ था।

११- महा० आदिप० १८४। २९-३७ ।

अतिथि सत्कार के माध्यम से भी स्त्रियों को सामाजिक जीवन में भाग लेने का अवसर प्राप्त होता था, क्योंकि अतिथि को देवता माना जाता था, अत: कोई भी बिना आतिथ्य के घर से लौट जाये यह गृहस्थ धर्म के विरुद्ध था।[1] प्राय: पत्नी को अपने पति के साथ[2] तथा कन्याओं को अपने पिता की आज्ञा[3] से यथायोग्य आतिथ्य सत्कार करना पड़ता था। आश्रमों में रहने वाली स्त्रियां पति की अनुपस्थिति में एकाकी भी समागत अतिथि को आसन, पाद्य, अर्घ्य तथा भोजनादि द्वारा स्वागत करती थीं, जैसा कि सीता[4] और द्रौपदी[5] ने किया था। इसी प्रकार शकुन्तला[6], ओघवती[7], शाण्डिली[8], नागपत्नी[9], पुलोमा[10], कुन्ती[11], प्रभावती[12], शाकम्भरी[13] आदि ने बड़ी तत्परता के साथ अतिथियों का स्वागत किया था। यद्यपि कभी-कभी इस अवसर का दुर्जन अनुचित लाभ उठाते थे और नारियों को प्रवंचना प्राप्त होती थी। सीता[14] और द्रौपदी[15] को दुर्जनों के हाथों अपहरण का शिकार होना पड़ा था। परन्तु ऐसी विषम स्थितियों में भी नारियों ने सावधान रहकर आत्मरक्षार्थ प्रयास किये

१- महा० वनप० २।५३-५६, ५८, ६१-६२ शा०प० १४६।६-२१, शा०प० १७४।२

२- वही अनु०प० ५२-५३ अ०, अनु०प० १५६।२७-३५।

३- वही आदिप० ११०।४, वनप० ३०४।१-११, शा०प० ३०।१४-१६

४- रामा० अरण्यकाण्ड ४६।३४-३७

५- महा० वनप० २६७।१२ $\frac{१}{२}$

६- महा० आदिप० ७१।४-६

७- वही अनु०प० २।४१-५७

८- वही उद्योग प० ११३।२-३

९- वही शा०प० ३५७।५, ३५८।२-९

१०- वही आदिप० ६।१७

११- वही आदिप० १६१।४, आश्रमवा० २६।३

१२- वही वनप० २८२।४१-४२

१३- वही वनप० ८४।१५

१४- रामा० अरण्यका० ४६।१६-२०

थे । द्रौपदी ने जयद्रथ के दूषित विचार को जानकर उसे उस समय तक बातों में उलझाये रखना चाहा था , जब तक कि उसके पति वन से लौटकर न आ जायें,[1] परन्तु जब उसके सारे प्रयास निष्फल होने लगे और जयद्रथ ने दुस्साहस कर पकड़ना चाहा तब उसने जोरों का धक्का देकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया ।[2] उसके द्वारा स्पर्श टालने के भय से वह स्वयं ही रथ पर सवार हो गयी , क्योंकि उसे विश्वास था कि आते ही उसके पति उसको मुक्त करा लेंगे ।[3] रावण द्वारा अपहृत सीता ने भी अपना धैर्य नहीं खोया था , वरन् उन्होंने सावधानीपूर्वक उन स्थानों पर अपने वस्त्र , आभूषण आदि गिरा दिये थे जहां कि लोगों के आने जाने की सम्भावना थी और इस उपाय से राम को उनके अन्वेषण में सहायता मिली थी ।[4]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि स्त्रियों को सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । वे सामाजिक कार्यों में सक्रिय भाग लेती थी तथा सामाजिक कार्यों में भाग लेते समय वे किसी प्रकार का अवगुंठन नहीं करती थीं ।

निर्बन्ध -

विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त होते हुए भी स्त्रियों पर अनेक प्रकार के निर्बन्ध थे , जिससे उनकी सामाजिक स्वतंत्रता अत्यन्त सीमित हो जाती थी । महाकाव्य में कुछ ऐसे उद्धरण भी प्राप्त होते हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि राजकुल की नारियां प्राय: जनसामान्य के मध्य में नहीं आती थीं । विशेष अवसरों पर ही लोग उनको देख सकते थे । द्यूत सभा में बलपूर्वक लायी गयी द्रौपदी विलाप करते हुए कहती है - " पहले राजभवन में रहते हुए जिसे वायु तथा

- -

१- [redacted]० वनप० २६७।२०

२- वही वनप० २६८।२४

३- वही वनप० २६८।२०-२३

४- रामा० अरण्यका० ५४।१-४ ।

सूर्य भी नहीं देख पाते थे , वही मैं आज इस सभा के भीतर महान जनसमुदाय में आकर सबके नेत्रों का लक्ष्य बन गयी हूं[1]। राजधर्म तथा प्राचीन सनातन धर्म के यह विरुद्ध था कि किसी शुभकर्मपरायणा सती साध्वी स्त्री को सभा में लाया जाय[2]। वन के लिये प्रस्थान करते समय नगरनिवासी भी यही मन्तव्य व्यक्त करते हैं कि - " जिसे आज से पहले आकाशचारी प्राणी भी नहीं देख पाते थे , उसी द्रौपदी को आज सड़क पर चलने वाले साधारण लोग देख रहे हैं[3]। इसी प्रकार धृतराष्ट्र के वन में प्रस्थान करते समय भी रनिवास की समस्त स्त्रियां शोक से व्याकुल होकर खुली सड़क पर आ गयी थीं , जिन्होंने कि कभी बाहर आकर सूर्य और चन्द्रमा को भी नहीं देखा था । अन्यत्र भी इसी प्रकार का वर्णन आया है[4]। उपर्युक्त उद्धृत उदाहरणों के आधार पर मीमांसाकार सी० वी० वैद्य ने यह मत व्यक्त किया है कि - " महाभारत के समय अर्थात ३०० वर्ष के लगभग राजाओं में पर्दे की यह रीति पूर्णतया प्रचलित थी[5]। परन्तु ऊपर जो उद्धरण दिये गये हैं कि स्त्रियों को सूर्य और चन्द्रमा भी नहीं देख पाते थे , ये कवि की अतिशयोक्तिपूर्ण काव्यमय अभिव्यक्ति ही अधिक प्रतीत होती है , यथार्थता कम । इन उद्धरणों से मात्र इतना ही सिद्ध होता है कि राजकुल की नारियां सामान्यत: पुरुषों के मध्य नहीं आती थीं , वरन् विशेष अवसरों पर ही वे अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप पुरुषों के मध्य आती थीं , लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे अवगुण्ठन करती

- -

१- महा० सभाप० ६९।५ यां न वायुर्न चादित्यो दृष्टवन्तौ पुरा गृहे ।
साऽहमद्य सभा मध्ये दृश्यास्मि जनसंसदि ।।

२- महा० सभाप० ६९।८-९ , मिलाइये आप० ध० सू० २।६।१३।७ ।

३- महा० सभाप० ७९।३१ , पृ० ९३३ , सभाप० ६९।५
या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि ।
तामद्य कृष्णां पश्यन्ति राजमार्गे गता जना: ।

४- महा० आश्रमवा० १५।१३ , शल्य प० २९।७४ , ७५।८२ , शल्यप० १९।६३, स्त्रीप० १०।८ ।

५- सी० वी० वैद्य - महाभारतमीमांसा , पृ० २४३ ।

हों । काणो ने भी इसी प्रकार का मत अभिव्यक्त किया है।[1] अल्टेकर ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त करते हुए लिखा है - " अन्तिम पर्वों के कुछ उद्धरणों को छोड़कर महाकाव्य पर्दा प्रथा की जानकारी को नहीं प्रदर्शित करता । यह सीता और धृतराष्ट्र के वनप्रस्थान की घटना को अत्यधिक करुणा जनक बनाने की इच्छा से संभवतः बाद में जोड़े गये हैं।[2]

संरक्षण -

स्त्रियों को पर्याप्त सामाजिक स्वतंत्रता होते हुए भी आर्यों का दृढ़ विश्वास था कि स्त्रियां जीवनपर्यन्त संरक्षण में रहने योग्य हैं । वे कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकती । बाल्यावस्था में वे पिता के , युवावस्था में पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहने योग्य हैं।[3] स्त्रियों की शारीरिक दुर्बलता को देखते हुए ऐसा समझा जाता था कि वे स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं । इस उक्ति का तात्पर्य यह नहीं है कि स्त्रियों को घर की चहारदिवारी के अन्दर बन्द कर रखा जाये , अथवा स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक अयोग्यतायें हैं जैसा कि कालान्तर में इस उक्ति की व्याख्या की गयी । इसका तात्पर्य मात्र इतना है कि स्त्रियों को सदैव संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिये , क्योंकि समाज में उस समय भी ऐसे दुर्जन व्यक्ति थे जिनसे कि स्त्रियों को खतरा उत्पन्न

- -

१- काणो - धर्मशास्त्र का इतिहास , प्रथम भाग , पृ० ३३६

२- अल्टेकर - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन ,पृ० १६६

३- गौतम १८।१ , वशिष्ठ ध०सू० ५।१ एवं ३ , मनु ५।१४६-१४८ , ६।२३ , बौधायन ध० सू० २।२।५०-५२ , नारददायभाग ३१ ।
रामा० अयो० का० ६१।६४ गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः ।
तृतीयो ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते ।।
महा० ४६।१४ पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्राश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।।

हो सकता था । उस काल में भी नारी पर अत्याचार करने वाले कीचक[१], सीता और द्रौपदी का अपहरण करने वाले रावण[२] और जयद्रथ[३] तथा शुक्राचार्य की पुत्री अरजा के साथ बलात्कार करने वाले दण्ड[४] जैसे राजा विद्यमान थे । इसलिये कहा गया था कि अगर स्त्री का संरक्षण करने वाला कोई न हो तो राजा उसकी रक्षा करे[५] । रामायण में अराजक स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि - " राजारहित जनपद में सोने के आभूषणों से विभूषित कुमारियां एक साथ मिलकर सन्ध्या के समय उद्यानों में क्रीड़ा करने के लिये नहीं जाती हैं[६] । इस स्थिति में जो दास नहीं है, उसे दास बना लिया जाता है, अतः राजा आवश्यक है[७] । यदि राजा राज्य की रक्षा करता है तो समस्त आभूषणों से विभूषित सुन्दरी स्त्रियां पुरुषों के साथ लिये बिना भी निर्भय होकर घूमती हैं[८] । महाकाव्य में स्त्रियों को प्राप्त सामाजिक स्वतंत्रता के विषय में हापकिन्स ने लिखा है कि - " यह कहा जाता है कि स्त्रियों का आश्रयत्व नयी चीज है, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं है कि स्त्रियों की सामाजिक स्वतंत्रता पर पूर्वकाल में व्यवहार में जो प्रतिबन्ध थे, ऐसी कोई चीज नहीं मिलती, जिससे यह निश्चय किया जा सके कि वैदिक काल की स्वतंत्रता महाकाव्य के समय में बनी रही सिवाय प्राचीन रीतिरिवाज के रूप में[९] । नारियों को कुदृष्टि से बचाने के लिये स्त्रियों के साथ चलते समय पुरुष आगे की ओर चलते थे और स्त्रियां उनका

१- महा० विराट प० १६।७-१०

२- रामा० अरण्यका० ४६।२०-२२, महा० वनप० २७८।४२-४३

३- महा० विराट प० २६८।२५

४- रामा० उ० का० ८०।१६

५- महा० अनु० प० ६१।३१, आश्रमवा० २६।८

६- रामा० अयो० का० ६७।१७

७- महा० शा० प० ६७।१५

८- वही शा० प० ६८।३२

९- हापकिन्स - दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्शियेंट इंडिया, पृ० ३६४ ।

अनुसरण करती थीं । परित्यक्ता सीता को अपने आश्रम की ओर ले जाते समय वाल्मीकि आगे-आगे चल रहे थे ।[1] रक्षा के उद्देश्य से ही रथों , नावों एवं अन्य वाहनों पर चढ़ते समय उन्हें प्रथम स्थान दिया जाता था ।[2] वन में राम तथा लक्ष्मण सीता की रक्षा के लिये सदैव सजग रहते थे , क्योंकि स्त्रियों की रक्षा करना मनुष्य का सबसे बड़ा कर्तव्य था ।[3]

रक्षा के उद्देश्य से उन पर अन्य प्रतिबन्ध भी लगाये गये थे । कुलीन स्त्रियों के लिये अधिक समय तक बाग बगीचे में घूमना , नित्य दूसरों के घर जाना , बुरी स्त्रियों से मैत्री करना आदि अनुचित समझा जाता था ।[4] इसी प्रकार यद्यपि अतिथि सत्कार गृहणियों का महत्वपूर्ण कर्तव्य था परन्तु उसमें भी राजकुल की नारियों को मर्यादा का पालन करना आवश्यक समझा जाता था । परपुरुष से वार्तालाप में भी पर्याप्त शिष्टता का ध्यान रखा जाता था । वन में कोटिकास्य के द्वारा द्रौपदी का परिचय पूछे जाने पर[5] द्रौपदी असमंजस में पड़ जाती है कि[6] वह पाण्डवों की अनुपस्थिति में परपुरुष से कैसे वार्तालाप करे और अन्त में भली-भांति सोचने विचारने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि यद्यपि मुझ जैसी पतिपरायणा स्त्री को परपुरुष से वार्तालाप नहीं करना चाहिये परन्तु अकेली होने के कारण तथा पहचानने के कारण वह कोटिकास्य को अपना परिचय देने के लिये प्रस्तुत होती है ।[7]

- -

१- रामा० उ० का० ४६।१८ तं प्रयान्तं मुनिं सीता प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात् ।

२- वही अयो० का० ४०।१३ , ५२।७५

३- वही अयो० का० ५२। ६४-६६

४- महा० वन प० २३३। २७-२८ , २३४।११

५- वही वनप० २६५।१४

६- वही वनप० २६६।३

७- वही वनप० २६६। २ , ४ ।

(खण्ड ख)

निम्न वर्ग की स्त्रियों की समाज में स्थिति एवं स्वतंत्रतायें -

इस वर्ग के अन्तर्गत हम सेवावृत्ति करने वाली दासियों, रूपाजीवी वेश्यायें तथा अन्य व्यवसाय करने वाली स्त्रियों को ले सकते हैं। इस वर्ग की स्त्रियों को वह सामाजिक स्थिति प्राप्त न थी जो कि उच्च वर्ग की स्त्रियों को प्राप्त थी।

दासी वर्ग -

प्राय: राजाओं के यहां तथा सम्पन्न घरानों में परिचर्या के लिये दासियां होती थीं। परिचर्यावृत्ति शूद्रों के लिये ही विहित थी[1]। अत: ये दासियां प्राय: शूद्रा होती थीं। राजा बलि की पत्नी सुदेष्णा तथा अरुन्धती की धात्री गण्डा शूद्रा ही थी[2]। नियोग के लिये भेजी गयी दासियों और धात्रियों के विदुर जैसे पुत्र शूद्रा स्त्री और उच्च वर्ण के पुरुष की सन्तान होने के कारण "पाराशव" कहलाते थे[3]। कभी-कभी वैश्य स्त्रियां भी दासियों के रूप में नियुक्त की जाती थीं। धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सु ऐसी ही एक वैश्य जातीय स्त्री से उत्पन्न हुआ था[4]। ब्राह्मणों से सेवा लेना अनुचित समझा जाता था तथा क्षत्रियों के लिये भी परिचर्यावृत्ति उचित नहीं मानी जाती थी; किन्तु आपत्तिकाल में कभी-कभी क्षत्रिय स्त्रियों को भी इस कार्य को करना पड़ा था[5]। समाज में, कुछ ऐसे

१- महा० अनु० प० १४१।२८ शूद्राश्च पादत: सृष्टास्तस्मात् परिचारका: ।
वही अनु० प० १४१।५८ शूद्र धर्म: परो नित्यं शुश्रूषा च द्विजातिषु ।

२- महा० आदिप० १०४। ४६-४७, अनु० प० ६३। २१-२३ ।

३- वही आदिप० १०८।२५, भीष्म ने विदुर का विवाह भी पारशवी कन्या (शूद्र जातीय स्त्री के गर्भ से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न) से किया था ।
आदिप० ११३। १२-१३ ।

४- महा० आदिप० ११४।४२-४३, युयुत्सु "करण" कहे जाते थे ।

५- वही वनप० ६५।५५, विराटप० ६।३४-३६ दमयन्ती ने चेदिराजमाता के यहां तथा द्रौपदी ने विराट के यहां सेविका (सैरन्ध्री) का कार्य किया

कुत्सित लोग थे जो कुलस्त्रियों को दासी बनाने में आनन्द लेते थे[१]। कद्रू ने विनता को[२] और देवयानी ने शर्मिष्ठा[३] को दासी बनाया था। राजाओं के द्वारा दहेज में[४], श्राद्ध, यज्ञों[५] में उपहार[६] स्वरूप दासी स्त्रियां प्रदान की जाती थीं।

- -

१- महा० सभा ६६।१, ६७।३४, वनप० ७८।१३-१५, ६१।३ दयोंधन द्रौपदी को तथा पुष्कर दमयन्ती को दासी बनाना चाहता था।

२- महा० आदिप० २२।१-३

३- वही आदिप० ८०।१६, २२

४- महा० आदिप० २२१।४६-५०, विराटप० ७२।२६, आदिप० १६२।१६।

५- श्राद्ध में दिया गया महा० आश्रमवा० १४।३-४, ३६।२० महाप्रस्थानिक १।१४, ६।६, १२, १३। यज्ञ में ब्राह्मणों को दक्षिणा स्वरूप कन्यायें प्रदान की जाती थीं महा० सभाप० ३३।५२, द्रोणप० ६५।६, शा०प० २६।६५, २६।३२, १३३, द्रोणप० १।२, ५७।५-७। ब्राह्मणों और ऋषियों को उपहार स्वरूप शा०प० २६।१३३, वनप० १८५।३४, अनु०प० ६३।३६, वनप० ३१५।२, ६। ब्राह्मणों की सेवा में दासियां रहती थीं - महा० वनप० २३३।४३, विराटप० १८।२१, अनु०प० १०२।११, अनु०प० १०३।१०-१२। रामा० बालका० १४।३५ दशरथ ने यज्ञ पुरोहितों को अपनी पत्नियों को भेंट स्वरूप प्रदान कर दिया था परन्तु बाद में उन्हें धन देकर वापस ले लिया था ब्राह्मणों और ऋषियों को उपहार स्वरूप प्रदान की जाती थीं - शा०प० २६।१३३, वनप० १८५।३४, अनु०प० ६३।३६, वनप० ३१५। २, ६। जो राजा ब्राह्मणों को दासियां इत्यादि दान नहीं देते वे पतित समझे जाते हैं - महा०शा०प० १२।३०, रामा० अयो०का० ७७।३, अयो०का० ३२।१५, १६।

६- महा० सभा प० ५१।८, ६।५२, ११।२६, आश्वमेधिक ८।५, १८।८, ३२ रामा० युद्धका० १२५।४४, उ०का० ३६।११।

दासियों की स्वतंत्रता -

दासी स्त्रियों की स्वतन्त्रता अत्यन्त सीमित थी । वे अपने स्वामियों की व्यक्तिगत सम्पत्ति समझी जाती थीं । यही कारण है कि उन्हें अपने स्वामी की उचित तथा अनुचित इच्छाओं का पालन करना पड़ता था ।[१] राजाओं द्वारा द्यूत में इनको भी दांव पर लगाया जाता था[२]। युद्ध में पराजित होने पर शत्रु द्वारा हस्तगत धन में स्त्रियां भी सम्मिलित रहती थीं । शल्यवध के पश्चात् कौरव शिविरों से पाण्डवों ने कोश , रत्न , असंख्य दासियां आदि हस्तगत कर लिया था ।[३] विराट पत्नी ने कीचक के दुर्भाव को जानते हुए भी सैरन्ध्री द्रौपदी को कामासक्त कीचक के पास भेजा था ।[४]

ये दासियां विशिष्ट जनों और विद्वानों के लिये भोग विलास के लिये होती थीं ।[५] इस कार्य में कुछ दासियां इतनी निपुण होती थीं कि वे अपनी व्यक्तिगत सेवा से अपने स्वामियों को आकृष्ट कर लेती थीं , जैसा कि वैश्यादासी युयुत्सु की माता ने धृतराष्ट्र को आकृष्ट कर लिया था[६]। ऋग्वैदिक परम्परानुसार

- -

१- महा० आदिप० १०५।२३-२४, विदुर की माता ने व्यास के साथ नियोग किया था । महा० आदिप० १०४।४५-४६ बलि राजा की पत्नी सुदेष्णा ने दीर्घतमा के पास अपनी दासी को भेज दिया था ।

२- महा० सभाप० ६१।८-१०, विराटप० ६८।३२, वनप० ७८।४-६ । युधिष्ठिर और विराट ने पण्य में लगाया था ।

३- महा० शल्यप० ६१।३२

४- वही विराट प० १५।१-३, ८-१०

५- महा० शा० प० ३२५।३४, द्रोणप० ७२।४०, ७८।७, रामा०अयो०का० ६५।७-६ ४२।१५, द्रोणप० १२८।१०, सभाप० ३३।२, ६१।५३-५४, रामा०युद्धका० १२१।३, कि० का० १८।१० , महा० आदिप० १६६।१६ , आदिप० २२१। ४६-५० , सभाप० ६१।८-१० , उद्योगप० ८६।८ ।

६- महा० आदिप० ११५।४२, भगवतशरण उपाध्याय -" वीमेन इन ऋग्वेद "पृ० ११० उपाध्याय के अनुसार दासियों की स्थिति वधू के समान होती थी ।

अपने स्वामी से एक पुरुष सन्तान उत्पन्न करने वाली दासी की स्थिति उच्च हो जाती थी, सन्तान उत्पन्न होने के पश्चात उसका स्वामी उसका पति माना जाता था।[१] महाभारत में विदुर की माता व्यास के द्वारा मुक्त कर दी गयी, जब कि उसने अपने स्वामी के लिये (नियोग द्वारा) एक पुरुष सन्तान उत्पन्न कर दी। वह एक भुजिष्या थी, बाद में धर्मशास्त्रकारों ने जिसके लिये "रखैलो" शब्द का प्रयोग किया है।[२] भुजिष्या के पुत्र यथा - विदुर और युयुत्सु यद्यपि राज्य के अधिकारी नहीं हुए, परन्तु ये लोग परिवार के सदस्य माने जाते थे।[३] सम्भवत: केवल भुजिष्या दासी ही अपने स्वामी के लिये पुत्र उत्पन्न कर सकती थी, क्योंकि दूसरे उदाहरण में जहां कि राजा की दासी ने नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न किया, उन पुत्रों पर वास्तविक पिता ही उन पर अधिकार का आग्रह करता है।[४] शर्मिष्ठा के वक्तव्य यह स्पष्ट करते हैं कि जो दासियां लड़की को दहेज में दी जाती थीं, उनका सम्बन्ध उसके पति से हो सकता था।[५] महाकाव्य और मनु के अनुसार चूंकि स्त्री दासियां पत्नी-सम्पत्ति होती थीं, इसलिये वे

- -

१- भगवतशरण उपाध्याय - वीमेन इन ऋग्वेद, पृ० ११० ।

२- महा० आदि प० १०६।२७ उत्तिष्ठन्नब्रवीदेनामभुजिष्या भविष्यसि, तुलना कीजिये - कौ० अर्थशास्त्र ३।१३ । महा० आदिप० ८२।२५, २७ आदिप० ८३।२०-२२, याज्ञ० स्मृति २।२९०, मनु ७।३६३ ।

३- महा० आश्रमवा० ३।४७ युयुत्सु को धृतराष्ट्र का "औरस" पुत्र कहा गया है। महा० सभाप० ७८।५-६ पाण्डव जब वन को गये तो कुन्ती विदुर के घर में ही रही।

४- महा० आदिप० १०४।४८-५० यहां "धात्रेयिका" शब्द का प्रयोग है।

५- महा० आदिप० ८२।२३

देवयान्या भुजिस्यास्मि वश्या च तव भार्गवी ।
सा चाहं त्वया राजन् भजनीये भजस्व माम् ।।

स्वभावत: उसकी पति को सम्पत्ति होती थी ।[1] सुदेष्णा इस बात से भय खाती थी कि द्रौपदी राजा को आकृष्ट न कर ले ।[2] दासियों की सामाजिक स्थिति अत्यन्त निम्न होती थीं और सम्पत्ति की तरह इनका प्रयोग होता था , अत: इनके लिये नैतिकता के बन्धन शिथिल होना स्वाभाविक था । एक से अधिक बार पति चुनना इनके लिये निन्दनीय नहीं था ।[3] यद्यपि बाद के शास्त्रों में ब्राह्मण और शूद्रा का सम्बन्ध निन्दनीय माना गया , लेकिन यह जानते हुए भी : नियोग के लिये : कि ये दासियां शूद्रा हैं ब्राह्मण लोग सम्बन्ध स्थापित करने में नहीं हिचकते थे ।[4] दासीत्व में अनेक प्रकार की निम्न स्थितियों का सामना करना पड़ता था ।[5] ये दासियां प्राय: रूपयौवन से सम्पन्न चौसठ कलाओं में निपुण होती थीं ।[6]

दासियों के प्रकार -

दासियों को प्राय: धात्री , परिचारिका , भुजिष्या , प्रेष्या इत्यादि विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता था । संभवत: ये संबोधन उनके कार्य के अनुसार रहे होंगे , परन्तु इस प्रकार का कोई स्पष्ट विभाजन महाकाव्य में परिलक्षित नहीं होता । कभी-कभी ये दासियां एक साथ अनेकों कार्य का सम्पादन करती थीं ।

१- महा० आदिप० ८२।२२ , उद्योगप० ३३।६४ , सभाप० ७१।१, मनु ८।४१६ कुछ इसी प्रकार का है ।

त्रय एवाधना राजन् भार्या दासस्तथा सुत: ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्यैते तस्य तद्धनम् ।।

२- महा० विराट प० ६।२२
३- वही सभाप० ७१।३ अन्यं वृणीष्व पतिमाशुभाविनी ।
४- वही अनु० प० ४४। १२-१३
५- वही विराटप० २०। १६-२६
६- महा० आदिप० १६८।१६, २०६।११, उद्योगप० ८६।८, सभाप० ६१।८-१०, आदिप० २२०।४६-५०, विराटप० ७२।२६, वनप० २३३।४६-४६, शा०प० ३२५।३४-३५, रामा० अयो० का० ६५।७-६ , अयो०का० ४२।१५ , युद्ध का० १२५।४४, युद्ध का० १२१।३, महा० उद्योगप० १६२।३१ ।

धात्री -

दासियों में सबसे अधिक आदरणीय तथा सम्माननीय स्थान धात्री को प्राप्त था । माताओं के लिए भी कभी-कभी धात्री शब्द का प्रयोग किया जाता था ।[१] " धात्री " से तात्पर्य पालनपोषण करने वाली समझा जाता था , यही कारण है कि माता के समान ही धात्री को भी पूज्यनीय माना जाता था ।[२]

कन्यायें बड़ी होने पर धात्रियों के ही संरक्षण में रहती थीं , और धात्रियों से लोक व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करती थीं । ये धात्रियां आपत्तिकाल में भी सहायता करती थीं ।[३] कन्यायें गुप्त बातों को भी धात्रियों से कहने में संकोच का अनुभव न करती थीं ।[४] धात्रियों का व्यवसाय सम्भवत: वंशपरम्परा से चलता था क्योंकि वनवास में द्रौपदी के साथ एक धात्रेयिका बाला रहती थी ।[५] इन्हें अपनी स्वामिनियों से अगाध प्रेम होता था , यह द्रौपदी के हरण किये जाने पर शोक से व्यथित धात्रेयिका के उद्गारों से अभिव्यक्त होता है ।[६]

सैरन्ध्री -

परिचारिका का कार्य प्राय: शूद्र स्त्रियां ही करती थीं , परन्तु सैरन्ध्री

- -

१- महा० आदिप० १२४।२६ , " कुन्ती माता अहं धात्री " ।

२- वही अनु० प० १०५।२०

३- महा० वनप० ३०८।३ , ३०८।६-७ कन्या कुन्ती की गर्भावस्था का ज्ञान मात्र उसकी धात्री को ही था ।

४- महा० आदिप० ७८।२४-२५ , उद्योगप० १९१।१४ , १९१।१५-१६ उद्योग प० १९२।२८ , दाशार्ण राजकन्या ने अपने पति शिखण्डी के स्त्री होने की बात अपनी धात्री से ही कही थी । महा० विराट प० ११।११ बृहन्नला के क्लीबत्व की परीक्षा करने वाली स्त्रियां धात्रियां ही रहीं होंगी ।

५- महा० वनप० २६६।६

६- वही वनप० २६६।१७-२१ ।

का कार्य आपत्तिकाल में कुलीन स्त्रियां भी कर लेती थीं।[१] सैरन्ध्री जाति की स्त्रियों की स्थिति अन्य दासियों की स्थिति से कुछ उच्च होती थी। ये शिल्पकर्मों द्वारा अपना जीवन निर्वाह करती थीं, अपने सदाचार से स्वत: सुरक्षित होती थीं, ये भिन्न-भिन्न स्थानों पर सेवा करतीं थीं, इसके बदले में भोजन तथा वस्त्र की आकांक्षा रखती थीं।[२] ये निम्न कोटि की सेवा नहीं करतीथीं।[३] इन पर किसी का बन्धन नहीं होता था और ये इच्छानुसार जहां चाहती थीं चली जाती थी। दमयन्ती ने भी अपना परिचय अन्त:पुर में काम करने वाली सैरन्ध्री के रूप में दिया था।[४] ये आपत्ति का समय बिताने के लिये कुछ शर्तें तयकर निवास करती थीं।[५] इस प्रकार दासियों के लिये प्रेष्या, परिचारिका आदि शब्दों का भी प्रयोग किया जाता था।

दासियों की स्थिति -

महाभारत में दासियों के वेतन के सम्बन्ध में किसी प्रकार का निर्देश नहीं प्राप्त होता। परन्तु महाकाव्य में जिस प्रकार दासियों के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रहने का वर्णन आया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि उनके पालन पोषण का पूर्ण उत्तरदायित्व उनके स्वामियों पर होता था।[६] अपने भृत्यों को सन्तुष्ट रखना तथा उसके भोजनाच्छादन आदि की उचित व्यवस्था करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य समझा जाता था।[७] गृहस्थों को विघसाशी (सबके भोजन -

- -

१- महा० विराटप० ६।१७, वनप० ६५।५५ द्रौपदी व दमयन्ती ने किया था।

२- वही विराटप० ३।१८-१६, विराटप० ६।१८-१६, वनप० ६५।५६, विराटप० ६।२०-२१। ये केशों के शृंगार, उबटन तथा अङ्गराग लगाने व हार गूंथने में विशेष कुशल होती थीं।

३- महा० विराट प० ६।३२।

४- वही वनप० ६५।५५-५६

५- वही वनप० ६५।६७-६८ दमयन्ती ने शर्तें तय की थीं।

६- महा० वनप० २३३। ४६-४७ युधिष्ठिर की एक लाख दासियां राजसी ठाट बाट से रहती थीं।

७- महा० वनप० २।५७ ।

के बाद जो बचे उसका भोजन करना) होने का आदेश था[१]। युधिष्ठिर के एक लाख दासियों के नाम, रूप, भोजन, आच्छादन आदि की समस्त जानकारी द्रौपदी को रहती थी[२]। दास वर्ग कुटुम्ब का अविच्छिन्न अंग होता था, अत: परिवार के प्रत्येक सदस्य से यह आशा की जाती थी कि उनका व्यवहार भृत्यों के प्रति अच्छा होगा। इसकी शिक्षा कन्याओं को बाल्यकाल से ही दी जाती थी। पितृगृह में कुन्ती से सभी भृत्यजन पूर्ण संतुष्ट रहते थे[३]। वन में रहते हुए युधिष्ठिर ने परिवार को जो सन्देश भेजा था, उसमें उन्होंने भृत्यजन तथा दासियों का भी कुशल क्षेम पूछा था[४]।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि आर्य परिवारों में भृत्यजन उपेक्षणीय नहीं होते थे, तथा परिवार के अन्य सदस्यों के समान ही उनके साथ स्नेह का व्यवहार किया जाता था। यथासम्भव उनको संतुष्ट रखने का प्रयास किया जाता था। भृत्यजनों के असन्तोष का आभास हमें महाभारत में नहीं प्राप्त होता।

वेश्यायें -

भारतीय समाज में वेश्याओं का अस्तित्व अत्यन्त प्राचीनकाल से रहा है। ऋग्वेद से भी ऐसा आभास मिलता है कि उस काल में भी कुछ नारियां ऐसी थीं, जो सभी की थीं, जिन्हें वेश्या या गणिका कहा जाता था[५]। ये वेश्यायें, अप्सराओं की प्रतिरूप थीं, इन्द्र के यहां जो कार्य अप्सरायें करती थीं, वही कार्य ये मृत्युलोक में करती थीं। ये लाल वस्त्र लालमालायें और लाल सुनहरी

- -

१- महा० वनप० २।६०

२- वही वनप० २३३।४८, ५२

३- वही वनप० ३०३। १६-२१

४- वही उद्योगप० ३०।३८-३६

५- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग पृ० ३५३, ऋ० १।१६७।४ ।

आभूषण धारण करतीं थीं ।[१] भारतवर्ष में मृत्यु के देवता यम का स्वरूप ऐसा ही चित्रित किया गया है, परन्तु साथ ही लाल रंग जिजीविषा, प्यार और कामुकता का प्रतीक समझा जाता है।[२] सम्भवत: ये वेश्यायें अप्सराओं की वंशज थीं।[३]

भारतीय सभ्यता के इतिहास में रामायण ही संभवत: पहली रचना है, जिसमें वेश्याओं के वर्ग को राजकीय स्वीकृति मिली है, और उनका राजकाज में उपयोग किया गया है।[४] महाभारत में भी वेश्यावृत्ति एक स्थिर संस्था के रूप में प्रचलित पायी जाती है।[५] प्रत्येक शुभ अवसरों पर उनकी उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी। राम के राज्याभिषेक के समय वेश्याओं को यह आदेश दिया गया था कि वे राजमहल की दूसरी ड्योढ़ी में उपस्थित रहें।[६] विशिष्ट जनों के स्वागत में वे जाती थीं।[७] त्रैगर्तों पर विजय प्राप्त कर लौटे हुए विराट की[८] और गोधन अपहरण युद्ध में विजयी उत्तर[९] के लौटने पर अगवानी के लिये गणिकाएं को कन्याओं के साथ भेजा गया था। राजकुमारी उत्तरा को गणिकाओं के साथ भेजने में किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं प्रतीत होता।

१- महा० कर्णप० ६४।२६
२- जे० जे० मेयर - सेक्सुअल लाइफ इन एन्शियेंट इंडिया, पृ० २६५, फुटनोट नं०२
३- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३५४। इसी प्रकार महाभारत में कहा गया है महा० अनु०प० ३०।२ पुंश्चल्या पञ्चचूड्या और इसी को अप्सरा के रूप में भी कहा गया है - ददर्शाप्सरसं ब्राह्मीं पञ्चचूडामनिन्दिताम्। याज्ञ० स्मृ० २।२९० की व्याख्या भी मिताक्षरा ने इसी प्रकार की है।
४- एस० एन० व्यास - रामायण कालीन समाज, पृ० १८५।
५- काणे - धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३५३।
६- रामा० अयो० का० २।१७-१८।
७- वही अयो० का० १४।३६ वेश्याश्चालंकृता: स्त्रिय:। युद्ध का० १२७।३
८- महा० विराट प० ३४।१८
९- महा० विराटप० ६८।२४ ॥

वैश्यायें न केवल सैन्य जीवन[1] का वरन् नागरिक जीवन का भी अभिन्न अङ्ग थी[2]। अयोध्या नगरी श्रेष्ठ गणिकाओं से सुशोभित थी[3]। राजा लोग जब अपने राज्य में लौटते थे, तब भी वेश्याओं व सेनाओं द्वारा उनका स्वागत किया जाता था[4]। ये राजाओं के साथ साहसिक यात्राओं में जाती थीं[5]। युद्ध के मैदान में सेना के साथ रहती थीं[6]। संभव है कि ये गणिकायें विश्राम के समय सैनिकों का मनोरंजन कर श्रम परिहार करती होंगी। ये लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर अपना कार्य सिद्ध करने में दक्ष होती थीं। राज्य पर आयी विपत्ति के निवारणार्थ यथासम्भव इनका उपयोग किया जाता था[7]। ये सामान्य स्त्रियां थीं और सर्वगम्या होती थीं[8]। किन्तु राजा लोग इनमें विशेष प्रसन्नता का अनुभव करते थे। ये वेश्यायें प्राय: राजदरबार से सम्बन्धित कर लीं जाती थीं[9]। धृतराष्ट्र

- -

१- महा० उद्योगप० १६५।१६

२- एस० एन० व्यास - रामायणकालीन समाज, पृ० १८५-१८६

३- रामा० अयो० का० ५१।२१ गणिकावरशोभिताम्।

४- महा० उद्योग प० ८६।१५-१६, अनु०प० ५३।६६, रामा० युद्धका० १२७।३ महा० विराट प० ६८।२४, २६, देखिये कौ० अर्थशास्त्र १।२७।

५- रामा० अयो० का० ३६।२-३, महा०वनप० २३६।२२-२४, सभाप० ३६।२-३।

६- महा० उद्योगप० १६५।१६।

७- रामा० बालका० १०।५-७, १०।२८ रोमपाद ने ऋष्यश्रृंग को लाने का कार्य इनको सौंपा था।

८- महा० कर्णपर्व ६४।२६ नारीं प्रकाशामिव सर्वगम्याम्।

९- रामा० अयो० का० १००।५०। हैवलाक एलिस - सेक्स इन रिलेशन टू सोसाइटी वा० ६ का "स्टडीज इन दि साइकोलजी आफ सेक्स" १९४६ लन्दन अध्याय ७ "प्रासटिट्यूट" पृ० १५८ जो वेश्यावृत्ति से सम्बन्धित होती थीं, उन्हें किसी प्रकार की अपकीर्ति न पाकर अनेक सम्मान प्राप्त होता था। उच्चपदस्थ अधिकारी जब यात्रा पर जाते थे तो वेश्याओं के यहाँ जाने का विशेष करते थे।

की सेवा में रहने वाली वेश्यादासी जिसने युयुत्सु को जन्म दिया था[१] वह धृतराष्ट्र के अन्त:पुर में अवरुद्धा होगी और यदि वह वेश्या हो तो यह अनुमान किया जा सकता है कि वेश्याओं को अपने घर में रख लेना तथा अन्य पुरुषों के साथ सम्बन्ध में रोक लगाना उस समय निन्दित नहीं था[२]। सम्भवत: इनमें से कुछ वेश्यायें राज्याश्रित रहती थीं और परिवार के सदस्य के रूप में रहती थीं। युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर के कुटुम्बीजनों को सन्देश भेजते समय प्रसन्नता प्रदान करने वाली इन स्त्रियों का भी कुशलक्षेम पूछा था[३]। सम्भव है कि ये लोग प्रात:काल महलों में राजाओं को जगाने के लिये गीत गाती रही हों[४]।

मंगलसूचक पदार्थों के साथ इनकी भी गणना की जाती थी[५]। गणिकायें अपने कौशल में पूर्ण दक्ष होती थीं। ये नाचने गाने की कला में विशेष प्रवीण होती थीं। कामचर्या में कुशल और सम्पूर्ण कलाओं का विशेष ज्ञान रखने वाली होती थीं[६]।

रूप से आजीविका चलाने वाली[७] स्त्रियों में गणिका का स्थान उच्च होता था। गणराज्य की सभा गण में उसका एक आसन होता था, वह गणिका

- -

१- महा० आदिप० ११५।४२

२- याज्ञ० स्मृति २।२९०, याज्ञवल्क्य ने रखैलों को दो भागों में बांटा है - (१) अवरुद्धा (जो घर में रहती है, और उसके साथ अन्य कोई संबंध नहीं कर सकता) (२) भुजिष्या (जो घर में नहीं रहती, किन्तु एक व्यक्ति की रखैल के रूप में रहती है।

३- महा० उद्योगप० ३०।३८

४- वही उद्योग प० ६०।१६, शा०प० ३२५।३६ वारमुख्या:। रामा० युद्ध का० ६१।६।

५- रामा० अयो० का० ३।१७, १४।३६

६- महा० शा० प० ३२५। ३३-३६

७- रामा० अयो० का० ३६।३ " रूपाजीवाश्च० "।

के नाम से प्रसिद्ध हुई।[१] कौटिल्य इस सम्बन्ध में लिखते हैं - " गणिकाध्यक्ष गणिका वंश में उत्पन्न अथवा अगणिकावंश में जायमान रूपवती, यौवनवती, गाने बजाने आदि की कलाओं से सम्पन्न कामिनी को प्रतिवर्ष एक हजार वेतन के पण पर राजकुल की गणिका के रूप में नियुक्त करें[२]। गणराज्यों में यह "नगर-स्त्री" के नाम से प्रसिद्ध होती थी[३], जो गण की सम्पन्नता, शोभा और सुख ऐश्वर्य की प्रतीक होती थी। वह ६४ कलाओं में प्रवीण होती थी। रामायण में इनके संघ तथा नेता के विषय में संकेत प्राप्त होता है।[४] महाभारत में भी गणिकाओं का वर्णन है।[५] वात्स्यायन और भरत के अनुसार भी उसे वेश्याओं के मध्य में सबसे अधिक शोभनीय और योग्य होना चाहिये तथा ६४ कलाओं में प्रवीण होना चाहिये[६]। इनका प्रमुख कार्य नृत्य गीत करना था।

- -

१- तुलना कीजिये हैवलोक एलिस - " सेक्स इन रिलेशन टू सोसाइटी " अ० ७, पृ० १६० सामान्यत: वेश्याओं की उत्पत्ति उच्च सभ्यता और श्रृंगार से हुई। ऐसी स्त्री जो राजदरबार से सम्बन्ध रखे और कुछ अपना सम्मान भी रखे। मेयर - सैक्सुअल लाइफ इन एन्सियेंट इंडिया, पृ० २७२ प्राचीन भारतीय गणिका के समान प्राचीन ग्रीस में हैटायरा और बगदाद की अब्बासिद्स थी।

२- कौ० अर्थ० २।२७

३- रामा० अयो० का० ५१।२१, नगर उनकी उपस्थिति से सुशोभित थे। देखिये - एच० पी० द्विवेदी - " प्राचीन भारत के कलाविनोद "।

४- रामा० युद्ध का० १२७।३ गणिकाश्चैव संघश:।

५- महा० शा० प० ३६।२८

६- वात्स्यायन - कामसूत्र ११३। २०-२१, पृ० २६, काणे - हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र वा० ३, पृ० १४८ नोट १८७ (१६४६) भारत के " नाट्यशास्त्र " से उद्धृत

अभिरभ्युच्छ्रिता वेश्या शीलरूपगुणान्विता।
लभते गणिका शब्दं स्थानं च जनसंसदि ॥
पूजिता च सदा राज्ञा गुणवद्भि: च संस्तुता।
प्रार्थनीयाभिगम्या च लक्ष्यभूता च जायते ॥

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि आजकल समाज में वेश्याओं को जैसी स्थिति है और समाज द्वारा उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, वैसा दृष्टिकोण महाकाव्यकाल में नहीं था । इस काल में उन्हें घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था वरन् वे राजाओं को सुखसमृद्धि, ऐश्वर्य और सौन्दर्य प्रियता का प्रतीक मानी जाती थी । मंगल के अवसरों तथा उत्सवों पर उनकी उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी । यद्यपि यह सत्य है कि वे सुखोपभोग की सामग्री समझी जाती थी और दरबारों में, शिविरों में तथा नगरों में आभूषणों की तरह उनका प्रयोग किया जाता था । लोगों की दृष्टि में इनका महत्व बहुमूल्य पदार्थ के रूप में था, एक मानवीय संवेदना से पूर्ण मनुष्य के रूप में नहीं । वेश्याओं को इस काल में राजकीय संरक्षण प्राप्त था । राजकीय संरक्षण में वे शानशौकत का जीवन व्यतीत करती थी । ये मनुष्यों की कलात्मक अभिरुचि को भी संतुष्ट करती थी ।

महाकाव्य के उपदेशक भाग की रचना के समय तक इनके विरोध में स्वर ऊँचा होने लगा । इस काल में उनके विरोध में नियम बनाये गये, विशेष रूप से ब्राह्मणों को यह परामर्श दिया गया कि वे वेश्याओं द्वारा दिये गये अन्न को न ग्रहण करें।[1] उनके द्वारा दी गयी भेंट स्वीकार करने योग्य न थी क्योंकि वे लोग बधिकों और तेलियों से भी अधिक निन्दनीय समझी जातीं थीं।[2] एक

१- महा० शा० प० ३६।२८ गणिकान्न, मिलाइये मनु ४।२०६, उसके गण (गणराज्य) से सम्बन्धित किया गया है और " गणान्न " कहा है। और गणिका के अन्न (गणिकान्न) को नहीं लेना चाहिये ।

२- महा० अनु० प० १२५।६,

दशसूनासमंचक्रं, दश चक्रसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमा वेश्या, दशवेश्यासमो नृपः ।।

मिलाइये मनु ४।८५ इसी प्रकार का है ।

चरित्रवान व्यक्ति से यह आशा की जाती थी कि वह पेशेवर नाचने गाने वालियों को पुरस्कार न दें[१]। राज्य के लिये ये हानिकारक होती हैं इसलिये उन पर रोक रखनी चाहिये[२]।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि समाज में उच्च वर्ण की स्त्रियों को अनेक प्रकार की स्वतंत्रतायें तथा सुविधायें प्राप्त थीं। जीवन की एकान्तता तथा नीरसता को दूर करने के लिये वे समय-समय पर अनेक प्रकार के सामाजिक कार्यों यथा - उत्सवों, यज्ञों, क्रीड़ा-विनोद तथा विहार यात्राओं में सक्रिय भाग लेती थीं। समाज में उन्हें आदर तथा सम्मान प्राप्त होता था। परन्तु जहां एक ओर उन्हें उपर्युक्त स्वतन्त्रतायें प्राप्त थीं, वहीं उनके ऊपर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये गये थे, जिससे उनकी स्वतंत्रता सीमित हो जाती थी। उन्हें आजीवन किसी न किसी के संरक्षण में रहना पड़ता था, नैतिक निर्बन्ध उनके लिये अत्यन्त कठोर थे। इसके विपरीत निम्न वर्ण की स्त्रियों के लिये नैतिक निर्बन्ध इतने कठोर न थे, क्योंकि वे अपने स्वामियों की व्यक्तिगत सम्पत्ति समझी जाती थी, इसलिये वे अपने स्वामियों की प्रत्येक उचित अथवा अनुचित इच्छा का पालन करने के लिये विवश होती थीं। अपने सतीत्व की रक्षा कर पाना उनके लिये कठिन होता था। समाज में उन्हें हेय दृष्टिकोण से देखा जाता था। सामाजिक दृष्टिकोण से इनकी स्थिति निम्न होते हुए भी इन्हें किसी प्रकार की असुविधा का सामना नहीं करना पड़ता था, इनके स्वामियों का व्यवहार इनके प्रति बहुत सहिष्णु तथा अच्छा होता था।

- -

१- महा० शा० प० ३६।२७

२- वही शा० प० ८८।१४-१५ राष्ट्रस्योपघातकाः।
कलियुग में राजमार्ग वेश्याओं से पूरित रहेंगे - महा० वन० प० १९०।५२
" शिवशूला चतुष्पथाः " ।

महाकाव्य में प्राप्त स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि इस काल में अनेकों प्रकार की विचारधारायें प्रचलित थी, परन्तु वे एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् नहीं वरन् उन विचारधाराओं में एक प्रकार की निरन्तरता के दर्शन होते हैं। महाकाव्य में यह सामान्य विचारधारा दिखायी पड़ती है कि स्त्रियों का आदर तथा सम्मान किया जाय। माता तथा जननी के रूप में वह सर्वाधिक आदर की पात्र थी। पत्नी के रूप में वह पति की प्रेयसी, सखी और सलाहकार थी। गृहणी के रूप में वह घर की मुख्य केन्द्र बिन्दु थी। कन्या के रूप में वह परिवार की प्रीति पात्र थी। इस प्रकार जहां कन्या, पत्नी तथा माता के रूप में समाज में उसको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था, वहीं दूषित करने वाली के रूप में उसकी निन्दा की जाती थी। इन विरोधी विचारधाराओं के अनेक कारण थे, जैसा कि प्रथम अध्याय में दिखाया गया है कि महाकाव्य में विभिन्न काल के समाजों के आचार व्यवहार का वर्णन प्राप्त होता है, इसलिये उनमें विरोधाभास स्वाभाविक है।

स्त्रियों को इस काल में महत्वपूर्ण स्वतन्त्रतायें तथा सुविधायें प्राप्त थीं। वे समाज की महत्वपूर्ण सदस्य मानी जाती थीं। परन्तु शनै:शनै: उनकी स्थिति में ह्रास होता गया। महाकाव्य के उपदेशक भाग के समय बालविवाह के प्रचलन तथा शिक्षा की कमी के कारण स्त्रियों की स्थिति में अत्यन्त गिरावट आ गयी। पातिव्रत्य के आदर्श के विकास के कारण अब वह पति की सहधर्मिणी न होकर उसकी अनुगामिनी हो गयीं। " निरन्तर संरक्षकता " के सिद्धान्त के विकास के कारण उन्होंने अपनी पूर्वकाल की स्वतंत्रताओं को खो दिया। इस समय उनके विरोध में अनेक प्रकार के वचन कहे गये, उन्हें अविवेकशील प्राणी कहा गया। इस प्रकार उनकी स्थिति में ह्रास होने के बावजूद उनके आदर तथा सम्मान में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी तथा कहा गया कि स्त्रियों का सदा सत्कार और दुलार करना चाहिये, जहां स्त्रियों का आदर सत्कार होता है, वहां देवतालोग प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं, तथा जहां इनका अनादर होता है, वहां की सारी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं।

" स्त्रियो यत्र च पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: । "

: महा० अनु०प० ४६।५ :

सन्दर्भ ग्रन्थों की संक्षिप्त सूची

मूल ग्रन्थ

महाकाव्य

महाभारत - गीताप्रेस, गोरखपुर

महाभारत - स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सतारा)

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण - गीताप्रेस, गोरखपुर
(प्रथम एवं द्वितीय भाग) तृतीय संस्करण, सं० २०३३

वेद

यजुर्वेद-सामवेद-अथर्ववेद - दयानन्द संस्थान,
नयी दिल्ली, संवत् २०३२

अथर्ववेद - श्रीदामोदर सातवलेकर,
स्वाध्याय मण्डल, पारडी (बलसाड़)

ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रन्थ

ऐतरेय ब्राह्मण (१ से ४ भाग)- एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल,
१८९६-१८९७

गोपथ ब्राह्मण - अथर्ववेद भाष्य कार्यालय, इलाहाबाद ।

तैत्तिरीय ब्राह्मणम् - ओरियन्टल लाइब्रेरी पब्लिकेशन्स,
(द्वितीय भाग) १९२१ ।

शतपथ ब्राह्मणम् (प्रथम एवं द्वितीय भाग)	-	अच्युत ग्रन्थमाला काशी, (प्रथम भाग सं० १९९४, द्वितीय भाग १९९७)।
शतपथब्राह्मणम् (द्वितीय तथा- (तृतीय भाग)		प्राचीनवैज्ञानिकाध्ययन अनुसंधान संस्थान,दिल्ली (द्वितीय भाग १८६६, तृतीय भाग १९७०)
छान्दोग्य उपनिषद्	-	सेक्रेड बुक्स आफ दि ईष्ट, मैक्समूलर, आक्सफोर्ड -१९००
तैत्तिरीयोपनिषद	-	नवलकिशोर प्रेस, १९२४
तैत्तिरीय आरण्यक (सायण भाष्य समेत) (प्रथम भाग)	-	आनन्दाश्रम मुद्रणालय ख्रिस्ताब्दा: १८९७ -
बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यम्	-	वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, संवत् २०१७

धर्मसूत्र

आश्वलायन गृह्यसूत्रम्	-	आनन्दाश्रममुद्रणालय, १९३६
आश्वलायन श्रौतसूत्रम् (प्रथमो भाग:)	-	मंगलदेवशास्त्री, १९३८
आपस्तम्ब हिरण्यकेशि-गृह्यसूत्र	-	सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट, मैक्समूलर, आक्सफोर्ड, १८९२, वा० ३०, भाग -२ ।
आपस्तम्ब श्रौतसूत्र	-	एशियाटिक सोसायटी, १८८२

आ०·सू

आपस्तम्ब और गौतमधर्मसूत्र - सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट
मैक्समूलर, आक्सफोर्ड,
वा० २, भाग १, १८७६

काठक गृह्यसूत्रम् - प्रथम संस्करण, १९८१

खादिर गृह्य सूत्रम् - मैसूर १९१३

गोभिल गृह्यसूत्रम् - चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस,
सं० १९९२

गौतमधर्मसूत्राणि - चौखम्बा संस्कृत सीरीज,
(मिताक्षरावृत्ति सहित) बनारस, १९६६

गौतमधर्मसूत्र परिशिष्ट - अड्यार लाइब्रेरी, १९४८

वशिष्ठ और बौधायन धर्मसूत्र- सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट,
मैक्समूलर, आक्सफोर्ड
वा० १४, भाग - २, १८८२

शांखायन पारस्कर गृह्यसूत्र - सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट,
मैक्समूलर, वा० २९, भाग -१ ।

मानव धर्मशास्त्र - जे० जौली,
लन्दन, १८८७

स्मृति साहित्य

पाराशर स्मृति - दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल,
१८९२

मनुस्मृति - चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी,२००४ ।

याज्ञवल्क्यस्मृति - बम्बई १८३१
(मिताक्षरा सहित)

विष्णुस्मृति - चौखम्बा संस्कृत सीरीज,
वाराणसी (तृतीय संस्करण),संवत् २०१८

२० स्मृतियां (प्रथम खण्ड) - संस्कृति संस्थान,
बरेली, १९६६ ई० ।

मनुस्मृति, गौतम स्मृति, औशनस स्मृति, वशिष्ठ स्मृति, शातातपस्मृति, आङ्गिरस स्मृति, यमस्मृति, लिखित स्मृति, कात्यायन स्मृति, विष्णु स्मृति, देवल स्मृति ।

२० स्मृतियां (द्वितीय खण्ड)- संस्कृति संस्थान,
बरेली, १९६६ ई० ।

याज्ञवल्क्यस्मृति, पाराशर स्मृति, सम्वर्त स्मृति, दक्ष स्मृति, वेदव्यास स्मृति, आपस्तम्ब स्मृति, हारीत स्मृति, शंखस्मृति, अत्रि स्मृति, बृहस्पति स्मृति, बौधायन, लघ्वाश्वलायन स्मृति, काश्यप स्मृति, पुलस्त्य स्मृति, बुधस्मृति, मार्कण्डेय स्मृति ।

धर्मशास्त्र संग्रह (२० स्मृतियों का संग्रह)
(भा० १,और २)

स्मृतिचन्द्रिका - देवणभट्ट, गवर्नमेन्ट ओरियन्टल लाइब्रेरी,
मैसूर १९१४

अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र - कौटिल्य,
पंडित पुस्तकालय, काशी

कामन्दकीय नीतिसार - आनन्दाश्रम०
खिस्ताब्द: १८६४

शुक्रनीति - दि पाणिनी आफिस, बहादुरगंज,
इलाहाबाद, १९१४

पुराण

अग्निपुराण (प्रथम एवं द्वितीय खण्ड) - संस्कृति संस्थान, बरेली
प्रथम संस्करण, १९६७ ई०

पद्मपुराण - कलकत्ता, १९५७

मार्कण्डेयपुराण (प्रथम एवं द्वितीय खण्ड) - संस्कृति संस्थान,
बरेली, १९६७, प्रथम संस्करण ।

श्री विष्णुपुराण - गीताप्रेस, गोरखपुर,
तृतीय संस्करण, सं० २००९

तैत्तिरीय संहिता - स्वाध्याय मंडल, गुजरात,
चतुर्थ संस्करण, १९८३

मैत्रायणी संहिता - स्वाध्याय मंडल, औंध,
शक सं० १८६४

बृहत्संहिता - वराहमिहिर
चौखम्बा विद्याभवन, चौक, १९७७

वाजसनेयी संहिता - स्वाध्याय मंडल, औंध, १९८४

वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश - चौखम्बा संस्कृत सीरीज,
वाराणसी, १९१३

शांडिल्य संहिता	-	शांडिल्य, बनारस, १६३५
सात्वत संहिता	-	श्री कांची, १६०२।
अमरकोश	-	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १६२६
निरुक्तम्	-	यास्क, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १६३०
निरुक्तम् (पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध)	-	आर्ष कन्या गुरुकुल नरेला, २०३३ वि० सं०

<u>अन्य साहित्यिक पुस्तकें</u>

उत्तररामचरित	-	भवभूति, लोकभारती प्रकाशन; इलाहाबाद, १६७१
कादम्बरी	-	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६१०
कुमारसम्भव	-	कालिदास, श्री वेङ्कटेश्वर, सं० १६६६
दायभाग:	-	जीमूतवाहन: संस्कृत साहित्य समाज, हावड़ा, १६७८
पंचतन्त्र	-	विष्णु शर्मा, विद्याविलास प्रेस, वाराणसी -१

मालतीमाधवम् - भवभूति,
बम्बई, १८७६

मीमांसादर्शनम् - जैमिनी,
भारतीय विद्याप्रकाशन ,
वाराणसी, १८७६

मृच्छकटिक - बम्बई, १६१०

रघुवंश - कालिदास
बम्बई १९१०

राजतरंगिणी - कल्हण
हिन्दी प्रचारक संस्थान,
वाराणसी, १६७६ (तरंग ७)

सुभद्रा धनंजयम् - कुलशेखरभूपाल
त्रिवेन्दम संस्कृत सीरीज, १६११

शकुन्तला - निर्णयसागर,
बम्बई, १६१६

-0-

सहायक ग्रन्थों की संक्षिप्त सूची

अग्रवाल, वासुदेवशरण	-	पाणिनी कालीन भारतवर्ष, वाराणसी, चौखम्बा विद्या भवन, १९६६ ।
अल्टेकर, ए० एस०	-	दि पोजिशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, बनारस, १९५५
अलबरूनी	-	अलबेरूनी का भारत, (प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय भाग, अनु० सन्तराम बी० ए०) प्रयाग, १९२४, १९२६, १९२८ ।
अल्टेकर, ए० एस०	-	एजूकेशन इन एन्सियेन्ट इण्डिया, बनारस, १९३४
अशोक चटर्जी	-	'सन्ताज पैरेन्टेज', इन्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, जून १९५७
आप्टे, वी० एम०	-	सोशल एन्ड रिलीजियस लाइफ इन दि गृह-सूत्राज, बम्बई, १९५४
आयंगर, रंगास्वामी के० वी०	-	सम आस्पेक्टस आफ हिन्दू व्यू आफ लाइफ एकोर्डिंग टू धर्मशास्त्राज, बड़ौदा १९५२।
आचार्य भास्करानन्द	-	वैदिक साहित्य और संस्कृति, लखनऊ, १९६१
इन्द्र० प्रो०	-	दि स्टेटस आफ वीमेन इन एन्सियेन्ट इंडिया बनारस, १९५५
उपाध्याय, भगवतशरण	-	वीमेन इन ऋग्वेद, दिल्ली, १९७४

उपाध्याय, बलदेव - संस्कृत साहित्य का इतिहास,
काशी, १९४८

काणे, पी० वी० - धर्मशास्त्र का इतिहास,
(प्रथम, द्वितीय, तृतीय भाग) लखनऊ १९६५

कृष्णाराव, एम० वी० - स्टडीज इन कौटिल्य,
ओरियन्टल बुकसेलर्स, दिल्ली, १९५८

कृष्णामाचारी, एम० - हिस्ट्री आफ क्लैसिकल संस्कृत लिटरैचर
बनारस, दिल्ली, १९७४

कीथ - ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरैचर,
लन्दन, १९२०

कौटिल्य - अर्थशास्त्र (अंग्रेजी अनु० शामशास्त्री द्वारा)
मैसूर, १९२३

गुप्त, नरेशचन्द्रसेन - सोर्सेज आफ ला एन्ड सोसाइटी इन
एन्सियेन्ट इंडिया, कलकत्ता, १९१४ ।

गुप्त, नत्थूलाल - महाभारत एक समाजशास्त्रीय अनुशीलन,
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, १९८०

गुप्त शान्तिस्वरूप, गुप्त निवास - 'वाल्मीकि रामायण में राज्य समाज एवं
अर्थव्यवस्था", अलीगढ़, १९७६ ।

गांधी, मोहनदासकरमचन्द - वीमेन एन्ड सोशल इनजस्टिस, नवजीवन प्रेस,
अहमदाबाद । १९५४।

गुप्ता, पद्मिनी सेन - वीमेन इन इण्डिया,
इनफोर्मेशन सर्विस आफ इंडिया

गैरोला, वाचस्पति - संस्कृत साहित्य का इतिहास,
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,
वि० सं० २०१७ ।

घिल्डियाल, अच्युतानन्द एवं गोदावरी - प्राचीन भारतीय स्मृतिकार और नारी,
वाराणसी, १९७४ ।

चौधरी - वीमेन इन वैदिक रिचुअल,
कलकत्ता, १९५६

जायसवाल, के० पी० - हिन्दू राज्यतंत्र (अनु० रामचन्द्र वर्मा)
प्रयाग १९८४

जायसवाल - मनु एण्ड याज्ञवल्क्य,
टी० एल० एल० सीरीज कलकत्ता, १९३०

जैन, जगदीशचन्द्र - लाइफ इन एन्सियेंट इंडिया एज डिपिक्टेड
इन दि जैन कनान्स, बम्बई, १९४७ ।

जौली, जे० - हिन्दू ला एन्ड कस्टम
(जर्मन से अनूदित, मूलरूप से बी० के० घोष,
कलकत्ता, १९२८)।

डान्सन जे०, डेरेट एम० - रिलीजन ला एन्ड दि स्टेट इन इंडिया,
लन्दन, १९६८

डेविस, जे० एल० - ए शौर्ट हिस्ट्री आफ वीमेन,
लन्दन, १९४८ ।

तिलक, बालगंगाधर - श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य (अनु० माधवराव सप्रे)
पूना १९१७ ।

तोमर,रामबिहारी सिंह - भारतीय सामाजिक संस्थायें,
अजमेर, १९६०

त्रिपाठी,शम्भूरत्न - भारतीय सामाजिक संरचना और संस्कृति,
किताबमहल, इलाहाबाद, १९६२

त्रिपाठी हरिहरनाथ - प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका,
दिल्ली, १९६५

त्रिपाठी, बी० एम० - मैरेज फार्मस अन्डर एन्सियेन्ट ला,
बम्बई, १९०६

थामस - वीमेन एन्ड मैरेज, इन इंडिया,
लन्दन, १९३९

थामस, पी० - हिन्दू रिलीजन कस्टम्स एन्ड मैनर्स,
बम्बई, १९७१

दत्त, आर० सी० - हिस्ट्री आफ सिविलाईजेशन इन एन्सियेन्ट
इंडिया, लन्दन, १८९३

दास, ए० सी० - ऋग्वैदिक कल्चर,
कलकत्ता, १९२५

दिनकर, रामधारी - संस्कृति के चार अध्याय,
पटना १९६२

द्विवेदी, एच० पी० - प्राचीन भारत के कलाविनोद,
बम्बई १९५२

दीक्षित,प्रेमकुमारी - महाभारत में राज्य व्यवस्था,
लखनऊ, १९७०

दीक्षित, प्रेमकुमारी - रामायण में राज्य व्यवस्था,
लखनऊ, १६७१

दीक्षित, शंकर बालकृष्ण - भारतीय ज्योतिष (अनु० शिवनाथ फारखण्डी)
प्रकाशन ब्यूरो सूचना विभाग, उ०प्र० १६५७

देवराज - भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास,
इलाहाबाद, १६७१

धर्मा, पी० सी० - रामायण पौलिटी,
मद्रास, १६४१

धर्मा, पी० सी० - सोशल लाइफ इन रामायण,
क्यू० जे० एम० एस० २८, पृ० १-१६,७३-८०

धर्मा, पी० सी० - वीमेन ड्यूरिंग रामायण पीरियड
जे० आई० एच० १७, पृ० १-२८

पर्गिटर, एफ० एफ० - एन्शियेन्ट इन्डियन.हिस्टोरिकल ट्रेडीशन,
लन्दन १६२२ ।

पाराशर, सन्त - रामायण (राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से)

पाराशर, चिरंजीलाल - नारी और समाज,
राकेश पब्लिकेशन्स, गाजियाबाद (मेरठ)
प्रथम संस्करण, १६६१ ई०

पाण्डे, आर० बी० - हिन्दू संस्कार,
बनारस, १६५७

पान्डे, बी० सी० - फाउन्डेशन आफ इन्डियन कल्चर,
दिल्ली, १६८४

पान्डे, बी० सी० - स्टडीज इन दि औरिजन आफ बुद्धिज्म,
इलाहाबाद, १९५७

पुसालकर, ए० डी० - स्टडीज इन एपिक्स एन्ड पुरान्स,
बम्बई, १९५५

पूल, जान० जे० - फेमस वीमिन आफ इण्डिया,
कलकत्ता १९५४

बनर्जी, जी० - दि हिन्दू ला आफ मैरेज एण्ड स्त्रीधन,
कलकत्ता, १९२३

बाशम, ए० एल० - दि वन्डर वेट वाज इन्डिया, लन्दन १९५४

बुल्के, फादरकामिल - रामकथा, हिन्दी परिषद् प्रकाशन,
प्रयाग विश्वविद्यालय, १९७१

बुल्के, फादरकामिल - रामकथा (उत्पत्ति और विकास)
प्रयाग १९६२ ।

बेडर, क्लेरिस - वीमेन इन एन्सियेन्ट इंडिया,
बनारस, १९६४

भट्टाचार्य, सुखमय - महाभारतकालीन समाज (अनु० पुष्पा जैन)
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६६

भणालकर, वनमाला - महाभारत में नारी,
सागर (म० प्र०) सम्वत् २०२१

महतो, मोहनलाल - जातककालीन संस्कृति, पटना, १९५८

मजुमदार, आर० सी० - एन्सियेन्ट इंडिया, बनारस, १९५२

मित्तर - पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू ला
कलकत्ता, १६१३

मिल, जे० एस० - दि सब्जेक्शन आफ वीमेन, लन्दन,
बम्बई १६३०

मीतल,सुरेन्द्रनाथ - राष्ट्र राज्य और समाज की समस्याओं के
सम्बन्ध में विचार (शोधप्रबन्ध) १६५६।

मुकर्जी - एन्सियेन्ट इण्डियन एजूकेशन,
मैकमिलन एण्ड क० १६४७।

मुकर्जी, राधाकमल - भारतीय समाज विन्यास,
(पांचजन्य के सम्पादक मण्डल द्वारा अनूदित)
दिल्ली, बम्बई, पटना, मद्रास, इलाहाबाद
१६५७।

मुकर्जी, राधाकुमुद - हिन्दू सभ्यता (हिन्दू सिविलाईजेशन का
अनुवाद,(अनु० वासुदेवशरण अग्रवाल),
दिल्ली, १६७५।

मेयर, जे० जे० - सेक्सुअल लाइफ इन एन्सियेन्ट इंडिया (२ वा०)
लन्दन, १६३०

मैकडोनल और कीथ - वैदिक इन्डेक्स, २ वा०
मोतीलाल बनारसीदास, १६५८

मैकडोनल, ए० - ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर,
दिल्ली, १६५८

मैकडोनल, ए० एस - इन्डियाज पास्ट,
लन्दन, १६५६।

मैक्समूलर - ए हिस्ट्री आफ एन्सियेन्ट संस्कृत लिटरैचर
इलाहाबाद, १९२६

राय, सिद्धेश्वरीनारायण - पौराणिक धर्म और समाज,
इलाहाबाद, १९६८

राघव, रांगेय - प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास,
दिल्ली, १९५३

राधाकृष्णन, डा० - धर्म और समाज,
दिल्ली, १९६१

ला, एन० एन० - आस्पेक्टस आफ एन्सियेन्ट इन्डियन पौलिटी
बम्बई (पुनर्मुद्रित, कलकत्ता १९६०) ।

विंटरनित्स, एम० - ए हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरैचर (वा० १),
कलकत्ता १९२७

विलियम्स, मोनियर - इन्डियन विजडम,
इन्डिया आफिस, १८७५

विद्यालंकार, जयचन्द्र - भारतीय इतिहास की रूपरेखा (प्रथम एवं
द्वितीय भाग) इलाहाबाद, १९३३ ।

वेदालंकार, प्रशान्तकुमार - वैदिक साहित्य में नारी,
दिल्ली, १९६४

वेस्टरमार्क - विवाह और समाज (अनु० शम्भुरत्न त्रिपाठी)
कानपुर, १९६५

वेदालंकार, हरिदत्त - हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास,
लखनऊ, १९७०

वेदालंकार, हरिदत्त - हिन्दू परिवार मीमांसा,
मसूरी, १९६३

वेबर - ए हिस्ट्री आफ इन्डियन लिटरेचर,
वाराणसी, १९७४

वेस्टरमार्क - ए हिस्ट्री आफ ह्यूमेन मैरेज,
लन्दन, १९०३

वैद्य, सी० वी० - महाभारत, ए क्रिटिजम्,
बम्बई, १९०५

वैद्य, सी० वी० - महाभारत मीमांसा,
पूना, १९२०

वैद्य, सी० वी० - दि रिडिल आफ दि रामायण,
दिल्ली, १९७२

व्यास,शांतिकुमार नानूराम - रामायणकालीन समाज,
दिल्ली, १९५८

व्यास,शांतिकुमार नानूराम - रामायणकालीन संस्कृति,
दिल्ली, १९५८

- वैदिक इंडिया,
ओरियन्टल बुकसेलर्स एण्ड पब्लिसर्स,दिल्ली

सरकार,एस० सी० - सम आस्पेक्टस आफ अर्लियस्ट सोशल हिस्ट्री
आफ इंडिया, लन्दन १९२८ ।

सक्सेना, आर० एन० - सोशल इकोनोमी आफ पोलियान्ड्रियस पीपुल
आगरा विश्वविद्यालय, १९५५

सागर, सुन्दरलाल - हिन्दू कल्चर एन्ड कास्ट सिस्टम इन इंडिया,
१९७५

सिंह, मदनमोहन - बुद्धकालीन समाज और धर्म,
पटना, १९७२

स्मिथ - दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया,
लन्दन, १९२८

शर्मा, राधेश्याम - महाभारत में सामाजिक सिद्धान्त एवं संस्थायें
पटना १९८१

शर्मा, गजानन - प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी,
इलाहाबाद, १९७१

शास्त्री, शकुन्तलाराव - वीमेन इन वैदिक एज,
बम्बई, १९५४

शास्त्री, शकुन्तलाराव - वीमेन इन सेक्रेड लाज,
बम्बई, १९५४

शास्त्री, श्रीनिवास - राइट एन्ड स्टेटस आफ वीमेन इन इंडिया,
मद्रास, १९५६

शास्त्री, शालग्राम - रामायण में राजनीति,
लखनऊ, १९८८ वि०

शुक्ल, देवीदत्त - प्राचीन भारत में जनतंत्र,
लखनऊ १९६६

शास्त्री, शकुन्तलाराव -ठ वीमेन इन वैदिक एज, बम्बई, १९५४

शास्त्री, शकुन्तलाराव - वीमेन इन सेक्रेड लाज, बम्बई, १९५४

शास्त्री, श्रीनिवास - राइट एन्ड स्टेटस आफ वीमैन इन इंडिया, मद्रास, १९५६

शार्नर - वीमैन अन्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, लन्दन, १९३०

हापकिन्स, ई० डब्ल्यू० - दि सोशल एन्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एन्सियेन्ट इंडिया, वाराणसी, १९७२

हापकिन्स, ई० डब्ल्यू० - दि ग्रेट एपिक आफ इंडिया, न्यू हेवन, १९२०

हापकिन्स, ई० डब्ल्यू० - दि रिलीजन्स आफ इंडिया, इंडिया आफिस, लन्दन १८९६

हापकिन्स, ई० डब्ल्यू० - 'एपिक मैथोलौजी' टर्बनर, लन्दन, १९१५

हैवलक, एलिस - 'सैक्स इन सोसाइटी', स्टडीज आन सैकोलौजी आफ सेक्स, लन्दन, १९४६

ज्ञानी, शिवदत्त - वेदकालीन समाज, वाराणसी, वि० सं० २०२३

मुख्य अनुसंधान-पत्रिकायें

जर्नल आफ बी० एन० का रिसर्च इन्स्टीट्यूट, वा० ६ (१९५१)

जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी (१८९७)

इंडियन कल्चर, जर्नल आफ दि इंडियन रिसर्च इन्स्टीट्यूट वा० ८, जुलाई १९५१

इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली ।

जर्नल आफ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज ।

जर्नल आफ इन्डियन हिस्ट्री ।

जर्नल आफ ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा

जर्नल आफ दि यू० पी० हिस्टारिकल सोसाइटी ।

जर्नल आफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी ।

मुख्य संकेत-पद-सूची

ऋ०	-	ऋग्वेद
अथर्व०	-	अथर्ववेद
ऐत० ब्रा०	-	ऐतरेय ब्राह्मण
तै० ब्रा०	-	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तै० सं०	-	तैत्तिरीय संहिता
बृहदा० उप०	-	बृहदारण्यक उपनिषद
आप० गृ० सू०	-	आपस्तम्बगृह्यसूत्र
आप० ध० सू०	-	आपस्तम्बधर्मसूत्र
याज्ञ० स्मृ०	-	याज्ञवल्क्य स्मृति
हि० इं० लि०	-	हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर
हि० ए० सं० लि०	-	ए हिस्ट्री आफ एन्सियेन्ट संस्कृत लिटरेचर
हि० सं० लि०	-	हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर
ए० इ० हि० ट्रे०	-	एन्सियेन्ट इंडियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन
आई० एच० क्यू०	-	इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली
जे० आई० एच०	-	जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री
जे० ए० ओ० एस०	-	जर्नल आफ अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी
जे०आर०ए०एस०	-	जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी ।

-०-